प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

भाग—१६

मेष—कन्या १९८१

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

औद्योगिक रसायन
(Industrial Chemistry)

इतिहास
(History)

कृषिशास्त्र
(Agriculture)

गणित
(Mathematics)

जीव-विज्ञान
(Biology)

जीवनी
(Biography)

ज्योतिष शास्त्र
(Astronomy)

दर्शन
(Philosophy)

पुरातत्त्व
(Archaeology)

भौतिकशास्त्र
(Physics)

रसायन शास्त्र
(Chemistry)

वनस्पति शास्त्र
(Botany)

शिक्षा
(Education &Hygiene)

समाज शास्त्र
(Sociology)

वैद्यक तथा स्वास्थ विज्ञान
(Medicine)

साधारण
(General)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १९ | मेष, संवत् १९८१ । | संख्या १

डेंगूज्वर और उसको मिटानेके उपाय

डेंगू ज्वरने आजकल भारतके कई प्रान्तोंमें बड़ा ज़ोर पकड़ रखा है। प्रत्येक परिवारकी इसने ख़बर ली है। आज हम इसीके सम्बन्धमें कुछ बातें पाठकोंको सुनावेंगे। आशा है, हमारी यह आलोचना अप्रासंगिक न होगी।

स्पेनमें एक शब्द है—"डेंगूरो"। "डेंगू" शब्द इसी "डेंगूरो" शब्दसे निकला है। डेंगूज्वरके रोगीको चलना-फिरना बहुत कठिन हो जाता है और उसका शरीर भी अकड़ जाता है। इसीसे इसका नाम "डेंगू" अर्थात् डंडेके समान, रखा गया है।

एक बार अमेरिकाके 'गेलवेष्टन' नामक छोटेसे शहरमें प्रायः २००.० लोगोंको यह रोग हुआ। 'ब्राउंस वाउल' नामके एक दूसरे शहरमें ८००० लोगोंको डेंगूज्वरने दबाया, जिनमेंसे १००० लोगों पर तो इसने पूरा पूरा अधिकार जमा लिया था। अब भारतमें भी लाखों मनुष्य इसके आक्रमणसे हैरान हैं।

भारतवर्षमें यह रोग सन् १८२४ ईस्वीमें आया। इसके दो तीन साल बाद ही यह-'वेस्ट-इंडीज़' में फैल गया। सन् १७६४ ई०के पहिले इस रोगको कोई नहीं पहचानता था। सबसे पहिले इसका स्पेनके सेविल नामक स्थानमें पता लगा। इसके बाद संसारके कई स्थानोंमें इसकी तरंगें फैल गईं। जो देश ग्रीष्म प्रधान या शीतोष्ण होते हैं, वह इसका प्रकोप सह सकते हैं। स्पेनमें इसका आविर्भाव होनेके १० वर्ष बाद यह पारस,

मिस्र और उत्तर अमेरिकामें फैल गया। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें यह रोग दक्षिण अमेरिकाके पेरू प्रदेश तक जा पहुँचा। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें इसका ज़ोर पूर्व-अफ्रीका, मिस्र, अरब, भारतवर्ष, ब्रह्मदेश और चीन तक पहुँच गया। और इस समय यह हांकांग, सीरिया, फीज़ी, ग्रीस, भूमध्यसागरके कई स्थानों और एशिया माइनरमें पहुंच गया है। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें इसका प्रसार सिंगापुर, सिंहल, उत्तर ब्रह्मदेश और पश्चिम आस्ट्रेलिया तक हो गया। एक बार जहाँ यह रोग हो जाता है, वहाँ दुबारा भी होते देखा गया है। डा० मैंसन् साहबका ख़याल है कि प्रत्येक बीस वर्षके बाद सब देशोंमें डेंगूज्वरका हमला एकबार ज़रूर होता है। मगर हमारा ख़याल है कि ग्रीष्मप्रधान देशों और समुद्रतीरके बड़े बड़े बन्दरोंमें यह रोग प्रायः प्रति वर्ष आया करता है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, सिंगापुर, कोलम्बो, हांकांग, रंगून आदि बन्दरोंमें, सन् १६०१ से, प्रायः प्रतिवर्ष डेंगूज्वर आते देखा गया है।

मलेरियाकी भाँति डेंगूज्वरके भी एक प्रकारके मच्छर होते हैं। इनको अंगरेज़ीमें स्टेगोमाइया (Stegomyia) कहते हैं। इनकी उत्पत्ति बँधे हुए पानीसे होती है। वाणिज्य पोतके छोटे बड़े जलाधारोंमें यह मच्छर पैदा होते हैं और अपनी वंश वृद्धि भी वहाँ कर सकते हैं, यह बात परीक्षासे साबित हो गई है। अतएव, जहाज़में यदि एक भी रोगी होता है तो उसके द्वारा और भी यात्री रोगी बन जाते हैं और वह जहाँ उतरते हैं वहाँकी हालतका तो कहना ही क्या है!

हर्षका विषय है कि इस ज्वरसे मृत्यु नहीं होती। कोई कोई कहते हैं कि एकबार इसका हमला हो जाने पर दुबारा नहीं होता। मगर बात इस नियमके विरुद्ध देखी जाती है। ऊँचे पर्वती देशों और शीतप्रधान देशोंमें, शीतकालमें यह ज्वर नहीं होता। गरम और नीचे स्थान ही इसको विशेष पसंद हैं। इस रोगके जीवाणु अब भी स्थिर नहीं हुए। यद्यपि रक्त कणके अन्दर बहुतोंने इन जीवाणुओंका सूक्ष्म शरीर देखा है, तथापि अभी मतभेद ही है। हाँ, एक विषयमें किसीको भी मतभेद नहीं है कि मच्छर ही डेंगूज्वरके वाहन हैं, यह विषय निश्चित भी हो गया है। मलेरियाज्वर मच्छरोंके द्वारा होता है, इस बातको सभी जानते हैं। इन्हीं मच्छरोंको फिर डेंगूज्वरका वाहन बता कर दोषी ठहराया गया है। यह डाक्टरोंकी अजीब लीला मालूम होती है। यहाँ यह कह देना भी ठीक होगा कि 'एनो फेलिस' नामक मच्छर, जो साधारण तौर पर मलेरियाके जीवाणु पैदा करता है, 'डेंगू फ़ीवर' का वाहक नहीं है। जो हो इसके सबन्धमें कुछ दृष्टान्त पाठकोंके सामने पेश किये जाते हैं।

बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें फिलीपाइन द्वीपके किसी स्थानमें डेंगूज्वरका प्रादुर्भाव हुआ। उस समय अमेरिकाके दो सेना दल एक पहाड़ी स्थानमें पास पास रहते थे। एक दल पर्वतकी चोटी पर ऊँची भूमिमें था और दूसरा दल पर्वतकी नीची भूमिपर छावनी डाले हुए था। बरसात के दिन थे। नीचेकी ज़मीनमें भयानक मच्छरोंका उपद्रव शुरू हुआ। यद्यपि वहाँ किसी जगह जल जमा नहीं होता था, तथापि मच्छर एकाएक पैदा हो गये। ऊँची ज़मीनमें मच्छर नहीं थे; और वहाँ किसीको भी डेंगू ज्वर नहीं हुआ। बेचारे नीचेवाले कितने ही लोग डेंगू द्वारा दबाये गये; अतएव तुरन्त ही उनको अलग करके चौबीसों घंटे मसहरीके अन्दर रखा गया। जो स्वस्थ थे उनके लिए भी संध्या समयके पहलेसे ही मसहरीके भीतर रहनेका हुकम हुआ। इसके सिवाय सेना निवासके दरवाज़े और खिड़कियाँ एक प्रकार के बारीक जालसे ढाँक दी गईं। इस प्रकार सेना निवासका डेंगूज्वर बन्द हुआ। सिर्फ़ एक सैनिक को, जो बिना मसहरीके सो रहा था, डेंगू-

ज्वर हुआ। इस प्रकारके और भी कितने ही उदाहरण हैं, जिनको यहाँ लिख कर लेखका कलेवर बढ़ाना ठीक न होगा। इतना निश्चित है कि यह बीमारी अवश्य ही मच्छरों की करतूत है। सीरिया देशके बेरुथ नामक स्थानमें डा० ग्राहम ने इसकी परीक्षा भी की थी। उन्होंने ऐसे मच्छरोंको, जिन्होंने डेंगू-रोगीको काटा है, तन्दुरुस्त गांव के दो नीरोग मनुष्योंकी देह पर बैठा दिया। ४-५ दिनके बाद ही उन दोनोंको डेंगूज्वर आ गया। इसके सिवा कुछ डाक्टरोंने परीक्षा करके यह भी देखा है कि डेंगू रोगीके शरीरसे कुछ रक्त निकाल कर यदि स्वस्थ मनुष्यकी नसमें डाल दिया जाय, तो उसको डेंगूज्वर आ जायगा।

विशेषज्ञ डाक्टरोंका मत है कि डेंगूज्वरके मच्छर दो प्रकारके होते हैं। एक कुलेक्स फेटीग्रेंस (Culex fatigrans), दूसरे स्टीगोमाइया केलोपस (Stegomyia calopus)। पहले प्रकारके मच्छर ग्रीष्म प्रधान देशोंमें खूब पाये जाते हैं। इनकी छातीपर दो काले काले दाग़ होते हैं और पेटपर धूसर वर्णकी कुछ रेखाएँ होती हैं। रंग इनका गुलाबी होता है। पुरानी नदियाँ, खड्डे आदिके बंद जलमें यह मच्छर पैदा होते हैं। दूसरे प्रकारके स्टीगोमाइया मच्छर मनुष्योंके निवास स्थानोंमें पुराने टीनके डिब्बे, वर्षाके जलका जमाव, मिट्टीके घड़े और जल भरे बर्तनोंमें पैदा होते हैं और अपनी वंश-वृद्धि किया करते हैं। इस हिसाबसे यह मच्छर अधिक दुखदायी हैं। मादा स्टीगोमाइया एक साथ २० से ७५ अंडे तक जलके ऊपर दे देती है। यह देखनेमें छोटे, काले और सिगारके समान होते हैं और सहजमें नहीं मरते। बच्चे, अंडेसे निकलनेके ६ रोज़ बाद ही खुद अंडे देनेके लायक़ हो जाते हैं। मादा, सालमें कितनी ही बार अंडे देती है, विशेषकर ग्रीष्म और वर्षाकालमें अधिक देती है। शीतकालमें अंडेसे बच्चे नहीं निकल सकते और मच्छर भी निर्जीवसे रहते हैं। शीतकाल कट जानेके बाद यह फिर सचेत हो जाते हैं। "स्टीगोमाइया" के पेट पर सफेद और काले डोरे देखे जाते हैं, इसीसे यह मच्छर पहचाना जाता है। इन डोरोंके कारण इसका एक और नाम है—बाघ-मच्छर (Tiger mosquito) यह मच्छर रात-दिन काटा करता है। मच्छरोंमें मादा मच्छर ही मनुष्योंका अधिक शत्रु है, क्योंकि यही मनुष्योंका रक्त चूसता है और नाना प्रकारके रोग-जीवाणु लेकर घूमा करता है। नर मच्छर मनुष्योंका इतना नुक़सान नहीं करता।

अब हम डेंगूज्वरके लक्षण लिख कर इससे बचनेके उपाय लिखेंगे। डेंगूज्वरके लक्षण यह हैं—

(१) शरीरमें भीषण वेदना होती है।

(२) शरीरकी प्रायः प्रत्येक ग्रन्थि, मांस पेशी और मांस पेशीके जोड़ोंमें इतनी वेदना होती है कि जिससे इस ज्वरका दूसरा नाम पड़ गया है "Break bone fever" अर्थात् "हाड़ तोड़ बुखार"।

(३) माथेमें ज़ोरका दर्द होता है।

(४) आँखोंके पीछे तकलीफ़ होती है।

(५) आँखें इधर उधर घुमानेमें भी व्यथा होती है।

(६) रातको निद्रा नहीं आती है।

(७) ज्वरके साथ ही साथ भूख बन्द हो जाती है।

(८) पेटमें पीड़ा होती है।

(९) किसी किसीको कै भी होती है।

(१०) बच्चे ज्वरके समय बेहोश हो जाते हैं और कभी कभी नींदमें बकते रहते हैं।

(११) ज्वर ३-४ दिनमें उतर जाता है। ज्वर उतरनेके समय प्रायः खूब नींद आती है। इस समय किसी किसीके पेटमें दर्द भी होता है।

(१२) ज्वर उतर जाने पर दो एक दिन रोगी अच्छा रहता है। फिर शरीरमें हड़फूटन शुरू होती है और साथ ही साथ ज्वर भी बढ़ने लगता है।

परन्तु यह आख़िरी ज्वर दो एक दिनसे ज़्यादे नहीं रहता।

(१३) कभी कभी यह आख़िरी ज्वर बहुत भारी हो जाता।

(१४) ज्वर चला जाने पर शरीरकी दुर्बलता बहुत दिन तक बनी रहती है।

(१५) किसी किसीको दो तीन बार ज्वरके दौरे होते हैं और शरीरमें बेहद दर्द होता है।

(१६) किसी किसीका शरीर अकड़ जाता है, या जब तक बुखार रहता है तब तक शरीरका कोई हिस्सा सुन्न बना रहता है।

यह तो हुए लक्षण। इन लक्षणोंसे जान लेना चाहिये कि डेंगूज्वर आ गया है। अब इसके रोकनेके उपाय लिखे जाते हैं।

डेंगूज्वरको मिटानेके उपाय

(१) घरमें कहीं जलका जमाव न रहना चाहिये।

(२) जहाँ जलका जमाव दूर नहीं किया जा सके (जैसे बड़े बड़े शहरोंके पाखाने, टैंक इत्यादि) वहाँ जलके किनारों पर दस-दस दिनमें, केरोसिन तेल और साबुन जलमें मिलाकर डालना चाहिये। प्रति १६ 'क्यूबिक' फुटमें १ आउंस कार्बोलिक एसिड देनेसे भी काम चल सकता है। पेस्टेरीन या क्रूड पेट्रोलियम (Pesterine or crude petroleum) छिड़क देनेसे भी काम चल जाता है। पेस्टेरीन और केरोसिन तेल दोनोंको साथ मिलाकर जलके किनारों पर छिड़क देना भी सर्वोत्कृष्ट उपाय है। पनामा, कायरो आदि स्थानोंमें, मलेरिया निवारणके लिए यह ही दो उपाय ज़्यादा काममें लाये जाते हैं।

(३) डेंगू रोगीको सर्वदा मसहरीके अन्दर रखना चाहिये और दूसरे नीरोग लोगोंको भी मसहरीका व्यवहार करना चाहिये।

(४) कोई कोई कहते हैं कि डेंगूज्वरके समय प्रातःकाल थोड़ी कुनैन खा लेनेसे ज्वर आनेकी बहुत कम सम्भावना रहती है। कुनैन सेलीसिलास ५ ग्रेन, एस्पिरिन ५ ग्रेन, केफिन साइट्रास ३ ग्रेन, इन सबको एक साथ मिला कर एक या दो पुड़िया देनेसे हड़फूटन और सिरका दर्द बहुत कुछ मिट जाता है।

(५) इस रोगमें शरीरके जोड़ बँध जाते हैं, जिससे बिलकुल हिला नहीं जाता और शरीरमें अत्यन्त वेदना होती है। इसके लिए तमाम जोड़ोंमें धीरे धीरे लाक्षादि तेलकी मालिश करनी चाहिये। इससे फ़ौरन् ही जादूका सा असर मालूम पड़ता है। इसके सिवा, अजमा (?) डालकर गरम किया हुआ तेलकी या लेलीमेंट टरपनटाइनकी मालिश करनेसे भी जोड़ोंका दर्द दूर हो जाता है।

(६) इस बुखारमें रोगीको हल्का जुलाब देना चाहिये। यदि बुखारकी गरमी विशेष हो तो गुलाब जलसे भींगा हुआ रूमाल या कोई कपड़ा रोगीके सिर पर रखना चाहिये।

(७) ज्वरके लिए महासुदर्शन चूर्ण या लघुसुदर्शन चूर्णका क्वाथ शाम-सुबह देना चाहिये। खानेके लिए दूध देना चाहिये। गायके आध सेर दूधमें दो आने भर बायविडंग, दो आनेभर पीपलमूल, तुलसीके पत्ते ६, और पोदीनेके पत्ते ६ डाल कर दूधको औटाइये। जब उसमें दो चार उफान आजावें, तब उतार कर और थोड़ा ठंडा करके रोगीको दीजिये।

(८) यदि रोगीके शरीरमें सूजन ज्यादा मालूम पड़े, तो काली दाखमेंसे बीज निकाल उसमें सेंधानमक भर कर रोगीको मुँहमें रखनेके लिए देना चाहिये।

(९) इस रोगमें ठंड देकर ज्वर आता है और वह १०३ से १०५ डिग्री तक पहुँच जाता है। इसके बहुत से लक्षण, वैद्यक शास्त्रमें वर्णित संदिग्ध सन्निपात से मिलते हैं। अतएव इस बुखारमें दोष प्रकोप होने से ४८ घंटे बीते बिना वह दोष परिपक्व नहीं होते। इसलिए बुखार उतारनेकी, कोई डाक्टरी, यूनानी या देशी दवा हर्गिज़ नहीं देनी चाहिये। हाँ, सन्निपात ज्वरके जो जो उपाय

बताये गये हैं, वह उपाय अच्छे वैद्य या डाक्टरकी सलाहसे, इसमें भी करने चाहियें।

(१०) इस बुखारके उतरनेकी मुद्दत दो तीन रोज़की है; तीन दिन हो जाने पर भी यदि ज्वर नहीं उतरे तो जानना चाहिये कि ज्यादा उपद्रव खड़ा हो गया है। इस समय कुशल चिकित्सककी सम्मतिसे इलाज करना चाहिये।

(११) यह चेपी रोग है। इसका विष शरीरके अन्दर घुस जाता है, जिससे तमाम शरीरमें और शरीरके जोड़ोंमें बहुत कमज़ोरी आ जाती है। इस रोगसे मुक्त होनेके बाद भी रोगी बहुत अशक्त हो जाता है। इसके लिए महायोगराज गूगलकी एक एक गोली सुबह-शाम सेवन करनी चाहिये। या स्वर्ण वसन्त मालतीका आधा आधा बाल, दो दो आने भर सीतोपलादि चूर्णके साथ मिलाकर शाम-सुबह लेना चाहिये। इससे निर्बलता जाती रहती है।

(१२) गर्भवती स्त्रियोंको भी यह रोग बहुत कष्ट पहुँचाता है। उपरोक्त उपाय गर्भवती स्त्रियोंके लिए भी लागू हो सकते हैं। परन्तु, गर्भका बड़ा नाजुक मामला है। इसलिए योग्य वैद्यकी सलाह ज़रूर ले लेनी चाहिये।

विशेष सूचनाएँ

जहां यह रोग चल रहा हो वहां मनुष्योंको जाने आने न देना चाहिये। बहुत गरमी या बहुत सर्दीमें मनुष्योंको नहीं फिरना चाहिये। पेट साफ़ रखना और स्वास्थ्यकी सँभाल रखनी चाहिये। यह रोग चेपी रोग है; इसलिए जब यह रोग चलता हो तब स्वस्थ मनुष्योंको भी महासुदर्शन चूर्ण, लघुसुदर्शन चूर्ण या पंचनिंबचूर्णका उपयोग करना चाहिये। सांझ-सवेरे लोबान, अगर, कालीजीरी, गूगल, नीम, गन्धक, इन चीजोंको मिलाकर इनकी धूनी देनी चाहिये। रोगीका मल-मूत्र दूर फेंकना चाहिये। रोगीके पसीनेके कपड़े रसकपूरके पानीसे धो डालने चाहियें। रोगीके पसीनेके शरीरमें हवा नहीं लगने देनी चाहिये। रोगीको खुली जगहमें न्हाने देना ठीक नहीं है।

इस प्रकार इस रोगमें बहुत सावधानी रखनेकी और योग्य चिकित्सककी सलाहसे काम करनेकी ज़रूरत है।

—कृष्णगोपाल माथुर।

आयुर्वेदका प्राचीन इतिहास

[ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य]

संसार में जितनी चिकित्सा-प्रणाली प्रचलित हैं, उनके इतिहासको देखें तो ज्ञात होता है कि वह सब प्रचलित आयुर्वैदिक-चिकित्सा-प्रणालीकी ऋणी हैं। जिस यूनानी और डाक्टरी पद्धति पर संसारको गर्व है, उनमें अबतक आयुर्वेदकी प्राचीन- पुस्तकोंका अनुवाद मिलता है; जिससे ज्ञात होता है कि वह प्राचीन-कालमें इससे लाभ उठाते रहे। उनकी चिकित्सामें परिवर्तन अवश्य हुए हैं, उनको देख कर यूनानी या डाक्टरी चिकित्सापर जब विचार करते हैं, तो यही जान पड़ता है कि इनकी चिकित्सा-प्रणाली आयुर्वेदसे नितान्त भिन्न है; किन्तु यह बात नहीं है। जब हम संसारकी चिकित्सा प्रणालीके इतिहास और उत्पत्तिको ढूंढ़ते हैं तो सबका श्रोत इसी आयुर्वैदिक चिकित्सा प्रणालीसे निकला हुआ पाया जाता है। इनका जन्म भी हजार बारह सौ वर्षसे अधिकका नहीं मिलता; चीन और मिश्रकी भी चिकित्सा-प्रणाली तीन चार सहस्र वर्षसे अधिककी नहीं सिद्ध होती। डाक्टरी और यूनानी विचारोंका तो कहना ही क्या।

इसके विपरीत जब आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धतिके इतिहासकी खोज करते हैं, तो रूस, मिश्र आदि देशोंमें प्राप्त हस्तलिखित पुस्तकों, शिला लेखों आदिसे, विज्ञोंकी सम्मतिके अनुसार, हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं, कि यह

आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली कमसे कम सात आठ सहस्र वर्षसे कमकी पुरानी नहीं, अधिककी हो तो आश्चर्य नहीं। इससे सिद्ध होता है कि किसी न किसी रूपमें सबकी जन्मदात्री यही सिद्ध हो सकती है।

इस पद्धतिका जन्म कहाँ हुआ

आयुर्वेदके इतिहास पर विचार करनेसे पूर्व यह देखना है कि इसका जन्म कहां हुआ; और और इसके जन्मदाता कौन थे। अब, बड़ी भारी खोजसे यह सिद्ध हो रहा है कि भारत-वर्ष आर्य पुरुषोंकी पूर्व भूमि नहीं; यदि होती तो आज एक शताब्दीसे भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तमें प्राचीन पदार्थोंकी खोज होते रहने पर भी महाभारतके पूर्वका कोई शिला लेख या प्रस्तरी भूत कोई और चिन्ह मिलता, जैसा कि मिश्र आदि और देशोंमें मिलता है। किन्तु, चार पाँच सहस्र वर्षसे अधिकका कोई भी चिन्ह आज तक नहीं देखा गया, जिसको देखकर कहा जा सके कि यह पूर्वस्थ मनुष्यों के होनेका चिन्ह है या उनकी पूर्वस्थका द्योतक है। दूसरे हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थ वेद, और ब्राह्मण भाग भी आर्य जातिकी उत्पत्तिका स्थान कहीं सुमेरु पर्वत मालाके उत्तरकी ओर सूचित करते हैं। तीसरे आयुर्वेदकी प्राचीन संहितायें भी इसी बातकी साक्षी देती हैं।

आजसे कुछ समय पूर्व तक यह कोई निश्चय न कर सका कि आर्य पुरुषोंकी पूर्व भूमि कौनसी है। किन्तु इसकी खोज होती रही है। हर्षसे कहना पड़ता है कि खोज करनेवालोंने रशिया (रूस) के एक विभागमें संस्कृतके कई ऊँट प्राचीन पुस्तक और कितने ही प्राचीन शिला लेख कई स्थानोंसे खोज निकाले हैं और उक्त प्रमाणोंके आधार पर अनुसन्धानके पश्चात् यह सिद्ध कर दिखाया है कि आर्य पुरुषोंकी आदि भूमि कोई हो सकती है, तो वह यह है। दूसरे उक्त शिला लेखों और प्राचीन-पुस्तकों से भिन्न, मिश्रकी नील नदीके तट बसी हुई कई जातियोंकी बोली, भाषा, रहन-सहन तथा व्यवहार, बहुत कुछ आर्य पुरुषोंकी भाषा, रहन-सहन और व्यवहारसे मिलता जुलता देखा जाता है। और उनकी देशभाषामें अब तक बहुत से संस्कृतके अपभ्रंश शब्द पाये जाते हैं; जिनको ठीक ठीक बतलाया जा सकता है कि यह अमुक संस्कृत-शब्दोंके अपभ्रंश हैं। कहां तक बतलावें खोज करनेवालोंका अनुमान है कि यदि खोज की जाय तो संस्कृत साहित्यके द्वारा इतिहासका बहुत सा मसाला मिल सकता है। इससे भिन्न एक डाकृर साहबने रशियाकी कुछ आर्य जातिके रक्त-कणोंकी और भारतके आर्य जाति के रक्त कणोंकी परीक्षा करके बतलाया है कि इन दोनों भिन्न देश निवासियोंके रक्त कणोंमें चाँवल भरका भी अन्तर नहीं है। इसीके आधार पर उक्त डाकृर साहबका कथन है, "ऐसा विश्वास होता है कि इन दोनों जाति के पूव पुरुष एक थे"। खैर! जो हो, जैसे जैसे समय व्यतीत होता जाता है आर्य पुरुषोंका रशिया-देशके साथ पूर्वमें घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके अनेक प्रमाण मिलते जा रहे हैं। ऐसे ही प्रमाणोंके आधारपर हम यह बड़े जोरके साथ कह सकते हैं कि आर्य पुरुषोंकी भूमि आर्यावर्त्त नहीं है; प्रत्युत, रूस-देश या उसीके समीप का कोई भाग है जिसको सुमेरु पर्वतका उत्तरीय भाग कहते हैं। आर्य पुरुष किसी समयमें वहींसे आकर इस भारत-भूमिमें आबाद हुए।

इसका प्रबल प्रमाण

आर्य पुरुषोंके दूसरे देशसे यहां आकर बसनेका सबसे प्रबल प्रमाण हमको आयुर्वेद-शास्त्रमें मिलता है। हमको उन ग्रन्थोंमें निश्चय रूपसे लिखा मिलता है कि जो ऋषि महर्षि इस चिकित्साके प्रवर्त्तक थे वह इस चिकित्साको स्वर्ग (मेरुके उत्तर देश) से लाये।

इसका आगमन कैसे हुआ

पूर्वकालके किसी समयमें जब आर्यपुरुषोंका एक समूह फिरता फिरता इस भारत भूमिमें आ निकला तो उन्होंने इस देशको सर्वगुण सम्पन्न,

सभ्य समाजसे शून्य देखा, क्योंकि पूर्वकालमें यहां कोलभील आदि दो चार जंगली जातिके अतिरिक्त कोई संगठित सभ्य समाज न था। यह देश उनको अच्छा लगा। यहांकी जल वायु और परिस्थिति अनुकूल दिखाई दी। सब से पहले उन्होंने गंगा यमुना नदियोंके तट पर निवास किया। और अपने निवास स्थलको आर्यावर्त्त (अर्थात् आर्यों के आने जानेकी जगह) नामसे सम्बोधित किया। उस भूमिको ही उन्होंने पवित्र और श्रेष्ठ भूमि माना और अपने धार्मिक ग्रन्थोंमें इस आर्यावर्त्त भूमिकी सीमा भी निश्चित करदी। किन्तु, कुछ कालके बाद जैसे जैसे उनकी वृद्धि होती गई आर्यावर्त्तकी सीमा बढ़ती गयी। धीरे धीरे उनकी इतनी वृद्धि हुई कि वह इस देशके भिन्न भिन्न स्थानोंमें पहुँच गये। कुछ कालमें ही उनकी वृद्धि इतनी हुई कि छोटे छोटे ग्राम कस्बों और शहरोंमें परिणत हो गये। किन्तु वह यहां आजसे कितने समय पूर्व आये, इस बातका अभी तक कोई निश्चय नहीं कर सका।

जब आर्य पुरुषोंका समूह इस देशमें आया तो कुछ काल रहनेके पश्चात् यहांके देश-काल तथा परिस्थितिके प्रभावसे उनमें कई नई व्याधियोंका प्रादुर्भाव हुआ। प्रतिवर्ष धीरे धीरे इन व्याधियोंका प्रभाव बढ़ता गया। यद्यपि इनके साथ आये हुए अच्छे अच्छे योग्य चिकित्सक थे; किन्तु उनसे इन नई व्याधियोंका समुचित उपाय न हो सका। व्याधियोंका प्रभाव बढ़ता ही गया। प्रतिवर्ष इनसे जनता दुख उठाती रही। अन्तमें जनताने देखा कि हमारे चिकित्सक इन व्याधियोंसे रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। प्रतिवर्ष सहस्रों मनुष्योंके प्राण संकटमें पड़ जाते हैं। वह दुखी और खिन्न हृदय हो अपने पूज्य तपोधन ऋषियोंके पास जाकर पहुंची; और कहने लगी—हे भगवन्! हम सब इस देशमें आकर उतने सुखी नहीं हुए जितने अनेक कष्ट साध्य व्याधियोंसे दुखी होते हैं; इन व्याधियोंका निवारण नहीं होता इसका क्या कारण है? यदि हम सबकी यही दशा रही तो जीवन कठिन हो जायगा; इसलिए कृपासिन्धो, हम सबको इन दुखोंसे छुड़ाइये, रक्षा कीजिये; अब सिवा आपके हमारा कोई नहीं। इस तरह जनताकी दुख भरी बातें सुन और उनको अत्यन्त दुखी देख, उन दयालु ऋषियोंने समग्र चिकित्सकोंको विधान एकत्र करके इस विषयपर विचार किया। किन्तु वह सबके सब इन नई व्याधियोंको पूर्णतया समझने और चिकित्सा क्रम निर्धारित करनेमें असमर्थ देखे गये। अन्तमें सब इस निश्चय पर पहुँचे कि इनमें कोई भी व्यक्ति इन व्याधियोंको नहीं हटा सकता, न कोई इस विषयका पूर्ण ज्ञाता ही हो सकता है। इस समय इन व्याधियोंको जाननेवाला कोई व्यक्ति कहीं है, तो वह अपनी प्राचीन भूमिमें राजा इन्द्र है। उनको इन सब व्याधियोंका अच्छी तरह ज्ञान है और वही इनकी ठीक ठीक चिकित्सा बता सकेंगे। इसलिए यदि कोई महात्मा हिमालयके संकट-पूर्ण पथको तय करके उनके पास जावे और उनसे इन व्याधियोंका चिकित्सा क्रम सीख कर आवे, तो निस्तार हो सकता है; अन्यथा नहीं।

इस बातको सुनकर परम दयालु महर्षि भरद्वाज जी जानेके लिए तय्यार हुये। उन्होंने कहा कि हम संसारके कल्याणार्थ वहां जाकर इन व्याधियोंकी चिकित्सा सीखकर आयंगे, आप सब चिन्ता न करें। वह धैर्य्य देकर चल पड़े, धीरे धीरे हिमालयकी पर्व्वत भूमि पार करते हुए, सुमेरु पर्व्वत मालाको पार करके, अपनी प्राचीन भूमि देवलोकमें जा पहुँचे। वह लोक बड़ा दिव्य था, हर एक प्रकारका दैवी सुख मिलता था, उस भूमिको देखकर भरद्वाजजी बड़े प्रसन्न हुए। धीरे धीरे चलते हुए, राजा इन्द्रकी राजधानी स्वर्गमें वह जा पहुँचे। जब राजा इन्द्रको ज्ञात हुआ कि हम सबके वयोवृद्ध पूज्य भरद्वाज ऋषि आर्यावर्त्तसे आये हैं तो एक माननीय पूर्व पुरुषको आया जान बड़े हर्ष और सत्कारसे उठकर मिला। यथा

योग्य सत्कार सेवा पूजाके पश्चात् उनके आगमनका कारण जानना चाहा, जिसको उन्होंने यथावत् कह सुनाया। राजा इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनको चिकित्सा शास्त्रके मर्म बताये; और नई नई व्याधियोंके उद्भत होने पर उनके इलाजका क्रम बताया। भरद्वाज जीको जिन बातोंके जाननेकी आवश्यकता थी वह सब उन्होंने अच्छी तरह समझ लीं; जब वह अपनी संतुष्टि अच्छी प्रकार कर चुके तो इन्द्रसे बिदा होकर आर्यावर्त्तमें लौट आये। और यहां आकर उक्त नई विधियोंसे जनता के बहुत कुछ दुःखका निवारण किया।

जिस समय भरद्वाज जी इस देशमें वापस आये, और उनके नूतन चिकित्सा क्रमका पता यहांके वैद्योंको लगा, तो अनेक ऋषि, महर्षि और चिकित्सक अपने अपने स्थानोंसे चलकर उनके आश्रम पर एकत्र हुए। उनमें भिन्न भिन्न प्रान्तोंसे आये हुये निम्नलिखित प्रसिद्ध व्यक्ति थे। अङ्गिरा, जमदग्नि, वशिष्ट, कश्यप, भृगु, आत्रेय (पुनर्वसु), गौतम, सांख्य, पुलस्त्य, नारद, असित, अगस्त्य, वामदेव, मारकण्डेय, आश्वलायन, पारिक्षि, भिक्षु आत्रेय, दूसरे भारद्वाज, कपिञ्जल, विश्वामित्र, अश्वरथ्य, भार्गव च्यवन, अभिजित, गर्ग सांडिल्य, कौण्डिल्य, वर्क्षी, देवल, गालव, सांकृत्य वैजवापि, कुशिक, बादरायण (व्यास), वडिश, शरलोम, काप्य, कात्यायन, काङ्कायन, कैशकेय, धौम्य, मरीचि, कश्यप शर्कराक्ष, हिरण्याक्ष, लौकाक्षि, पैङ्गि, शौनिक, शाकुनेय, मैत्रेय, मैमतापनि, वैखानस और वाल्य खिल्य आदि। भरद्वाज जीसे इन सबने क्रम क्रमसे नूतन चिकित्सा पद्धति विषयक अनेक सिद्धान्तोंको पूछा और बहुतोंने उनकी सेवामें रह कर चिकित्सा सम्बन्धी क्रमको सीखा। जो विवादास्पद विषय थे उनपर यह सब मिलकर खूब विचार करते रहे, चिकित्साके एतिहासिक लेखकोंके लिखे ग्रन्थोंसे पता लगता है कि जब भरद्वाज ऋषि आयुर्वेदिक चिकित्साका विशेष प्रचार कर रहे थे, उस समय भिन्न भिन्न चिकित्सकों द्वारा व्यवहृत होनेवाली चिकित्सा-पद्धति सर्व-मान्य सिद्धान्त पर स्थिर न थी; प्रत्युत हर एक चिकित्सक व्याधियोंके कारण भिन्न भिन्न मानकर इच्छानुकूल या परम्परानुकूल चिकित्सा-का क्रम निर्द्धारित करता था। यह विवाद भरद्वाज जीके पश्चात् भी बहुत कालतक बना रहा। जिसका, भरद्वाजजीके सर्वश्रेष्ठ शिष्य आत्रेयजी के समयमें जाकर निर्णय हुआ। इसका सप्रमाण वर्णन 'त्रिदोष स्थापना" नामक किसी अगले लेखमें करूँगा।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति

आयुर्वेदकी प्राचीन संहिताओंमें लिखा है कि सर्व प्रथम इस चिकित्साके आविष्कारक, और प्रवर्त्तक ब्रह्माजी हुए; जिन्होंने इस चिकित्सामें इतनी उन्नति की थी कि इसपर एक लक्ष श्लोकोंमें पूरी होनेवाली ब्रह्म नामकी संहिता बनाई और उसको अपने सबसे बड़े पुत्र दक्ष-प्रजा-पतिको पढ़ाई। वह दक्ष प्रजापति भी इस चिकित्साक्रममें, इतने दक्ष हुए कि अपने पिताके लिखे उक्त विस्तृत ग्रन्थको सार रूप से निकाल दस सहस्र श्लोकोंमें कर दिया। और उसका नाम 'दक्ष प्रजापति संहिता' रखा। इनसे अश्वनीकुमार नामक बड़े प्रताप-शाली व्यक्तिने आयुर्वेद शास्त्रको सीखा। वह भी इस विद्यामें इतने प्रवीण हो गये कि कटा हुआ दक्ष प्रजापतिका सिर जोड़ दिया, राजा चन्द्रदेवको क्षीण हुए यक्ष्मा रोगसे बचा लिया, चक्षुहीन अत्यन्त कामी च्यवन ऋषि पर प्रसन्न होकर उनको इस योग्यतासे चिकित्सा की कि गई हुई युवावस्था तथा चाक्षुष शक्ति पुनः प्राप्त होगई। उस देशमें उस समय इनकी इतनी ख्याति बढ़ी कि वहांका राजा इन्द्र अपनी अवस्थाको स्थिर रखनेकी इच्छासे अश्विनीकुमारजीका शिष्य बन गया और उनसे चिकित्सा क्रम सीखनेकी इच्छा प्रगट की, उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर सब कुछ सिखा दिया। प्राचीन ग्रन्थोंसे पता लगता है कि अश्वनि कुमारजीने भी अपने नामकी एक आयुर्वेद संहिता निर्म्माण की थी। —असमाप्त

मिट्टीका तेल

परमात्मा ने अनेक प्रकारके पदार्थ मनुष्योंके हितके लिए उत्पन्न किये हैं। मिट्टीका तेल भी उनमेंसे एक है, जिसका केवल नाम ही जगतमें मनुष्य मात्र ने सुना न होगा प्रत्युत उसका उपयोग भी किया होगा। परन्तु उसके विषयमें लोग इसके अतिरिक्त कि मिट्टीसे निकलता है और वृत्तान्त बहुत कम जानते होंगे। इसको काला सिलाजीत, मीनाक तनाह, मनैनी, मान्ती तैलिम्, येमी इत्यादि भी कहते हैं।

वास्तवमें यह क्या है, इस प्रश्न पर विचार करने और भूगर्भ विद्या जानने वालोंके कहनेसे पता चलता है कि उन स्थानोंमें जहां भूगर्भमें मिट्टीके तेलकी नदियां पानीके स्रोतों की तरह अनेक धाराओंमें बहती हैं किसी समयमें भूकम्प, ज्वालामुखी, आदि कारणोंसे अनेक प्रकार के पदार्थ और वनस्पति पृथ्वीके भीतर दब गये होंगे और कालान्तर में इसी प्रकार भूगर्भमें दबे रहने और भीतरी गर्मीसे तपते रहनेके कारण उनसे तेल बन गया होगा। कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि भूगर्भमें जब लौह कर्बिद Iron carbide पर जो पृथ्वीके गर्भमें उत्तप्त अवस्थामें जलकी रासायानिक क्रिया होती है तब मिट्टीके तेलकी उत्पत्ति होती है। बौल महाशय कहते हैं कि तेलसे नमकका अवश्य कोई सम्बन्ध है, क्यों कि यदि दोनोंका सम्बन्ध न होता तो नमकीन पानीके स्रोत और तेल साथ साथ न पाये जाते। पहले पहल तेल नदी नालोंके कगारोंमेंसे प्रवाहित होता देखा गया था, परन्तु भूगर्भ-विद्या-विशारद उसे ज्ञात कर उसका सदुपयोग करने लगे जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज कल की मिट्टीके तेलकी खानें विद्यामान हैं। भूगर्भ विद्याके जानने वाले धरतीके ऊपरी पदार्थों तथा मिट्टी आदिके देखने, सूँघने आदि द्वारा परीक्षा करनेसे बतला देते हैं कि अमुक स्थानमें तेल है या नहीं।

इस प्रकार पृथ्वीसे जलकी भांति निकले हुए शुद्ध पवित्र अमिश्रित और स्वच्छ मिट्टीके तेलको हमारे कुछ भाई निकृष्ट और दूषित मानते हैं। कुछ वर्ष पहिले इसको देवालयों और भोजन शालामें नहीं जाने देते थे। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो कुएका जल और इसके निकालनेमें बहुत बड़ा भेद है। उधर पानी चमड़ेके चरसोंसे निकाला जाता है। इधर यह तेल लोहे नलियों द्वारा आप से आप बहता रहता है। पर अब लोग इसका व्यवहार देवालयों में करने लग गये हैं। इन सब बातोंसे मालूम होता है कि अविद्या ने हमारे देशमें कितना भारी राज्य स्थापित कर लिया है। इधर हम पवित्र और स्वच्छ मिट्टीके तेलको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं उधर एक अपवित्र और मिश्रित सरसोंके तेल को बहुत ऊँचा स्थान दे देते हैं। हां, इतना अवश्य है कि यह बहुत विषैला पदार्थ है। यदि यह किंचित् मात्र भी भोजनके साथ खा लिया जाय तो पेटमें बहुत जलन पैदा होती है।

यह अधिकतर ब्रह्मामें पाया जाता है। इसके निकालनेकी रीति यह है कि पानीके कुएंकी भांति कुएं खोद कर डोल रस्सीसे इसे निकालते हैं परन्तु अब पम्पों द्वारा निकाला जाने लगा है। पम्प में पाइप जोड़ कर लोहेकी टंकियोंमें गिरा देते हैं। जब तेल निकलता है तब यदि कोई टंकियोंमें झांक कर देखे तो मूर्छित होने तककी नौबत आ जाती है क्यों कि इसके साथ कई प्रकारकी विषैली गैसें निकलती हैं।

मिट्टीका तेल चार प्रकारका होता है। पहिला तेल कम खर्च होता है, उत्तम प्रकाश देता है और काजल नहीं देता: इसीको हम सफेद तेलके नामसे जानते हैं। दूसरेमें सब बातें प्रथमसे कम होती हैं। अर्थात् नाम मात्र को काजल देता है। प्रकाश कुछ कम देता है। तृतीय कक्षाका तेल धुआं बहुत देता हैं। इसीको हम लोग लाल तेल कहते हैं। यह बहुत सस्ता मिलता है; परन्तु बड़ा हानिकारक

होता है। चौथी श्रेणीका तेल सिलेण्डर आइल कहलाता है। यह इञ्जनोंमें और मशीनोंमें काम आता है। इन चारों तेलसे उत्तम तेल पेट्रोल कहलाता है। मोटर, मोटर साइकल तथा विद्युत यन्त्रोंमें जलानेमें काम आता है। वह दूरसे ही आग देखकर भड़क उठता है।

जो मैल तेल निकालनेके बाद बचता है उसको स्वच्छ करके मोमबत्ती बनाते हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकारकी बनी हुई मोमबत्तीमें तनिक भी गंध नहीं आती। ऐसी खानें अमेरिका, रूमानिया, रूस और ब्रह्मामें ही हैं। सुननेमें आता है कि तेलके चिह्न राजपूताना तथा पंजाबमें भी पाये जाते हैं; परन्तु अभी तक भारतवर्षके किसी भागमें ऐसी सफलता प्राप्त नहीं हुई जैसी ब्रह्मा देश में। इस देश में सब से बड़ी खान इनान—जांवमें है। यहां लगभग १०० वर्षसे तेल निकाला जा रहा है। इस देशमें तेलकी खानों से विशेष आय है।

—"बटुक"

सूर्यसिद्धान्त

[गतांङ्क से सम्मिलित]

केपरलके नियमके अनुसार किसी ग्रहका स्पष्ट स्थान जाननेके लिए पहले यह देखना पड़ता है कि ग्रह अपने कक्षा वृत्तमें जो दीर्घ वृत्तके आकारका होता है और जिसकी नाभि पर सूर्य स्वयम् होता है, कहां है। फिर यह जानना पड़ता है कि उस समय वह ग्रह पृथ्वीसे कहां देख पड़ेगा।

मान लो अगआ किसी ग्रहका दीर्घवृत्ताकार कक्षावृत्त है और र ग्रहके आकर्षक रविका स्थान है, जो दीर्घवृत्तकी नाभिपर है। जिस समय ग्रह सूर्यसे निकटतम अंतर पर अर्थात् अ पर हो उसी समयसे ग्रहके भगणकालका आरम्भ माना जाय और उस समयसे 'द' दिनके अन्तरपर ग्रह ग स्थान पर देख पड़े तो अरग कोण ग्रहका स्पष्ट मंद केन्द्र कहलाता है, जिसे आगे स अक्षरसे सूचित किया जायगा।
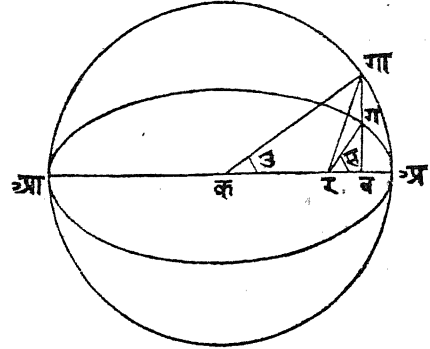
चित्र ३

क को केन्द्र मानकर क अ या क आ त्रिज्यासे जो वृत्त खींचा जाता है वह दीर्घवृत्तको अ, आ बिन्दुओं-पर स्पर्श करता है। ऐसे वृत्तको दीर्घवृत्तका सहायक वृत्त (Auxiliary circle) कहते हैं। यदि ग से दीर्घ अक्षपर ग ब लम्ब गिराया जाय तो यह बढ़ाने पर सहायक वृत्तको गा विन्दु पर काटेगा। यदि गा को सामान्य केन्द्र क से मिलाया जाय तो अकगा कोणको ग का उत्केन्द्र (eccentric anomaly) कहते हैं। उत्केन्द्रको उ अक्षरसे सूचित किया जायगा। स और उ चापीय मानोंमें नापे जाते हैं। यदि ग्रहकी दैनिक मध्यम गति 'भ' चापीय मानमें हो तो $\frac{2\pi}{भ}$ दिन ग्रहका भगणकाल होगा; क्योंकि एक भचक्र कोणात्मक मानमें ३६०° और चापीय मानमें 2π होता है। यदि ग्रहकी दैनिक गति सदैव 'भ' के समान होती तो द दिन पीछे अ से ग्रहका अंतर द × भ होता। द × भ को मध्यम मन्द केन्द्र कहते हैं, जिसे आगे 'म' से सूचित किया जायगा। यदि ग्रहका कोणीय वेग स्थिर होता तो मध्यम मन्द केन्द्र ही स्पष्ट केन्द्र भी होता।

दीर्घवृत्तके गुणोंके आधार पर मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र तथा स्पष्ट मन्द केन्द्र और उत्केन्द्रके सम्बन्ध इस प्रकार जाने जा सकते हैं:—

केपलरके दूसरे नियमके अनुसार,

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{दीर्घवृत्तका क्षेत्रफल}} = \frac{\text{द}}{\text{भगणकाल}} = \frac{\frac{\text{द}}{२\pi}}{\text{भ}} = \frac{\text{द} \times \text{भ}}{२\pi}$$

परन्तु $\frac{^*\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{क्षेत्रफल अरगा}} = \frac{\text{थ}}{\text{त}}$

$$= \frac{\pi.\ \text{त}.\ \text{थ}}{\pi.\ \text{त}.\ \text{त}} = \frac{\text{दीर्घवृत्तका क्षेत्रफल}}{\text{सहायक वृत्तका क्षेत्रफल}}$$

यहां त, थ क्रमानुसार दीर्घवृत्तके दीर्घ और लघु अक्ष हैं।

$$\therefore \frac{\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{दीर्घवृत्तका क्षेत्रफल}} = \frac{\text{क्षेत्रफल अरगा}^*}{\text{सहायक वृत्तका क्षेत्रफल}} = \frac{\text{क्षेत्रफल अरगा}}{\pi\text{त}^२}$$

परन्तु अरगा का क्षेत्रफल=क्षेत्रफल अकगा —क्षेत्रफल रकगा

$$= \frac{\text{त}^२}{२}\text{उ} - \frac{\text{वगा} \times \text{कर}}{२}$$

$$= \frac{\text{त}.^२\text{उ}}{२} - \frac{\text{त.ज्याउ} \times \text{त.च}}{२}$$

$$= \frac{\text{त}^२}{२}(\text{उ}-\text{चज्याउ})$$

यहां च दीर्घवृत्तकी केन्द्र-च्युति (eccentricity) है।

* देखो Askwith's Pure Geometry pp. 205. 206.

पहले सिद्ध किया गया है कि

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अरग}}{\text{दीर्घ वृत्तका क्षेत्रफल}} = \frac{\text{द. भ}}{२\pi}$$

$$\therefore \frac{\text{द. भ}}{२\pi} = \frac{\frac{\text{त}^२}{२}(\text{उ}-\text{च ज्याउ})}{\pi\ \text{त}^२}$$

या भ. द = उ—च ज्या उ..................(१)

यह समीकरण मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्रका सम्बन्ध प्रकट करता है।

स्पष्ट केन्द्र और उत्केन्द्रका सम्बन्ध स्थापित करना:—

दीर्घ वृत्तका ध्रुवीय समीकरण (Polar equation) है,

$\text{रग} = \frac{\text{त}(१-\text{च}^२)}{१+\text{च कोज्या स}}$ जहां रग, र नाभिसे ग ग्रहका अन्तर है। परन्तु दीर्घवृत्तकी परिभाषाके अनुसार,

रग = च × नियामक रेखा (directrix) से ग का अंतर

= च × व से नियामक रेखा का अंतर

= च × (केन्द्रसे नियामक रेखाका अन्तर-केन्द्रसे व का अंतर)

$$= \text{च} \times \left(\frac{\text{त}}{\text{च}} - \text{वक}\right)$$

$$= \text{च} \times \left(\frac{\text{त}}{\text{च}} - \text{त कोज्या उ}\right)$$

$$= \text{त} - \text{च} \times \text{त कोज्या उ}$$

∴ कर्ण = त (१—च कोज्या उ)......(२)

$$\therefore \frac{\text{त}(१-\text{च}^२)}{१+\text{च कोज्या स}} = \text{त}(१-\text{च कोज्या})$$

अर्थात् $\frac{१-\text{च}^२}{१+\text{च कोज्या स}} = १-\text{चकोज्या उ}$

वा $१+\text{चकोज्या स} = \frac{१-\text{च}^२}{१-\text{च कोज्या उ}}$

वा $\text{च कोज्या स} = \frac{१-\text{च}^२}{१-\text{च कोज्या उ}} - १$

$$= \frac{च\,(\,कोज्या\ उ - च\,)}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore\ कोज्या\ स = \frac{कोज्या\ उ - च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore\ १\ कोज्या\ स = १ - \frac{कोज्या\ उ - च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$= \frac{१ - च\ कोज्या\ उ - कोज्या\ उ + च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$और\ १ + कोज्या\ स = \frac{१ - च\ कोज्या\ उ + कोज्या\ उ - च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore\ \frac{१ - कोज्या\ स}{१ + कोज्या\ स} = \frac{१ - च\ कोज्या\ उ - कोज्या\ उ + च}{१ - च\ कोज्या\ उ + कोज्या\ उ - च}$$

$$= \frac{(१ - कोज्या\ उ)\,(१ + च)}{(१ + कोज्या\ उ)\,(१ - च)}$$

$$= \frac{१ + च}{१ - च} \times \frac{१ - कोज्या\ उ}{१ + कोज्य\ उ}$$

$$\therefore\ ^{*}\ स्परे^{२}\frac{स}{२} = \frac{१ + च}{१ - च} \times स्परे^{२}\frac{उ}{२}$$

$$अथवा\ स्परे\frac{स}{२} = \sqrt{\frac{१ + च}{१ - च}} \times स्परे\frac{उ}{२} \cdots\cdots(३)$$

यह समीकरण स्पष्ट मंद केन्द्र और उत्केन्द्रके सम्बन्ध प्रकट करता है।

समीकरण (१), (२) और (३) से उ के किसी मानको जान कर स्पष्ट मन्द केन्द्र, मन्दकर्ण और द के मान जान सकते हैं। परन्तु व्यवहारमें इससे सरलता नहीं होती। यदि मध्यम मन्द केन्द्रका मान जान कर स्पष्ट मन्दकेन्द्र और कर्णका मान जाना जा सके तो अधिक उपयोगी होता है। इसके लिए समीकरण (३) को त्रिकोण मितिकी रीतिसे फैलाना पड़ता है जो यों किया जाता है:—

* किसी कोणकी ज्याको उसकी कोटिज्यासे भाग देने-पर जो कुछ आता है वह उस कोणकी स्पर्श रेखा कहलाता है। संक्षेपमें किसी कोण म की स्पर्श रेखाको स्परे म लिखते हैं।

लोनीकी त्रिकोणमिति भाग २ अथवा टाड-हंटरकी त्रिकोण मिति या म॰ म॰ सुधाकर द्विवेदीके चलन कलन पृष्ठ ४२ से यह स्पष्ट है कि

$$स्परे\frac{स}{२} = \frac{इ^{\frac{स}{२}\sqrt{-१}} - इ^{-\frac{स}{२}\sqrt{-१}}}{इ^{\frac{स}{२}\sqrt{-१}} + इ^{-\frac{स}{२}\sqrt{-१}}} \times \frac{१}{\sqrt{-१}},$$

यहां इ नेपियरियन लघुरिक्थका आधार है, जिसका मान बीज गणितके अनुसार है

$१ + १ + \frac{१}{|२} + \frac{१}{|३} + \frac{१}{|४} + \cdots$ इत्यादि जब कि $|४$ का अर्थ है $४ \times ३ \times २ \times १$, $|३$ का अर्थ है $३ \times २ \times १$, $|११$ का अर्थ है $११ \times १० \times ९ \times \cdots २ \times १$।

$$इसी\ प्रकार\ स्परे\frac{उ}{२} = \frac{इ^{\frac{उ}{२}\sqrt{-१}} - इ^{-\frac{उ}{२}\sqrt{-१}}}{इ^{\frac{उ}{२}\sqrt{-१}} + इ^{-\frac{उ}{२}\sqrt{-१}}} \times \frac{१}{\sqrt{-१}}$$

∴ (३) समीकरणका रूप होगा,

$$\frac{इ^{\frac{स}{२}\sqrt{-१}} - इ^{\frac{-स}{२}\sqrt{-१}}}{इ^{\frac{स}{२}\sqrt{-१}} + इ^{\frac{-स}{२}\sqrt{-१}}} = \sqrt{\frac{१ + च}{१ - च}} \times \frac{इ^{\frac{उ}{२}\sqrt{-१}} - इ^{\frac{उ}{२}\sqrt{-१}}}{इ^{\frac{उ}{२}\sqrt{-१}} + इ^{\frac{उ}{२}\sqrt{-१}}}$$

अथवा

$$\frac{इ^{स\sqrt{-१}} - १}{इ^{स\sqrt{-१}} + १} = \sqrt{\frac{१ + च}{१ - च}} \times \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} - १}{इ^{उ\sqrt{-१}} + १} \cdots\cdots\cdots\cdots(क)$$

समीकरण (क) के प्रत्येक पक्षमें १ जोड़ा जाय तो

$$\frac{२इ^{स\sqrt{-१}}}{इ^{स\sqrt{-१}}+१}=$$

$$\frac{\sqrt{१+च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-१\right)+\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)}{\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)}$$

.........(ख)

और यदि समीकरण (क) का प्रत्येक पक्ष १ में से घटाया जाय तो

$$\frac{२}{इ^{स\sqrt{-१}}+१}$$

$$=\frac{\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)-\sqrt{१+च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-१\right)}{\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)}$$

.........(ग)

समीकरण (ख) के बायें पक्ष को समीकरण (ग) के बायें पक्ष से तथा (ख) के दाहने पक्ष को (ग) के दाहने पक्ष से भाग देने से

$$इ^{स\sqrt{-१}}=$$

$$\frac{\sqrt{१+च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-१\right)+\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)}{\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)-\sqrt{१+च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-१\right)}$$

$$=\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}\left(\sqrt{१-च}+\sqrt{१+च}\right)+\sqrt{१-च}-\sqrt{१+च}}{-इ^{उ\sqrt{-१}}\left(\sqrt{१+च}-\sqrt{१+च}\right)+\sqrt{१-च}+\sqrt{१+च}}$$

$$=\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}-\dfrac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}}{१-इ^{उ\sqrt{-१}}\times\dfrac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}}$$

यदि $\frac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}$ के स्थान पर प रखा जाय तो इस समीकरण का रूप होगा

$$इ^{स\sqrt{-१}}=\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}-प}{१-इ^{उ\sqrt{-१}}\times प}$$

$$=\frac{१-\dfrac{प}{इ^{उ\sqrt{-१}}}}{१-प\times इ^{उ\sqrt{-१}}}\times इ^{उ\sqrt{-१}}$$

$$=इ^{उ\sqrt{-१}}\times\frac{१-पइ^{-उ\sqrt{-१}}}{१-पइ^{उ\sqrt{-१}}}$$

प्रत्येक पक्ष का लघुरकि (logarithm) लेने से,

$$लरि\ इ^{स\sqrt{-१}}=लरि\ इ^{उ\sqrt{-१}}+$$

$$लरि\ (१-पइ^{-उ\sqrt{-१}})-लरि\ (१-पइ^{उ\sqrt{-१}})\cdots(घ)$$

परन्तु $लरि\ (१-पइ^{उ\sqrt{-१}})=-पइ^{उ\sqrt{-१}}-\frac{(पइ^{उ\sqrt{-१}})^२}{२}-\frac{(पइ^{उ\sqrt{-१}})^३}{३}-\frac{(पइ^{उ\sqrt{-१}})^४}{४}-\cdots$

और $लरि(१-पइ^{-उ\sqrt{-१}})=-पइ^{-उ\sqrt{-१}}-\frac{(पइ^{-उ\sqrt{-१}})^२}{२}-\frac{(पइ^{-उ\sqrt{-१}})^३}{३}-\cdots\cdots$

पहले को दूसरे में से घटाने पर,

$$प\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)+\frac{प^२}{२}\times\left(इ^{२\sqrt{-१}उ}-इ^{-२\sqrt{-१}उ}\right)+\frac{प^३}{३}\left(इ^{३\sqrt{-१}उ}-इ^{-३\sqrt{-१}उ}\right)+\cdots\cdots$$

∴ समीकरण (घ) का रूप होगा,

$$स\sqrt{-१}=उ\sqrt{-१}+प\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)$$

$$+\frac{\text{प}^{2}}{2}\left(\text{इ}^{2\sqrt{-1}\,\text{उ}}-\text{इ}^{-2\sqrt{-1}\,\text{उ}}\right)$$

$$+\frac{\text{प}^{3}}{3}\left(\text{इ}^{3\sqrt{-1}\,\text{उ}}-\text{इ}^{-3\sqrt{-1}\,\text{उ}}\right)+\cdots\cdots$$

अथवा $\text{स}=\text{उ}+\text{प}\times\frac{\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-1}}-\text{इ}^{-\text{उ}\sqrt{-1}}}{\sqrt{-1}}$

$$+\frac{\text{प}^{2}}{2}\times\frac{\text{इ}^{2\text{उ}\sqrt{-1}}-\text{इ}^{-2\text{उ}\sqrt{-1}}}{\sqrt{-1}}$$

$$+\frac{\text{प}^{3}}{3}\times\frac{\text{इ}^{3\text{उ}\sqrt{-1}}-\text{इ}^{-3\text{उ}\sqrt{-1}}}{\sqrt{-1}}+\cdots\cdots$$

परन्तु $\frac{\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-1}}-\text{इ}^{-\text{उ}\sqrt{-1}}}{2\sqrt{-1}}=\text{ज्या उ},$

$$\frac{\text{इ}^{2\text{उ}\sqrt{-1}}-\text{इ}^{-2\text{उ}\sqrt{-1}}}{2\sqrt{-1}}=\text{ज्या २ उ, इत्यादि}$$

इसलिये $\text{स}=\text{उ}+\text{प}\times 2\,\text{ज्याउ}+\frac{\text{प}^{2}}{2}\times 2\,\text{ज्या}2\text{उ}$

$$+\frac{\text{प}^{3}}{3}\times 2\,\text{ज्या}3\text{उ}+\cdots\cdots$$

अथवा $\text{स}=\text{उ}+2\left(\text{प ज्याउ}+\frac{\text{प}^{2}}{2}\text{ज्या}2\text{उ}+\frac{\text{प}^{3}}{3}\text{ज्या}3\text{उ}\right.$

$$\left.+\frac{\text{प}^{4}}{4}\text{ज्या}4\text{उ}+\cdots\cdots\right)\quad(\text{च})$$

यदि समीकरण (च) में उ, ज्या उ, ज्या २ उ, इत्यादिके स्थान पर इनके मान ऐसे रखे जायं जिनमें उ न रहे वरन भ, द रहे जो समीकरण (१) से सम्भव है तो ऐसा समीकरण मिल जायगा जिसमें केवल स, भ और द रहेंगे और जो व्यवहारके लिए बहुत ही उपयोगी होगा। परन्तु उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादिके मान भ और द के रूपमें तभी ज्ञात हो सकते हैं जब लैग्रेंजके सिद्धान्त के Lagranges' Theorem अनुसार उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादिका विस्तार किया जाय। इस लिए संक्षेपमें पहले यह बतलाना चाहिये कि लैग्रेंजका सिद्धान्त क्या है। यह सिद्धान्त म० म० सुधाकर द्विवेदीके चलनकलन पृष्ठ १०७ ११० में तथा विलियमसनके डिफ़रेंशल कैलकुलस पृष्ठ १५१—१५३ में दिया हुआ है। इस सिद्धान्तका रूप यह है:—

यदि र = ह + य. फ (र). ऐसा समीकरण हो जिसमें ह और य स्वतंत्र राशि हों और फ (र) ऐसा फल function हों जो र के मान पर आश्रित हो तो र का कोई अन्यफल

$$\text{फि}\ (\text{र})=\text{फि}\ (\text{ह})+\text{य}\cdot\text{फ}\ (\text{ह}).\ \text{फि}'\ (\text{ह})+$$

$$\frac{\text{य}^{2}}{\lfloor 2}\cdot\frac{\text{ता}}{\text{ताह}}\left\{[\text{फ}(\text{ह})]^{2}\ \text{फि}'(\text{ह})\right\}$$

$$+\frac{\text{य}^{3}}{\lfloor 3}\cdot\frac{\text{ता}^{2}}{\text{ताह}^{2}}\left\{[\text{फ}(\text{ह})]^{3}\text{फि}'(\text{ह})\right\}+\cdots\cdots\cdots$$

$$+\frac{\text{य}^{\text{न}}}{\lfloor \text{न}}\cdot\frac{\text{ता}^{\text{न}-1}}{\text{ता}(\text{ह})^{\text{न}-1}}\left\{[\text{फ}(\text{ह})]^{\text{न}}\ \text{फि}'(\text{ह})\right\}+\cdots$$

यहाँ फि′(ह), फि (ह) का पहला तात्कालिक सम्बन्ध $\frac{dy}{dx}$ है, तथा $\frac{\text{ता}}{\text{ताह}}$, $\frac{\text{ता}^{2}}{\text{ताह}^{2}}$, $\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताह}^{3}}$ इत्यादि आगे कोष्ठोंमें लिखे हुए पदोंके पहले, दूसरे, तीसरे तात्कालिक सम्बन्ध हैं।

समीकरण (१) का रूप है,

$$\text{भ.द}=\text{उ}-\text{च ज्याउ}$$

$$\text{वा उ}=\text{भ.द}+\text{च ज्याउ}$$

$$=\text{भ}+\text{च ज्याउ जहां म}=\text{भद}\ ।$$

जो उसी रूपमें है जिस रूपमें

$$\text{र}=\text{ह}+\text{य. फ (र)}$$

जहां र, ह और य क्रमानुसार उ, म और च के समान हैं।

यदि फि (उ) = उ तो फि (म) = म और फि′ (म) = १

$$\therefore\ \text{उ}=\text{म}+\text{च. ज्याम. १}+\frac{\text{च}^{2}}{\lfloor 2}\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}$$

$$\left\{[\text{ज्याम}]^{2}\cdot 1\right\}+\frac{\text{च}^{3}}{\lfloor 3}\cdot\frac{\text{ता}^{2}}{\text{ताम}^{2}}\left\{(\text{ज्याम})^{3}\right\}$$

$$+\frac{च^{४}}{|\underline{४}}\cdot\frac{ता^{३}}{ताम^{३}}\left\{[ज्याम]^{४}\ १\right\}+\frac{च^{५}}{|\underline{५}}\cdot\frac{ता^{४}}{ताम^{४}}\left\{[ज्याम]^{५}_{१}\right\}+\frac{च^{६}}{|\underline{६}}\cdot\frac{ता^{५}}{ताम^{५}}\left\{[ज्याम]^{६}\cdot १\right.+$$

इत्यादि

लोनीकी त्रिकोणमिति भाग २के अनुसार ज्या मके किसी घात $(ज्या\ म)^{न}$ का विस्तार यदि न सम है तो यह होगाः—

$$ज्या^{न}म=\frac{१}{२^{न-१}\times(-१)^{\frac{न}{२}}}\left\{कोज्या\ नम - न कोज्या\ (न-२)म + न\frac{(न-१)}{|\underline{२}}कोज्या\ (न-४)\ म - \frac{न\ (न-१)\ (न-२)}{|\underline{३}}\right.$$

$$\left.कोज्या\ (न-६)\ म+\cdots\cdots इत्यादि\right\}$$

यदि न विषम होतो,

$$ज्या^{न}म=\frac{१}{२^{न-१}\ (-१)^{\frac{न-१}{२}}}\left\{ज्यानम - नज्या\ (न-२)म + \frac{न\ (न-१)}{|\underline{२}}\ ज्या\ (न-४)\ म - \frac{न\ (न-१)\ (न-२)}{|\underline{३}}\right.$$

$$\left.ज्या\ (न-६)\ म\ +\cdots\cdots\cdots इत्यादि\right\}$$

$$\therefore\frac{ता}{ताम}\left\{[ज्या\ म]^{२}\right\}=\frac{ता}{ताम}\left(\frac{१-कोज्या२म}{२}\right)=ज्या२म,$$

$$\frac{ता^{२}}{ताम^{२}}\left(ज्या^{३}म\right)=\frac{ता^{२}}{ताम^{२}}\left(\frac{३ज्याम-ज्या३म}{४}\right)$$

$$=\frac{९ज्या३म-३ज्याम}{४}$$

$$=\tfrac{३}{४}(३ज्या३म-ज्याम)$$

$$\frac{ता^{३}}{ताम^{३}}(ज्या^{४}म)=$$

$$\frac{ता^{३}}{ताम^{३}}\left\{\frac{१}{२^{३}(-१)^{२}}\right.$$

$$\left.(कोज्या४म-४कोज्या२म+\frac{४\times३}{|\underline{२}}\times१\right\}$$

$$=\tfrac{१}{८}(४^{३}ज्या४म-४\times२^{३}ज्या२म)$$

$$=४(२ज्या४म-ज्या२म)$$

$$\frac{ता^{४}}{ताम^{४}}(ज्या^{५}म)=\frac{ता^{४}}{ताम^{४}}\left\{\frac{१}{२^{४}(-१)^{२}}\right.$$

$$\left.(ज्या५म-५ज्या३म+\frac{५\times४}{|\underline{२}}ज्याम)\right\}$$

$$=\frac{१}{२^{४}}(५^{४}ज्या५म-५\times३^{४}ज्या३म$$

$$+१०ज्याम$$

$$\frac{ता^{५}}{ताम^{५}}(ज्या^{६}म)=\frac{ता^{५}}{ताम^{५}}\left\{\frac{१}{२^{५}(-१)^{३}}(कोज्या६म\right.$$

$$\left.-६कोज्या४म+\frac{६\times५}{|\underline{२}}कोज्या२म-\frac{६\times५\times४}{|\underline{३}}\times\tfrac{१}{२})\right\}$$

$$=\frac{१}{२^{५}}\ (६^{५}ज्या६म-६\times४^{५}ज्या४म$$

$$+१५\times२^{५}ज्या२म$$

$$\therefore\ ब=म+च\ ज्याम+\frac{च^{२}}{२}\ ज्या२म+\frac{च^{३}}{|\underline{३}}\times\frac{३}{४}$$

$$(३ज्या३म-ज्याम)$$

$$+\frac{च^{४}}{|\underline{४}}\times४(२ज्या४म-ज्या२म)+\frac{च^{५}}{|\underline{५}}\times\frac{१}{२^{४}}$$

$$(५^{४}ज्या५म-५\times३^{४}ज्या३म+१०ज्याम)$$

$$+\frac{च^{६}}{|\underline{६}}\times\frac{१}{२^{५}}\ (६^{५}ज्या६म-६\times४^{५}ज्या४म$$

$$+१५\times२^{५}ज्या२म)+\cdots\cdots\cdots$$

यदि ज्याम, ज्या२म इत्यादि अलग करके एकत्र कर दिये जायं तो

$$ब=म+(च-\frac{१}{८}च^{३}+\frac{१}{१९२}च^{५})ज्याम+\left(\frac{च^{२}}{२}-\frac{च^{४}}{६}\right.$$

$$\left.+\frac{च^{६}}{४८}\right)ज्या२म+\left(\frac{३च^{३}}{८}-\frac{२७च^{५}}{१२८}\right)ज्या३म$$

$$+\left(\frac{च^{४}}{३}-\frac{४च^{६}}{१५}\right)\ ज्या४म+\frac{१२५च^{५}}{३८४}\ ज्या५म+\cdots\cdots$$

इस समीकरण में ज्या६म तथा इसके आगे की ज्याओंके गुणक और वे पद जिनमें च के छठें घातके

आगेकी संख्या वर्तमान है छोड़ दिये गये क्योंकि इनके मान नहींके समान हैं।

समीकरण (१) को इस प्रकार भी लिख सकते हैं:-

$$\text{च ज्याउ} = \text{उ} - \text{म}$$

$$\text{तब ज्याउ} = \frac{\text{उ} - \text{म}}{\text{च}}$$

जिसका यह अर्थ हुआ कि यदि उ के विस्तार में से म घटाया जाय और शेषको च से भाग दे दिया जाय तो ज्याउ का विस्तार हो जायगा। इसलिए

$$\text{ज्याउ} = \left(१ - \frac{१}{८}\text{च}^२ + \frac{१}{१९२}\text{च}^४\right)\text{ज्याम} + \left(\frac{\text{च}}{२} - \frac{\text{च}^३}{६} + \frac{\text{च}^५}{४८}\right)\text{ज्या२म}$$

$$+ \left(\frac{३}{८}\text{च}^२ - \frac{२७}{१२८}\text{च}^४\right)\text{ज्या३म} + \left(\frac{\text{च}^३}{३} - \frac{४}{१५}\text{च}^५\right)\text{ज्या४म} + \frac{१२५}{३८४}\text{च}^४\ \text{ज्या५म}$$

यदि फि (उ) = ज्या२उ तो फि (म) = ज्या२म और फि' (म) = २कोज्या२म,

इसलिए लैग्रेंजके सिद्धान्तके अनुसार

$$\text{ज्या२उ} = \text{ज्या२म} + \text{च ज्याम} \times \text{२कोज्या२म} + \frac{\text{च}^२}{\lfloor२}\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}(\text{ज्या}^२\text{म} \times \text{२कोज्या२म})$$

$$+ \frac{\text{च}^३}{\lfloor३}\frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२}(\text{ज्या}^३\text{म} \times \text{२कोज्या२म})$$

$$+ \frac{\text{च}^४}{\lfloor४}\frac{\text{ता}^३}{\text{ताम}^३}(\text{ज्या}^४\text{म} \times \text{२कोज्या२म})$$

$$+ \frac{\text{च}^५}{\lfloor५}\frac{\text{ता}^४}{\text{ताम}^४}(\text{ज्या}^५\text{म} + \text{२कोज्या२म}) + \cdots\cdots\cdots$$

जिसमें ज्याम × २कोज्या२म = ज्या३म — ज्याम,

$$\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}(\text{ज्या}^२\text{म} \times \text{२कोज्या२म}) =$$

$$\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\frac{१ - \text{कोज्या२म}}{२} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}}{\text{ताम}}(\text{कोज्या२म} - \text{कोज्या}^२\text{२म}) =$$

$$\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{कोज्या२म} - \frac{१ + \text{कोज्या४म}}{२}\right)$$

$$= \text{२ज्या४म} - \text{२ज्या२म},$$

$$\frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२}(\text{ज्या}^३\text{म} \times \text{२कोज्या२म}) = \frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२}\left(\frac{\text{३ज्याम} - \text{ज्या३म}}{४} \times \text{२कोज्या२म}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२}\left(\frac{\text{३ज्याम कोज्या२म} - \text{ज्या३म कोज्या२म}}{२}\right)$$

$$= \frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२}\left\{\frac{३}{४}(\text{ज्या३म} - \text{ज्याम}) - \frac{१}{४}(\text{ज्या५म} + \text{ज्याम})\right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२}\left\{\frac{१}{४}(\text{३ज्या३म} - \text{४ज्याम} - \text{ज्या५म})\right\}$$

$$= \frac{१}{४}(-३^२\text{ज्या३म} + \text{४ज्याम} + ५^२\text{ज्या५म}),$$

$$\frac{\text{ता}^३}{\text{ताम}^३}(\text{ज्या}^४\text{म} \times \text{२कोज्या२म})$$

$$= \frac{\text{ता}^३}{\text{ताम}^३}\left\{\frac{१}{८}(\text{कोज्या४म} - \text{४कोज्या२म} + ३)\text{२कोज्या२म}\right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^३}{\text{ताम}^३}\left\{\frac{१}{८}(\text{२कोज्या४म कोज्या२म} - ४\cdot\text{२कोज्या}^२\text{२म} + \text{६कोज्या२म})\right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^३}{\text{ताम}^३}\left\{\frac{१}{८}(\text{कोज्या६म} + \text{कोज्या२म}) - \frac{४}{८}(१ + \text{कोज्या४म}) + \frac{६}{८}\text{कोज्या२म}\right\}$$

$$= \frac{\text{ता}^३}{\text{ताम}^३}\left\{\frac{१}{८}(\text{कोज्या६म} - \text{४कोज्या४म} + \text{७कोज्या२म} - ४)\right\}$$

$$= \frac{१}{८}(६^३\text{ज्या६म} - ४^४\text{ज्या४म} + ७ \times २^३\text{ज्या२म})$$

$$\therefore \text{ज्या२उ} = \text{ज्या२म} + \text{च}(\text{ज्या३म} - \text{ज्याम}) + \frac{\text{च}^२}{२}(\text{२ज्या४म} - \text{२ज्या२म})$$

(क्रमशः)

हम अमर कैसे हो सकते हैं ?

आज कल इस भारतवर्षकी दुर्दशाको देख कर कौन ऐसा सहृदय मनुष्य होगा जो अपना कलेजा थाम कर न रह जाता हो। कहां वह समय था जब कि समस्त भूमण्डलके लोग इसे अपना गुरू समझते थे, यहाँसे शिक्षा ग्रहण किया करते थे और यहाँकी विद्या, वीरता, पराक्रम तथा कला कौशलको देख कर दांतों तले उँगलियाँ दबाया करते थे, कहां आज वही भारतवर्ष है कि जिसके शिष्य उसीको असभ्य कह कर पुकार रहे हैं। उसकी सब पुरानी बातोंको हँसीमें उड़ाया करते हैं; परन्तु अब संसार इस वयोवृद्ध भारतवर्षकी सब बातोंको सत्यतामें परिवर्तित होते हुए स्पष्ट देख रहा है और दबे मनसे उसके कृत्योंका अनुमोदन करना आरम्भ कर रहा है।

हज़ारों वर्षसे प्रत्येक भारतवासीका यह मुख्य उद्देश्य था कि वह किसी प्रकारसे अपनी जीवन-राशिको बढ़ावे, कोई अपने योग बलसे कोई परब्रह्म परमात्माको प्रसन्न करके, कोई तपस्या करके, कोई अमृत पान करके अपनी जीवन ज्योतिको बढ़ाता था। हज़ारों वर्षोंकी बात जाने दीजिये। आपने गदरके पहिलेके मनुष्योंका देखा होगा। क्या आपने कभी अपने और उनके शरीर और जीवनसे तुलना करनेका प्रयत्न किया है ? क्या आपने कभी अपनी आत्मासे इसका कारण पूछनेका साहस किया है ? मेरा विचार है कि आपने ऐसे तुच्छ प्रश्नों पर किंचित विचार न किया होगा। आप भी अपनेको सभ्यतम कहनेवाली जातिके रंगमें रंग गये होंगे। ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि जब छोटी नदीमें बाढ़ आती है तब वह अपने तटके गाँवों तकको बहा ले जाती है।

परन्तु अब विज्ञान ने इसकी सत्यताको सिद्ध कर दिया है कि मनुष्यका जीवन मनुष्यके हाथमें है। मनुष्यके पास जीवन एक सुन्दर खिलौनेकी तरह है; चाहें वह उसे शीघ्र ही तोड़ डाले, या उसे एक सुरक्षित स्थान पर रख कर उसका बहुत दिनों तक सुख भोग करे। गरेमन्ड पर्ल नामक एक वैज्ञानिकका कहना है कि मनुष्य का शरीर बहुत छोटे छोटे सेलोंका बना हुआ है जो कि कल्पनानुसार अमर हैं। यदि इनकी पूरी तौरसे रक्षा की जाय तो मनुष्य अमर हो सकता है। मनुष्यका प्रत्येक सेल पाँवके अंगूठे से लेकर सिर तक सृष्टिके प्रारम्भसे ही किसी न किसी रूपमें स्थित है। अब यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य इन अविनाशी सेलोंके होते हुए भी क्यों मृत्युको प्राप्त होता है ?

इसका उत्तर डा० पर्लने अपनी "दी बायोलोजी आफ डेथ" नामक पुस्तकमें दिया है। उनका कथन है कि सम्भव है कि वृद्धावस्था एक अज्ञात किन्तु निश्चित रासायनिक पदार्थ या रस हो जो शरीरमें प्रवेश करके सेलों पर आक्रमण करता हो और उनकी उत्पादन शक्तिको घटा देता हो।

डाक्टर साहबने अपने प्रयोगोंसे एक बहुत ही आश्चर्यमय और मनोरंजक बात बताई है कि मनुष्यकी मृत्यु एक दम नहीं हो जाती; परन्तु क्रमशः होती है। जब क्रमानुसार मनुष्यके किसी अंगका नाश हो जाता है तो हम भ्रमवश यह समझते हैं कि मनुष्यकी मृत्यु हो गई है; परन्तु उसका जीवन दीप अभी बुझा नहीं है और तब तक वह टिमटिमाता रहता है जबतक कि समस्त सेल और तन्तुओंका नाश नहीं हो जाता। अतः वास्तवमें मनुष्यकी दफनाये जानेके बाद भी कई सप्ताह तक पूर्ण रूपसे मृत्यु नहीं होती।

यदि हम अपने शरीरको मानवी यन्त्र समझ लें तो यह कल्पना और भी भली प्रकारसे स्पष्ट हो जायगी। मस्तिष्क, फेफड़े, हृदय, कलेजा और दूसरे अंग एक आपसे आप चलनेवाले यन्त्रके मुख्य मुख्य कल पुर्ज़े हैं। जिस प्रकार यन्त्रका एक

पुर्ज़ा टूट जाने से पूरे यन्त्र का चलना असंभव हो जाता है जब तक कि दूसरा भाग उसके स्थान पर न लगाया जावे उसी प्रकार जब शरीर रूपी यन्त्र का एक अवयव विनष्ट हो जाता है तो वह शरीर भी निकम्मा हो जाता है। हमारी इसी कारण मृत्यु हो जाया करती है कि हममें अभी उतनी शक्ति नहीं आई है कि नष्ट अंग के स्थान पर दूसरा नया अवयव लगा सकें।

इन सब कारणोंको विचार कर एक बात समझमें आती है कि हमको कोई ऐसा साधन खोज निकालना चाहिये जिससे कि हम नष्ट या विकृत अंगको बदल सकें।

इसी साधन पर हमारा अमर होना निर्भर है।

पाठको! आप लोग इस योजनाको केवल हवाई किले अथवा निराधार कल्पना मात्र समझते होंगे। परन्तु नहीं, इस ओर बहुत से वैज्ञानिकोंका ध्यान कई वर्षों से आकर्षित हुआ है और उन्होंने बहुत सफलता भी पाई है। वैज्ञानिकोंने एक ऐसा अद्भुत पदार्थ 'एड्रेनेलिन' खोज निकाला है जिसके गुणोंको सुनकर आप बहुत चकित होंगे। यह पदार्थ मृत हृदयको पुनः जीवन प्रदान कर सकता है।

इसी प्रकारका एक और पदार्थ टेथेलिन (tethalin) पाया गया है। इसको बहुत से प्रयोग सफेद चूहों पर किये गये हैं जिनसे उनका जीवन बहुत बढ़ गया है। ऐसे हज़ारों प्रयोग मनुष्यकी दीर्घायुके लिए किये जा रहे हैं।

विज्ञानको मृत्यु रोकनेका बहुत शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये। जब हृदयसे मस्तिष्क तक रुधिरका प्रवाह रुक जाता है तब तीन मिनटमें मस्तिष्कके सेल विकृत होने लगते हैं और शीघ्र ही शरीरमें दो मृत अंग हो जाते हैं; मनुष्यकी मृत्युके पश्चात् शरीरके बहुत से अंग भले चङ्गे रहते हैं और उत्पादन करनेमें लगे रहते हैं। जब तक उन्हें भोजन मिलता रहता है और किसी प्रकार से उनमें मृत अवयवोंका विष प्रवेश नहीं करता तब तक वह जीते रहते हैं।

जब उन्हें उस शरीरके मरने की खबर पहुँचती है तो जिसमें वह रहते हैं तो उन्हें बहुत ही अप्रिय और आश्चर्यमय घटना प्रतीत होती है।

वैज्ञानिकोंने ऐसे शरीरके भाग प्रयोगशालाओं में बहुत वर्षों तक जीवित रखे हैं और इस प्रकारके बहुत से प्रयोग करके उन्हें यह कहनेका साहस हुआ है कि शरीरके समस्त तन्तुओंकी वह रक्षा कर सकते हैं पर शर्त यह है कि उन्हें उपयुक्त यन्त्र और माध्यम मिल जावें। यह सिद्ध हो चुका है कि एक-सेलवाले जीव विज्ञान विधिसे अमर किये जा सकते हैं। जब हम जीवन विकाशकी इससे ऊपर की श्रेणीके जीवों पर ध्यान देते हैं तो यह विश्वास उत्पन्न होता है कि स्पंज (कीट विशेष) और दूसरे प्रकारके अमेरुदण्ड कीट इसी प्रकारसे अमर किये जा सकते हैं और वह उन्हीं सेलोंसे बने हुए हैं जिनसे मनुष्यका निर्माण हुआ है। जब हम उच्चतर श्रेणीके जीवोंको देखते हैं तभी स्वाभाविक मृत्यु मिलती है।

इस आविष्कारके कारण डा० पर्ल और दूसरे प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि मृत्यु विकाश क्रमकी एक आकस्मिक दुर्घटना मात्र है अर्थात् विकाश क्रमसे मानवी शरीर इतना ही समर्थ हो सका है।

आमाशय और उससे सम्बद्ध गज़ों लम्बी दुखदायी अंतड़ियां भी दूषित अंग हैं; किन्तु प्रकृतिको और कामोंसे ही फ़ुर्सत न थी कि इस यंत्रका संस्कार करे।

वह ग्रन्थियां, धमनियां और वात संस्थानके निर्माण करनेमें लगी हुई थी। यह सभी अंग उसके कौशलके नमूने हैं, वह बहुत अच्छी तरहसे काम करते रहते हैं। उनमें विकार पैदा हो जानेसे बहुत कम आदमी मरते हैं, मरनेका कारण अधिकांशमें वायु और भोजन ग्रहण करनेके भद्दे यंत्र हैं। यह विज्ञान ने स्पष्ट रूपसे दिखा दिया

है कि शरीरका अधःपतन किसी न किसी अवस्था में होना अनिवार्य्य है। हृदय एक मजबूत मांस पेशी है, इसीसे सबसे अन्तमें उसका नाश होता है। गणना शास्त्रसे पता चलता है कि बहुत ही कम संख्यामें रक्त संचालक संस्थानके विकारोंसे मृत्यु हुआ करती हैं। यदि ऐसा होता भी है तो ९० या ९५ वर्षकी अवस्थामें।

डा० पर्लके मतानुसार मृत्यु क्रमशः होती है, इसीमें विश्वास करके भिषग्वर उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं जब मनुष्यके दूषित पाचन यंत्रोंको व्यवच्छेद द्वारा निकाल सकेंगे और पाचन-यंत्र-विहीन शरीरके रुधिरमें दिनमें तीन बार त्वक् प्रवेश द्वारा पर्याप्त भोजनरस पहुँचाकर उसे अनन्त काल तक जीवित रख सकेंगे।

यह भी सम्भव है कि एक ऐसा यंत्र भी निर्माण हो जाय जो हृत्पिण्डका काम कर सके, जैसे कि फुफ्फुसके स्थान पर पुल मोटरसे काम ले लेते हैं।

परन्तु वर्तमान में तो डा० पर्ल और उनके साथी उस क्रियाके रोकनेका प्रबन्ध कर रहे हैं जो तन्तुओंके उत्पादन कार्यमें मनुष्यकी वृद्धावस्थामें बाधा डालती है। यदि मानव शरीरके तन्तु किसी भाँति इस योग्य हो जायं कि शरीरके भीतर स्थित रह कर भी अनन्त काल तक उत्पादन कार्य उसी प्रकार करते रहें, जिस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोगशालाकी परखनलीमें करते रहते हैं, तो अमरत्व प्राप्त करनेमें सन्देह न रहे।

जब इन तन्तुओंको शरीरसे अलग करके अमर किया जा सकता है तो किसी न किसी दिन यह भी सम्भव हो जायगा कि शरीरमें रह कर भी वह अमर रह सकें, तभी शरीरसे ही मनुष्य अमर हो जायगा। किन्तु पहले विज्ञानको यह मालूम करना पड़ेगा कि प्राकृतिक स्थितिमें यह सेल मरते कैसे और क्यों हैं। यह बात जान लेनेके अनन्तर ही अमरत्वके साधन निकाले जा सकेंगे। तब तो हनुमान, विभीषण, जामवन्त, गोपीचन्द आदि भारतीयोंकी तरह प्रत्येक व्यक्तिके लिए अमर होना सम्भव हो जायगा।

—मनोहर लाल भार्गव

नींदको विदा कीजिये

ज्ञानके नये नये आविष्कारोंसे भविष्य में नींदकी आवश्यकता न रहेगी। उसके प्रतिनिधि स्वरूप यान्त्रिक साधनोंसे ही काम चल जायगा।

जब दिन भर काम करते रहनेसे मस्तिष्कके सेलों में रासायनिक परिवर्तन हो जाता है और वह थक जाते हैं अर्थात् उनकी शक्ति कम हो जाती है तो उन्हें विश्रामकी आवश्यकता होती है। इसी कारण हमें नींद लगती है। सोनेसे उन सेलोंमें फिर नई शक्ति उत्पन्न हो जाती है और थकावट दूर हो जाती है।

कई एक विद्वानोंका विश्वास है कि मस्तिष्कके सेलोंका परिवर्तन वैद्युत् रासायनिक परिवर्तन है। प्रो० आर्थर काटन तो एक यंत्र द्वारा इस बात का उद्योग कर रहे हैं कि यंत्रोंसे ही मस्तिष्कके सेलोंमें विद्युत प्रवाह द्वारा शक्ति उत्पन्न होना सम्भव हो जाय और दिन रात काम करते रहने पर भी नींदकी आवश्यकता न हो।

इस आविष्कारके हो जाने पर एक मनुष्य जो काम करते करते थक गया हो, जिसे नींद लग रही हो और जिसके मस्तिष्कके सेलोंकी शक्ति क्षीण हो गई हो, आठ घंटे खाट पर लेटनेके स्थान पर एक बिजलीके रोधित (Insulated) पिंजड़ेमें बैठ जायगा, वहाँ सिर पर और कदाचित् कलाई पर भी, एक विद्युत् यंत्र लगाकर विद्युत् धारा प्रवाहित करेगा। इससे सेलोंमें नवीन शक्ति आ जायगी और पन्द्रह मिनटमें ही बाहर निकल आने पर वह दूसरे दिनके कार्य करनेके लिए अपने मस्तिष्क तथा शरीरको शक्ति सम्पन्न पायेगा।

यह योजना उतनी आश्चर्य जनक नहीं है जितनी सुनने पर जान पड़ती है। अन्य वैज्ञानिक आविष्कारोंके अनुसार ही यह आविष्कार हो रहा है, पूर्वके आविष्कारोंसे भी यही प्रतीत होता है कि मानव, पाशव और वानस्पतिक जीवन और समस्त शक्तिका आधार किसी न किसी प्रकार बिजली ही है। डा० क्रिलने अभी थोड़े दिन हुए एक वैद्य मण्डलमें अपनी यह उपपत्ति उपस्थित की थी कि मनुष्यके शरीरका अंतः स्थल वास्तवमें विद्युत् रासायनिक बाटरी है और विद्युत्शक्ति तथा जीवनी शक्तिमें रूप भेद है, वस्तुतः उनका उद्गम एक ही प्राकृतिक शक्ति है।

यदि वैज्ञानिकों को इस बातका पता लग गया होता कि निद्रा क्या वस्तु है तो इस विचारका जन्म भी बहुत दिन पहले हो जाता। अब भी मनोविज्ञानके लिए निद्रा बड़ा रहस्यपूर्ण विषय है। नींद लग जाने पर हम क्यों और किस प्रकार अचेतन हो जाते हैं? स्वप्न क्या है? सोनेके समय मन क्या करता है? इस प्रकारके प्रश्न आज भी रहस्य पूर्ण हैं, किन्तु अब सोतेमें मस्तिष्कके कार्योंका ठीक ठीक पता लग गया है। विज्ञान द्वारा इस बातका पता तो बहुत दिनों पहले ही लग गया था कि इसमें कुछ भौतिक परिवर्तन होते हैं। जब एक मनुष्य सुला दिया जाता है तो उसका सिर हलका हो जाता और पैर भारी हो जाते हैं। जब मनुष्य जागता है तो सिरका हलकापन दूर हो जाता है। इस बातकी जांच करनेके लिए एक तख्ता लीजिये जो किसी सुमेरु वा कीलीपर सधा हुआ रखा हो। इस पर किसी आदमीको लिटा दीजिये। सोतेमें तख्ता पैरोंकी तरफ झुकजायगा और जागतेमें सरकी तरफ। दूसरे प्रयोगोंसे यह भी ज्ञात हुआ कि सो जानेपर सारे शरीरका बोझ घट जाता है। हिपनोटिज्म अथवा औषधिके प्रयोगसे बेहोश करनेसे इस विषयमें कुछ और जानकारी हुई। किन्तु जब मस्तिष्कके सेलोंकी परीक्षा की गई तब उन परिवर्तनोंका पता चला जो सोते और जागतेमें हुआ करते हैं।

मस्तिष्कमें असंख्य सेल हैं। प्रत्येक सेल-समूहसे शरीरका कोई न कोई एक अंग सम्बद्ध है है; जैसे बिजलीकी पुराने ढंगकी बाटरी घंटी आदि यंत्रोंसे सम्बद्ध रहती है।

अभी थोड़े दिन हुए जब वैज्ञानिकोंको इन विचित्र रचनाओंका ज्ञान बहुत थोड़ा था। वह सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा सेल देख सकते थे, उनका फोटो भी ले सकते थे और रासायनिक रंगोंसे उन्हें रंग भी सकते थे; जिससे वह मस्तिष्कके अन्य भागसे अलग दिखाई पड़ने लगते थे।

एक बार एक दुर्घटनासे एक स्थान पर अनेक मनुष्योंकी अकस्मात मृत्यु हो गई। तुरन्त उनके मस्तिष्ककी परीक्षा की गई तो एक विचित्र बात दिखाई पड़ी। रंग देने पर सेलोंका रंग पहले की तरह अच्छा या गहरा न था। सेलें गहरे रंग की और स्पष्ट होनेके स्थानपर और स्पष्ट दिखाई पड़ती थीं। रंग ग्रहण करनेकी शक्तिमें क्यों परिवर्तन हो गया? उनके अंदर कुछ रासायनिक पदार्थोंके देनेपर उनके भीतरके रासायनिक पदार्थकी प्रतिक्रियासे उनका रंग पहले गहरा हो जाता था। अतएव यह मानना पड़ा कि अब उनमें कुछ रासायनिक परिवर्तन हो गया है; यदि ऐसा न हुआ होता तो वह पूर्ववत रंग ग्रहण करते।

प्रयोगशालाओंमें इस विचित्र परिवर्तनके विषयमें अनेक प्रयोग किये गये और उसका पूरा पूरा विवरण जाननेका प्रयत्न होने लगा।

इस प्रकार धीरे धीरे यह सिद्धान्त ज्ञात हुआ कि नींदके अभावमें या तो मस्तिष्कके सेलोंमें से कुछ रासायनिक पदार्थ निकल जाते हैं अथवा उनमें दौर्बल्य कारक रासायनिक परिवर्तन होने लगता है। इस बातका भी पता लगा कि सोनेसे सेलोंको अपना पूर्व रूप प्राप्त होता है। निद्रा ही मस्तिष्कके सेलोंमें वह जीवनी शक्ति भर देती है

जो जागृतावस्थामें नष्ट हो जाती है। इस प्रकार विज्ञान, रचनाकी दृष्टिसे निद्राका रहस्य समझ सकनेमें और यह कहनेमें कि परिवर्तन रासायनिक है समर्थ हुआ। रसज्ञोंका विचार है कि यह परिवर्तन केवल रासायनिक परिवर्तन नहीं बल्कि स्वभावसे ही विद्युत् रासायनिक परिवर्तन हैं।

विद्युत् रासायनिक परिवर्तन भिन्न भिन्न पदार्थों में विद्युत् धारा प्रवाहित करनेसे उत्पन्न होता है। विद्युत् ही उसका मुख्य कारण है। जो परिवर्तन उसमें होता है रासायनिक परिवर्तन ही है।

यदि यह सब बातें सत्य हैं तो किसी विशेष प्रकारकी विद्युत् धारा को निद्राका प्रतिनिधि बनाने का सिद्धान्त अविवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यदि किसी प्रकार यंत्र बन गया तो एक घंटेसे कम में ही निश्चय पूर्वक रात भरकी नींदका विश्राम मिल सकेगा और प्रत्येक व्यक्ति तथा मानव समाज के अत्यंत आनन्दकी बात होगी। इस आविष्कारके हो जाने पर २४ घंटेमें ८ घंटे विश्राम करनेके हिसाबसे पढ़ने लिखने खेलने कूदने और परिश्रम करनेके लिए आयुका तृतीयांश अधिक समय मिल सकेगा। मान लीजिये कि आपकी आयु ६० वर्षकी है तो चतुर्थ शताब्दी का समय आपको और अधिक मिल सकेगा जिसमें आप जो कार्य चाहेंगे कर सकेंगे। आधुनिक कालमें साधारणतया आयुका तृतीयांश मनुष्य अचेतन पड़ा रह कर व्यतीत करता है। इक्यावन वर्षकी आयुके जितने मनुष्य हैं उन सब ने सत्रह वर्ष सोनेमें ही व्यतीत कर दिये होंगे। इतना समय अधिक लगाने पर प्रत्येक मनुष्य कितनी योग्यता, महत्कृत्यता और वैभव सम्पादन कर सकता था इसका कुछ हिसाब है?

यह बात बिलकुल सत्य है कि भूमंडलके प्रसिद्ध गण्यमान्योंमेंसे सभी अल्प निद्रावाले ही थे। वह प्रतिदिन सर्व साधारणसे तीन, चार घंटे अधिक समय अपनी पूर्ण सफलताके उद्योगमें लगाते थे। सभी सर्व प्रसिद्ध विद्वानोंका नाम लिया जा सकता है कि वह प्रतिदिन साठ घंटे विश्राम करनेके स्थान पर केवल ४,५ घंटे ही सोते थे।

—जगपति चतुर्वेदी

इनसुलिन

शोककी बात है कि हमारे देशमें मधुमेह अथवा बहुमूत्र रोगसे बहुत से मनुष्य ग्रसित हो रहे हैं और बहुत से अमूल्य युवक इस रोगके गालमें पड़कर मृत्युको प्राप्त होते हैं। श्रीमान ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इत्यादि इसी रोगमें मरे थे। यह रोग दिन पर दिन अपना प्रभुत्व जमा रहा है।

डा० एफ. जी. बेनटिंगने एक नये पदार्थका आविष्कार किया है, जिसको इनसूलिन कहते हैं और जिससे बहुमूत्र रोगीका रोग घट जाता है और उसका जीवन बढ़ जाता है।

इस रोगका सम्बन्ध एक ग्रन्थिसे है, जिसको (pancreas) क्लोम कहते हैं और जो आमाशयके पास और अंतड़ियोंके ऊपरी भागमें होती है।

इस ग्रन्थिमें दो भाग होते हैं। पहिले भागमें रस तय्यार होकर अंतड़ियोंमें पहुँचता है जिससे कि पाचनशक्ति बढ़ती है। यह बाह्य मल होता है जिसमें कि (trypsin) ट्रिपसिन तथा अन्य दो पाचक रस होते हैं।

यदि हम क्लोमको सूक्ष्म यंत्रसे देखें तो हमें उसमें बहुत से कोष (cell) मिलेंगे, जो अन्य तन्तुओंसे बिल्कुल भिन्न हैं और जिनको "लेगरहेन्सका द्वीप कहते हैं;" इसी क्षेत्रका पहले पहल लेंगरहेन्सने पता लगाया था।

बहुमूत्र रोग कोई नई बीमारी नहीं है। इस रोगको तीसरी शताब्दीमें बहुत ही भयानक समझते थे। एक यूनानी वैद्य ऐरेटसने इसका विवरण तीसरी शताब्दीमें लिखा था। उस समय से अबतक हज़ारों वैज्ञानिकोंने इस रोगके अध्ययनमें बहुत ही जी तोड़ कर परिश्रम किया है।

जब बेनटिंगको इसके इलाजका एक मार्ग नज़र आया तो वह टोरन्टो विश्वविद्यालयके शारीरशास्त्रज्ञ प्रो० मेक्लोयड़के पास गया। प्रो० मेकलोयडने सोचा कि इस नये इलाजकी पूरी पूरी परीक्षा होनी चाहिये; उन्होंने अपनी प्रयोग-शालामें डा० सी. एच. बेस्टके साथ उन्हें काम करनेके लिए आज्ञा देदी।

पहलेके परिणामोंसे यह पता लग चुका था कि इनसुलिन लैंगरहन्स द्वीप नामक स्थानमें पैदा होती है। यह भी मालूम था कि ट्रिपसन वाहिनी-नली बाँध दी जाती है तो ट्रिपसन फिर क्लोममें पहुँच जाता है और वहाँ तन्तुओंका पाचन आरम्भ कर देता है। परिणाम यह होता है कि ग्रन्थिके सभी तन्तु हल हो जाते हैं और केवल द्वीपके तन्तु रह जाते हैं। उन्होंने यह प्रयोग तो एक कुत्ते पर किया और एक दूसरे कुत्तेका क्लोम निकाल कर मधुमेही बना डाला। पर्याप्त समय व्यतीत होने पर पहले कुत्तेका क्लोम निकाल कर उसका जूस निकाला और दूसरे कुत्तेमें त्वक् प्रवेश कराया। इसका फल यह हुआ कि दूसरे कुत्तेके रुधिर और मूत्रमें शर्करा कम आने लगी।

इसी प्रकारके अनेक प्रयोगोंसे यह पता चलता है कि एक प्रकारका पदार्थ (pancreas) क्लोममें होता है खास कर Hard tissue में जोकि बहुमूत्र रोगीके शरीरमें नहीं पाया जाता और जिसमें शर्कराके बढ़ाने और घटानेकी शक्ति रहती है।

निरूपकोंने बड़े कठिन परिश्रमसे हज़ारों कुत्तों और खरगोशों पर प्रयोग करके यह पता चलाया है कि कितनी मात्रा किस मनुष्य या जानवरको देनी चाहिये। यदि ऐसा न हुआ होता तो बहुत से मनुष्य या जानवर कालके गालमें चले गयेहोते।

इनसुलिनको अधिक मात्रामें देनेसे बड़े खराब परिणाम निकलते हैं इससे शर्कराकी मात्रा बहुत ही कम हो जाती है और बहुत ज़ोरके बायंटे आने लगते हैं, जिससे मृत्यु तक हो सकती है। इनसूलिन बहुत शक्तिशाली औषधि है। यदि यह औषध किसी मनुष्यको अधिक मात्रा में देदी जाय तो उसके रुधिरमें शर्करा कम होने लगती है। जब शक्कर .०७% रह जाती है तो शरीर पीला पड़ जाता है और उसके शरीरमें बहुत पसीना निकलने लगता है।

यदि रुधिरमें इससे भी कम शर्करा कर दी जाय तो रोगीकी आवाज लड़खड़ाने लगती है और मानसिक विकार भी पैदा हो सकते हैं। यह सब बातें केवल रुधिरमें शर्करा बढ़ाने से ही रोकी जा सकती है, जैसे दो तीन छटांक नारंगीका रस पिलाने से। इसके बाद अब निरूपकोंने रोगी मनुष्यकी ओर ध्यान दिया; इन प्रयोगोंके परिणाम बहुत से चिकित्सा विषयक समाचार पत्रों और पत्रिकाओंमें निकल चुके हैं। यह कहना व्यर्थ है कि सफलता आशातीत हुई। मधुमेह जब आखिरी अवस्था पर पहुँच जाता है जिसको "कोमा" कहते हैं तब रोगी बेहोश हो जाता है। उस समय इनसूलिन संजीवनी बूटीका काम करती है। इन-सूलिनके प्रयोगसे अनेक रोगी भले चंगे हो गये हैं।

इनसूलिन-चिकित्सा मनुष्यके भोजनसे बहुत घना सम्बन्ध रखती है, क्योंकि यह मालूम है कि कितनी इनसूलिन कितनी शर्कराका पाचन करा सकती है। जब डाक्टरको चिकित्सा करनी होती है तो वह रोगीकी परीक्षा करके देख लेता है कि वह कितनी शर्करा पचा सकता है और इसीसे वह इनसूलिनकी मात्रा निश्चित करता है।

इसके बनानेकी क्रिया बहुत ही चित्तरंजक है। लैंगरहेन्सका द्वीप एक छोटी सी ग्रन्थिका छोटा सा भाग है। बूचड़ खानों में इसे मीठी रोटी sweet breads कहते हैं। जो स्वीटब्रेड भोजनालयोंमें परसी जाती है वह भेड़ या सूअरका क्लोम होता है, क्योंकि यह छोटा होता है। गायका क्लोम बहुत बड़ा होता है, जिसका कि वज़न आधसेरसे तीन पाव तक होता है।

आकाशसे गिरें तो उनसे पृथ्वी और राजा दोनों का सत्यानाश होता है।

अब प्रश्न यह होता है कि ओलोंमें यह नाना रंगोंकी कान्ति कहांसे आयी। जिस निमित्तसे यह कान्ति आती है वही कारण रुधिर वर्षणमें भी हो सकता है। जलका लाल रंगमें बरसना ही रुधिर वर्षण हो तो असम्भव नहीं। प्राचीन साहित्य ग्रन्थोंमें रुधिरकी वर्षाका बहुत से स्थलोंपर वर्णन आता है। जैसे रामायणमें अरण्यकाण्डमें रामने कहा है—

इमे रुधिरधाराभिर्वर्षन्तोऽतिखरस्वनाः।
व्योम्निमेघा विवर्त्तन्ते परुषाः गर्दभारुणाः॥

यह गधेके रंगके समान लाल अत्यन्त कर्कश स्वरसे गर्जनेवाले भयानक मेघ रुधिरकी धाराएं बरसा रहे हैं।

अस्थि वर्षाका भी वाल्मीकि रामायणमें वर्णन है।

'अस्थीनिमेघाः ववृषुः उष्णं शोणितमेवच' (उत्तरकाण्ड)

महाभारतमें भीष्मकी मृत्युके अवसर पर लिखा है।

'प्रादुरासीद नग्नेच वर्षणं रुधिरकर्दमम्।'

बिना मेघके आकाशमें से भी रुधिरकी कीचड़ बरस पड़ी।

सैन्धवराजके पराजयके अवसर पर अश्वमेध पर्वमें लिखा है—

आहत्यगगनं मेघा मुमुचुर्मान्सशोणितम्।

गगनमें घिर कर बादलोंने मांस और रुधिर बरसा दिया।

गदा पर्व (महाभा०) में पाण्डवोंके शिविरके विनाशके अवसर पर—

"पर्जन्य पांशुवर्षीच मांस वर्षी च भारत॥"

मेघने धूल और मांसकी वर्षाकी।

पराशरने लिखा है कि—

'लोमोपजासवक्षीरदधिमधुघृततैलमत्स्यभेकपक्षिशस्य-वर्षणं दुर्भिक्षाय।'

बालोंका बरसना, पत्थरोंका बरसना, मद्य, दूध, दही, शहद, घी, तेल, मच्छी, मेंडक, पक्षी, और धान्यका बरसना दुर्भिक्षका चिन्ह है।

सर्पान मत्स्यान् पक्षिणो यत्र देवः प्रवर्षति।
तत्र शस्त्रोपघातः स्याद्भयं चातिप्रवर्त्तते॥

सांप, मच्छी, पंछी, जहां बरसते हैं वहाँ घोर शस्त्र युद्धकी आशंका रहती है और देश पर संकट रहते हैं।

बार्हस्पत्य शास्त्रमें लिखा है—

वृष्टिर्यदावर्षतिरेणु वर्षं तस्योपरिष्टाद् हरितालवर्षणं।
अदृष्टपूर्वंच यदाप्रवर्षेद तदा वलं नश्यति पार्थिवस्य

जब पहले तो धूलिकी वर्षा हो और फिर सके ऊपर हरताल बरसे तो राजाकी सेना नष्ट हो जाती है।

रामायण लङ्काकाण्डमें धूम्राक्षके मरणके अवसर पर

रुधिरार्द्रोमहाश्वेतः कबन्धो निपपात ह॥

आकाशसे लहूलुहान श्वेत धड़ आकर गिरा।

गदा पर्व महाभारतमें पाण्डवोंके शिविरके नाशके अवसर पर

बहुपादैर्बहुभुजैः कवन्धैर्घोरदर्शनैः।
नृत्यभिर्भयदैर्व्याप्ताः दिशास्तत्राभवन् नृप॥

बहुत से भयानक भयानक धड़ जिनके बहुत से हाथ और बहुत से पैर थे चारों दिशाओंमें नाचते दिखाई देने लगे।

इस प्रकार नाना प्राचीन विद्वानोंके ग्रन्थोंके उल्लेखोंसे नाना प्रकारके पदार्थोंकी वर्षा होनेका अद्भुत रहस्य प्रकट होता है। हमने इस प्रसंग पर यह भी पर्याप्त रूपसे दर्शा दिया कि किस प्रकार प्राचीन कालमें माया द्वारा भी नाना पदार्थोंकी वर्षा की जाती थी।

मायाका तात्पर्य यही था कि किसी प्रकार गुप्त साधनोंसे उस कार्यको साधा जाता था।

जब मैं १६ वर्षका था तब ९वीं श्रेणीमें मैं गुरुकुलमें पढ़ता था। गुरुकुलकी ओरसे सर्दार

अर्जुन सिंहको इस निमित्त नियुक्त किया गया था कि वह उच्च कक्षाओंको शस्त्र अस्त्र विद्याका अभ्यास करावे। उक्त सर्दार माया करनेमें भी चतुर थे और शस्त्र विद्यामें भी किसीसे कम न थे। तलवार बाण, बिनोट, भाला आदिके अपूर्व विद्वान थे। उन्होंने एक साल हमें खूब सिखाया था। विनोदके लिए उन्होंने एक रातको अग्नि वर्षा करके दिखायी थी।

रात्रिके समय आसमानसे बराबर दो घंटे तक अंगारे बरसते रहे। उसमें रहस्य यही था कि एक पतंगके साथ बहुत सी बारूदका एक गोला आग लगा कर ऊपर चढ़ा दिया था। जब भी पतंगको ठुमक लगती थी तभी अग्निके शोले झटक झटककर आ गिरते थे। निःसंदेह वह दृश्य बड़ा अद्भुत था; उसका मसाला तय्यार करना कौशलकी बात थी।

मुझे अपने बहुत बचपनकी याद है कि मैंने बड़ी बड़ी अद्भुत मायाएं देखीं; परन्तु अब उस प्रकारके मायावी देखनेमें भी नहीं आते। देखते देखते सुतलीका डोरा अनन्त आकाश तक चला जाता है; उस पर आदमी चढ़ते हैं; ढोल ढमाका बजता है। ऊपरसे कटे धड़ कटे हाथ और कटे पांव गिरते हैं और फिर मायावी उनको जोड़ कर जीता जागता शरीर बना देता है। इस प्रकारके हस्त कौशलकी मायाएं मैंने स्वयं अपने आप बाल्यकालमें देखी हैं। मैं अनुमान करता हूँ कि उसी कर-कौशल-मायाकी विशेष उन्नति होने पर उक्त अस्वाभाविक वर्षाओंका भी स्पष्टीकरण हो जायगा।

इसके अतिरिक्त मैं अब पाठकोंके समक्ष विलायती जगतके इस विषयके अनुभवोंका भी विचित्र उल्लेख करके इस विषयका उपसंहार करता हूं।

चिकागोसे 'आवर फर्स्ट सेंचुरी' नामक विशाल ग्रन्थ १८८१ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसके लेखक आर. एम. डीवन्स हैं। इसमें एक घटना घोर अन्धकारकी रात्रिकी दी है। यह घोर अन्धकारकी रात्रि १७८० की १७ मईकी थी।

दिन भर लगातार १५ घण्टे तक आकाश घोर काले रंगका प्रकट हुआ। ईसाई संसारने समझ लिया कि यही कयामतका दिन है। संसारके सब काम धन्धे रुक गये। सब पदार्थोंका रंग बदल गया था। मेघ घनघोर गर्जन कर रहे थे, वायुका प्रबल वेग मेघोंको खल बला रहा था। पक्षीगणका दम घुटता था और वह मूर्छित हो हो बरसते थे।

इस अवसरपर पानीके तालावोंपर कुछ काला काजल तथा भस्मके रंगका तेल छा गया था। इसी प्रकार की घटनाएं अन्य भी कई एक अवसरों पर हुई हैं, जैसे २१ अकतूबर १७१६, १९ अकतूबर १७६२। इन दिनों में मेघोंसे काजल बरसा और और जिस कपड़े पर भी पानी गिरा वह काले काजलके घोलसे भीग गया।

विलायती विद्वानोंने इस प्रकारकी अद्भुत घटनाओंको उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा, प्रत्युत उनका उल्लेख और कारणोंका अन्वेषण किया। पाठक महोदय यूरोपियन अनुसंधानकी चर्चा सुनना चाहते होंगे; इस निमित्त हम अगले अङ्कमें "घोरतम रात्रिकी दुर्घटना" शीर्षक लेख देंगे, जिसमें भारतीय विद्वानोंकी लिखी अद्भुत घटनाओं पर कुछ वैज्ञानिक प्रकाश डाल सकेंगे।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार।

दिनचर्या

(ले०—भिषग्वर अभयचन्द्र जैन)

प्रति दिन मनुष्योंको ऐसे ढंगसे चलना चाहिये कि मानसिक वृत्ति तथा शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहे। दुनियाके संपूर्ण कामकाज नीरोगता पर ही अवलंबित हैं। यदि नीरोगता नहीं है तो राजराजेश्वर भी सुखी नहीं हो सकता और यदि स्वास्थ्य है तो भिखारी भी सुखी हो सकता है। इससे यह सिद्ध है कि मनुष्यका स्वास्थ्य ही सर्वस्व है न कि धन दौलत। मनीषियोंका कहना है कि 'तन्दुरुस्ती हज़ार न्यामत' है। महर्षि चरकने कहा है।

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावेहि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥६॥

चरक संहिता निदान स्था. अ० ६

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ॥

अन्य अत्यावश्यक कार्योंको छोड़ कर सबसे पहले शरीरकी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि शरीरके नाश हो जाने पर अथवा रुग्ण हो जाने पर शरीर से संपादन करने योग्य सब काम अपने आप ही बंद हो जाते हैं। स्वास्थ्य चारों पुरुषार्थोंकी मूल भित्ति है।

जिसके वात, पित्त और कफ यह तीनों दोष सम हैं, पाचन शक्ति ठीक है, धातु तथा उनकी और मलोंकी क्रियाएँ सम हैं, आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हैं उसको नीरोग कहते हैं। नीरोग पुरुषके इन भावोंकी हमेशा रक्षा करनेका नाम ही स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए आचार्योंने दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्याके नियम पालन करनेका पद पद पर उपदेश दिया है। प्राचीनकालमें जो हमारे पूर्वज दीर्घायु और बलवान होते थे उसका कारण यही था कि वह दिनचर्या आदि सम्बन्धी आयुर्वेदीय उपदेशोंका भली भांति पालन करते थे। इस विषयका उज्वल उदाहरण उस समयके रचित विविध विषयोंके ग्रन्थोंका भंडार है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंको जाने दीजिये क्योंकि स्वस्थ मनुष्योंके स्वास्थ्यकी रक्षा करना तो आयुर्वेदका प्रधान उद्देश ही है किन्तु आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके अतिरिक्त राजनीतिक जैसे सर्वथा विभिन्न विषयक ग्रन्थोंमें भी स्वास्थ्य रक्षाके उपायोंका विशद विवेचन किया गया है। जिन्होंने कौटिलीय अर्थशास्त्र, कामन्दक अर्थशास्त्र और नीति वाक्यामृत आदि ग्रन्थोंका अवलोकन किया है उन्हें उपर्युक्त वाक्यकी सत्यतामें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता है। इस लेखका उद्देश्य महर्षि सोमदेव* प्रणीत नीति-वाक्यामृत ग्रन्थके दिवसानुष्ठान समुद्देश प्रकरणमें गूंथे गये कतिपय अमूल्यरत्नोंका मर्मज्ञ सहृदय पाठकोंके कंठोंमें मनोहर हार पहनाना ही है।

प्रत्येक मनुष्यको ब्राह्म मुहूर्त (रात्रिका चौदहवाँ मुहूर्त अर्थात् जो समरात्रिदिव कालमें जिसमें दिन और रात्रि समान होती हैं रातके ४ बजकर २४ मिनटसे शुरू होता है औ ५ बजकर १२ मिनट पर खतम हो जाता है) में शय्यासे उठकर परमात्माके गुणोंमें चित्त लगाना चाहिये और विचार

* श्रीमान आचार्य सोमदेवजी सुप्रसिद्ध दिगंबर जैन धर्मानुयायी थे। जैनियोंमें प्रसिद्ध ४ संघ हैं उनमेंसे यह देवसंघके आचार्य थे। इनके गुरुका नाम नेमदेव और दादागुरुका नाम यशोदेव था। इन्होंने विविध विषयोंके अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है, परन्तु आजकल दोही ग्रन्थ उपलब्ध हैं १ नीतिवाक्यामृत २ यशस्तिलकचंपू। इनके जन्म दिवस वा जन्म स्थानका तो पता नहीं लगता है, परन्तु यशतिस्लक चंपूसे सिर्फ इतना पता लगता है कि इस ग्रंथको आचार्यने चैत्र सुदी १३ शक संवत् ८८१ (विक्रम संवत् १०१६) में गंगधारा नामकी नगरी में समाप्त किया था। गंगधारा नगरी संभवतः धारवाड़के आस पास कहीं थी। इनसे मालूम पड़ता है कि वह विक्रमकी नवमी शताब्दीके तृतीय पादमें मौजूद थे और दक्षिणात्य थे।

करना चाहिये कि मैं कौन हूं, मेरा स्थान कौन है, मेरा कर्तव्य क्या है?

रात्रिमें भरपूर (जवानोंको ६ घंटे और बच्चोंको ८ घंटे वा इससे भी अधिक) निद्राका सेवन करना चाहिये; क्योंकि भरपूर नींद लेनेसे मन प्रसन्न हो जाता है, शारीरिक थकावट दूर होकर शरीरमें कान्ति और बलकी वृद्धि होती है। इसलिए जो बात दूसरे समय समझमें नहीं आती है वही इस समय बुद्धिमें अत्यंत निर्मलता होनेकी वजहसे बहुत जल्दी समझमें आ जाती है और चिरकालके लिए हृदयमें स्थान पा जाती है। प्रातःकाल और सायंकाल नहीं सोना चाहिये, जो पुरुष इन समयोंमें सोते हैं वह धर्माचरणके समयका उल्लंघन करते हैं।

प्रातःकाल शय्यासे उठकर अपना मुख दर्पण वा घृतमें देखना चाहिये। इससे मंगल होता है और अमंगलोंका नाश होता है।

सवेरे नपुंसक, लूले, लँगड़े, अंधे, काने, आदि पुरुषोंको नहीं देखना चाहिये।

सुबह, दोपहर और शामको मुख और पैरोंको विशुद्ध जलसे धोना चाहिये।

प्रतिदिन दांतुन अवश्य करनी चाहिये, जो नित्य दांतुन नहीं करते हैं उनके मुखसे हमेशा दुर्गंध आया करती है और अनेक प्रकारके मुख रोग पैदा होते हैं।

शरीर-हितकर (स्वास्थ्यवर्धक) कार्योंको सबसे पहिले संपन्न करे, दूसरे कामोंमें फँसकर भुला न दे।

व्यायाम, स्नान, भोजन निद्रा मनोविनोद, और अधोवात, मूत्र, पुरीष आदिके वेगोंके समयोंका उल्लघन नहीं करना चाहिये; किन्तु जिस कार्यका जो समय हो उसे उसी समयमें करना चाहिये।

शुक्र, मल (पाखाना) मूत्र और अधोवातके वेगको रोकनेसे पथरी, भगंदर, शिरःशूल, गुल्म, और बवासीरकी बीमारियाँ पैदा होती हैं।

शौच क्रियाओंका अथसे लगा कर इति तक पालन करे; शौच क्रियाओंकी इति (समाप्ति) चंदन लेप वा कुंकुम आदिका तिलक लगाने तक होती है।

बाहिरसे आने पर घरमें प्रवेश करनेसे पहिले स्नान, हाथ पैर धोना आदि यथायोग्य शुद्धि अवश्य करे। इस सुरीतिका प्राचीन कालमें बहुत अधिक प्रचार था, परन्तु धीरे धीरे सुकुमार विलासियोंके प्रमादसे यह लुप्त होती गयी; आज कल इस शुद्धि पर केवल रसोई घरमें प्रवेश करने, भोजन करने वा मिट्टीके पात्रसे जल भरने आदिके समय सो भी पाश्चिमात्य सभ्यतासे बचे हुए उच्च-जातीय ग्रामीणोंमें ध्यान दिया जाता है। भारतवर्षकी बहुत सी स्वास्थ्यवर्धक क्रियाएँ धार्मिक वातावरणमें रखी गयी थीं, कारण यह था कि वह समय धर्मयुग था। धर्मके नामसे जो कार्य प्रचलित हो जाता था जनता उसको पत्थरकी लकीर समझती थी और उसको पालन करनेके लिए प्रत्येक समाज की तरफसे प्रेरणा होती थी। उनके न पालन करने पर दंडकी व्यवस्था थी। आजकल सर्वत्र बंधन शिथिल हैं; इसलिए नूतन शिक्षित समाज धार्मिक कृत्योंको व्यर्थका बखेड़ा समझ कर तिलाञ्जलि देनी जाती है। ऐसे समयमें भी जब कभी कोई पाश्चात्य वैज्ञानिक या चिकित्सक किसी धार्मिक सदाचारको स्वास्थ्य रक्षाके लिए परमोपयोगी बतला देता है तब उसका पालन अनाप शनाप भी होने लगता है, जिससे कभी कभी लाभके बदले हानि उठाते हैं। यह अन्ध विश्वास नहीं तो और क्या है? भारतीय वैज्ञानिकोंने तो दो हजार वर्ष पहिलेसे ही ऐसे नियम बना दिये थे कि जिनका पालन करनेसे स्वास्थ्य की पूर्ण रूप से रक्षा हो सकती है; जैसे कि ऊपर कहा हुआ नियम प्राचीन तथा अर्वाचीन प्रायः सभी आयुर्वेदीय, वा राजनीति विषयक विभिन्न ग्रन्थोंमें भी मिलता है; इस उपदेशसे पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका उपदेश भी बहुत अधिक समता रखता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने रोग कीटाणुओंकी उपस्थिति प्रायः जनसंकुल स्थानोंमें सर्वत्र मानी है, अतः उनका उपदेश है कि इन रोग कीटाणुओंसे बचनेके लिए ऐसे स्थानोंमें और जहांपर कोई संक्रामक रोग (छूतकी बीमारी) प्लेग हैजा आदि हो; जहांपर सड़ी गली चीज़ोंके ढेर पड़े हों ऐसे स्थानोंमें कभी नहीं जाना चाहिये । यदि जानेकी अत्यन्त आवश्यकता ही आपड़े तो कृमिनाशक पदार्थोंको पासमें अवश्य रखना चाहिये और घर-में प्रवेश करनेके पहिले साबुन लगाकर स्नान आदिसे शुद्धि अवश्य करनी चाहिये । जिन लोगोंने प्लेग हैजा आदि होने पर स्थानीय सरकार द्वारा प्रचारित इन रोगोंसे बचनेके उपाय पढ़े होंगे उनको भली भाँति यह विदित होगया होगा कि इन रोगोंके प्रसारको रोकनेके लिए अनेक कड़ी व्यवस्थायें भी की जाती हैं; जैसे प्लेग जहां पर हो वहांके निवासी रेलोंमें वा दूसरे ग्रामोंमें प्रवेश नहीं पा सकते, जब तक १० दिन या इससे कुछ कम ज्यादा दिन तक मैदानमें न निवास कर लें । यह भी बड़ी प्रसन्नता-की बात है कि आयुर्वेदाचार्योंकी आज्ञासे न सही पाश्चात्य वैज्ञानिकोंकी ही कृपासे भारतवासी अपने प्राचीन सत्यमार्गों पर चलने लगें ।

प्रातःकाल कसरत करनेसे जल्दी बुढ़ापा नहीं आता, शरीरमें बढ़ी हुई अनावश्यक चर्बी और अनेक बीमारियोंका नाश होता है, पाचन शक्ति बढ़ती है, शरीरमें नव जीवनका संचार होता है; अतएव रसायन है । परन्तु जो दुर्बल, वृद्ध और रूखा भोजन करने वालेहैं, जिनको अन्न हजम नहीं होता, और जिन्हें वातका रोग है उनको व्यायाम हलाहल विषके समान है, अतएव उचित है कि यह कसरत न करें ।

दंड, बैठक, जिम्नास्टिक, कुश्ती आदको ही व्यायाम नहीं कहते; किन्तु जिस क्रियासे शरीरमें परिश्रम हो उसीको कसरत कहते हैं ।

शस्त्र संचालन और घोड़े आदि पर सवारी करके व्यायामको फलवती बनाना चाहिये ।

जब शरीरमें विशेष करके ललाट, नासिका बगल और जोड़ोंमें पसीना आने लगे तब सम-झना चाहिये कि पूरी कसरत हो चुकी है । इसलिए पसीना आने तक ही व्यायाम करना चाहिये ।

अपने शरीरमें जैसी ताकत हो उसीके अनु-सार व्यायाम करना चाहिये, यदि बलाबलका विचार न करके व्यायाम की जायगी तो आपदा-ओंका सामना करना पड़ेगा । आचार्य वाग्भटने लिखा है—

'तृष्णाक्षयः प्रतमको रक्तपित्तं श्रमः क्लमः ।
अतिव्यायामतः कासो ज्वर श्छर्दिश्च जायते ॥

बलाबलका विचार न करके अधिक व्यायाम करनेसे प्यास, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, थकावट, ग्लानि, खांसी, ज्वर, वमन आदि अनेक रोग पैदा होते हैं ।

जो पुरुष शारीरिक परिश्रम बिलकुल ही नहीं करते उनमें उत्साह, शारीरक बल और पाचन शक्तिकी वृद्धि कैसे हो सकती है ।

निद्रा

आत्मा, मन इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वासकी क्रियाओंकी सूक्ष्म अवस्था (शिथिलता) को निद्रा कहते हैं ।

जिस मनुष्यको जितने समय तक सोना (शयन करना) हितकर है उतने समय तक सोनेसे खाये हुए अन्नका भली भाँति परिपाक होता है और इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हैं ।

स्नान

स्नान प्रतिदिन करना चाहिये । हर दूसरे दिन उबटना करना चाहिये । हर तीसरे दिन आयुको बढ़ानेवाली क्रियायें करनी चाहियें; हर चौथे दिन प्रत्यायुष्यकर्म फेनिल द्रव्य साबुन आदि लगाकर स्नान करना आदि करना चाहिये ।

अच्छी तरह शरीरको मलकर स्नान करनेसे थकावट, खुजली, पसीना, और आलस्य दूर हो जाता है । यही स्नानका फल है । स्नान करनेके अनंतर एक ऐसी निर्बलता और शान्ति प्राप्त होती

है, जो ध्यान लगानेमें अत्यंत सहायक होती है। स्नान करनेके बाद यदि परमात्माकी उपासना नहींकी तो समझना चाहिये कि वह स्नान जलचरके स्नान जैसा है अर्थात् वृथा है।

स्नानका समय

जिस समय भूख और प्यास मालूम पड़े उसी समय तैलको मालिश करके स्नान करना चाहिये।

धूपमें चलने फिरनेसे, अग्निके सामने कोई कार्य करनेसे, अथवा व्यायाम करनेसे शरीरमें एक तरहकी गर्मी आ जाती है; ऐसी गर्मीमें ही यदि स्नान कर लिया जाय तो फौरन सिरमें दर्द हो जाता है और दृष्टि मंद पड़ जाती है; अतः गर्मीको शान्त करके ही स्नान करना चाहिये।

भोजन

जिस समय भूख लगे वही भोजन करनेका समय है; बिना भूखके खानेसे अमृत भी विष हो जाता है। भोजन करनेसे पहिले सेंधे नमकके साथ अद्रक खाना चाहिये। इनके खानेसे गत दिवसके न पचे हुए अन्नका पाचन हो जाता है और पाचनशक्ति भी बहुत तेज़ हो जाती है।

जब तक भोजन नहीं करे तब तक किसी भी द्रव (चा, पानी, दूध आदि) को न पिये; क्योंकि ऐसा करनेसे पाचनशक्ति मंद पड़ जाती है।

पेया (पतली खिचड़ी) के खानेसे बहुत बढ़ी हुई थकावट और प्यास बहुत जल्दी शान्त होती है।

भोजनमें घृतकी मात्रा यथेष्ट अवश्य होनी चाहिये, क्योंकि जिस भोजनमें उचित मात्रामें घृत पड़ा है वह भोजन पाचन शक्ति और नेत्रोंकी ज्योतिको बढ़ाता है।

एकही बारमें अधिक जल पीनेसे पाचनशक्ति मंद पड़ जाती है। आयुर्वेदमें भी लिखा है—

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वन्हिविवर्धनाय मुहुर्मुहु वारिपिवेदभूरि ॥

एक ही बारमें बहुत अधिक पानी पीनेसे अन्नका अच्छी तरहसे परिपाक नहीं होता है और बिलकुल ही नहीं पीनेसे या बहुत ही कम पीनेसे भी अन्न नहीं पचता है; इसलिए मनुष्यको उचित है कि पाचन शक्तिको बढ़ानेके लिए अनेक बार थोड़ा थोड़ा जल पीवे।

जब पाचन शक्ति मंद पड़ जाती है; तब हलके से हलका भोजन भी नहीं पच सकता है।

जो थोड़ा खाता है वही बहुत खाता है।

बहुत अधिक; हज़म होते समय पेटमें अफरा पैदा करनेवाला; पेटका दर्द आदि बीमारियोंको पैदा करने वाला; आपसमें जिसके रस, वीर्य; विपाक विरुद्ध हों; जिसकी अच्छी तरह परीक्षा न करली हो; जो अच्छी तरह से न पकाया गया हो; जिसका रस बिगड़ गया हो ऐसे भोजनको कभी नहीं खाना चाहिये। असमयमें भोजन नहीं करना चाहिये।

जो मांसाहारी हैं, वैरी हैं, भूखे हैं, अत्यन्त क्रूर हैं (बिल्ली, कुत्ता आदि) ऐसे प्राणियोंको भोजनके समयमें सामने या पास नहीं रखना चाहिये, क्योंकि इन प्राणियोंके भाव अत्यन्त नीच और अनुदार होते हैं; अतः इनके मानसिक भावोंका परिणाम भोजन करनेवालोंके ऊपर भी वैसा ही होता है।

सायंकाल और प्रातःकाल उतना ही भोजन करना चाहिये जितना कि अग्निमांद्य न करे। कोई कोई भोजनभट्ट ऐसा डाटकर भोजन करते हैं जो १ दिन की बात ही कौन कहे दो या तीन दिनमें भी भली भाँति हज़म नहीं होने पाता है; ऐसे भोजन से अजीर्ण, विशूचिका, पतले दस्तोंका होना, शरीर दुर्बल रहना आदि अनेक बीमारियाँ घेरे रहती हैं।

भोजनकी मात्राकी कोई निश्चित तौल नहीं है कि अमुक आदमीको ५॥ या सेर भर अन्नादि खाना चाहिये और न एक प्रकारका वा एक वज़न का भोजन सभीके लिए आवश्यक हो सकता है।

किन्तु जिसको जितनी भूख है उतना ही उसका आहारका परिमाण (तौल) समझना चाहिये।

पाचनशक्ति और इच्छा इन दोनोंके अधीन भोजनकी मात्रा (तौल) है। कोई कोई मनुष्य पचा तो साबूदाना भी नहीं सकते, परन्तु किसी के यहां निमंत्रित होने पर लड्डू और पूड़ी जैसी गरिष्ट वस्तुएँ सहजमें ही उदरस्थ कर लेते हैं; वह उनकी मात्रा नहीं है। इसी तरह से कई मनुष्य इच्छा न होने पर भी मित्र या संबंधियोंके आग्रहसे बहुत अधिक भोजन कर बैठते हैं, यह भी उनके भोजन की मात्रा नहीं है। किन्तु मात्रा वही है जो पाचन शक्ति और इच्छाके अनुसार खाया जा सके।

बहुत अधिक खानेवाला पुरुष शरीर और पाचनशक्तिका नाश करता है।

कोई यह समझकर कि अधिक खानेसे अनेक रोग पैदा हो जाते हैं बहुत ही थोड़ा खाने लगे तो वह भी उलटे रास्ते पर है, क्योंकि यदि पाचन शक्ति बढ़ी हुई है और हलके निस्सार पदार्थ खाने को मिले ऐसी हालतमें उस पाचन शक्तिको पूरा दाह्य (पचाने लायक) ईंधन (भोजन) न मिलने से शरीरकी धातुओंका पाक करती है, जिससे शरीरके बलका नाश होता है।

जो बहुत ज्यादा भोजन करते हैं उनके आहार-का परिपाक बड़ी मुश्किलसे होता है।

थके हुए आदमीको उचित है कि जब तक थकावट दूर न हो भोजन न करे और न पानी पिये; ऐसा करनेसे बुखार व वमन (कय) होने लगता है।

जिस समय पेशाब पाखाने आनेकी इच्छा हो; चित्त खिन्न हो, बहुत अधिक प्यास लगी हो भोजन न करे अर्थात् इन सब बाधाओंको दूर करके भोजन करे।

भोजन करनेके बाद शीघ्र ही व्यायाम और मैथुन करनेसे भोजनका परिपाक अच्छी तरहसे नहीं होता है; कभी कभी उदरशूल और वमन भी होने लगता है।

जन्मसे लेकर जो चीज़ खाने पीने या लगाने-में हमेशा इस्तेमाल करनेसे अनुकूल पड़ जाती है वह विष भी क्यों न हो पथ्य है।

जो वस्तु हितकर है परन्तु प्रकृतिके प्रतिकूल है उसका सेवन करे और जो वस्तु अन्तमें दुख देनेवाली अहित है वह तत्कालमें प्रकृतिके अनुकूल सुख कर भी हो तो भी उसका सेवन न करे।

बलवान को सभी चीज़ें (बुरी भली) पथ्य हैं, ऐसा समझ कर बलवानको हलाहल नहीं खाना चाहिये। क्योंकि जो अत्यन्त निपुण और अगदतंत्रके जानकार विष वैद्य हैं उनका भी किसी समय विषसे मरण हो जाता है अर्थात् विष उनका मुलाहजा नहीं करता।

यह दृष्टान्त पूर्वोक्त उपदेशके समर्थन करने-के लिए दिया है, जिस तरहसे विषके खाने और उसका प्रतिरोध न करनेसे विष वैद्य मर जाता है उसी तरह अंड बंड पदार्थोंके भक्षण करनेसे आदमीकी भी मौत हो जाती है।

अतिथि और अपने आश्रितों (जिनका भरण पोषण करना अपना कर्तव्य है) को आहार प्रदान करनेके बाद आहार करना चाहिये।

चित्तको एकाग्र करके देव, गुरु, और धर्मकी उपासना करनी चाहिये।

*स्वतंत्रता और स्वाधीनता मानव जीवनके लिए परम रसायन हैं; जिनके पास यह नहीं हैं वह जीते हुए भी मृतकोंके समान हैं।

आचार्य वादीभ सिंहजीने लिखा है—

जीवितात्तु पराधीनाज्जीवानां मरणं वरम्।

पराधीन जीवनसे तो मरना ही श्रेष्ठ है।

जंगलोंमें स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करनेवाले गजराज हमेशा नीरोग रहते हैं।

हमेशा सुखके लिए सेवन करने योग्य दो ही वस्तु हैं १ रसीला, मनोहर स्वच्छन्द भाषण, और २ तांबूल भक्षण (पान चबाना)।

बहुत अधिक समय तक उकडू नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि उकडू बैठनेसे रसको बहाने वाली नसें जड़ हो जाती हैं अर्थात् उनमें भली भाँति रसका संचार नहीं होने पाता।

हमेशा बैठे ही नहीं रहना चाहिये। जो हमेशा बैठे रहते हैं वह आलसी हो जाते हैं, हाथ पैर आदि अंग शिथिल पड़ जाते हैं, तोंद बढ़ जाती है, विचार शक्ति और संभाषण शक्ति भी कुंठित हो जाती है।

शारीरक वा मानसिक परिश्रम मात्रा (हद) से अधिक नहीं करना चाहिये। क्योंकि अधिक परिश्रम करनेसे अकालमें ही बुढ़ापा आ जाता है।

प्रत्येक कार्यके प्रारम्भ करनेके पहिले परमात्माका स्मरण अवश्य करना चाहिये।

जो नास्तिक हैं, देव, गुरु, धर्मको सच्चे हृदय से नहीं मानते हैं ऐसे पुरुषोंके ऊपर कोई भी विश्वास नहीं करता है।

जिसके क्लेश, कर्मोंका फल, और इच्छायें नहीं हैं वही ईश्वर है। अर्हत, अज, अनन्त, शंभु, बुद्ध, तमोऽन्तक (अज्ञान अंधकारका नाश करनेवाला), यह सब विशेष नाम उसी ईश्वरके हैं।

जिस तरह पूर्ण सुख-स्वाधीनता मिले उसी तरह कार्योंके लिए दिन रात्रिका विभाग कर लेना चाहिये।

कालका विभाग न करके बे मौके कार्योंके करनेसे किसी भी कार्यमें सिद्धि नहीं मिल सकती, प्रत्युत मनुष्य अनेक आपदाओंके जालमें फँस जाता है।

बहुत ज़रूरी काममें समयकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

अवश्य करने योग्य कार्यमें मौकेको हाथसे न खो देना चाहिये।

अपनी रक्षामें किसी समय भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

जो आदर सन्मानका भाजन नहीं है और जो अधिकारी नहीं है उसको राजसभामें प्रवेश नहीं करना चाहिये।

पूज्य पुरुषोंका उठ करके आदर, सत्कार वा अभिवादन करना चाहिये।

देव, गुरु, और धर्म संबन्धी जो कार्य हों उनको अपने हाथोंसे करना चाहिये अर्थात् किसीके भरोसे पर नहीं छोड़ना चाहिये।

किसी प्राणीको कष्ट पहुँचाकर, या बध करके काम क्रीडा न करे।

पर स्त्री माता भी क्यों न हो उसके साथ एकान्त स्थानमें निवास न करे।

क्रोधका बड़ा भारी कारण उपस्थित होनेपर भी माननीय पुरुषोंका उल्लंघन वा तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

जब तक किसी आत्मीय विश्वस्त पुरुषके द्वारा शत्रुके स्थानकी परीक्षा (जाँच) न कर लेवे तब तक उस स्थानमें प्रवेश न करे।

अनजानी सवारी (घोड़े आदि) पर न बैठे।

जब तक किसी तीर्थ स्थान वा संघ (मत) के बारेमें आत्मीय पुरुषों द्वारा परीक्षा (जाँच) न करली जाय तब तक उस तीर्थ स्थान वा संघमें प्रवेश न करे।

असंभ्रान्त नीतिज्ञोंने जिस मार्ग पर चलनेका उपदेश दिया है उसी मार्ग पर चलना चाहिये।

विषको नाश करनेवाली औषधियों, और मणियोंको हमेशा धारण करना चाहिये। आचार्य वाग्भटने भी लिखा है 'धारयेत्सततं रत्न-सिद्ध-मंत्र-महौषधीः,' उत्तम शुभ मणियों, सिद्ध मंत्रों और महौषधियोंको हमेशा धारण करना चाहिये।

सलाहकार, चिकित्सक, और ज्योतिषियोंको हमेशा अपने पास रखे।

भोग्य (अन्नादि) और उपभोग्य (वस्त्रादि) वस्तुएँ सविष हैं अथवा निर्विष इस बातकी परीक्षा अग्नि और इनको बनानेवाले देनेवाले, वा रखनेवाले पुरुषोंकी नेत्रोंकी चेष्टा, वार्तालाप, शरीर

तथा मुखकी विकृति और प्रश्न आदिसे करे। अचार्य वाग्भटने भी लिखा है—

विशदः श्यावशुष्कास्यो विलक्षो वीक्षते दिशः।
स्वेद वेपथुमांत्रस्तो भीतः स्खलति जृम्भते ॥१२॥

अष्टांगहृदय सूत्रस्थान अ० ७।

भोजन आदिमें विषको मिलाकर खिलानेवाले पुरुषका मुख सूख जाता है और काला पड़ जाता है, लज्जित होकर चारों तरफ देखता है; मेरे दोष-का कोई समझ तो नहीं गया ऐसी शंकासे शरीरमें पसीना और कपकपी आ जाती है, उद्विग्न चित्त और भयभीत होता है, चलते समय पद पद पर लड़खड़ाता है और जँभाई लेता है।

अमृत वायुके बहने (चन्द्र स्वर, वामस्वर या नाकके बायें नथनेकी हवाके निकलने) पर ही हमेशा कार्यों को करे।

दाहिने नथनेसे जब श्वास आवे भोजन मैथुन और युद्ध करनेकी इच्छा करे।

जा दूसरोंको अपने समान बनाता है वह किसीका वैरी या किसीसे द्वेष करने लायक नहीं होता है।

मनका प्रसन्न होना, परवारकी अनुकूलता, शुभ शकुन, और अनुकूल शुभ वायुका बहना, यह आगामी होनेवाली कार्यका सिद्धिके सूचक लक्षण हैं।

भयानक जङ्गल वा पहाड़ोंमें अकेला नहीं घूमे।

मन, वचन और कर्मको अपने वशमें रखना चाहिये।

आकाशमें चन्द्र आदि नक्षत्रोंके दीखनेसे पहिले ही संध्योपासन करे।

जहां तक हो सके दिनमें संभोग नहीं करे। यदि इन्द्रियोंके परावश होनेकी वजहसे दिनमें चक्रवाककी तरह संभोग करे तो रात्रिमें स्निग्ध दूध आदि पदार्थोंका सेवन अवश्य करे।

चकोरकी तरह रात्रिमें संभोग करनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष दिनमें स्निग्ध पदार्थोंका सेवन अवश्य करे।

कबूतरकी तरह अहर्निश विषय करनेवाले पुरुषको उचित है कि वह हमेशा वाजीकरण—वृष्य—योगोंका सेवन करे आचार्य वाग्भटने भी लिखा है—

वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान् ॥ १ ॥
अल्प सत्वस्य तु क्लेशैर्बाध्यमानस्य रागिणः।
शरीर क्षय रक्षार्थं वाजीकरणमुच्यते ॥ ५ ॥

उत्तर तन्त्र अध्याय ४०॥

विषयी पुरुषको हमेशा वाजीकरण (पौष्टिक—वीर्य वर्धक) द्रव्योंका सेवन करते रहना चाहिये।

जिनमें बल पौरुष कम है, परन्तु कामी हैं हमेशा विषय सेवनसे उत्पन्न हुए रोग जिनका पीछा नहीं छोड़ते हैं ऐसे पुरुषोंके शरीरकी क्षय से रक्षा करनेके लिए ही वाजीकरण चिकित्सा कही जाती है।

गैकरी (चिरकालकी ब्यानी) गायके दूधमें बनायी गयी उड़दकी खीर सबसे श्रेष्ठ वाजीकरण योग है।

जो स्त्री कामिनी नहीं हो उससे संभोग नहीं करे। समान समायोगसे बढ़ कर स्त्री पुरुषोंको वशमें करनेका दूसरा श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

समान प्रकृति, समान उपदेश और काम क्रीडामें एक सी स्वाभाविक चतुराई, यह तीनों ही समान समायोग होनेमें कारण हैं।

जिसको पाखानेका वेग आया हो, भूखा प्यासा हो वा जिनकी आँखें दुखने आयी हों—ऐसे पुरुषों को विषय संभोग नहीं करना चाहिये। यदि ऐसी दशामें विषय भोग करेगा तो शरीरका जीवन भूत ओजका नाश हो जायगा। प्रथम तो इन रोगि-योंके दूषित वीर्यसे गर्भाधान होता ही नहीं है यदि कदाचित् रह भी जाय तो बाल बच्चा अत्यंत दुर्बल, रोगी, और अल्पायु होगा।

तीनों संध्याओंमें, दिनमें, जलमें, और देवालय में मैथुन नहीं करे।

प्रत्येक पर्वमें, पर्वकी संधिमें, और क्षीण तिथि में कुलीन स्त्रीके साथ संयोग नहीं करे।

जिस स्त्रीके साथ पाणि ग्रहण हुआ है उसी स्त्रीके साथ संभोग करे, उससे भिन्न दूसरी स्त्रियों पर निगाह भी न डाले।

जो कुल, विद्या, धन, अवस्था और आम्नायके अनुकूल वेष या आचार विचार नहीं रखता है ऐसे किस पुरुषकी हँसी नहीं होती है ?

द्वारपालों (पहिरेदारों) को उचित है कि परीक्षा और परिशोधके बिना किसी चीज़को न रा जग्रहके भीतर जाने दें और न बाहर आने दें।

ऐसी ऐतिहासिक कथा प्रसिद्ध है कि औरतके वेषको धारण करनेवाले कुन्तल देशके महाराजाके गुप्तचरने कानके पास गुप्त रूपसे छिपाई हुई तलवारसे पल्लवक राजको और हयपतिने मेंढ़ेके सींगमें भरे हुए विषके द्वारा कुशस्थलेश्वरको मार डाला था।

हर एक स्थानमें अविश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे किसी जगह भी कोई काम नहीं हो सकता।

सिगरेटमें अद्भुत शक्ति

गौरीशंकरकी खोज करनेवाली तृतीय मंडलीने तिब्बतके लिए प्रस्थान कर दिया है। वहां पर पड़ाव डाल कर यह लोग हिमालय पर्वतकी आकाश चुम्बी शिखाका हाल जाननेके लिए चढ़ाईका काम शुरू करेंगे।

पिछली मण्डलीने बहुत कुछ सफलता प्राप्त की थी। परन्तु सिगरेट और ओषजन चुक जानेके कारण इन लोगोंको बीचसे ही लौट आना पड़ा, और इस वर्षकी वसन्त ऋतु तक ठहरना पड़ा। अब नये सदस्यों और नई सामग्रीके साथ फिर कार्य आरम्भ हो गया है।

यह पहलेसे निश्चय हो चुका था कि इस यात्राको शीत ऋतुके अन्तमें प्रारम्भ करना अच्छा होगा; क्योंकि उस समय अधिक ठंड न होनेके कारण यात्री अच्छी तरहसे तिब्बत देशमें प्रवेश कर सकेंगे और साथ ही मुख्य भाण्डारमें हर प्रकारकी सामग्री एकत्रित कर लेंगे। इस टोलीका प्रत्येक सभासद पर्वत पर चढ़नेकी अच्छी योग्यता रखता है। इस यात्राके लिए प्रत्येक वस्तु जो सफलताके लिए आवश्यक है इकट्ठी की गई है। शैलारोहियोंके बड़े शत्रु बरफ और ठंडी हवाके झोंके हैं, जो कि हर समय रात दिन चला करते हैं।

मई मासके पहिले चढ़ाई आरम्भ करना असम्भव प्रतीत होता है; परन्तु तब तक पूरी पूरी तैयारी कर ली जायगी। २०००० या २६००० फुटकी ऊंचाई तक कई स्थानों पर भण्डार रखने पड़ेंगे। इन भण्डारोंका नीचेके भण्डारोंसे जहांसे तिब्बतके खच्चड़ और कुली सामग्री ऊपर पहुंचायेंगे अच्छे मार्गोंसे सम्बन्ध रहेगा। सबसे ऊंचे स्थान पर भी दो गोदाम रखे जायंगे जहां कि ओषजन और तम्बाकू जमा रहेगी। यही स्थान सुस्ताने और आबहवाके सहन करनेका अभ्यास करनेके लिए कुछ दिन ठहरनेके काम आयेंगे।

पिछली मण्डलीके सदस्य ओषजन और सिगरेटका सेवन करके २७३०० फुट तककी ऊंचाई पर पहुँचे थे। उन लोगोंका कथन है कि जब मनुष्यको आबोहवा सहनेका अभ्यास हो जाता है तो वह बहुत ऊंचाई पर अच्छी तरह काम कर सकता है। २३००० फुटकी ऊंचाई तकका जलवायु मनुष्य सहन कर सकता है; प्रत्येक मनुष्यमें भिन्न भिन्न प्रकारके जल वायु सहन करनेकी सामर्थ्य होती है। कुछ मनुष्योंमें शीघ्र ही सहनेकी शक्ति आजाती है और कुछमें बहुत धीरे धीरे।

पिछली चढ़ाईकी सफलताका श्रेय धूम्रपानको था। उक्त यात्रियोंका कहना था कि यदि सिगरेट २१३०० फुटकी उँचाई तक न चुक गई होती तो हम हिमालयकी चोटी पर चढ़ गये होते। सिगरेटके पान करनेसे थके हुए मनुष्य पर बहुत आश्चर्यमय प्रभाव होता है, जिसका कि कप्तान जी,

आई. फिचने अच्छा वर्णन किया है। उनका कथन है—"जब मैं, कप्तान ब्रूस और कोरपोरल तेजवीर २५००० फुटकी ऊंचाई पर पहुंचे तब हम ने तीसरे पहरको २½ बजे अपना पड़ाव डाला। उस समयेसे दूसरे दिन शामके ७ बजे तक अर्थात् २८ घन्टे तक हमने ओषजनका सेवन नहीं किया। मेरे पास सौभाग्य वश ३० सिगरेट थीं। हमारे हाथ पाव ठंड और ठंडी वायुके कारण मुर्दोंकेसे निर्जीव हो गये थे। मुझे यह मालूम हुआ कि जब तक मैं सांस अधिक सावधानता और यत्न से नहीं लेता था—अर्थात् साधारण धर्मके प्रतिकूल श्वासोच्छ्वास कर्म ऐच्छिक रीतिसे नहीं करता था—मेरा दम घुटने लगता था। इस कष्टके निवारण करनेका उपाय यही था कि फेफड़ोंको असाधारण वेगसे चलाया जाय। शरीरको पर्याप्त ओषजन पहुँचानेका यह एक सरल उपाय तो था पर इसमें एक कठिनाई थी। शरीरमें अधिक हवा पहुंचनेसे कर्बन द्विओषिद् अधिकांशमें निकल आती थी। इसी कारण रुधिरमें उसका अनुपातिक दबाव कम हो जाता था। इस कमीके कारण उस वात-केन्द्रके कार्यमें शिथिलता आजाती थी, जो फुप् फुसकी गतिका नियामक है। इस भांति इस उपायसे हित और अनहित दोनों होते थे।

यह सोचकर कि भूत कालमें बिल्कुल विभिन्न दशामें धूम्रपानने अप्रिय बातोंसे ध्यान हटा लिया था, मैंने तीसरे पहर एक सिगरेट पी। मेरे साथियोंने भी जिनको कि सांस लेनेमें कठिनाई प्रतीत होती थी सिगरेट पी। दो तीन घूंट पीनेके बाद हमारा ध्यान सांसकी ओरसे हटकर दूसरी ओर आकर्षित हो गया, अतः यह स्पष्ट है कि धूम्रपानमें एक ऐसी वस्तु है जो कर्बन द्विओषिद (जिसकी मात्रा रुधिरमें कम हो गयी थी) के स्थान पर उत्तेजकका काम करती है और जिससे श्वास कर्म सुगम हो जाता है। एक सिगरेटका असर कोई तीन घण्टे तक रहता था, पीते पीते सब सिग्रेट दूसरे दिन पांच बजे तक खतम हो गयीं। अतएव हमको सिगरेटके स्थान पर ओषजन पीना पड़ा। इसके पहिले हममेंसे प्रत्येक मनुष्य दो लीटर ओषजन पीता था, परन्तु अब आधा लीटर ही पीकर रहना पड़ा। इससे हम लोगोंको बहुत सुख मिला और नींद भी खूब आई। हम लोग सिग्रेटोंके जादू भरे प्रभावको देख कर अचम्भित हो गये।

सिग्रेटका अद्भुत उत्तेजक प्रभाव शैलाटियोंपर देख कर—जिससे पहलेसे ही मल्लाह और वैद्य परिचित थे—वैज्ञानिकों ने इसके विचित्र और लाभदायक धुआंका अनुसन्धान करना प्रारम्भ कर दिया। इसका पूरा विश्लेषण करना बहुत कठिन कार्य है, जिसे किसीने अब तक नहीं किया है। हालके अन्वेषणोंसे वैज्ञानिकोंको विश्वास हो चला है कि सिग्रेटके जादू भरे प्रभावका कारण सम्भवतः तम्बाकूका एक घटक पिरिडीन नामक है।

इस वर्षकी अनुसन्धान करनेवाली मण्डली ने सिगरेट और ओषजन पर्याप्त परिमाणमें ले ली है और संसारके सबसे बड़े शिखर पर चढ़ जानेकी प्रतिज्ञा की है, सब लोगोंकी दृष्टि उन्हीं के ऊपर लगी हुई है।

"विज्ञानी"

वायु मण्डलके रहस्य

एब्बे मोरियो (Abbe moreux) एक बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। उन्होंने हालमें ही एक लेख इस विषयमें लिखा है। उनका कथन है कि वायु-मण्डलका विस्तार पृथ्वीसे ५६० मील तक है। यह अनुमान पूर्वके अनुमानोंसे बहुत ज्यादा है। इसके सत्यासत्यका निर्णय कालान्तरमें होगा।

अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्त तक कोई भी विद्वान इस वायुमंडलके गूढ़ रहस्योंको नहीं जान सका

था, लेवासिया ने पहले पहल यह सिद्ध किया था कि वायुमण्डलमें दो पदार्थ ओषजन और नत्रजन हैं।

इसके पश्चात् एक महाशय ने अनुमान किया था कि वायु मंडलका संगठन सर्वत्र एक ही प्रकार का है, केवल उसके घनत्व में भेद होता जाता है। जैसे जैसे हम ऊपरकी तरफ जाते हैं वायुकी विरलता बढ़ती जाती है। वायु मण्डलकी सीमा ३०, ४० मील पर आ जाती है। उस समयसे अबतक तो विज्ञानमें आकाश पातालका अन्तर हो गया है। गुब्बारों पर चढ़ कर वायु सागरके नीचेके भाग की रचनाका पता लगाया गया है। १२००० गज़की ऊंचाई तक तो 'ट्रोपोसफियर' है, जिसमें ओषजन, नत्रजन, कर्बन द्विओषिद और थोड़ीसी असाधारण गैसें हैं अर्थात् आरगन, जेनन, क्रिपटन जो बहुत कम मिलती हैं; इसी मण्डलमें आंधी और बादलों का स्थान है।

हमें अनेक प्रयोगोंसे पता चला है कि इस मंडलमें जो कि बहुत घना है जैसे जैसे हम ऊपर चढ़ते जाते हैं वैसे वैसे तापक्रम कम होता जाता है।

१२००० गजकी ऊंचाई पर तापक्रम—५८.५ डिग्री रहता है और वायुमंडलका दबाव १३००० मीटर की ऊंचाई पर १५६ सहस्रांश मीटर होता है; स्मरण है कि वायुमण्डलका दबाव समुद्रकी सतह पर ७६० स० मी० होता है।

इतनी ऊंचाईके बाद हमें 'स्ट्रेटोसफियर' अर्थात् शान्ति मंडलमें प्रवेश करना पड़ता है, जहांकि आंधीका नाम तक नहीं रहता। इस स्थानसे दबाव कम होने लगता है और तापक्रम बढ़ने लगता है। ३८००० गजकी ऊंचाई पर—५२ डिग्री तापक्रम और ४ मि० मी० दबाव रहता है। यहांसे लेकर ८५००० गज़की ऊंचाई तक नत्रजनका प्राधान्य है, परन्तु इस मंडलके बाहर बिलकुल परिवर्तन हो जाता है। अब हम दूसरे मंडलमें प्रवेश करते हैं जिसमें नितान्त उज्जन ही रहती है। यह मण्डल श्वास लेनेके अयोग्य और जलनेवाला है। इसी कारण इस मण्डलमें उल्काओंमें प्रकाश रहता है। यह बहुत दिनोंसे मालूम है कि उल्का १४०००० गजसे कम ऊंचाई पर नहीं प्रज्वलित होते और नीचे उतर कर नत्रजनवाले मण्डलमें पहुँच कर बुझ जाते हैं।

कुछ वर्ष पहिले यह सब कौतूहलोत्पादक बातें बहुत गहन समझी जाती थीं, परन्तु आज वैज्ञानिकोंने इन सब ग्रन्थियोंको सुलझा दिया है। ज्वालामुखीका फटना ही इन सब बातोंको साबित कर देता है। जब ज्वालामुखी पहाड़ फटता है तब धुआं दूसरे मंडल तक सीधी एक खम्बेकी तरह चली जाती है; परन्तु जब वह १३००० गजकी ऊंचाई तक पहुँचती है तो वह एक बड़े कुकुरमुत्तेके छत्रकी तरह फैल जाती है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत है कि स्ट्रेटोसफियरमें चढ़ती हुई धाराका अस्तित्व नहीं है। तथापि उज्जन हलके होनेके कारण ऊपरकी ओर चढ़ती चली जाती है और फिर वह थोड़ी और ऊंचाई पर जाकर तेजोमय बादलमें परवर्तित हो जाती है। यह घटना १८८५—८७ में क्रेकाटोआ ज्वालामुखीके फटने पर ६०००० गजकी ऊंचाई पर दृष्टिगोचर हुई थी।

इस प्रदेशमें पार्थिव वायुका अन्त है। उज्जन के अत्यन्त हलके होनेके कारण इस ऊंचाई पर सिवाय उसके और कोई गैस नहीं मिल सकती।

तीसरे मण्डलके ऊपर जिसका विस्तार १३०००० गज तक है एक और मण्डल दृष्टिगोचर होता है जोकि तीनों मण्डलोंसे घना है और जिसकी ऊँचाई ओरोरा बोरियोलिसकी ऊँचाईके समान है। १६१०में इसकी ऊँचाई गणना द्वारा ६५०००० गज निकाली गई थी।

हम लोग जानते हैं कि ध्रुवीय ओरोरा विद्युतके प्रभावका फल स्वरूप है और हम इसकी तुलना गेसलर ट्यूबसे कर सकते हैं, जिसमें कि गैसें बहुत ही विरलावस्थामें होती हैं।

—मनव्वर हुसैन

नियामक पिपीलिका

संसारके भयंकर जन्तुओं में पश्चिमी अफ्रीकाकी नियामक पिपीलका भी कम दुखदायी नहीं है। इसके पर तो होते ही नहीं हैं, नर मादाका भी अभी तक कुछ पता नहीं चल सका है। यह जहां कहीं पायी जाती है तहां झुंडकी झुंड होती हैं। इनकी लम्बाई आधे इंचके निकट होती है। इनका रंग गहरा भूरा और काला होता है। इनके रंग रूपमें विशेष अंतर नहीं होता, किन्तु इनका आकार भिन्न भिन्न होता है। कोई छोटी होती है तो कोई बड़ी। सभी जन्तुओंको अधिकृत कर उनसे मनमाना काम ले लेती हैं; अतएव इन्हें 'नियामक' कहते हैं। कोई ऐसा जीवधारी नहीं है जो इनका सामना करनेका साहस कर सके। इनका प्रस्थान करना ही सत्यानाश कर देनेवाला होता है। कोई भी जन्तु इनका रास्ता काटनेका नाम नहीं लेता। यह सत्यानाशी चीटियाँ चालाक बन्दरों पर भी अपना अद्भुत पराक्रम दिखाती हैं। यदि पिपीलिकाओंका आक्रामक दल किसी बन्दर पर धावा कर दे और उसके शरीर पर चढ़ दौड़े तो उसको जान बचा कर भागना अत्यंत कठिन हो जाता है और उसे अपनी जान तकसे हाथ धोना पड़ता है। किसी शूकर गृहमें इनकी पहुंच हुई तो यह सभी छौनोंका सत्यानाश कर डालती हैं। पक्षियोंके निवास स्थानपर भी इनका हमला हो ही जाया करता है। मुर्गीखानोंमें इनका पदार्पण होने पर सभी अंडे बच्चोंकीबरबादी आ पहुँचती है।

मृत जन्तुओंको खानेका इनका विचित्र ढंग है। एक बार एक डाक्टरने परीक्षा करनेके लिए एक मृत पक्षीको इनके सामने रख दिया। पहले वह चुपचाप रहीं। थोड़ी ही देरमें इनको सुगम मार्ग बनाते और गृहद्वार तकके मार्गके प्रति बच्चोंको दूर करते देखा गया। यह परिश्रमी और साहसी होती हैं। इनका पराक्रम देख कर आश्चर्य होता है। अपने शरीरसे तिगुनी, चौगुनी अधिक लंबाईकी वस्तुओंको भी ढो ले जाती हैं। भारी वस्तुओं को मुंह और पैरसे बलपूर्वक पकड़ कर ढकेलती हुई अपने निवास स्थान तक स्वयं निर्मित मार्गसे सहज ही चली जाती हैं। वह मार्ग कभी कभी तो २०० गज तक लम्बे होते हैं। जब कुछ चींटियाँ सड़क बनाने लगीं उस समय कुछ मृत पक्षीके पंख उखाड़नेमें व्यस्त हो रही थीं। उनमें इतनी शक्ति तो थी नहीं कि एक बार ही बल करनेसे पंख उखड़ जाते। अतएव वह धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा पंख नोचती जाती थीं। इसके पश्चात् उन्होंने पक्षीका सम्पूर्ण शरीर टुकड़े टुकड़े कर डाला। इस प्रकार दुर्द्धर्ष पराक्रम की पिपीलकाओंको देख बड़ा आश्चर्य हुआ, पर यह उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी।

बड़े बड़े सर्पादि भी उनके बलि हो जाते हैं। जब कभी सर्पों पर इनका आक्रमण होता है तो पहले उसकी आँखें निकाल लेती हैं, जिससे वह विचारा इधर उधर भाग सकनेमें असमर्थ हो जाता है और एकही स्थान पर छटपटाने लगता है। बड़े बड़े अजगर इनसे बहुत डरते हैं। जब किसी अजगरको कोई शिकार मिल जाता है तो वह मीलों तक घूम कर देख लेता है कि कहीं चींटियोंका दल तो नहीं आ रहा है। यदि कहीं इनका प्रकोप हुआ और तनिक भी इनके आगमनका पता चला तो वह शिकारको उन्हींके लिए छोड़ कर भाग जाता है। जब नियामक पिपीलकाएँ अपना जूठन छोड़ कर दूर चली जाती हैं तो अजगर लौट कर वहाँ आता है और बचे खुचेको निगल कर पाचन समाप्त होने तक वहीं पड़ा रह कर विश्राम किया करता है।

इनका आतंक सभी प्राणियों पर ऐसा छाया हुआ है कि इनके पहुँचने पर गाँवका गाँव खाली हो जाता है और जन समूह किसी जलाशयके बीचमें जा छिपता है; क्योंकि जब तक किसी

विशेष आपत्तिसे वाध्य न हों वे पानीमें पैर नहीं रखतीं।

इनका धावा बड़ा बेढंगा होता है। प्रभाकरकी प्रखर रश्मि पिपीलिकाओंके लिए प्राणघातक होती हैं, अतएव वह दिनमें कहीं पर भी धावा नहीं बोल सकतीं। जब वर्षा ऋतुमें आकाश मेघाच्छन्न हो तभी या भयंकर निशा कालमें ही इनका आक्रमण होता है; सो भी अर्द्ध रात्रिके पश्चात्। यदि करती हैं। उनके मुखसे एक प्रकारका रस निकलता है। मिट्टी, धूलके संमिश्रणसे उसका मसाला सा बना कर मेहराबदार छत बना लेती हैं। इस काममें अपनी बुद्धि मत्ताका भी परिचय दे देती हैं। यदि कोई उभरा हुआ पोला स्थान वा बढ़ी हुई घास मिली तो उससे पूरी सहायता ले लेती हैं। इससे उनके समय और परिश्रमकी बचत हो जाती है। धूपसे बचनेके लिए इस प्रकारका मेहराब तैयार करती हैं।
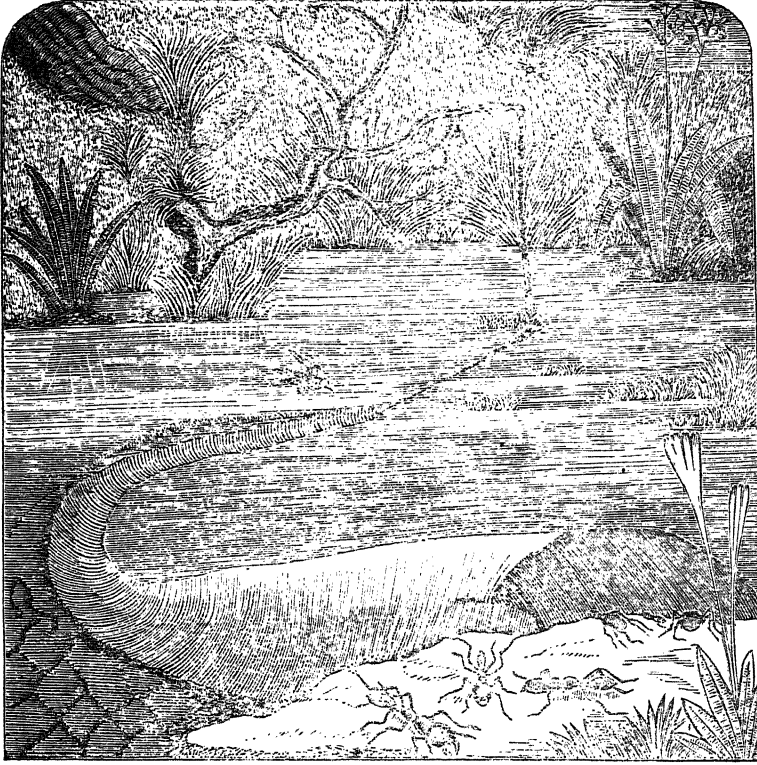
चित्र १ इस चित्रमें चींटियोंका धूप में चलने का ढका हुआ मार्ग सामने ही दिखलाया गया है। नदी पार करने का जीवित चींटियों के शरीरों से बना मार्ग भी दिखलाया गया है।

यदि वर्षा ऋतुमें दिन कहीं जाना हुआ तो उनमेंसे बड़ी बड़ी चीटियाँ एक दूसरेसे मिलकर जीती जागती छत तैयार कर लेती हैं। इस प्रकारके अस्थायी मार्गसे अन्य चींटियां आनन्द पूर्वक यात्रा करती हैं। जब कहीं किसी प्रकारका खटका हुआ वा कोई दुर्घटना हुई सब चींटियोंको सूचना मिल जाती है और छतकी बड़ी बड़ी चीटियाँ अलग होकर छत तोड़ देती हैं और आगे बढ़ कर युद्धमें अग्रसर हो जाती हैं। युद्धके उपरान्त शान्ति स्थापित होनेपर वा किसी प्रकारका खटका न रहने पर फिर पूर्ववत मेहराब तैयार हो जाती हैं। सैनिक शिक्षामें इनकी दक्षता उस समय देखते ही बनती है।

कारण वश प्रभातके पूर्व अपने निवास स्थान पर नहीं पहुँच सकीं और मार्गमें ही प्रातः हो गया तो इनके जानपर आ बनती है; किन्तु अपने कौशल से विचित्र व्योमाच्छादन बना कर अपनी रक्षा

उष्ण कटिबन्ध प्रदेशोंमें प्रायः वर्षाके कारण

आकस्मिक बाढ़ आ जाया करती है और पानीके प्रचंड वेगके प्रवाहमें सभी वस्तुएँ बह चलती हैं। जब कभी पिपीलिकाओंको भी ऐसी विपत्तिसे बचना होता है तो वह एक दूसरेसे मिलकर गेंद सदृश बन जाती हैं और बह निकलती हैं। जो सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न और बड़े आकारकी होती हैं वे ही गोलेमें सबसे बाहर रहती हैं, शेष क्रम से भीतर रहती हैं। जो सबसे निर्बल और छोटी होती हैं वह अंदर रहती हैं। इस प्रकारकी गेंद पानीसे बहुत हलकी होती हैं। जब बाढ़ उतर जाती है तो किसी शुष्क भूभाग पर जाकर आश्रम पाती हैं। एक बार एक डाक्टरने बड़े कौशलसे इसी प्रकारका एक गोला रूमालमें पकड़ लिया था उसमें उन्हें सभी आकारकी पिपीलकाएँ मिलीं।

यदि इस प्रकारका कोई गोला किसी गाँवके निकट पहुँच गया तो लोग इसे भस्मीभूत करनेका प्रयत्न करने लगते हैं। इन पिपीलकाओंका निवास स्थान बहुत साधारण होता है। कभी कभी केवल एक बिल रहता है। कब्रोंके निकट बिल बनाना इन्हें अधिक पसंद आता है।

इनका ध्वंस करनेके लिए लोग ऊपरसे पत्ती डाल कर जला देते हैं तो भी पेड़ों पर चढ़ कर यह जान बचा लेती हैं और एक दूसरेसे मिल कर पेड़से चिपक जाती हैं। दूरसे देखनेपर पेड़ बिलकुल अंधकार मय जान पड़ता है। ऐसी विकट पिपीलकाओंसे नाकमें दम रहता है। यह बड़ा उत्पात मचाती हैं। इन्हें मार्गमें कोई रुकावट हो ही नहीं सकती। जब कहींको जा रही हों और दूसरा कोई मार्ग नहीं हो, सामने नदीकी प्रचंड धारा अपना विकट रूप दिखला कर बह रही हो उस समय भी इनका साहस सराहनीय होता है। इनको नदी पार कर लेना कुछ कठिन नहीं होता। नदीके किनारेपर पहले यह एक पेड़ ढूंढ़ती हैं, जिसकी डाल पानीमें लटकी होती है। एक चींटी डाल पकड़ कर लटक जाती है। दूसरी उसको पकड़ लेती है। इसी तरह एक दूसरेको अच्छी तरहसे पकड़ कर दूर तक चली जाती हैं। तब सबसे आगे वाली चींटी पानीमें कूद पड़ती है। इस प्रकार पिपीलकाओंकी शृंखला बहने लगती है और दूसरे किनारे पर पहुँच कर अंतवाली चींटी किसी वस्तुको बलपूर्वक पकड़ लेती है। इस ढंग से पक्का पुल बन जाता है और शेष पिपीलिकाएँ सरलतया नदीको पार कर लेती हैं। फिर पुल बनानेवाली पिपीलकाएँ भी उस पार पहुँच जाती हैं। पेड़ पर भी इसी प्रकार आसानीसे चढ़ जाती हैं। तनेसे शाखाओं पर चढ़कर पत्तियों तक पहुँचनेमें बहुत अधिक समय लग जाता है; अतएव पहले थोड़ी सी चींटियां डाल पर पहुँच कर एक दूसरेको मज़बूतीसे पकड़ कर लटक जाती हैं। इस प्रकार डालसे ज़मीन तक सीढ़ी सी बन जाती है और बाकी सभी चींटियाँ आसानीसे पेड़ पर चढ़ जाती हैं।

ऐसी पिपीलकाओंका वर्णन सुनकर आश्चर्य करना व्यर्थ है। ईश्वरकी सृष्टिमें इस प्रकारकी असंख्य विचित्रताएँ भरी पड़ी हैं। केवल चींटियों को ही ले लीजिये। इनमें कितनी ही जातियाँ हैं। सबमें भिन्न भिन्न विचित्रता है। अन्य जन्तुओंका अनुसन्धान कर सहस्रों आश्चर्य जनक बातें ज्ञात हो चुकी हैं और बराबर नई विचित्रताएँ मिलती जा रही हैं, जिनका उस समय तक अंत नहीं हो सकता जब तक संसारके साथ हम लोगोंका अस्तित्व है।

—जगपति चतुर्वेदी।

शुक्तिका शिकार

लंकामें मोतीका निकालना संसार भरमें सबसे बड़ा जुआ समझा जाता है। यहाँ तीव्र उत्तेजना, उत्कट अभिलाषा, भयंकर नैराश्य और विकट उल्लासके विचित्र दृश्य नित्य दिखाई पड़ते हैं, जो पूर्व के देशोंमें अन्यत्र नहीं देखे जा सकते। बम्बई संसार भरके लिए मोतियोंकी मंडी है। लंकाके निकटवर्ती होनेसे ही यह मोतियोंके लिए प्रसिद्ध है।

१६६३ सं० में मोतियोंकी अच्छी उत्पत्ति हुई थी। दो वर्ष पूर्व १६६१ वि० में सरकारी कर २५१०-६२१ रुपया था किन्तु उस वर्ष ३७५०००० रुपये कर स्वरूप सरकारको मिले। ४८ दिनमें ४६ ३६८-६१६ सीपी बाहर निकाली गयीं और प्रति सहस्र ४६.८३ रुपयेके हिसाबसे बेची गयीं। पुराने पत्रोंसे पता चलता है कि सीपियोंके मिलनेकी न्यूनाधिकताका समय निश्चित सा है। प्रायः बीस बीस वर्ष तक बिलकुल मोती नहीं निकलते। इन शुक्तियोंका भी अद्भुत रहस्य है। वर्षों सीपी नहीं मिलतीं, समुद्र-तट शुक्ति शून्य हो जाता है, पर सहसा वह फिर आ जाती हैं। जीव-विज्ञान विशारदोंका विचार है कि कदाचित वह भारतके पश्चिमी समुद्र तटसे आती हैं। लंकाके उत्तर पश्चिम तट पर मनारकी खाड़ीमें तो दो ही एक वर्षमें फिर सीपी पकड़ना आरम्भ हो जायगा।

मोती क्रय करनेवाले भिन्न भिन्न स्थानोंसे यहाँ पर पहुँचते हैं। १६६१, ६२ में तट पर २५००० मनुष्योंकी भीड़ इकट्ठी रहती थी; जो शुक्ति स्थानसे लौटने वाली नौकाओंकी प्रतीक्षा करते थे। फाल्गुण तथा चैत्र मास सीपी पकड़नेके लिए उपयुक्त हैं। मोतीके लिए जलमें डुबकी लगानेवालोंमें फारसकी खाड़ीके मुसलमान बड़े दक्ष होते हैं। पनडुब्बोंका उत्साह दिलानेके लिए बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं, किन्तु उनमें सत्यताका अंश बहुत थोड़ा है। पनडुब्बोंके पानीमें रहनेका औसत समय ३०-५२ सेकंड है। एक बहुत अच्छे पनडुब्बेको देखा गया वह प्रथम बार १ मि० २० सेकंड तक पानीमें रहा, दूसरी बार १ मि० १० से० और तीसरी बार केवल ५० सेकंड तक ठहर सका।

प्रत्येक पनडुब्बेके साथ एक प्रस्तर खंड और एक सहायक नौकर रहता है। इस पत्थरकी तोल एक मनके लगभग होती है। इसके साथ एक रस्सी बड़ी कुशलतासे बंधी होती है, जो सरलतया अत्यंत शीघ्रतासे नावसे नीचे गिर सकती और ऊपर आ सकती है। पानीमें डूबनेवाले मनुष्यकी गर्दनमें एक टोकरी बँधी होती है, जिसमें समुद्र की तलैटीमें पहुँचकर वह शुक्तियोंको रखता है। पनडुब्बे डुबकी नहीं लगाते। जब किसी पनडुब्बेको पानीमें उतरना होता है तो रस्सीमें बंधे पत्थरका अंगूठेमें लगा लेता है; नौकर तब उसे छोड़ देता है। इस प्रकार वह बड़ी शीघ्रतासे समुद्रकी तलैटीमें पहुँच जाता है। वहाँ पहुँच कर वह बिलकुल भूमि पर लेट जाता है और शीघ्रतासे टोकरेको वहाँके पदार्थोंसे भर लेता है। जितनी देर तक पानीमें रह सकता है उतने समयके बाद तुरन्त अपने पैरका अंगूठा पत्थरसे निकाल लेता है और ऊपरकी ओर बड़ी शीघ्रतासे उठने लगता है। कभी तो तीव्रतासे आधा धड़ पानीसे उपर उठ आता है।

साढ़े सात बजेसे बारह बजे तक शुक्तियोंके फेरमें रहते हैं। उसके पश्चात् किनारे पर पहुँचनेके लिए सभी नावोंमें दौड़ मच जाती है। मोती वाले सामुद्रिक तट पर लंकाकी सरकारका अधिकार है। लंका द्वीपके उत्तर पश्चिम तट पर मनार द्वीप से ६० मील दक्षिण १५ मील तक मोती निकाला जाता है। यहाँ समुद्र धीरे धीरे गहरा होता गया है। शुक्तियोंके निकालनेके दो ढंग हैं। एक यह कि सरकार स्वयं बटवारे पर पनडुब्बोंसे काम लेती है। इसमें सरकार दो तिहाई शुक्तियोंको स्वयं ले लेती है और शेष माँझियोंमें बट जाता

हैं। दूसरे ढंगसे यह सब काम कम्पनियों द्वारा होता है। सरकार केवल नीलाम द्वारा शिकारका अधिकार देती है।

सरकार अपनी पाई हुई शुक्तियोंको एक एक हज़ार बोरे में रखवा कर नीलाम करवा देती है। नीलामके स्थान पर एक सरकारी आदमी एक बोतलमें बहुत से मोती रखकर लोगोंको दिखाता है और कहता है कि यह एक सहस्र सीपियोंसे निकले मोती हैं, जिनका मूल्य इतना रुपया है। इस प्रकार लोगोंको मोतियोंकी प्राप्तिका विश्वास दिलाया जाता है। गोते खोरोंको इस बातका अधिकार होता है कि अपने हिस्सेको किसीके हाथ बेच डालें।

बड़े बड़े शुक्ति खरीदनेवाले शुक्तियोंको एक वाड़ेमें डाल देते हैं। वह चटाइयोंसे चारों ओरसे घिरा होता है। बाड़ा चारों ओरसे अच्छी तरह बन्द रहता है, इसे कोटू (कोट) कहते हैं। चटाईका एक दूसरा चौकोना घेरा बना रहता है जहाँ सीपियोंको धोते हैं। इनमें सीपियोंको दो सप्ताह तक यों ही पड़ा रहने देते हैं। वहाँ पर ब्लू बाटल फलाई इन शुक्तियों पर चढ़ दौड़ती हैं। दो दिन में ही शुक्ति पुंज इन पतंगोंकी इल्लियोंसे आच्छादित हो जाता है; जो शुक्तियोंका मास खा जाते हैं और धीरे धीरे यह कीड़े एक एक इंचके हो जाते हैं। वहाँकी दुर्गंध बहुत बुरी हो जाती है। छोटी इल्लियाँ दीवाल पर चढ़ने लगती हैं। किसी किसी के मोती भी चिपके होते हैं। अब कोटूके सब पदार्थोंको एक छोटेसे कुंडमें डाल देते हैं जहाँ पानी भरा होता है।

पानीकी सतह पर जो मैल भक्कड़ जमा होता है निकाल नकाल कर फेंकते रहते हैं। जो कुली यह काम करते हैं वह अपने हाथ पानीमें डुबोये रहते हैं जिससे मोती निकाल कर छिपा न सकें। सीपी धोते हुये जब किसी कुलीको उसमें मोती मिलता है तो वह आवाज़ देता। फौरन एक आदमी टोकरी लेकर उसके सामने आता है और उसमें सीपी रखा लेता है। ऐसी मोती ब्लिस्टर पर्ल कहाता है, जो बड़ा कीमती होता है। जब सब पदार्थ भली भाँति धुल जाते हैं तो उन्हें एक कपड़े में बाँध कर टांग देते हैं। दूसरे दिन उसीको सुखाते हैं। अच्छी तरह सूख जाने पर मोती सरलतया निकाल लिये जाते हैं और यहीं सब क्रिया समाप्त हो जाती है।

इन दिनों यहाँ पर नगरमें बड़ी चहल पहल रहती है। यह नगर एक बड़ा भारी मेला बन जाता है। भारतवर्षके बहुतसे बणिक बहुमूल्य वस्तुओंके साथ वहाँ पहुँचते हैं। वह अपने साथ हीरे, जवाहिर, बहुमुल्य रेशमी वस्त्र और भाँति भाँतिके सामान बेचनेके लिए ले जाते हैं। घर घरमें द्यूतकी बहार रहती है और बड़े आनन्दसे समय व्यतीत होता है। चैनकी वंशी बजती है और मौजसे दिन कटते हैं। इसी धूम धाम में मनुष्यके भाग्य-निर्णयके पश्चात् मोतियोंका भाग्य-निर्णय होता है जो अपना अपना रंग दिखाते दूर दूरके नगरोंमें पहुँच जाते हैं।

—"पटु"

महायुद्धका शिक्षापर प्रभाव

[ले० —अध्यापक विश्वेश्वर प्रसाद]

जीवनका कोई भी विभाग ऐसा नहीं है, जिसपर महायुद्धका प्रभाव न पड़ा हो; पर शिक्षापर सबसे अधिक प्रभाव हुआ है।

युद्धका अन्त नहीं हुआ था कि भविष्य सोचा जाने लगा। युद्धके कारणों पर विचार करने पर विद्वानोंने यह स्थिर किया कि तीन बातोंकी अतिसे विप्लवका जन्म हुआ। राष्ट्रीयता, जड़वाद Materialism तर्क Intellectualism। इन तीनों वस्तुओंसे लाभ होता है जब परिमित होती है और हानि होती है जब अपरिमित हो जाती हैं। यदि देशके प्रेम के कारण हम यह सोचने लगें कि सारे

संसारमें हम ही श्रेष्ठ हैं तब देश प्रेमसे हानि होने लगती है, इसी प्रकार जब सदाचार और आत्मा सम्बन्धी बातोंका निरादर होने लगता है तब जड़वाद और तर्कसे हानि होने लगती है।

फलतः यूरोपके प्रत्येक देशमें निम्नलिखित विचार उपस्थित हुए हैं।

(१) सर्व साधारणमें शिक्षाका अधिक प्रचार हो। विद्यार्थी स्कूलोंमें अधिक समय व्यतीत करें। प्रारम्भिक शिक्षा पाये हुये विद्यार्थी अधिकांश यूनिवर्सिटी शिक्षा प्राप्त करें।

(२) पाठ्य विषयोंमें नये विषय सम्मिलित किये जायं। पाठ्य पुस्तकें ऐसी बनें जो सब देशोंमें चल सकें अर्थात् राष्ट्रीयता की अतिका नाश किया जाये।

[इस उद्देश से सेन फ्रान्सिस्कोमें एक कान्फरेंस भी गत जूनमें हुई थी। जिसमें चालीस देशोंके प्रतिनिधि आये थे।] जड़वादके कारण इतिहास, व्यापार, राजनीति, विज्ञान तथा शिक्षामें जो अहम्भाव आ गया है उसका निवारण किया जाय।

(४) साहित्यकी ओर अधिक ध्यान दिया जाय। ललित कलाओं तथा गान विद्याका पुनरुद्धार किया जाय; आचार निष्ठाका आदर किया जाय और आत्माका साम्राज्य स्वीकार हो।

पहिली बातका डेनमार्कमें बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया है। यदि राजनीतिज्ञोंने उसे अपने हाथमें न ले लिया तो उद्देश्यकी पूर्ति अवश्य होगी। साधारणतया यूरोपमें विद्यार्थियोंके अभिभावकों ने शिक्षामें अधिक रुचि दिखाना आरंभ किया है। जर्मनीमें अभिभावकोंकी कमेटियां बन गई हैं। इनसे एक ही भय है कि कहीं यह लोग शिक्षकोंके काममें अधिक हस्तक्षेप न करने लगें।

इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने योग्य है। लगभग सभी देशोंमें शिक्षा सम्बन्धी नए नए प्रयोगोंकी जांच हो रही है। मध्य यूरोपमें इन प्रयोगोंको प्रजाने बहुत पसन्द किया है। आष्ट्रियामें विद्यार्थियोंने पाठ्य पुस्तकोंका वहिष्कार कर दिया है; प्रत्येक विद्यार्थी शिक्षककी सहायतासे अपना पाठ्यक्रम स्वयम् बनाता है। सैक्सनीमें विद्यार्थी नियत कार्यको मिल जुलके करते हैं। हाथोंसे काम अधिक लिया जाता है। खेतों और फेक्टरियोंकी अधिक यात्राएँ होती हैं। उद्देश्य यह है कि जब विद्यार्थी अपनी जीविका स्थिर करने लगें तो उसे कुछ भी कठिनाई न हो। इसी प्रकार जर्मनीमें इस बात पर अधिक जोर दिया जा रहा है कि प्रारम्भिक शिक्षाके समय धनी और दरिद्री विद्यार्थी एक साथ पढ़ाये जायँ जिसमें कि ऊंच नीचका अन्तर कम होता जाय।

यह भी याद रखना चाहिये कि शिक्षाके मूल सिद्धान्तों पर भी फिरसे विचार आरम्भ हो गया है। लोग पूछने लगे हैं कि शिक्षाका उद्देश्य क्या है। यह भी पूछा जाता है कि पाठ्यक्रममें किन किन विषयोंका समावेश होना चाहिये, हाथसे कितना काम लिया जाय और मस्तिष्कसे कितना अथवा शिक्षकको कहां तक स्वतन्त्रता होनी चाहिये।*

गंधमुखी वा दिवांधिका

भूमि खोदकर रहनेवालोंमें छछूंदर सबसे विचित्र जन्तु है। यह केवल बिल बनाकर उसके अंतिम सिरेपर बैठी नहीं रहती बल्कि अपने लिए अनेक कक्षों और दालानोंसे सुसज्जित एक भूमि गर्भस्थ दुरूह भवन निर्माण कर उसमें आनंद पूर्वक रहती है। भोजन-क्षेत्रतक जानेके लिए उसमें नियमित मार्ग होते हैं। आने जानेके मार्ग आधुनिक कालकी रेलवे लैन अथवा म्युनिसिपेलिटीके नल-जालकी भांति सुव्यवस्थित होते हैं।

छछूंदर वेगसे दौड़ सकती है, और शिकारी कुत्तोंकी भांति युद्ध भी कर सकती है। अपना

* 'जर्नल आफ एज्युकेशन' के एक लेखके आधार पर।

शिकार पृथ्वीके अंदर और ऊपर पकड़ सकती है और निर्भय होकर पानीमें तैर भी सकती है। प्यास बुझानेके लिए कुएँ बना लेना इसके लिए कठिन नहीं है। इतना ही नहीं इसमें बहुतसी विचित्रतायें हैं जिनका अभीतक पता नहीं लग सका है।

यदि किसी छछूंदरको उसके निवास स्थानसे हटाकर दूसरे स्थान पर रखा जाय तो वह नितांत उपहास योग्य और भद्दी मालूम पड़ेगी। फिर उसको उसके परिचित स्थानमें रख दिया जाय तो उसका रूप बिल्कुल दूसरा होगा। वहाँ पर वह सजीव जान पड़ेगी और उसमें अद्भुत शक्ति आ जायेगी। उसके भद्दे और आलसी रूपमें घोर परिवर्तन दिखलाई पड़ेगा। दिखावटी नेत्र विहीनतासे इसके रूपमें अद्भुत भद्दापन प्रकट होता है। इसके शरीरके अग्रभागकी रचना चलने फिरनेकी कठिनाईका द्योतक प्रतीत होती है। छछूंदर जबतक बिलमें घुस न जाय अपनी प्रकृतिका प्रभाव नहीं दिखा सकती पर बिलमें प्रवेश कर लेनेपर जब वह अपनी करामात दिखाती है तब हम उसे देख ही नहीं सकते। बहुत से सामुद्रिक जन्तुओंके स्वभाव और प्रकृतिकी परीक्षा तो कृत्रिम जलाशयोंमें कर ली जाती है किन्तु जो जन्तु पृथ्वी खोदकर रहते हैं और अपना सभी कार्य बिलमें ही करते हैं उनके स्वभावकी परीक्षा किस प्रकार की जा सकती है ?

जीती जागती गंधमुखी (छछूंदर) को बिना किसी प्रकारकी क्षति पहुँचाये पकड़ लेना बहुत कठिन है। यदि कभी किसी कौशलसे पकड़ भी ली गयी तो उसके लिए भोजनकी पर्याप्त सामग्री जुटाते नाकमें दम हो जाता है। उसकी चिन्तामें बिना प्रातःकाल ही उठे कोई व्यक्ति उसका पालन नहीं कर सकता। अतएव बिना अत्यंत साहसी और अध्यवसायी हुए सफलता प्राप्त करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

छछूंदर जितनी आलसी और दीन दीख पड़ती है उतनी ही उसमें दुर्द्धर्षता होती है। यह अत्यंत भयंकर और अत्यंत उद्यमी होती है। उपर्युक्त दोनों गुण उसमें ऐसे हैं जिनके कारण बड़े बड़े जन्तु भी इसकी बराबरी नहीं कर सकते। यह देखनेमें दीन जान पड़ती है; इसी कारण इसे असहाय न समझ लेना चाहिये। वह पृथ्वीके अन्दर ही सुखी रहती है और वहीं पर अपना पराक्रम दिखा सकती है। यद्यपि अबाबीलको वायुमें तीव्र गतिसे मक्खियोंका शिकार करते देख हम लोगोंको डाह होता है और दिवांधिका (छछूंदर) को कीड़े मकोड़ोंके शिकारके लिए अंधकार मय मार्गमें घूमते देख हमें दया आती है तथापि दोनों जन्तु अपना जीवन निर्वाह करनेमें एक ही प्रकार के आनन्दका अनुभव करते हैं। एक क्षुद्र छछूंदर को पृथ्वीके अंदर शिकार पकड़ते उसी प्रकार आनन्द होता है जैसे एक अबाबीलको आकाशमें वेगसे दौड़ लगाकर पतिंगोंको पकड़नेमें प्राप्त होता है। इस प्रकारका नतीजा उसके शिकार पकड़नेके ढंगसे ही निकाला जा सकता है। वह शिकार पर पृथ्वीके अन्दर ही एक बारगी टूट पड़ती है और उसके पकड़नेमें बड़ा आनन्द प्राप्त करती है।

हम सभी लोग जानते हैं कि छछूंदर भूमिके अन्दर बिल खोदकर रहती हैं; खेतोंमें प्रायः इन बिलोंसे निकली हुई मिट्टीके ढेर दिखाई पड़ते हैं। हम लोग इस बातको नहीं जानते कि उसके विवरके मार्ग किस किस प्रकारके होते हैं। यह किस प्रकार सीधे बिल खोद लेती है; इसका पता नहीं चलता। वहाँ पर सदा अंधकार रहता है; वहाँ हम देख भी नहीं सकते। हम लोगोंके लिए या किसी नेत्रयुक्त प्राणीके लिए आंख मूंद कर सीधे मार्गसे चल सकना कितना कठिन है; यह हम जानते ही हैं। पानीमें तैरनेवाला भी जान सकता है कि पानीके अन्दर आंख खोल कर भी सीधे पथसे चलना असम्भव सा है। खेतोंमें जहाँ इसके बिलकी मिट्टी इकट्ठी रहती है वहां वर्षा ऋतुमें उसके बह जाने पर बिलका एक द्वार मात्र

दिखाई पड़ता है। इसी मार्गसे प्रारम्भ करके अन्य मार्गोंका पता लगाना चाहिये, जिससे इसके निवास स्थानका पूरा हाल मालूम हो जाय।

इसका स्थायी वासस्थान प्रायः छोटे टीलोंके ही नीचे होता है। टीलेका आकार यथेष्ट बड़ा होता है; किन्तु प्रत्यक्ष वह दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि यह सदा किसी पेड़ वा झाड़ीकी ओटमें रहता है। इसी कारण सबका ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं होता। एक वृद्द् विवरका वर्णन यहाँ पर किया जाता है। विवरके मध्यमें एक विशद कक्ष है उसके चारों ओर दो बरांडे ऊपर नीचे बने हैं। बरांडे वृत्ताकार हैं क्योंकि कक्षका आकार भी वैसा ही है। ऊपरका बरांडा नीचे वालेसे अधिक छोटा है। नीचेका बरांडा कक्षकी छतके समतल है और ऊपर वाला इससे कुछ ऊंचे पर है। मध्यवर्ती कक्ष गोल है और उसकी छत टीलेके आस पासकी धरतीके समतल है, अतएव पहाड़ीके ऊपरी भागसे बहुत नीचे यह स्थित है। एक बरांडेमेंसे दूसरेमें आने जानेके लिए ५ मार्ग बने हैं किन्तु मध्य वाले विशद कक्षमें उतरनेके लिए केवल ऊपरके बरांडेमें प्रवेश द्वार है। ऊपरवाले बरांडेसे तीन मार्ग कक्षकी छतको गये हैं। इस प्रकार जब छछूंदरको भीतर घुसना होता है तो बिलसे प्रवेशकर नीचे वाले बरांडेमें जाना होता है और वहांसे ऊपरके बरांडेमें होकर मध्यवर्ती कमरेमें पहुँचना होता है। विवरसे निकलनेके लिए एक दूसरा मार्ग भी है; वह बीचके कमरेके नीचे होकर जाता है। वह मार्ग उस कमरेके मध्यमें नीचेको कुछ दूर तक जाकर फिर ऊपरको घूम जाता है और तब बाहरके बड़े मार्गमें जा मिलता है। यह बड़ी विचित्र बात है कि बाहरसे आनेके जो भिन्न भिन्न दिशाओंमें स्थित ७ या ८ मार्ग हैं उनमेंसे कोई भी नीचेके बरांडेमें ऐसे स्थान पर नहीं मिलता जहां ऊपरके बराण्डेमें जानेका मार्ग ठीक
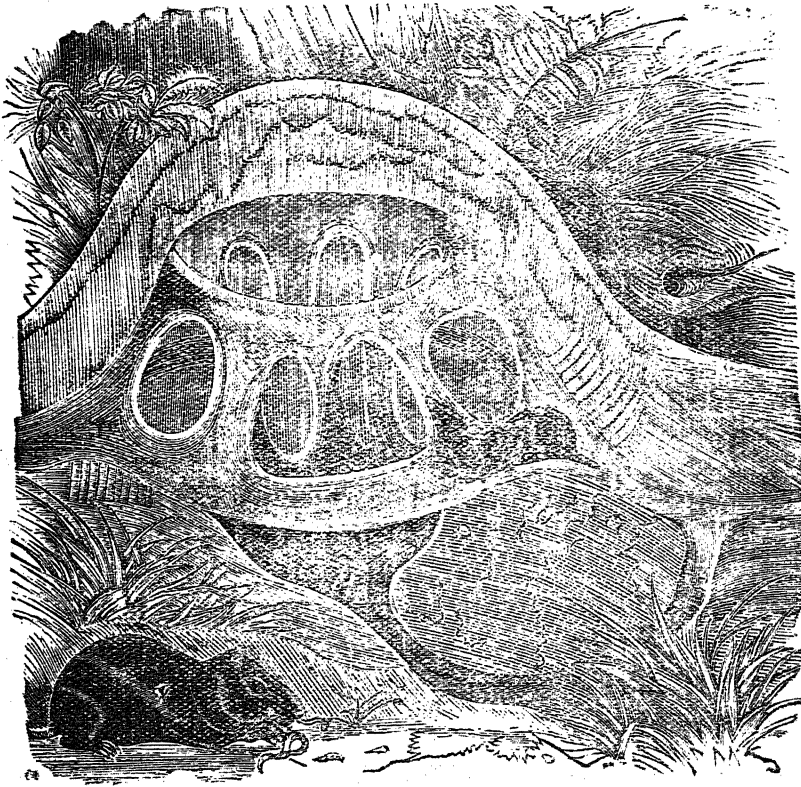
चित्र २—छछूंदर

सामने पड़ता हो; अतएव जब गन्धमुखी नीचेके बरांडेमें पहुँच जाती है तो उसे दायें वा बायें हट कर ऊपरके बरांडेमें जानेके लिए मार्ग मिलता है।

गन्धमुखीके कोमल लोमोंकी रगड़से सभी मार्गोंकी दीवालें और छत बिलकुल चिकनी, कड़ी

और पालिश की हुई जान पड़ती हैं। इस कारण अधिक वर्षा होने पर विवरके बैठ जानेका भय नहीं रहता। इस प्रकारके मार्गों और अनेक कमरोंको प्रयोगमें लाना सन्देहजनक जान पड़ता है। इस विषयमें हम बहुत कम जानते हैं, इसीलिए इस विषयमें भविष्यमें भली प्रकार अनुसन्धान करना चाहिये। यह अनुमान किया जा सकता है कि जिसके अधिकारमें इतना विशद और दुरूह भवन है वह सचमुच अजीब जन्तु होगा; वह आनन्द पूर्वक मध्यवर्ती कमरेमें विश्राम करता होगा और जब कोई खटका होता होगा तो उसकी सूचना पा कर सुविधा पूर्वक किसी मार्गसे निकल भागता होगा।

छछूंदर अधिक समय तक विश्राम नहीं करती है। विशद कमरोंके स्थानपर भवनके मार्गोंमें ही उसके जीवनका अधिक अंश व्यतीत होता है। नटोंसे इस बातका पता लगता है कि यह प्रत्येक तीन घंटे परिश्रम करनेके पश्चात् नियमित रूपसे दिन रात एक सा विश्राम करती और दौड़ धूप लगाती है।

ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें नर और मादाओंमें प्रेम उत्पन्न होने लगता है। इन दिनों प्रेमासक्त होनेके कारण इनकी प्रकृति और प्रचंड हो जाती है। जब कभी दो नर मिल जाते हैं उनमें द्वेषाग्नि भड़क उठती है और तुमुल युद्ध मच जाता है। एक दूसरेको नोचने खसोटने लगते हैं। उस दशामें उनको अपने शरीरकी रक्षाका तनिक भी ध्यान नहीं रह जाता। केवल युद्धका ही ध्यान रहता है। विवरमें युद्धसे सन्तुष्ट न हो कर कभी कभी वह ऊपर भी आ कर युद्ध करने लगते हैं उस समय इनको पकड़ लेना बड़ा आसान होता है।

सचमुच छछूंदरका सम्पूर्ण जीवन क्रोधोन्माद-मय है। जब कोई शिकार मिल जाता है तो उसे चंगुलसे दबा कर नोच फाड़ कर भूखे सिंह की भांति वह शीघ्रतासे भक्षण कर जाती है।

लोग कहते हैं कि जब कोई नया शिकार मिल जाता है तो उसे खानेके पूर्व उसका ऊपरी चमड़ा यह उतार डालती है; किन्तु इसकी सत्यता पर विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस कार्यका बारीक यंत्रोंसे होना भी सरल नहीं है वह नाखूनों द्वारा आसानी से किस प्रकार हो सकता है?

इस बातका अनुमान कर सकना भी कठिन है कि वह कीड़े मकोड़ोंको किस प्रकार खाती है। पीठको टेढ़ी कर, सिरको दोनों कंधोंके बीच सिकोड़ कर विकट रूपसे शिकारको मुखमें ठूस लेती है। इसकी तुल्यता भयंकर खूँख्वार पशुओंसे ही हो सकती है।

इस प्रकारका कोई शक्तिशाली जन्तु न होगा, जो ठोस पृथ्वीमें छेद कर सरलतासे घुसते जानेमें समर्थ हो। जब इस प्रकारके दो नरोंका सामना हो जाता है तो बड़ी विकट समस्या उपस्थित हो जाती है। जो सर्वदा जन्तुओंकी ही खोजमें रहते हैं उनके लिए तो यह युद्ध साधारण जान पड़ेगा किन्तु जो पशुओंकी प्रकृति का पर्यवेक्षण करनेमें व्यस्त हैं वह इसकी भयंकरता समझते हैं। उनके सामने वही तुच्छता भयंकरतामें परिवर्तित हो जाती हैं। युद्धका स्वरूप जाननेके लिए उनके आकारका भी ध्यान रखना आवश्यक है। वास्तवमें दो छछूंदरोंका युद्ध दो सिंहोंके तुमुल युद्धसे अधिक भयंकर नहीं तो उसकी बराबरीका अवश्य है। क्योंकि इनमें सिंहसे भी अधिक साहस होता है और आकारके विचारसे सिंहसे अधिक शक्तिशाली होती हैं।

कल्पना कर लीजिये कि कोई छछूंदर सिंहके आकारकी है। यह काल्पनिक जन्तु ऐसा भयंकर और विकट होगा जैसा संसारने कभी न देखा होगा। यद्यपि यह पशु नितान्त अन्धा होगा और शिकार पर दूरसे दौड़ कर आक्रमण कर सकनेमें असमर्थ होगा तथापि अनुमानसे भी अधिक कर्म-पटु और उद्योगी होगा। शीघ्रतासे इधर उधर कूद फांद कर अधिक स्थान घेरेगा और

विद्युत्के तुल्य वेगसे शिकार पर आक्रमण कर झटसे उसके शरीरके टुकड़े कर डालेगा और भक्षण कर लेनेके पश्चात् भी अधिक मांसकी भूख रह ही जावेगी। इस प्रकारका दुर्द्धर्ष जन्तु २० फुट लम्बे सर्पको बिना किसी प्रतिबंधके सरलतया निगल जायेगा और उसकी भूख इतनी तीव्र होगी कि दिन भरमें ऐसे २० या तीस सर्पोंको उदरस्थ कर डालेगा। एक बार दाँत लगा कर पंजेकी एकही चोटसे बैल जैसे बड़े पशुओंको चीर फाड़ सकनेमें समर्थ हो सकेगा। यदि किसी भेड़के झुंडमें वा पशुशालामें इसका प्रवेश हुआ तो रक्त पिपासा वा केवल अपनी इच्छा पूर्तिके लिए उसका संहार कर डालेगा और सभी पशुओंको शीघ्रतासे सहजमें ही मार डालेगा। इस प्रकारके दो दुर्द्धर्ष जन्तुओंका यदि कहीं सामना हो गया तबतो दुर्घटनाकी भयंकरता देखते ही बनेगी। नर छछूंदर तो इस क्षुद्र रूपमें भी स्वर्गीय आक्रामकका सामना करते समय उन्मत्त हो जाता है और आक्रामकको ध्वंस करनेका प्रचंड प्रयत्न करता है, इसमें उसके शरीरकी चाहे जो दशा हो जाय। उसके पराक्रमका परिचय इसीसे कुछ मिल जाता है।

विवरके निर्माणमें छछूंदर सचमुच अपने कौशलका परिचय देती है। इसके मध्यवर्ती विशद कमरे, भिन्न भिन्न मार्ग और वरांडे बड़ी चतुराईसे बने होते हैं। अकेली होकर भी अपने भवनके लिए बहुत सा भिन्न भिन्न स्थान घेर लेती है। अपना शिकार ढूढ़नेके लिए वह अनेक दिशाओं में भिन्न भिन्न गहराईकी सुरंगें बनाती चली जाती हैं; कभी कभी जैसे गरमीके मौसिममें उसे अधिक गहराई तक जाना पड़ता है; तब कहीं उसको कोई शिकार मिलता है। और कभी इतनी गहरी नाली या खाई खोदती है कि उसकी पीठ दिखाई देती रहती है।

उसकी मांस पेशियोंमें असीम शक्ति भरी होती है; जिससे इतना छोटा शरीर होने पर भी अधिक परिश्रम कर पाती है। जिन्हें कभी कुआँ या गड्ढा खोदना पड़ा है वह अनुमान कर सकते हैं कि जमीन खोद कर मिट्टी फेंकनेमें कितने परिश्रमकी आवश्यकता होती है। कुदाल और फावड़ेकी सहायतासे एक घनफुट ज़मीन खोदने पर इस परिश्रमका अनुमान किया जा सकता है। इसीसे छछूंदरके पराक्रमका भी अनुमान किया जा सकता है। वह ठोस पृथ्वीको थोड़े ही समयमें खोद कर विवर तैयार कर लेती है। उसे इसमें जितना परिश्रम करना पड़ता है उतना ही परिश्रम एक मनुष्यको १२॥ फुट गहरे और २० फुट व्यासके गड्ढेके खोदनेमें करना पड़ेगा।

बिल बना कर रहनेवाले सभी जानवरोंमें देखा जाता है कि बिलमेंसे जब निकलते हैं तो उनके बालोंमें मिट्टी नहीं लगी होती। किन्तु इस जानवरमें यह बात और भी विशेष ध्यान देने योग्य है। यह प्रायः नये बिल तैयार करने में व्यस्त रहती है; एक बार बने हुए बिल से ही आने जानेमें संतोष नहीं करती। इसके शरीरकी रगड़से विशद मार्गोंकी दीवारें चिकनी हो जाती हैं, इस कारण इसके बालोंमें धूल नहीं लगती, किन्तु आश्चर्य यह है कि छछूंदर सब तरहकी मट्टीमेंसे साफ निकल आती है, उसकी खाल या बाल मैले नहीं होते। इसका मुख्य कारण उसके बालोंकी निराली बनावट है। छछूंदरके बाल मखमली होते हैं; किसी एक ओरको मुड़े नहीं होते; दायें बायें सब ओर झुक सकते हैं। सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे इसका कारण भी जान लिया है। बालका मूल भाग बिल्कुल पतला होता है। धीरे धीरे यह मोटा होता जाता है और फिर पतला, इस प्रकार उसका व्यास ओरसे छोर तक कई बार घटता बढ़ता है। इसी कारण बालोंको जिस ओर चाहें आसानीसे घुमा सकते हैं। बालोंके पतले अंशोंमें कोई रंग नहीं होता और इसे रचना वैचिव्य के कारण ही इनका रंग कालापन लिए भूरा जान पड़ता है। जब छछूंदरके बाल बिल्कुल

स्वच्छ कर दिये जाते हैं तब उनका रंग इन्द्र धनुषके रंगका सा दिखाई पड़ता है; उसमें लाली लिये ताम्रवर्ण प्रधान होता है। बालोंके स्वच्छ रहनेका एक और कारण उसकी झिल्लीस्थ पेशियोंका शक्ति शाली होना भी है। जब वह बिल खोदनेमें व्यस्त रहती है तब मिट्टी और धूलसे उसके बाल भर जाते हैं। जब पेशियोंके बलसे वह बालोंको झकझोर देती है तो वह स्वच्छ हो जाते हैं। फिर भी उनके मूलमें मिट्टी रह ही जाती है। इसको पानीमें रखनेसे मिट्टी तहमें बैठ जाती है और बाल स्वच्छ हो जाते हैं। साबुनसे स्वच्छ करने पर अत्यन्त सुन्दर और मुलायम जान पड़ते हैं; जिन पर मुग्ध होकर लोग वस्त्र बनवाने का विचार करते हैं; किन्तु यह मुर्खता है। पहले तो वह गर्म होते हैं, उनके बने वस्त्र केवल कड़ी सर्दीमें पहने जा सकते है; दूसरे टिकाऊ नहीं होते; व्यय बहुत अधिक हो जाता है। ३००० या ४५०० रुपयेमें एक कोट बन सकता है; बालोंमें बहुत बुरी दुर्गंध होती है जो दस वर्ष तक सुखाने पर भी दूर नहीं होती। दुर्गंधके कारण शिकारी कुत्ते भी गंध मुखीसे दूर रहते हैं।

बहुत से जानवर ऐसे हैं जो बिलोंमें रहते हैं किन्तु अपना पराक्रम बाहर ही दिखा सकते हैं। बिलमें तो केवल मुर्देकी तरह पड़े पड़े विश्राम करते हैं, किन्तु गंधमुखी बिलमें ही सब प्रकारका कौतुक दिखाती है। उसका वास्तविक जीवन पृथ्वीके अंदर ही व्यतीत होता है। भूमिके अंदर सब प्रकारके कार्य वह इतनी तीव्रतासे सम्पादन करती है; जितनी तीव्रतासे मछलियां जलमें कर सकती हैं।

अब इसके शरीरकी बनावट पर ध्यान देना चाहिये। इसके अंगोंकी बनावटसे ही इसमें इतनी तीव्रता होती है। विशाल पंखे (अंशफलक या कंधास्थि) जो रीढ़ की ओर झुके होते हैं, आगे के अंगों की बल शाली अस्थियाँ, चौड़ी और झुकी हुई हथेली और तेज पंजे सचमुच किसी मशीन के पुर्जे के सदृश काम करने वाले जान पड़ते हैं, जो शिकार को सहज ही विध्वंस कर सकने में समर्थ होते हैं।

इसके आगेके अंग अधिक शक्ति शाली होते हैं। गर्दनकी मांस पेशी बहुत मज़बूत होती है जहाँ लिगामेंट (अस्थायी अस्थि) कड़ा होकर अस्थि रूपमें परिवर्तित हो जाता है। नाकमें एक और सहायक हड्डी लगी होती है; जो उसके अन्त तक चली जाती है। इससे थूथनीमें अपूर्व बल आ जाता है; जो शिकारको चीरने फाड़नेमें बहुत तेजी दिखलाती है। मृत्युके पश्चात् ही उसकी थूथनी बिल्कुल नर्म हो जाती है और झुकाने पर आसानीसे पीछे झुक जाती है, मानों रबड़का टुकड़ा जुड़ा हुआ हो। थोड़ी ही देर पश्चात् फिर वह बहुत कड़ी हो जाती है। मृत्युके पश्चात् उसके अंग ठीक जीवित अवस्थाकी भांति किसी प्रकार भी रखे जा सकते हैं। इस कारण इसके मृत शरीरको देखकर इसकी ठीक ठीक आकृतिका अनुमान नहीं किया जा सकता। आगेके पंजोंमें बल लानेके लिए हँसियाके आकारकी एक अस्थि लगी होती है। इस प्रकार छछून्दरके शरीरमें बहुत सी ऐसी विचित्र बातें हैं जो अन्य किसी भी जन्तु में नहीं पायी जातीं।

—जगपति चतुर्वेदी

अल्यूमीनियम और ताप

ताप अल्यूमीनियमकी चादरमें टीनकी चादर की अपेक्षा दुगनी गतिसे और लोहेकी अपेक्षा तिगनी गतिसे चलता है। अल्यूमीनियम तापको अधिक देर तक संचय किए रह सकता है। इन्हीं कारणोंसे अल्यूमीनियमके वर्तनमें चीज़ पकाने अथवा गरम करनेसे लकड़ी कोयला इत्यादि ईन्धन कम खर्च होता है।

भूमिको घूमते हुए प्रत्यक्ष देखना

प्रो० लियोनार्ड वैस्टिनने यह बात एक सरल प्रयोग द्वारा सिद्ध कर दिखायी है। जो एक ऐसे स्थान या कमरेमें करना चाहिये कि जिसमें किसी प्रकारकी हलचल न हो। एक कटोरा लीजिये जिसका मुँह एक फुटसे अधिक चौड़ाईका हो और गहराई भी काफी हो। इस कटोरेको पानीसे भर दीजिये। इसको कमरेके फर्श पर इस प्रकार रख दीजिये कि कुछ घण्टे तक बिलकुल न छेड़ा जाय। कुछ बहुत बारीक पिसा हुआ फिरोज़ा या कोई अन्य ऐसी चीज़ जो कि पानीमें न घुले और ऊपर तैरती रहे लीजिये। और इसे धीरेसे पानीके ऊपर छिड़क दीजिये। फिर थोड़ा सा बारीक पिसा हुआ कोयला या गेरू लेकर कटोरेके बीचमें एक इञ्च चौड़ी सीधी लकीर बना दीजिये। इस कटोरेको कुछ घण्टे तक न छेड़िये। लौट कर देखनेसे एक विचित्र दृश्य दिखलाई देगा। गेरूकी लकीरने अपना स्थान बदल लिया है और अब वह कटोरेके किनारेके ऊपर वाली लकीरसे नहीं मिलती। देखनेसे पता लगेगा कि गेरूकी लकीर पूर्वसे पश्चिमकी ओर घूम गयी है। इसका कारण यह है कि कटोरेमें पानी तो स्थिर रहा परन्तु कटोरा पृथ्वीके घूमनेके कारण उसके साथ साथ पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूम गया। इसी कारण लकीरमें यह परिवर्तन देख पड़े।

धुएंका धातुपर प्रभाव

यह हम सबका अनुभव है कि धुआं-मिश्रित वायुमें धातुकी आयु क्षीण हो जाती है। ऐसे बहुत से प्रयोग किये गये हैं जिन सब से पता चलता है कि छतों पर डालने की लोहेकी चादर जो कि प्रायः ७ से १४ वर्ष तक चलती है धुएंमें ३—६ वर्षसे अधिक नहीं चलती। फौलादकी चादर ५ से १० वर्षके स्थानपर केवल तीन या चार साल ही चलती है। टीनकी बनी हुई लोहेकी चादर १८—२८ के स्थानपर केवल १० वर्ष ही चलती है। तांबा धुएंमें केवल दस या बीस साल ही चलता है, अन्यथा यह अनेक वर्षों तक बना रहता है। अतः लोगोंको धुएं रूपी भूत से सदैव सावधान रहना चाहिये।

समालोचना

श्रीगुरु पुष्पाञ्जलि—यह ब्रजभाषाका एक खण्ड काव्य है। इसकी रचना श्रीवियोगी हरिने की है। ब्रजभाषाकी ऐसी सुन्दर रचना इधर बहुत दिनोंसे देखनेमें नहीं आई। इसमें लेखकने अपनी भक्तिका दर्शन पूर्ण रूपसे करा दिया है। रचना मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक है। क्या भाव और क्या भाषा दोनों दृष्टियोंसे रचना उत्कृष्ट हुई है। यद्यपि ऐसे विषयों पर आजकलके कवि अपनी कलम नहीं उठाते हैं और आत्म प्रतीतिके विषयसे अपरिचित से हो गये हैं तथापि वीर भक्तोंके हृदयोद्गारोंकी धाराको समय भी नहीं रोक सकता। यह रचना एक ऐसे ही वीरकी अनुभूतिके सच्चे उद्गार हैं; इसकी न्यौछावर केवल प्रेम है। साहित्य भवन प्रयागके पते पर लेखकको लिखनेसे शायद यह मिल सके।

माधुरी—यह मासिक पत्रिका लखनऊसे निकलती है। इसके सम्पादक श्रीयुत दुलारेलाल भार्गव और श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय हैं। इसका वार्षिक मूल्य ६॥) है।

माधुरी—विविध विषय विभूषित सचित्र मासिक पत्रिका है। रूप-रङ्गमें यह 'सरस्वती' के समान है, पर इसकी पृष्ठ संख्या उससे अधिक है। हमारे सामने माधुरी का चैत्र का अङ्क है। इसमें मुख्य गद्य लेख केवल आठ, छः कवितायें और दो कहानियां हैं, जो साधारणतया सभी सुपाठ्य और सुन्दर हैं। इनके सिवा सुमन सञ्चय, विज्ञान वाटिका और महिला-मनोरञ्जक स्तम्भोंमें भी विविध प्रकारके उपयोगी और

मनोहर लेखोंका संग्रह है। पुस्तक-परिचय, साहित्य-सूचना, विविध विषय और चित्र-चर्चा शीर्षक स्तम्भ सबके अन्तमें दिये गये हैं। इस अङ्कमें कुल ४७ चित्र हैं, जिसमें ३ रङ्गीन, २ व्यङ्ग और शेष लेख सम्बन्धी चित्र हैं। माधुरीके विज्ञापनोंमें वह 'पत्रिकाओंका रानी और सर्वश्रेष्ठ' मासिक पत्रिका बतलाई गई है। अपने मुंहसे की गई तारीफ की यद्यपि हम दाद नहीं दे सकते, तथापि यह कहे बिना नहीं रह सकते कि "माधुरी" ने हिन्दी संसार में एक हलचल पैदा कर दी है; जिससे बड़े बड़े दिग्गज डगमगा उठे हैं। ईश्वर इस आन्दोलन से साहित्यका कल्याण करे।

मतवाला—यह साप्ताहिक पत्र २१ शङ्कर घोष लेन, कलकत्ते से निकलता है। इसके प्रकाशक और सम्पादक श्रीयुत महादेव प्रसाद सेठ हैं। इसका वार्षिक मूल्य ४) है।

इसमें हँसी-दिल्लगी का प्राधान्य रहता है। समाचार और राजनीतिक मसले आदि सभी बातें हँसी की तीखी और प्रायः कुरुचि पूर्ण भाषामें ही लिखी जाती हैं। राजनीतिमें यह पत्र अपरिवर्तन वादी और गान्धी—भक्त है, पर इस सम्बन्धमें इसकी लेख शैली कटुतापूर्ण रहती है, जो गान्धीके अनुयायियोंके लिए शोभावर्द्धक नहीं है। इसमें निराला नामधारी कविकी जो कविता निकलती है वह बड़ी विचित्र होती है, उसके सिर पैर तक का पता नहीं रहता। इसके सम्पादक शुद्ध हिन्दी लिखनेके बड़े भारी पण्डित मालूम पड़ते हैं। सम्भवतः इसीसे वह जब तब हिन्दीके दूसरे सुलेखकोंको डाँट डपट कर अपने ढङ्गकी हिन्दी लिखवानेकी अनधिकार चेष्टा किया करते हैं। इस पत्रका रूप-रङ्ग सुन्दर है। व्यंग चित्र भी इसमें सुन्दर निकलते हैं, पर उनमें बंगालीपनका प्रतिबिम्ब झलकता रहता है।

कवीन्द्र—यह कविता-सम्बन्धी पत्र है। इसका प्रकाशन लक्ष्मी प्रेस, नयागंज, कानपुर से हालमें ही हुआ है। इसमें एक रङ्गीन चित्र भी है। इसके सम्पादक स्वामी नारायणानन्द सरस्वती और सहायक सम्पादक अनूप शर्मा, बी. ए. हैं। इसमें कवि और कविता सम्बन्धी गद्य लेख भी है, जो सुपाठ्य हैं। जो कवितायें और समस्यापूर्तियाँ इसमें दी गई हैं वह भी साधारणतया सुन्दर हैं। पर ब्रजभाषाका बाहुल्य खटकता है। बोलचालकी भाषामें जब सुन्दर सुन्दर रचनायें प्रायः सभी पत्र पत्रिकाओंमें निकलती हैं और जनतामें उनका आदर भी है तब इस पत्रका इस समय भी पुरानी लकीर पीटना कहाँ तक समयानुकूल है? पत्र होनहार मालूम पड़ता है।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १६ } वृष, संवत् १९८१ । { संख्या २

ज्योतिषकी प्राचीन परिभाषाएं

यह लेख मेरी एक धृष्टता है। परन्तु विद्वान लोग इस धृष्टताको इस लिये क्षमा करेंगे कि यह मेरा प्रथम साहस है।

ज्योतिष शास्त्र कबसे प्रारम्भ हुआ इसके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता; क्योंकि जब से इस भूतल पर मानव संसारका विकास हुआ और परस्पर लोक व्यवहारके लिए पदार्थोंके नाम रखे गये तभीसे ज्योतिष शास्त्रका विकास हुआ; इसमें कुछ भी शंका नहीं है। विकासवादियोंका मन्तव्य पाठकगणके सामने रख कर मैं व्यर्थ समय नहीं लेना चाहता। वे तो कह उठेंगे कि पहले कालके पुरुषोंने जब सूर्य और चांदको घूमते देखा तो आश्चर्य किया। पहले उन्हींका ज्ञान हुआ फिर बड़े ग्रहोंका और फिर नक्षत्र आदिका; पर इस प्रकारकी व्यर्थ कल्पनाओंमें अपना समय खानेसे कोई लाभ नहीं।

भारतवर्षके विद्वानोंका सिद्धान्त यह है कि संसार त्रिगुणात्मक है। सत्व, रजस्, तमस्—यह तीनों गुण सदा सब कालों और सब स्थानोंमें न्यूनाधिक रूपमें रहते हैं; तब फिर कोई कारण नहीं कि हम तमस्से सत्वका विकास होना मानें। तीनोंका प्रौढ़ विकास सदा कहीं न कहीं नैसर्गिक रूपसे होना सम्भव है। इस कारण आदि सृष्टिमें अज्ञानी अबोध जीवोंके साथ सात्विक ज्ञान सम्पन्न ऋषि मुनियोंका भी प्रादुर्भाव हुआ और उनके अन्तःकरणोंमें साक्षात् ईश्वरीय ज्ञानका सत्य स्वरूप प्रकट हुआ। उनके ज्ञानमें भ्रान्तिका लेश भी नहीं था; उन्होंने दूसरी प्रकृतिके पुरुषों अर्थात् अल्प

ज्ञानियोंके प्रति मन्त्रों (विचार वाक्य) के रूपमें इसका उपदेश किया।

ऐसी दशामें सात्विक निष्ठ-मति-सम्पन्न पुरुषोंको जो ईश्वरीय सत्य निर्भ्रान्त ज्ञान उत्पन्न हुआ ब्रह्माण्डके विषयमें कैसा था, इसका विवेचन करना बहुत कठिन है।

भारतीय स्थापनाके अनुसार वेद संहितायें ही उन ऋषियोंके हृदयोंमें प्रतिविम्बित ईश्वरीय ज्ञान है।

इसमें तो तिल भर भी संदेह नहीं कि ऋग्वेद आदि संहिताएं संसारके इतिहासमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। इनसे प्राचीन पुस्तकें अभीतक दुनिया भरमें कहीं नहीं पायी गयीं। आनन्दकी बात यह है कि वेदोंकी भाषा और उसका व्याकरण तथा अन्यान्य वेद सम्बन्धी साहित्यका बड़ा भारी मुख्य भाग भारतवर्षकी धार्मिक सम्पत्ति है। उसकी शाखाएं निस्संदेह लुप्त हो गयी हैं।

शब्द शास्त्रके विद्वानोंका यह सिद्धान्त है कि मानव संसारकी एक अत्यन्त प्राचीन भाषा थी, जिसका अपभ्रंश देश काल-भेदसे सर्वत्र हुआ और वर्त्तमानमें संस्कृत, प्राकृत, यूरोपके नाना देशोंकी भाषाएं तथा प्राचीन फारसी, ज़ेन्द, अरबी आदि उस मूलमातृ-भाषाकी छोटी बड़ी सन्तानें पुत्रियों और प्रपौत्रियोंके रूपमें विद्यमान हैं।

उनके इस कथनमें बहुत सत्यता विद्यमान है। हमें यह सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेमें तनिक भी संकोच नहीं है; क्योंकि इसमें हमारी कुछ भी हानि नहीं। भारतीय विद्वानोंका एक यह सिद्धान्त है कि शुद्ध शब्दका रूप एक है और अपभ्रंश उसके बहुतसे हो जाते हैं। व्याकरण भाषा के शब्दोंके शुद्ध रूपको बतलाता है। उनका ज्ञान कर लेने पर यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि शेष शब्द अशुद्ध हैं।

दूसरा सिद्धान्त भारतीय विद्वानोंका यह है कि वेदका प्रयोग किसी स्वल्पसे देशमें सीमित नहीं है; परन्तु सातोंद्वीपवाली पृथ्वी; और तीनोंलोक, में उसका साम्राज्य है। चारवेद, उनके अंग, उनके रहस्य भाष्य, १०१ यजुर्वेदकी शाखा तथा अन्यान्य वेदोंकी सहस्रों शाखाएं विद्यमान हैं। उनको सहसा जान लेना या शब्दोंकी अवधि बांध लेना सरल नहीं है। यदि उन शब्दोंका हम केवल मुंहसे उच्चारण ही करते जांय तो इसके लिये भी कई जन्म जन्मान्तरका समय पर्याप्त नहीं होगा। बृहस्पति आचार्य पढ़ाते थे; इन्द्र पढ़ते थे। हजारों दिव्य वर्ष उन्होंने व्याकरण पढ़ा; शब्द ही शब्द सुनते गये पर फिर भी अन्त नहीं हुआ। इसीसे खिन्न होकर इन्द्र ने भाष्यको व्याकृत कर दिया। उसका रहस्य जो पहले अव्याकृत था अप्रकट था उसको प्रकट कर दिया; उसकी मूल धातुका और प्रकृति, प्रत्यय, उपसर्ग, निपात आदिका स्पष्टीकरण कर दिया; तभीसे यह व्याकरणोंका क्रम बहुत सुव्यवस्थित हो गया।

यह मानी हुई बात है कि वेदकी भाषा अत्यन्त प्राचीन है। वेदके मन्त्रोंमें यह वर्णन आया है कि इन्द्रने व्याकरण बनाया है। इससे हम सहजमें इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वैदिक कालमें प्रकृति प्रत्यय और धातु प्रत्ययका विभेद विद्वानों ने जान लिया था और नियत कर दिया था। इन्हीं व्याकरणकारोंने धातुपाठ, गणपाठ, आदिका संगृहीत कोष बना दिया था, जो परम्परासे बराबर अभी तक चला आ रहा है। अब आप विचार कीजिये कि वेदके प्राचीनकालसे व्याकरणने भाषाको बांध दिया। इस कारण व्याकरणकी रक्षा करने वाले विद्वानोंकी भाषामें परिवर्तन नहीं आया और आया भी तो बहुत कम। देशकाल और

यथाह श्रुतिः—वाग् वै पराची अव्याकृता अवदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन्। इमां नो वाचं व्या कुरु इति। सोऽब्रवीद् वरं वृणै। मह्यं चैवैष वायवे सह गृह्यताम् इति। तस्मा दिन्द्रवायवः सह गृह्येते। तामिन्द्रो मध्यतोऽपक्रम्य व्याकरोति। तस्मादियं व्याकृतावागुच्यते। इति। (ब्राह्मणम् सायनेनोल्लिखितम् व्याख्यातंच।)

घटना भेदसे परिवर्त्तन प्रायः वाक्य रचना, मुहाविरों और विशेष शब्द के प्रयोग तथा उनके रूढ़ि अर्थोंमें अधिक होता है; परन्तु धातुज अर्थोंमें फर्क नहीं पड़ सकता। इसी कारण यास्क मुनिने प्राचीन कालके ग्रन्थोंका तत्व समझनेके लिये यह सिद्धान्त स्थिर किया कि जितने शब्द हैं वे धातु, प्रत्ययों और उपसर्गोंसे बने हैं। अवश्य उनके मूल निर्वचनकी खोज करो; उस धातवीय मूलार्थमें देशकालका परिवर्त्तन नहीं हुआ; वह अवश्य प्राचीन अर्थवाला है और प्राचीन भाषाके शब्दोंका प्राचीन कालमें वही सत्यार्थ वास्तविक रूपमें होना चाहिये। साथ ही क्योंकि साक्षात् कृतधर्मा ऋषियों ने सबसे प्रथम मन्त्रोंका अवोध लोगोंको उपदेश किया इस कारण सबसे प्राचीन वेद मन्त्र हैं! उनका तत्वार्थ निश्चयसे अनेक धात्वर्थमें ही है, अन्यत्र नहीं है। इतनी भूमिका लिखनेका हमारा यही तात्पर्य है कि यदि हम किसी शास्त्रकी प्राचीन परिभाषाओं को खोज करनी चाहें तो हमें वर्त्तमान प्रचलित परिभाषाओं पर विशेष ध्यान न देकर उनके मूलार्थ पर दृष्टि डालनी चाहिये। दूसरे, जिस कालकी परिभाषाएं जाननी हैं कमसे कम उसके समकालीन अन्य प्राकृत भाषाओंके शब्दों पर शास्त्रीय आलोचना करनी चाहिये। अर्थात् भगिनी भाषाओंकी आलोचनासे मूल मातृभाषाके शब्दोंका रहस्य खुलेगा।

यह मान लेना पड़ेगा कि जिस भाषामें साहित्यिक आन्दोलन प्रारम्भ हो जाता है उसमें जीते जागते प्रतिभावान् विद्वानोंकी प्रतिभा अपनी व्यंजना प्रिय और लक्षणा प्रिय सरस्वतीसे शब्दोंको उनके वास्तविक अर्थोंसे बहुत दूर खींच ले जाती है। फल यह होता है कि कुछ कालके बाद उस शब्दका रूढ़ि अर्थ ही पलट जाता है और मूल अर्थ लुप्त हो जाता है। परन्तु साधारण अविद्वान जनताकी भाषामें इतना परिवर्तन नहीं होता। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि अपढ़ित अशिक्षित जनतामें अविद्याका बल अधिक होता है, व्यंजना और लक्षणा न्यून होती है, इस कारण शब्दोंका अर्थ बहुत नहीं बदलता। अतः यदि उसी प्रकारकी जनतामें प्रचलित शब्दोंका मूल जांचेंगे तो हम प्राचीन भाषाके मूल शब्द और शब्दार्थोंके बहुत समीप पहुँच जांयगे।

इसी आधार पर अब हम कुछ ज्योतिषकी परिभाषा और नाम वाचक शब्दों पर विचार करते हैं और देखते हैं कि वेद या उससे भी प्राचीन कालकी भाषाओंमें ज्योतिषकी क्या परिभाषाएं थीं।

१—ज़ोडेक (zodiac), राशिचक्र

पाठक गण इस शब्द पर कुछ दृष्टि डालें। वर्त्तमान अंग्रेजीमें इस शब्दको zodiac ज़ोडिअक लिखा जाता है और 'ज़ोडेक' पढ़ा जाता है। मध्यकालीन अंग्रेज़ीमें इसको zodiak भी लिखा जाता था। फ्रेंचमें यही शब्द zodiack रूपसे लिखा जाता है। यद्यपि बोलनेमें कुछ भेद प्रतीत नहीं होता तो भी स्पेलिंग या घटक वर्णोंमें भेद होनेसे हम विशेष परिणामों पर पहुँचते हैं। यदि C = च, k = क तो फ्रेंच रूपके अनुसार शब्दको तोड़नेसे यह शब्द जोड़ि—आचक् मूल शब्द प्रतीत होता है, जिसका अंग्रेजी रूप zodiac जोडि—आच अथवा zodiak जोडि-आक् है। फ्रेंचका एक रूप zodiaque जोडियाक् भी पाया जाता है। कदाचित् C औ k दोनों केवल 'क् क्' के द्वारा आ के बलको बढ़ानेके लिये लगाये गये हैं। फलतः मूल शब्दका रूप ज़ोडि—आ क् क् ऐसा प्रतीत होता है। यह मूल मातृ भाषाका विकृत रूप है। प्राकृतके नियमोंके अनुसार ही अवश्य यह शब्द अपने मूल शब्दसे बिगड़ा है।

शब्दकी रचनामें विकृत भाग इस प्रकार है जोडि अ अ क् क्। ज़ोडि अ = जो दि - अ = जोतिः अ = ज्योतिः। अ क् क् = ज् - अ क् क् = च् अक्र = चक्र। अर्थात् ज़ोडेक का मूल शब्द 'ज्योतिश्चक्र' है।

वेदमें सूर्यके लिये ज्योति शब्द आया है। जैसे नित्यके यज्ञ मन्त्रोंमें सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः।

इसके अतिरिक्त चक्र शब्द वही है जिसका अपभ्रंश प्राकृत भाषाओंमें चक्कर, चक, चाक आदि शब्द हैं। आंग्ल भाषामें circle सर्किल, सर्किट आदि शब्द हैं।

चक्र और सर्किल

डा० स्कीट महोदय अपनी एटिमालोजिकल डिक्शेनरीमें लिखते हैं—

circle—a ring (छल्ला), a small ring (छोटा सा छल्ला)

circuit (दायरा), a revolving एक (चक्कर परिभ्रमण या प्रदक्षिणा) revolutioni (गिर्द घूमना प्रदक्षिणा), orbit (परिधि, क्रान्ति मार्ग)। इस शब्द-की रचना पर ध्यान दें। निरुक्तकार कहते हैं "चक्रं चकते र्वा, चरते र्वा, क्रामते र्वा," इसमें तीन धातुओंकी सम्भावना है। चक धातु, चर धातु क्रम धातु। इनमेंसे 'चक' का अर्थ तृप्ति और प्रति-घात है, चरका अर्थ खाना और गति करना और क्रमका अर्थ कदम रखना (पादविक्षेप) है। इन धातुओंमें गति करना और गति देना दोनों अर्थ विद्यमान हैं।

अब सरकिल शब्दको लीजिये। कोशकारने इसमें भी गतिका (revolve) अर्थ लिया है। अर्थोंमें भेद नहीं है।

शब्द रचनामें भी बहुत समानता है Circle = चर्कर = चक्र। इसी प्रसंगमें एक शब्द सर्किट circuit पर भी ध्यान दीजिये। इसमें वही रचना स्पष्ट हो रही है।

लेटिनमें इसका रूप circumitus 'सर्किमिटस' है। लैटिनके रूपमें 'म' का विशेष समावेश है। पिछला अस् भाग तो शब्दका अंश नहीं है, विभक्ति मात्र है। शब्दका शुद्ध रूप सर्किमिट है जिसका प्राचीन रूप = circumitus = चर्क मित = चक्रमत = चंक्रमित (सं०)।

परन्तु वेदमें एक शब्द 'चर्कृति' आया है जिसका अर्थ है चीलकी तरह आकाशमें चक्कर लगाना। जैसे ऋ० ५,७४,६,

> शमू षु वां मधू युवा अस्माकमस्तु चर्कृतिः।
> अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥

हे मधुवाले अश्वियो, हमारे प्रति तुम दोनों-का बार बार लौट कर आना (चर्कृति) हमारे लिये सुख कर हो। विशेष ज्ञान वाले नीचे जाने वाले आप दोनों दो बाज़ोंकी तरह अपनी गतियोंसे जाओ।

इस वैदिक शब्द चर्कृतिः और सर्किट शब्दकी तुलना कीजिये।

इसका पर्याय अंग्रेजीमें ओर्बिट् (Orbit) है। इस पर भी इस प्रसंगमें विचार कीजिये तो रहस्य और स्पष्ट हो जायगा।

orbit—orb, a sphe e, a celestial body, eye.—चक्र, मण्डल, आकाशीय पिण्ड, आंख, (अक्षिगोलक)। इस शब्दका प्रयोग भी चक्र या circle के अर्थमें होता है। ओर्ब या ओर्बिट, यह शब्द उर्वी शब्दसे बना प्रतीत होता है। उर्वी = पृथ्वी मण्डल।

इसके अन्य पर्याय शब्द जैसे sphere. यूनानी शब्द sparya = स्पर्यासे बना है, जो स्वतः संस्कृत-के स्वः (स्वर) शब्दसे बना है। एक शब्द ग्लोब Globe है। उस पर भी कुछ ध्यान दीजिये।

Globe—a ball, a round body, L. glob-um. glomus, a ball, clue. गोलपिण्ड, गेंद; लैटिनमें एक रूप है ग्लोमस; इस शब्दका वास्तविक रूप है ग्लोम = गलम = कलम = कलम्ब = कदम्ब (कदम्ब गोलक)

इस प्रकार हम देखते हैं कि जितने पारिभाषिक शब्द हैं वे अपने मूल अर्थ रखते हुए भी विशेष अर्थमें रूढ़ि हो गये हैं। यह सभी शब्द किसी मूल भाषासे आये हैं। इनके अर्थोंमें भी विशेष भेद नहीं है, वर्ण रचनामें भी अस्वाभाविक परिवर्तन नहीं हुआ है।

पाठक क्षमा करें हम अपने मूल विषयको बहुत दूर छोड़ आये हैं। हम फिर उसी पर जाते हैं।

पूर्वोक्त विवेचनासे इस परिणाम पर पहुंचे थे कि Zodiac. जोडेक शब्दकी प्राचीन परिभाषा ज्योतिष्-चक्र है; अब यह भी स्पष्ट करना उचित है कि वेदमें इसका प्रयोग किस प्रकार हुआ।

इसमें संदेह नहीं कि चक्र शब्दका वेदमें बहुत-से अर्थोंमें प्रयोग हुआ है; परन्तु तो भी हम यह अवश्य कहेंगे कि चक्र शब्द ज्योतिः शास्त्रकी परिभाषा बन चुका था और उसको सामान्य प्रयोगसे अधिक विशेषता प्राप्त हो चुकी थी।

सामान्य रूढ़ि प्रयोगमें चक्र=दायरा, चक्कर (Round) पहिया। कुम्हारका चाक, दौरा, इत्यादि। परन्तु 'सूर्यका चक्र' इसका तात्पर्य यह है कि सूर्यका क्रान्तिवृत्त। ज्योतिः—चक्र=ज्योतियोंके घूमनेका मार्ग। ज्योतिः—ग्रह और सूर्य और चन्द्र। इनके घूमनेका मार्ग ज्योतिश्चक्र कहलाता था। सूर्यके क्रान्तिमार्गका वर्णन वेदमें इस प्रकार किया है।

> द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणिनभ्यानि क उ तच्चिकेत।
> तस्मिन् साकं त्रिशतानि शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्नचलाचलासः॥

बारह प्रधि हैं, एक चक्र है, तीन नभ्य हैं, इसको कौन समझ सकता है। उसमें ३६० शंकु लगे हैं और वह शंकु चलते हैं। (ऋ० १, १६४, ४८)

इस वेदमन्त्रके द्रष्टा ऋषि दीर्घतमा हैं। जो घोर रात्रिके अन्धकारका रहस्य जाननेमें चतुर ज्योतिषी प्रतीत होते हैं। उन्होंने एक और उसी सूक्तमें इस चक्रका दूसरे रूपसे वर्णन किया है।

> द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
> आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः॥११॥

"एक चक्र है जिसमें बारह अरे लगे हैं; वह बराबर आकाश मण्डल भरमें सब तरफ़ है। हे अग्ने सूर्य! तुम्हारे ७२० पुत्रोंके जोड़े (नर मादा) खड़े हैं।"

पूर्व मन्त्रमें १२ परिधि बतलाई थीं, यहां १२ अरे हैं; वहां ३६० शंकु थे यहां ७२० बालकोंकी जोड़ियां हैं। इसी प्रकरणको वेदमन्त्रमें रूपान्तरसे बतलाते हैं।

> पञ्चपादे पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथ इमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्त चक्रे षडर आहुरर्पितम्॥१२॥

"द्यौके पिताको पांच पैरवाला और बारह शकलों वाला और आधे भागमें बैठा हुआ बतलाते हैं और दूसरे विद्वान ६ अरों वाले सात चक्र पर आंख रख कर बैठनेवाला मानते हैं।"

इस प्रकारके और इस विषयके हम बहुत से वेदमन्त्र पाठकोंके समक्ष रख सकते हैं। परन्तु उनका यहां उल्लेख करना लेखको बढ़ाना मात्र होगा। हम यहां उक्त मन्त्रों पर ही संक्षेपसे विचार करेंगे। प्रथम मन्त्रमें

"द्वादश प्रधयः" १२ प्रधियां हैं। और 'चक्रमेकम्' एक चक्र है। अर्थात् एक चक्रकी १२ प्रधियां हैं। यहां प्रधि शब्द विचार करने योग्य है। सायनने लिखा है कि—

"द्वादश मासा एकम द्वितीय चक्रं क्रमण स्वभावं चक्रमाश्रिताः" १२ महीने एक अद्वितीय चलनेके स्वभाववाले चक्र पर आश्रित हैं। अर्थात् सायनके मतसे प्रधि शब्द मासका प्रतिनिधि है। इसी प्रकार वेदमन्त्रमें तीन नभ्य, और ३६० शंकुओंका उल्लेख है। सायनने तीन नभ्योंसे ग्रीष्म वर्षा और हेमन्तका अर्थ ग्रहण किया है; ३६० शंकुओंसे ३६० दिन लिए हैं।

मोटे रूपमें सायनकी व्याख्या बहुत उत्तम है। परन्तु हमें इसमें और भी गहरे वैज्ञानिक रहस्य का पता लगता है। कालके विशेष भागोंकी गणना करनेके लिए वैज्ञानिक विद्वान समस्त संसार चक्रका प्रतिनिधि स्वरूप अपने यन्त्रको ही बनाता है। उसकी सहायतासे प्रत्यक्ष वर्णन किया है। एक चक्र (Disc) है जिसका आकार गोल है; वह राशि चक्रका प्रतिनिधि है उसपर एक वृत्त खींचा

गया है जिसको वेदमन्त्रमें चक्र कहा गया है। वृत्तकी कोरको १२ भागोंमें बांट दिया है। एक एक भाग 'प्रधि' बताता है रथके चक्रकी धारको बनाने वाले लकड़ीके टुकड़ोंको प्रधि कहा जाता है। (पार्श्वफलके प्रधीदत्युच्यते सायन ऋ० १०।१३८, ६)। इन्हींकी समानतासे मन्त्रके चक्रको पहले १२ भागोंमें बांटकर कोरके एक एक भागको प्रधि कहा गया है। वर्तमानकी एक एक राशि वैदिक कालमें 'प्रधि' कहाती थी। फलतः वैदिक विद्वानों ने अपने ज़मानेमें अवश्य ज्योतिश्चक्रको १२ राशियोंमें बांट रखा था। आगे फिर उनमें तीन 'नभ्य' थे। उस मापनयन्त्रके चक्र Dial or circle को तीन ऐसी रेखाओंसे विभाजित किया था जो समान भावसे केन्द्र (नाभि) पर मिलती थीं। उन्हीं तीन रेखाओं (व्यासार्द्धों) को नभ्य कहा गया है। इसके अतिरिक्त उस चक्रकी धार पर ३६० शंकु अर्पित थे अर्थात् कीलियां सी जड़ी हुई थीं। वह चलाचल थीं। अर्थात् बराबर चलती थीं। उन पर कालकी गतिकी गणना होती थी। उन परसे गति का पता चलता था।

इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि वह ज्योतिश्चक्र का दर्शक यन्त्र ३६० अंशोंमें बांटा गया था। जैसे घड़ीका यन्त्र ६० भागोंमें बांट दिया जाता है और प्रत्येक भाग मिनट कहाता है; उस भाग परसे सुई के गुज़रनेसे मिनट गुजरा हुआ कहाता है। इसी प्रकार वह ३६० भाग (शंकु) स्वयं स्थिर रूपसे अंकित थे तो भी काल गणनाके उपचारसे वे शंकु ही चलाचल (गुजरते हुए) कहाते थे। वह अवश्य दिनके प्रतिनिधि थे। इसमें संदेह नहीं परन्तु वर्षमें ३६५ दिन होते हैं इस विषमताका कोई समाधान नहीं। इसलिए हमें यही कहना पड़ेगा कि यह ज्योतिष चक्र या ज़ोडिएक सर्कलको ३६० अंशोंमें (डिग्रियों) में बांटा गया था।

जैसे एक ही घड़ीके मुख पटल (डायल Dial) पर घण्टा मिनट और सेकण्ड तक अंकित कर दिये जाते हैं उसी प्रकार इस मन्त्रमें भी तीन चतुर्मास, १२ राशि, और ३६० अंशोंको अंकित कर दिया था इसीलिए वेद मन्त्रमें लिखा है—

तस्मिन् साक त्रिशताः न शंकवः अर्पिताः षष्ठिः न चलाचलासः।

उस (चक्र) पर एक ही साथ ३६० शंकु अर्पित (marked) कर दिये थे—लगा दिये थे वे थे तो स्थिर तो भी चलते मालूम होते थे। (नचला चलासः चला चलास इव इत्थं।) इस विवेचनासे अनायास ही हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वैदिक कालमें ऋषियोंने ज्योतिश्चक्रको १२ राशियोंमें और ३६० अंशोंमें बांट लिया था। और उससे कालका गणना करते थे। अब अगला मन्त्र लीजिये—

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।

गोलोकके चारों तरफ ऋतु (गतिमान पिण्ड-सूर्य) का चक्र १२ अर वाला है और वह कभी टूटता नहीं अर्थात् बराबर चलता रहता है। यहां ७२० पुत्र परस्पर जोड़ी बनाकर इर्द गिर्द खड़े हैं।

यह ७२० बेटे या पुत्र इस चक्रके ही हिस्से हैं और वह मिथुन अर्थात् जोड़ेवाले हैं। जैसे स्त्री पुरुषका जोड़ा होता है वैसे ही वह भी दो दो हैं। जैसे चतुर लोग अपने संकेतके लिए पूर्ण अंशको मोटी लकीरसे और आधे अंशको पतली या छोटी लकीरसे दिखलाते हैं इसी प्रकार वह भी अंकित हैं। इस मन्त्रमें उक्त ३६० अंशोंको भी दो दो भागोंमें कर दिया है। इस कारण उनके जोड़े हो गये हैं। यों तो एक ही अंश है पर दो कर देनेसे मिथुन प्रतीत होते हैं। जैसे स्त्री पुरुष एक दूसरे का आधा अङ्ग हैं वैसे वह भी एक दूसरेके अङ्ग हैं और पूर्ण अंशके पूरक हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ और सायनने इनको दिन रातका प्रतिनिधि माना है। परन्तु वेदकी क्रिया 'तस्थुः' है। यही बतला रहा है कि वह स्थिर (Fixed) माने गये हैं।

तीसरे मन्त्रमें अन्य विद्वानोंके बनाये हुए गणना यन्त्रोंको स्पष्ट किया है। जिनमें एक अस्प-

द्वारा ज्योतिश्चक्रको चक्र स्वरूप नहीं मानते थे। वह उसकी पुर रूपसे कल्पना करते थे और सूर्यको उसमें बसनेवाला मानते थे। उसमें वह पांच स्थान बनाते थे और उनको १२ हिस्सोंमें बांटते थे।

तीसरे सम्प्रदायके लोग सूर्यको बीचमें विचक्षण द्रष्टा रूपसे विठला देते थे और ६ अरों वाला चक्र (वृत्त=Circle) खींचते थे और इस प्रकारके ७ चक्र (Seven cricles सप्त चक्र) उसके गिर्द बना लेते थे।

वस्तुतः ऋषियों ने यह नाना प्रकारकी कल्पनाएं केवल गणनाकी सुगमताके लिए की थीं। इन विधियोंके अतिरिक्त किसी नयी गणना विधिका आज तक आविष्कार नहीं हुआ है। सूर्यको केन्द्र मान कर सात ग्रहोंके क्रान्ति वृत्त या मार्ग चक्रोंको खींच कर उनको अंशोंमें विभाग करनेकी रीतिका भी वेदमें उल्लेख किया है। इन सब चक्रोंमें भी १२ परिधियों और ३६० या ७२० अंशोंका विभाग समान रूपसे समझा जाता था।

उपसंहारमें स्पष्टतासे हमने वैदिक कालकी इतनी परिभाषाओंको जान लिया है।

वर्त्तमानमें	वैदिककालमें
१. राशि चक्र zodiac	चक्र ज्योतिश्चक्र
२. राशि-Sign.	प्रधि
३. व्यासार्द्ध, त्रिज्या. (radius)	नभ्य, अर, पाद,
४. अंश Degree	शंकु, पुत्र.

अगले लेखमें हम अन्य परिभाषाओंको भी स्पष्ट करेंगे।

—जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार

पशु-पालन

[ले०—कुंवर ब्रजेन्द्रसिंह क्षत्रिय]

कृषि-प्रधान भारतमें जहां बैलोंका खेती, खिचाई आदि कामोंमें साधारणतः प्रयोग किया जाता है और जहां सर्व-साधारणके आहार-व्यवहार में दुग्धकी उपस्थिति सामान्य रूपसे प्रामाणित है वहां "पशु-पालन" अत्यावश्यक है।

बलहीन बैलोंसे कृषि कार्योंमें पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त करना प्रायः असम्भव ही समझा जाता है। इसी कारण हमारे साधारण कृषकोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है। वह सदैव निर्बल और निर्धन ही रहते हैं। कृषिवृद्धि न होनेसे उनके मवेशियोंको भी पूरे परिमाण में चारा नहीं मिलता। इसीलिए वह प्रायः दुर्बल ही रहते हैं। धनहीन कृषक व्यय करके अपनी मवेशियोंका पालनपोषण करनेमें और उन्हें यथेष्ट भोजन देनेमें असमर्थ हैं। किसानोंकी दरिद्रताका कारण कृषि-हीनता ही है। उपज बढ़ाना अथवा उसको उत्तम रूपमें परिवर्तित करना उत्कृष्ट और बलिष्ठ वृषभोंके ऊपर निर्भर है। उपजकी उन्नति होनेसे केवल किसानोंकी ही उन्नति नहीं, किन्तु स्वदेशोन्नति भी होती है। पशु-उन्नतिसे कृषि-उन्नति और कृषि-उन्नतिसे समस्त संसारकी उन्नति होना स्वतः सिद्ध है। पशुओंको दाना, घास, इत्यादि स्वच्छ और पर्याप्त परिमाणमें देनेसे उनका केवल बल ही नहीं बढ़ता, बल्कि उनके गोबरका भी लगभग सभी भाग लाभदायक अंशोंसे परिपूर्ण हो जाता है। उसमें वह पदार्थ अधिक रूपसे संयुक्त रहते हैं, जिनके खादके रूपमें प्रयोगसे उपजकी अद्वितीय वृद्धि होती है। यही नहीं बल्कि गोबरके महत्त्व-पूर्ण खादसे उत्पन्न हुआ अनाज भी स्वादमें अपने ढङ्गका निराला ही होता है। आधुनिक कृषिके नये नये औज़ारों (Improved Implements) का विशेषतर प्रयोग

करना तभी लाभदायक हो सकता है, जब उनको काममें लानेवाले वृषभ काफी बलवान हों।

इतिहास देखनेसे विदित होता है कि दसवीं शताब्दीके लगभग इङ्गलेण्डमें जैसी मवेशियाँ पाई जाती थीं, वैसी ही—या उनसे कुछ ही निम्न श्रेणी-की मवेशियाँ—भारतीय प्रदेशोंमें इन दिनों दिखाई देती हैं। इङ्गलेण्डकी आधुनिक पशु-जातीय गौरव वृद्धि चार प्रकारसे हुई है—उत्कृष्ट सांड और गायों द्वारा दुमेल-उत्पत्ति (Cross-breeding) करानेसे, उत्तम भोजन (दाना, घास, चारा, भूसा, इत्यादि) देनेसे, आरोग्यताका पूरा पूरा ध्यान रखनेसे, और वैज्ञानिक रीतिके अनुसार पालन-पोषण करनेसे। इङ्गलेण्डके वर्त्तमान पशु-वंशका गौरव इतना बढ़ा चढ़ा है कि अब उसके पूर्व-जोंसे उसकी तुलना किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती। वहांकी पशु-शालाएं सर्वोत्तम और जगत्प्रसिद्ध हैं। वहांके पशुओंको देख कर, पुनः भारतीय पशुओंपर दृष्टिपात करनेसे "मोहर-कोड़ियों" जैसा अन्तर प्रतीत होता है। हमारे भारतीय प्रदेशोंमें शायद ही कोई ऐसा पशु (गाय, बैल,) होगा, जिससे कि इङ्गलैण्डके पशुओंकी तुलना की जा सके। वैज्ञानिक दृष्टिसे यदि देखा जाय, तो यह शीघ्र ही ज्ञात हो सकता है कि भारतीय पशुओंकी हीन-दशा सुधारनेमें कितने समयकी आवश्यकता है। वह चाहे जैसी हो, परन्तु निराशा जनक नहीं है।

नवीं शताब्दीके लगभग इङ्गलेण्डकी गायें इतना कम दूध देती थीं कि वह उनके वत्स-पालनके लिए भी पर्याप्त न होता था। उस समय सामान्य श्रेणीकी गाय केवल ४५) रु० में खरीदी जा सकती थी; परन्तु आज-कल ७५०) रु० से कम मूल्यमें गायका मिलना प्रायः असम्भव ही है। दुमेल-उत्पादन द्वारा इङ्गलैण्डकी करीब-करीब सभी गायें उत्तम श्रेणियोंमें विभक्त हो गई हैं। वहांकी साधारण दर्जेकी गाय, प्रत्येक दिनमें, कमसे कम चालीस पौण्ड दूध देती है। फिर बता-इये भारतीय गायोंकी तुलना उनसे किस प्रकार की जाय? अधिकांश भारतीय गायें इतना कम दूध देती हैं कि घी, मक्खन अथवा दुग्ध बेचने के लिए उनका रखना बिलकुल निरर्थक है। वह चार पांचसेरसे अधिक दूध वर्त्तमान दशामें कदापि नहीं दे सकतीं। इङ्गलेण्डके गवर्नमेंन्ट—फार्मोंमें आज-कल जैसे उत्कृष्ट पशु (गाय-बैल) उपस्थित हैं, वैसे ही हमारे हौसलेदार भारतीय शौकीनोंके यहां बीस वर्षसे पूर्व मिलना अत्यन्त कठिन है।

मोन्टगोमरी* (Montgomery) नस्ल में पूसा-रिसर्च इन्स्टीट्यूट फार्म (Pusa-Research Institute Farm) ने दश वर्षके अन्दर इतना अच्छा परिवर्तन किया है कि जिन दिनोंमें गायें दूध नहीं देतीं, उन दिनोंमें भी दूधका हिसाब फैला कर, तीन सेरसे साढ़े चार सेर तक दूध वह नित्य-प्रति दे सकती हैं। पूसा-आयर्शियर-मोन्टगो-मरी (Pusa-Ayrshire-Montgomery) नस्लकी प्रत्येक गाय, उसी हिसाबसे, साढ़े सात सेर तक दूध देती है। प्रान्तीय गवर्नमेन्टके प्रबन्धमें जो पशु-पालन-विभाग हैं और उनमें दुमेल-उत्पादन द्वारा जो उत्कृष्ट पशु-परिवर्तन किया गया है वह अवश्य ही प्रशंसनीय है। उनमें जो पशु पैदा किये जाते हैं, वह अतिशय बलवान और दीर्घाकार होते हैं। ग्रामीण पशुओंसे उनका मूल्य भी अनुमानतः ४०)-५०) रु० अधिक होता है।

भारतमें "पशु-पालन" सीखनेकी विशेष आव-श्यकता है। जब तक हमारे भारतीय सज्जन "पशु-पालन" पर दत्तचित्त होकर ध्यान न देंगे, तब तक स्वदेशी पशुओंकी हीन दशाका सुधारना असम्भव है। भारतीय पशुओंका हित-चिन्तन प्रत्येक मनुष्यका परम कर्त्तव्य है। भारत-निवासियों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि वह "पशु-पालन" में तन, मन-धनसे यथाशक्ति सहायता दें जिसमें भार-तीय पशु उत्तम श्रेणीके होकर गौरवके उन्नत शिखर पर पहुंच जांय। "पशु-पालन" स्वर्गका ही पथ-प्रदर्शक है—नरकका नहीं। "पशु-पालन" मूल है,

उसीको अनुपम दशामें रखनेसे संसार रूपी वृक्ष फल-फूल सकता है।

हिसाब लगानेसे ज्ञात हुआ है कि समस्त भारतवर्षकी पशु-संख्या "साढ़े चौदह करोड़" है; इसलिए उनको अच्छा खिला-पिला कर, वैज्ञानिक ढङ्ग से उनका पालन-पोषण करके उनकी शोक जनक दशा सुधारनेमें और उनका मूल्य बढ़ाने तथा उनको उत्कृष्ट बनानेमें अभी बहुत गुंजाइश है।

गणित और प्राचीन भारत

प्रिय पाठकगण! यह तो सभी जानते हैं कि अत्यन्त प्राचीन कालसे भारत गणितका केन्द्र रहा है और यहींसे इस विषयका प्रसार समस्त संसारमें हुआ है। इस लेखमें मैं यथा शक्ति यही प्रकट करनेकी चेष्टा करूँगा कि हम लोगोंकी यह कल्पना कहाँ तक सत्य है।

बहुतेरे सज्जन इस विषयको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और अकसर कहा करते हैं कि अल्ला मियाँ ने अपने बैरियोंके बलको छिन्न भिन्न करनेके अभिप्रायसे प्रकृतिके कानूनमें यह एक नई धारा निकाली है। जो हो, पर अगर न्याय और विचारकी अवहेलना न कर उसका उचित उपयोग किया जाय तो निःसन्देह सारा भूमंडल गणित मय ही देख पड़ेगा। अगर अङ्क निकाल लिया जाय तो संसारमें सभीको बाइबिलमें लिखी हुई (Confusion of tongue) जबानकी घबड़ाहटका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाय! मेरी समझमें यह कहना अत्युक्ति न होगा कि जिस प्रकार अग्नि समस्त संसारमें सर्व व्यापी है, पर 'बिना यथेष्ट उद्योग किये ज्ञात नहीं होती; उसी प्रकार किसी न किसी रूपमें गणित भी सर्व व्यापी है और इसके जाननेके लिए विचारकी आवश्यकता है। ज्योतिष वेदाङ्गमें लिखा है कि—

यथा शिखा मयूराणाम् नागानांमणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्ग शास्त्राणाम् गणितम् मूर्धनिस्थितम्॥

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रचारमें केवल नव अङ्क और एक शून्य ही क्यों आते हैं तथा इन अङ्कोंका ऐसा आकार क्यों कर बना?

अनुमानसे ऐसा जान पड़ता है कि स्वभावतः मनुष्यकी प्रकृति अपने पैरों पर खड़े होनेकी होती है; इसी नियमानुसार प्राचीन कालके मनुष्यों ने सम्भवतः अपनी अंगुलियों पर गिनना आरम्भ किया होगा और सभों को गिनकर उसका नाम दहाई या दस रख दिया होगा। चूंकि अंक आँकि धातुका रूपान्तर है और उसका अर्थ चिन्ह होता है; इससे यह स्पष्ट है कि इस दहाईको दूसरोंको सिखानेके निमित्त यह रूप दिये गये हैं। पुराने ग्रन्थोंके पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि दस की पद्धति एरिस्टाटिल के पहले यूनानमें पहुँच चुकी थी; क्योंकि उस गणितज्ञ ने भी अपने प्राब्लमेटा नामक पुस्तकमें यही प्रश्न उठाया है।

अङ्कोंके आकारके निमित्त पौराणिक पंडितों का कथन है कि ॐ का रूपान्तर होनेसे नव ग्रहके आकार बने। फिर वह बिगड़ कर १, २, ३, इत्यादिके रूपमें हो गये? परन्तु यह कल्पना ठीक नहीं जँचती; क्योंकि सूर्य्यका रूप "०" है यह बिगड़ कर बड़े से छोटा हो सकता है, परन्तु "१"के रूपमें नहीं आ सकता। यही दशा औरों की है। मेरी समझमें गणित तरङ्गिणी में लिखा हुआ पं० दुर्गाशंकर पाठकका अनुमान अधिक आदरणीय है। उनका कहना है कि कुबेरकी नवनिधियोंका थोड़ा सा रूपान्तर होनेसे यह नव अंक बन गये हैं। उन नवनिधियोंका आकार यहाँ दिया जाता है। पाठक स्वयं विचार लें कि उपरोक्त अनुमान कहाँ तक सत्य है।

कुन्द	= १	मकर	= ५
मुकुन्द	= २	खर्व	= ६
नील	= ३	पद्म	= ७
कच्छप	= ४	महापद्म	= ८
		शंख	= ९

केन्टन साहब अपनी पुस्तकमें लिखते हैं कि पिथेगोरस के पहिले यूनानी लोग केवल पाँच अंक जानते थे। इन्होंने, छः और सात अंकोंके अतिरिक्त कई एक मिश्रित अंक निकाले; परन्तु हिन्दुस्तानके लोग पिथेगोरससे सहस्रों वर्ष पहिलेसे नव अंकोंका प्रयोग करते थे। समरिता, रोम, मिश्र, वेबिलोन आदि देशोंके अंकोंका भिन्न भिन्न आकार तथा मान था; परन्तु न तो इनका रूप ही सुगमता से बनता था और न इनके बनानेका कोई नियम ही था जैसा कि हिन्दुस्तानी अंकोंमें हैं।

मोनियर विलियम (Indian Wisdom pp.124) और मैनिङ्ग साहब (Ancient and Medivial India Vol IV pp. 376) का अनुमान है कि यह इकाई और दहाईका नियम और अंक हिन्दुस्तानसे आकर सम्पूर्ण पाश्चात्य देशोंमें फैले। उनका यह भी कहना है कि प्राचीन कालके हिन्दू अंक गणित और बीजगणित स्वयं भली भांति जानते थे। उन्होंने यह ज्ञान दूसरोंसे न सीख कर दूसरोंको सिखाया। वीपेक साहब लिखते हैं कि इन अंकोंका प्रचार पहिले एलेग्ज़ेड्रियामें हुआ; फिर पश्चिमी अफ्रीकामें और बादको पहिली शताब्दी में सारे यूरोपमें हो गया। रोमने नर्वी और जर्मनी ने १७ वीं शताब्दीमें इस पद्धतिको अपनाया।

डाक्टर इज़ायक टेलर अपनी अलफावेट (Alphabet Vol. II pp. 623) नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि इन अंकोंकी बनावटका रहस्य बड़ा ही दुर्गम है; जान पड़ता है कि जिन अंकोंको हम लोग काममें लाते हैं उनका आकार हिन्दुस्तानियोंने बनाया, अरबवालोंने इनसे सीख कर स्पेनवालोंको सिखाया और फिर बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियोंमें सारे यूरोपने इन्हें ग्रहण कर लिया। पर इससे यह न समझना चाहिये कि इनका प्रयोग ऐसी ही सुगमतासे हो गया जैसा लिखा गया है। आज हम लोग केवल विदेशी वस्तुओंके वहिष्कार करनेकी आयोजना कर रहे हैं; परन्तु १३ वीं शताब्दीमें यूरोपवालोंने भारतीय वस्तुओंकी कौन कहे हिन्दुस्तानी हिन्दसों तकका परित्याग करनेका पूर्ण उद्योग किया। सन् १२९९ ई० में इटली गवर्नमेंटने लोरेन्सके महाजनों पर इस लिये अभियोग चलाया कि वह अपना हिसाब हिन्दुस्तानी अंकोंमें करते थे; उसी सालके लगभग पेडुआ विश्वविद्यालय ने किताब बेचनेवालोंको आज्ञा दी कि वह किताबकी कीमत हिन्दुस्तानी अंकोंमें न रख कर शुद्ध हरफ़ोंमें लिखें। इनको सबसे पहिले हिसाब जाननेवालोंने अपनाया, फिर इनका प्रयोग किताबोंके पन्ने लिखनेमें किया गया। इटलीकी उपरोक्त घटनाके थोड़े ही दिन बाद गवर्नमेन्टकी ओरसे सन् १३२५ ई० में एक वारन्ट निकला जिसमें हिन्दसोंसे काम लिया गया। १५वीं शताब्दी तक यह अंक पद्धति जर्मनी इंगलैंड फ्रान्स आदि देशोंमें पहुँच चुकी थी; परन्तु प्रयोगमें अक्सर रोमन और हिन्दुस्तानी दोनों अंक एक साथ आया करते थे। सन् १४८९ का लिखा हुआ एक लेख है जिसमें १२ के लिये X २ लिखा है। १५ वीं शताब्दीमें हिन्दुस्तानी और रोमन अंकोंके मध्य बड़ी भयंकर होड़ाहोड़ी मची और यह निश्चय करना कठिन हो गया कि इन दोनोंमें कौन प्रधान है तथा प्रयोगके योग्य है। हिन्दुस्तानी पद्धति शून्यके आविष्कार हो जानेसे सब प्रकार रोमनसे उच्च कोटिका निकला और १६वीं शताब्दीके आरम्भमें, समस्त संसारको झकमार कर इसी प्रणालीको

गणितमें अपना पथदर्शक मानना पड़ा। इस विषयमें एलिफिंस्टन साहबका कहना है कि यूनानी अथवा संसारके समस्त जातियों पर हिन्दुओंकी प्रखर बुद्धिका अधिकार केवल शून्यके ही आविष्कारसे नहीं हुआ बल्कि इनके अंकोंके लिखनेकी प्रणाली और बनावटकी सुगमता ने विद्वानोंके मस्तिष्कको मथ कर चिरकालके लिये स्तब्ध कर दिया।

केजूरी साहब (pp. 66) अन्तमें लिखते हैं इस प्रकार मालूम होता है कि यूनानियोंमें सरल सुगम और यथार्थ आकार बनानेकी शक्तिका सदैव ह्रास रहा। वह अंकोंको यथोचित रूप कभी नहीं दे सके। इन (अंकों) के बनानेका गौरव तो किसी हिन्दूके ही भाग्यमें बदा था। काल चक्र तू बड़ा प्रबल और निष्ठुर है। तूने आविष्कारकके नामको कौन कहे उसके समय तकको ऐसा गोप्य रखा कि आज हम सब ज्ञान शून्य हैं। समझमें नहीं आता कि इतने महान आविष्कारके लिये जिसकी तुलना दशोंदिशामें कहीं हो ही नहीं सकती; आज किसको बधाई दें। विद्वद्मण्डली आज किसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करे।

इस प्रकार अंकोंकी बनावटका उल्लेख करनेके पश्चात् यह आवश्यक जान पड़ता है कि दहाई के इतिहासके विषयमें भी कुछ छानबीन की जाय।

व्यास भाष्यके १३वें सूत्रके दूसरे पदमें लिखा है—

यथा एका रेखा शतस्थाने शतं दशस्थाने दश एकश्चैक स्थाने।

इससे यह प्रकट होता है कि व्यास भाष्य लिखे जानेके पहिले दहाईका नियम हिन्दुओंको मालूम था (Seal pp. 51)। केवल यही नहीं इससे भी प्राचीन प्रमाण किष्किन्धाकाण्ड रामायणके २८ सर्गके ३० तथा ३१ श्लोक हैं। यजुर्वेद संहिताकी १७वीं अध्यायका दूसरा मन्त्र इस प्रकार है।

दशं च दशं च शतं च शतं सहस्रं च सहस्रम् चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं न्यार्वुदं च समुद्राऽच मध्यं चान्तश्च परार्धश्चै तामे अग्र इष्टका धनेवः सन्त्वमुत्रामुष्मिनलोके।

यानी—दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्वुद, न्यर्वुद, समुद्र, मध्य, अन्त, परार्ध संख्यायें मिलती हैं।

एडविन आर्नोल्ड साहबने लाइट आफ एशिया नामक पुस्तकमें लिखा है कि विश्वामित्रजी ने बुद्ध भगवानको निम्नलिखित दहाइयाँ इस प्रकार बतलाई—दश, शत, सहस्र, लक्ष, कोटि, नहुत, निनहुत, कम्भ विष्कम्भ, अबव, अश्क, कुमुद, गुन्धिक, उत्पल, पुण्डरीक, पदुम तककी दहाइयोंमें हस्तागिरि पर्वत से लेकर एक कण तक गिना जा सकता। परन्तु गौतम यह न समझो कि दहाइयोंका अन्त यहीं हो जाता है। इसके उपरान्त काठा है जिसमें आकाशके तारे गिने जाते हैं। अगर तुम्हें समुद्रमें कितने बून्द पानी है यह जानना हो तो कोटि काठा कि दहाई लगाओ। सर्व निक्षेपकी दहाईसे गंगाके सम्पूर्ण बालूके कण गिन सकते हो; इसके ऊपर अन्तःकल्प तक १० गंगाके बालूकी गणना, और असंख्य १००० वर्षतक समस्त संसार पर प्रति दिन लगातार पड़ी हुई पानीकी बून्दकी गणना बतलायेगा, इसके उपरान्त महाकल्पकी दहाई है जिसमें ब्रह्माके दिनका हिसाब होता है।

इन श्लोकोंसे पता चलता है कि गणितकी सीमा हिन्दुस्तानमें कितनी विस्तृत थी। आइये अब थोड़ी देरके लिए यूरोपकी ओर चल। सोमाडे अरिथमेटिका नामक पुस्तकके पढ़नेसे पता चलता है कि पेलियोट साहबने पहिले पहल सन् १४६८ ई० में million दस लाखका प्रयोग किया; फिर ट्रीलियन; नानीलियन आदि कहांसे आ गये और उनकी आवश्यकता ही क्यों पड़ी, यह कुछ समझमें नहीं। आता उनमें आकाश कक्षा और ब्रह्मायु दिनकी तरहके भी तो कोई अंक नहीं हैं। ऐसा जान पड़ता है कि संस्कृतमें बड़ी बड़ी दहाइयोंको देखकर उन लोगों ने भी अपने यहां इन दहाइयों को रख दिया। यूरोपीय गणितमें सन् १५८० तक तो

इन दहाइयोंका नाम तक नहीं था; निस्सन्देह यह अंक १७वीं शताब्दीमें माने गये।

आधुनिक प्रणालीमें हम लोग १६ स्थानोंकी दहाई काममें लाते हैं। इनका भी इतिहास बड़ा ही रोचक है जो किसी और लेखमें दिया जायगा।

अहमेशका लिखा हुआ एक हस्तलेख पढ़नेसे पता चलता है कि मिश्र देशवालोंने सन् १७०० ईसासे पूर्वमें अंक गणित सीखना आरम्भ किया और यूनानवालोंने १४०० ई० पू० में फोनिसियनसे अंकोंका ज्ञान प्राप्त किया। अहमेशने एक पुस्तक भी लिखी है जिसमें भिन्नोंका हर ६६ से अधिक नहीं है। बेबिलोनियावाले प्रत्येक भिन्नका हर ६० और रोमवाले १२ लेते थे। परन्तु हिन्दू गणितमें ऐसा कहीं नहीं है। यह हरके लिये हरएक अंकका प्रयोग कर सकते थे।

अहमेशने गुणा करनेकी रीति इस प्रकार लिखी है।

अ × १३ = ४अ + ८अ + अ = १३अ. परन्तु उस समयके हिन्दू गुणा करनेके ६ नियम जानते थे और साथ ही साथ ६ से जांच भी कर लेते थे। एक ७वां नियम पंडित गणेशशंकरने सन् १५६० ई० में निकाला जो कि बुद्धि-विलासिनी नामक पुस्तकमें लिखा है। आर्य्यभट्टीय नामक ग्रन्थसे पता चलता है कि उस समयके ज्योतिषी बहुधा कपाट सन्धि और गोमुत्रिका गुणनकी क्रियाको काममें लाते थे। सन् १६६२ ई० के लगभग जर्मनी वालों ने गुणा करनेकी एक नवीन रीतिका आविष्कार किया; परन्तु जांच करने पर मालूम हुआ कि वह हिन्दुओंका गोटी नियम था। इटलीके गणितज्ञ ल्यूकलडे वर्गोंने सन् १४६४ में सोमाडे अरिथमेटिका नामक पुस्तक बनाई जिसमें गुणा करनेके नियम लिखे हुये हैं; इनमेंसे अधिक तर हिन्दू नियम हैं।

आर्य भट्टके गोलाध्याय नामक ग्रन्थमें एक अध्याय अंक गणित पर भी है; उसमें निम्नलिखित विषयों पर प्रश्न किये गये हैं—वर्ग, घन, वर्गमूल, घनमूल, साधारण भिन्न, मिश्रभिन्न, वितत, भिन्न, बदला, मिश्रण, बीज गणितीय प्रश्न।

पं० सुधाकर द्विवेदी अपनी "गणितका इतिहास" नामक पुस्तकके ८५ पेजमें लिखते हैं कि यह एक अत्यन्त आश्चर्य्य उत्पादक विषय है कि यूक्लिड अंकोंका वर्गमूल लेना नहीं जानता था। उसको त्रिभुजके क्षेत्रफलका भी यथार्थ ज्ञान न था। उसी पुस्तकमें उक्त पण्डितजी का कथन है कि आर्किमिडीज़ जो कि यूनानके एक महान् विद्वान हो गये हैं २ का वर्गमूल १३५१/७८० से छोटा और २६५/१५३ से बड़ा लिखते हैं, जिससे मालूम होता है कि उस समय वर्गमूल अनुमानसे बतलाया जाता था।

(Irrational number) करणीगत संख्याके विषय का सबसे पहिले पं० श्रीधराचार्यने ८वीं शताब्दीमें अपनी त्रिशन्तिका नामक पुस्तकमें वर्णन किया; फिर बारहवीं शताब्दीमें भास्कराचार्य (११५६ ई०) ने लीलावतीके क्षेत्र व्यवहारके अध्यायमें दो एक प्रश्न इसपर दिये; परन्तु इसका यथार्थ नियम सन् १६५८ ई० में केवल कमलाकर भट्टने तत्वविवेक नामकी पुस्तकमें दिया है। उनके नियमानुसार इन अंकोंको सिवाय सीधी रेखाके और किसी रूपमें नहीं दिखा सकते; परन्तु रेखाएँ भी ठीक ठीक नापी नहीं जा सकतीं।

शुल्व सूत्रसे जान पड़ता है कि वर्गमूल और घनमूल आर्य्य भट्टसे सहस्रों वर्ष पहिलेके हिन्दुओंको भली भांति मालूम था (सुधाकर पृष्ठ ८६)। वितत भिन्न "करण ग्रन्थ" में पाया जाता है; परन्तु आधुनिक रूप लार्ड ब्राउन्कर (१६२०-१६८८) का सुझाया हुआ है; सन् १६१३ ई० में केटाल्डी ने भी इस भिन्नको लिखा; परन्तु इसका उत्तर न लगा सके (सुधाकर पृष्ठ ६०)

बहुधा यह कहा जाता है कि लेपज़िग साहब ने + और — के चिन्ह निकाले; परन्तु प्रोफेसर डे मार्गन साहब Math. by Morgan pp .19 के मतानुसार यह दोनों चिन्ह हिन्दुओंके निकाले हुए हैं।

गोलाध्याय (आर्य्यभट्ट—चौथी शताब्दी) ६७—७० श्लोकोंमें गुणनफल, भागफल, वर्गमूल और घनमूल जांचनेके नियम दिये हुए हैं; जोकि ६ घटा कर जांचनेवाले नियमपर निर्भर हैं। इस नियमको अलहसनने (६८०–१०३७) सीखा और सन् १५००-के लगभग ल्यूकसडे वर्गो इसे गुणनफल जांचने के काम में लाया (सुधाकर पृष्ठ २३)।

चौथी शताब्दीमें आर्य्यभट्टने अंकोंके स्थानीय मानकर सिद्धान्त निकाला जो कि निस्सन्देह एक महान आविष्कार है। शून्य तो बहुत पहिलेसे मालूम था पर आर्य्यभट्ट ने पहिले पहल इसे गणितमें लाकर अंकोंकी यह आधुनिक तरतीब दी। जर्मनीके एक महान गणितज्ञ स्क्लीगल साहबका कहना है कि इस दहाईवाले शून्य के निर्माता हिंदू हैं तथा अक्षरोंके उपरान्त अंकों के निर्माण करने-का गौरव भी सदाके लिए इन्हींको प्राप्त है; क्योंकि इससे महान आविष्कार संसारमें हो ही नहीं सकता—(Hindu Superioriy pp. 267)

कनिङ्गटन साहब अपने "गणितज्ञ इतिहास" नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि भास्कराचार्य (११५६ ई०) से बहुत पहिले हिन्दुओंको आजकलकी अंक गणितमें जितने विषय हैं उनमें से दो एक को छोड़ कर सभी मालूम थे—जैसे मूल, सूद, चक्रवृद्धि, सूद, मितीकाटा, अनुपात, हिस्सा, क्षेत्रफल, घन-फल, काम, दलाली, और बदला इत्यादि।

केजूरी का मत है कि संसारमें सबसे पहिले ऋण अंक और करणीगत अंक (Irrational number) के आविष्कार करनेवाले हिन्दू ही हुए।

श्री पंडित भास्करचार्य ने सन् ११६० ई० के लगभग यह सिद्धान्त जगतमें प्रसिद्ध किया कि अंक के वर्गमूल दो होते हैं अर्थात् एक धन और दूसरा ऋण। धन और ऋण दोनोंका वर्ग धन संख्या होती है। उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि ऋण संख्याका वर्गमूल नहीं होता।

तान्त्रिक संख्याकी शैली भी हिन्दुओंकी ही निकाली हुई है; यहां से अरबवाले इस विद्याको कुस्तुन्तुनियांमें ले गये। फिर १५वीं शताब्दीमें मास्केपुलस साहब ने इसका प्रचार यूरोपमें किया। ऐसा विश्वास परम्परासे चला आ रहा है कि इन तान्त्रिक कोष्टक अंकोंसे भूत प्रेत महामारी आदि भाग जाते हैं।

2	7	6
9	5	1
4	3	8

चूँकि यह विषय अत्यन्त रोचक है इस लिए मैंने इस पर एक अलग लेख देनेका विचार किया है जो जुलाई तक पाठकोंकी सेवामें भेजा जायगा।

विवाहके समय गोतम बुद्धसे और प्रश्नोंके अतिरिक्त एक यह भी प्रश्न पूछा गया था कि एक योजनमें कितने परमाणु होते हैं (ललितविस्तार)? मान्स विप् के का कहना है कि इस प्रश्न के आधार पर आर्किमेडीसने अपना एरिनारिय-सका सिद्धान्त निकाला था।

केजूरी साहब अपनी पुस्तक (गणितका इति-हास पृष्ठ १७८ – १७६) में लिखते हैं कि डायो-फेन्टस और हिन्दुओंके समयसे लेकर १७ शताब्दी तक (१००० वर्ष तक) अंक गणितमें एक भी आवि-ष्कार ऐसा न हुआ जो वैज्ञानिक दृष्टिसे उच्च कोटिका कहा जाय; हां सन् १७६६ के लगभग लेग्रांजी साहब ने बर्लिनमें कुछ लेख पढ़े जो अंक गणितमें नवीन थे परन्तु उनके Indeterminate equation की रीति हिन्दुओंके वृत्तिक शैलीसे बहुत कुछ मिलती जुलती है।

प्रिय पाठक गण; सम्भवतः आप लोग गणित की इस राम कहानीसे अवश्य ऊब गये होंगे। अतः हम भी लेखको यहीं समाप्त करते हैं; परन्तु अत्यन्त नम्रता पूर्वक आप लोगोंसे यह प्रार्थना है कि जिस प्रकार धैर्य्यके साथ आप ने इतना पढ़ा उसी प्रकार मनसे कोलब्रुककी लिखी हुई इन बातों पर भी एक क्षणके लिए अपने चित्तको आकर्षित लगाइये। यह वह बातें हैं जो सचमुच सुनहरे

अक्षरोंमें लिख कर रखनी चाहिये। उनका कहना है कि हिन्दुओंका साहित्य जो कि आज कल अत्यन्त अधोगतिको प्राप्त हुआ है गणितके उन सिद्धान्तोंसे भरा पड़ा है जो कि आधुनिक पाश्चात्य आविष्कारोंसे कहीं अधिक उच्च कोटिके हैं।

The Hindu literature even in degenerate state contains mathematical truths quite advanced to the latest European acheivement.

कालिका प्रसाद वर्मा

कीट-विज्ञान*

[ले०—श्री शङ्कर रावजोशी]

भूमण्डलका एक भी भाग ऐसा नहीं, जहाँ कीड़े न पाये जाते हों। अनुमान किया गया है कि संसारकी आबादीसे दूनी संख्या कीड़ोंकी है। फिर भी कई अनिवार्य्य कारणोंसे कीड़ोंकी वृद्धि मर्यादित ही रहती है। यदि प्रकृति ने कीड़ोंकी संख्या सम बनाये रखनेके उपाय न रचे होते, तो आजसे बहुत पहले ही सारा भूमण्डल कीड़ोंसे भर जाता।

कीड़ोंका आकार भिन्न भिन्न प्रकारका पाया जाता है। $\frac{1}{१०}$ इंचसे लगाकर ६ इञ्चकी लम्बाई तकके कीड़े पाये जाते हैं। कीटक-शास्त्रवेत्ताओंका मत है कि इस भूमण्डल पर करीब १० लाख जातिके कीड़े मौजूद हैं। ज़मीनकी सतह पर और मीठे जलमें, जहाँ भोजनका बाहुल्य होता है, कीड़े पाये जाते हैं। किन्तु खारे जलमें, विशेषतः समुद्र जलमें, एक प्रकारसे कीड़ोंका अभाव ही है। समुद्रके पानीमें या समुद्र तट पर बहुत ही कम जातियोंके कीड़े जीवित रह सकते हैं।

कीड़ोंका मानव-जातिके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य और कीड़ोंका चोलीदामन काला सम्बन्ध है।

बुद्धि और आदत—हम प्रतिदिन हज़ारों कीड़े देखते हैं, किन्तु उनकी गति विधिसे कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। शहद्की मक्खी, चींटी, दीमक आदि समाज प्रिय कीड़ोंके सामाजिक-जीवनका निरीक्षण करने पर भी यह नहीं मालूम हो सकता कि व्यक्तियोंका पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकारका है। कीड़ोंकी बुद्धि, ज्ञान, धारणा-शक्ति, इच्छा शक्ति आदिके सम्बन्धमें हम कुछ भी नहीं जानते। हमारा रोज़का अनुभव है कि टिड्डी दल कूचका बिगुल बजाकर एक दम दूसरे देशों पर धावा बोल देता है और दीमक, चींटी आदि एक बड़ी संख्यामें अपने अपने छत्तेमें से निकल कर, दूसरी जगहके लिए रवाना हो जाती हैं। परन्तु आज तक मानव-प्राणी यह नहीं जान पाया है कि ऐसा क्यों होता है। क्या एक व्यक्ति, दूसरेको छत्ते या स्थान विशेषसे हट जानेके लिए उत्साहित करता है या प्रत्येक व्यक्तिके मनमें वहाँसे हट जानेके विचार एक साथ ही पैदा होते हैं, जिससे वह वहाँसे प्रस्थान कर देते हैं? कीट-शास्त्र सम्बन्धी अनुसन्धानोंमें रात दिन निरत रहनेवाले बड़े बड़े वैज्ञानिक भी आजतक इस प्रश्नका समाधान-कारक उत्तर नहीं दे पाये हैं। फिर भी यह मान लेना अनुचित न होगा कि स्वतंत्र और नैसर्गिक परिस्थितिमें रहने पर प्रत्येक कीड़ा एक स्वतंत्र व्यक्ति है। एक व्यक्ति, सिवा उन कीड़ोंके जिनका वह शिकार करता है, दूसरे किसी व्यक्तिके अस्तित्व पर बिलकुल ध्यान ही नहीं देता। वह भोजन जुटाने या अन्य कामोंमें स्वतंत्र रूपसे लगा रहता है। उसकी गति-विधिसे यह बात बिलकुल मालूम ही नहीं होती कि वह अपने किसी दूसरे सजातीय-व्यक्तिके अस्तित्वका अनुभव करता है। उसके कार्योंसे यही सिद्ध होता है कि वह पूर्णरूपेण तनहा जिन्दगी बिताता है।

---

* लेखककी 'कीट-विज्ञान' नामक एक अप्रकाशित पुस्तकके आधार पर। —लेखक।

मधुमक्खी, चींटी, दीमक आदि समाज बनाकर रहनेवाले कीड़े इसका अपवाद तो अवश्य हैं; किन्तु व्यक्तियोंका पारस्परिक सम्बन्ध अभी तक निश्चित रूपसे नहीं जाना जा सका है। यह सच है कि वह मिलकर काम करते हैं; किन्तु उनके काम करनेका ढंग ठीक वैसा ही जैसा एक ही एंजिनसे चलनेवाली अनेक मशीनोंका।

व्यवहारमें हम कीड़ोंको छोटे जन्तु (organism) मानते हैं; समान परिस्थितिमें रहने पर एक ही जातिके कीड़ोंका जीवन-व्यापार और कार्य एक-सा ही होता है। उनके आचार व्यवहारमें थोड़ा बहुत फर्क तो अवश्य पाया जाता है, किन्तु वह इतना सूक्ष्म होता है कि उसका ज्ञान लेना अति कठिन है। यदि किसी जातिकी किसी उपजातिका जीवन-व्यापार एक विशेष प्रकारका हो, तो यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि उस जातिकी सभी उपजातियोंका जीवन-व्यापार समान परिस्थितिमें एकसा ही होगा और परिस्थितिमें थोड़ा फर्क हो जाने पर भी उनके जीवन व्यापारकी समानता बनी ही रहेगी; फिर भी, परिस्थितिके अनुरूप थोड़ी बहुत असमानता अवश्य ही पाई जायगी। मान लीजिये कि एक जातिकी इल्ली मध्य भारतमें मक्काके पत्तोंपर निर्वाह करती है। यही इल्ली, उन प्रान्तोंमें जहाँ मक्का नहीं होती है, ज्वारके पत्तोंको खाती हुई पाई जाय, तो कोई अचरजकी बात नहीं। किन्तु ऐसा होना नितान्त असम्भव है कि पत्र भक्षक कीड़ा किसी दूसरे प्रान्तमें पौदोंके तनेमें छेद करनेका आदी हो जाय और एक तीसरे प्रान्तमें वह शिकार करनेवाला (Predaceous) बन जाय। अतएव प्रत्येक जातिको एक स्वतंत्र-व्यक्ति मानकर अनुसंधान किये जा सकते हैं।

एक ही जातिके भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके आचार व्यवहारमें अधिक भिन्नताका पाया जाना असंभव है। कुछ जातियां ऐसी भी हैं, जिनके आचार व्यवहारमें अवस्था भेदके कारण भिन्नता पाई जाती है। कुछ जातिके कीड़े इने गिने भोज्य-पदार्थों पर ही जीवन-निर्वाह करते हैं। किन्तु घोंघके समान कुछ कीड़े ऐसे भी हैं जो अनेक प्रकारके पौदों पर जीवन-निर्वाह करते हैं। घोंट (चनेकी इल्ली) चनेके बीज, अफीमकी डौंडी, बाजरेकी बाली, सूरजमुखी आदिको खाती है और अमेरिकामें यही कीड़ा बिनौले भी खाता है और कई दिनों तक भोजन न मिलने पर यह अपने निर्बल सजातीयको भी मारकर खा जाता है। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम पाये जाते हैं।

निम्न श्रेणीके प्राणियोंके स्वभावमें अत्यल्प विभिन्नता पाई जाती है, किन्तु ज्यों ज्यों ऊँची श्रेणीके कीड़ोंकी ओर बढ़ते हैं स्वभावकी विभिन्नता अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है। अतएव केवल शारीरिक रचना से ही जातिका पहचान लेना संभव नहीं। इसके लिए जीवन व्यापार, आचार व्यवहार, और स्वभाव पर भी विचार करना अत्यावश्यक है। कीड़ोंकी शारीरिक रचनाका ज्ञान हमको सबसे अधिक है और उनके आचार व्यवहार और स्वभावका अत्यल्प; परन्तु धीरे धीरे हमारा यह ज्ञान बढ़ता जा रहा है और संभव है भविष्यमें वह पूर्णताको प्राप्त हो जाय। कीट-विज्ञानका अध्ययन करनेवालोंको यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि स्वभाव, जीवनपद्धति (mode of life) और जीवन-व्यापारकी तरह रंग, आकार और शरीर रचनामें भी प्रत्येक जाति एक स्वतंत्र व्यक्ति है। और इन्हींके आधार पर कीड़ोंकी जुदी जुदी जातियां मानी गई हैं। हमें तो इस पुस्तकमें सजीव कीड़ों पर ही कुछ लिखना है, न कि उनके निर्जीव शरीर और बाह्यावरणों पर। इस पुस्तकमें सजीव कीड़ोंके उड़नेकी रीति, गति, भक्ष्य पदार्थोंको खानेकी रीति और जीवन व्यापार और जीवन पद्धतिके साथ ही साथ उनके शरीरकी रचना पर भी विचार करना महत्व-पूर्ण और अनिवार्य्य है। कीट-विज्ञानका अध्ययन करने वालेको इनकी ओर कदापि उदासीन न होना चाहिये। और इसीलिए हमने कुछ सविस्तर विवे-

चन किया है। किसी जातिके दो व्यक्तियोंके आचार विचार आदिमें इतना फर्क रहता है कि जो कुछ हम एक व्यक्तिमें पाते हैं, वही कुछ स्थूल मानसे, सारी जातिके प्रत्येक व्यक्तिके विषयमें मान सकते हैं। कीट-शास्त्रवेत्ता मुख्यतः इसी बातका पता लगानेमें लगे हुए हैं कि अवस्था-भेदके कारण कीड़ोंके स्वभावमें कहां तक विभिन्नता पाई जाती है।

अब हम एक और विषय पर संक्षेपमें विचार करेंगे, और वह यह है कि वर्तमान युगमें जितने कीड़े पाये गये हैं, उनमें बुद्धि और स्वभाव कैसे पैदा हुए? उत्क्रान्ति-वादके सर्वमान्य सिद्धान्तों के अनुसार वर्तमान युगके कीड़ोंके पर्वज वह अति प्राचीन सूक्ष्म कीटाणु हैं, जो अत्यन्त प्राचीन-युग (Geologic-period) में इस भूमण्डल पर विद्यमान थे। धीरे धीरे इन सूक्ष्म कीटाणुओंका विकाश होता गया। प्रारम्भमें कीटाणुओंकी शरीर रचना सादी ही रही होगी और तब परिवर्तित अवस्थाके प्रभावके कारण उनकी शारीरिक बनावट, स्वभाव और जीवन-व्यापार तथा आचार व्यवहारमें क्रमशः थोड़ा थोड़ा परिवर्तन होता गया और हज़ारों वर्ष बाद वह पूर्णतया बदल गये। उनके पूर्वजोंके और उनके शरीरकी बनावट आदिमें जमीन आसमानका फर्क पड़ गया। सड़े गले वानस्पतिक पदार्थ खाने वाले कीड़े, परिस्थिति और अवस्थामें परिवर्तन हो जानेके कारण सड़े गले प्राणिज पदार्थों पर जीवन-निर्वाह करने लगे। पौदों पर जीवन निर्वाह करने वाले कीड़े, अन्य कीड़ों और प्राणियोंको खाने लगे और कुछ अपने सजातियोंको ही भक्षण करने लगे। हम अब भी जल और स्थलमें रहने वाले कीड़ोंके विकासकी अवस्थाएं (Stages) पाते हैं। अकसर देखा जाता है कि कुछ कीड़े नदी तट परकी वनस्पति पर जीवन-निर्वाह करते हैं। कुछ तट परकी वनस्पति पर रहते हुए भी जलमें से भोजन ग्रहण करते हैं। भूगर्भीय-इतिहास (Geological record) की अपूर्णताके कारण कीट-संसार सम्बन्धी विकास-वादकी अवस्थाओंका पता पा लेना असम्भव है। क्योंकि कीड़ोंके शरीर, छोटे, और कोमल हैं और वह जलदी नष्ट भी हो जाते हैं। हड्डी, सीपी, आदि भूगर्भकी चट्टानोंमें सुरक्षित रह सकती हैं, किन्तु कीड़ोंके शरीरका वर्षों तक सुरक्षित रहना एक दम असम्भव है।

हम पृथ्वीके इतिहासकी एक ऐसी अवस्थामें विद्यमान हैं, जिसमें प्रतियोगिता द्वारा उत्पादित कीड़ोंके आश्चर्योत्पादक और जटिल आकार (Forms) विद्यमान हैं। यह भी धीरे धीरे अधिकाधिक जटिल विशेषता-पूर्ण (Specialised) और स्थायी होते जायंगे और एक अवस्था ऐसी आवेगी, जब यह पूर्णरूपेण स्थायी और अपरिवर्तन-शील हो जायंगे। यह निस्सन्देह सच है कि सभी कीड़ोंकी जटिल (Complex) और विशेषता-पूर्ण अवस्था समान नहीं है। फिर भी, इतना निस्सन्देह सच है कि करीब करीब सभी कीड़े—क्या सादा और क्या पेचीदा शरीर रचना वाले-उस स्थायी और विशेषता पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं, जिनमें परिवर्तन अत्यल्प अंशमें होगा। यह परिवर्तन बहुत ही धीरे धीरे और इतना थोड़ा थोड़ा होगा कि हम उसको जान ही न सकेंगे।

प्राणि-संसारमें कीड़े ही एक ऐसा प्राणि-समूह है, जिसमें प्रतियोगिता इतनी अधिक और बुद्धि और स्वभाव (Habit) इतने स्थायी हैं। नैसर्गिक अवस्थाओंसे लाभ उठाकर और परिस्थितिके अनुरूप बननेके सिद्धान्तको पूर्णरूपेण स्वीकार करके ही कीड़ोंने इस भूमण्डल पर अपना अधिकार जमा लिया है। परन्तु मानव-प्राणी ने परिस्थिति और नैसर्गिक अवस्थाओंको, कृत्रिम साधनों द्वारा अपने अनुरूप बनानेकी कोशिश करके आधुनिक स्थिति प्राप्त की है। परिस्थितिके अनुरूप बनने के सिद्धान्तकी उसने अधिकांशमें अवहेलना की ही है। यही कारण है कि मानव-प्राणी किसी स्थान विशेषमें रहने योग्य बननेके लिए जीवन-व्यवहार

और आचार विचारमें कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता; किन्तु कीड़े ऐसा कर सकते हैं और करते हैं।

कीड़ोंके वर्गीकरण और विकास क्रम-पर 'फसलके शत्रु' नामक लेखमालामें विचार किया ही जा चुका है। अतएव उक्त विषयोंको यहाँ दुहराना अनुचित होगा और इसीलिए वह छोड़ दिये गये हैं।

कीड़े कहां रहते हैं?

कीड़े छोटे छोटे प्राणी हैं और हर जगह अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। वर्षके किसी एक मौसममें, दो चार एकड़ भूमि पर, एक ही दिनमें, एक लाखके करीब कीड़े पाये जाते हैं। किसी दूसरे मौसममें उसी स्थान पर एक भी कीड़ा नज़र नहीं आता। फिर भी, कीड़े कहीं न कहीं अवश्य ही होंगे। अनुमान किया गया है कि ज़मीनके अन्दर २० फुटकी गहराईसे लगा कर पृथ्वीकी सतहसे सौ फुटकी ऊंचाईसे भी कुछ ऊपर तक कीड़े पाये जाते हैं। दीमक, गुबरीले, चींटी, झिल्ली, झींगुर आदि कीड़े, जमीनके अन्दर भिन्न भिन्न गहराई पर पाये जाते हैं। टिड्डी, घोंट आदि कई प्रकारके कीड़े ज़मीनकी सतह पर पाये जाते हैं। पृथ्वीकी सतहसे ऊपर नाना प्रकारके वृक्ष-लताओं पर भी कीड़े रहते हैं। वृक्षकी चोटीसे पाँच सात फुटकी ऊँचाई तक शहदकी मक्खी, बरैया, तितली, पतंग आदि कुछ जातिके कीड़े हवामें विचरण करते हुए पाये जाते हैं। इस बातको जाननेका कोई साधन नहीं है कि वृक्षकी चोटीसे कितने फुटकी ऊंचाई तक कीड़े पाये जाते हैं और किस जातिके कीड़े भूपृष्ठसे कितनी ऊंचाई पर विचरण करते रहते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि आकाशमें बहुत ऊंचे उड़नेवाले पक्षियोंको वहाँ खानेके लिए कीड़े मिल जाते हैं या नहीं। एटकिन नामक एक कीट-शास्त्रज्ञका मत है कि एक जातिका पतंग हवामें बहुत ऊँचाई पर उड़ता देखा गया है। सम्भव है, वायुमें विचरण करनेवाले यंत्रोंका बाहुल्य हो जाने पर हमें वृक्षोंकी चोटियोंसे भी कई सौ फुटकी ऊँचाई पर कीड़ोंको उड़ते हुए देखनेका सौभाग्य हो।

कीट-संसारके एक अत्यल्प अंशसे ही हम परिचित हैं या परिचित होनेकी कोशिश कर रहे हैं। भारतवर्षमें तो अभी तक कीड़ोंके वर्गीकरण और नामकरणके सिवा विशेष कुछ भी नहीं हो पाया है। भारतीय कीट-विज्ञानमें अधिक तर उन्हीं कीड़ोंका वर्णन पाया जाता है, जो हर जगह सरलता पूर्वक मिल सकते हैं। दिनको उड़ने वाले, रातको प्रकाशकी ओर आकर्षित होने वाले और वनस्पति पर पाये जाने वाले कीड़े ही अजायब घरोंमें रखे हुए देखे जाते हैं। परन्तु हजारों कीड़े ऐसे भी हैं, जिनको आज तक किसी ने देखा तक नहीं है और जिनसे हम एकदम अपरिचित हैं। यही बात उन देशोंमें भी पायी जाती है, जहाँ सैकड़ों विद्वान कीट-विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान करनेमें अहर्निश निरत रहते हैं। भारतके समान गर्म देशमें अधिकांश कीड़े, गर्मीके मौसममें ज़मीनके अन्दर घुस जाते हैं। अनुभवसे पाया गया है कि गरमीका मौसम भूपृष्ठकी मट्टीमें छिप कर बिताते हैं। यह कीड़े बरसातमें बाहर निकल कर इतस्तत: भ्रमण करने लगते हैं। बरसातमें कई कीड़े दीपककी ओर भी आकर्षित होते हैं। यह कीड़े बरसातके पहले अवश्य ही कहीं न कहीं विद्यमान रहे होंगे। इसके अलावा आजतक परदार कीड़े ही प्रकाशकी ओर आकर्षित होते हुए देखे गये हैं। अभी तक किसीने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध नहीं किया है कि बे परके कीड़े भी प्रकाशसे आकर्षित होते हैं या नहीं। अतएव बहुत सम्भव है कि हज़ारों प्रकारके कीड़े अब तक मानव-प्राणिके दृष्टि-पथमें ही न पड़े हों।

कीड़ोंका विदेश-गमन

कीड़ोंको एक देशसे दूसरे देशमें पहुँचानेका एक मात्र साधन-मानव-प्राणी है। जहाज़, रेल आदि आवागमनके सुलभ-साधनोंके बाहुल्यके कारण

भिन्न भिन्न देशोंका पारस्परिक-सम्बंध बहुत ही घनिष्ठ हो गया है। प्रतिदिन हज़ारों मन माल और सैकड़ों आदमी एक देशसे दूसरे देशको जाते हैं। इनके साथ जहाज़, रेल आदिमें बैठकर अनेकों जातिके कीड़े, अपनी अपनी जन्म भूमिको छोड़कर विदेशोंमें जा बसे हैं। वहाँ उन्होंने अपना अटल प्रभुत्व जमा लिया है। कई जातिके कीड़े तो भिन्न भिन्न आबोहवावाले देशोंमें जा बसे हैं। कीड़ोंका यह कार्य जारी है और शीघ्र ही वह सारे भूमंडल पर फैल जायंगे। विदेशोंमें वही कीड़े जा बसे हैं, जो मानव-प्राणियोंके घरोंमें रहते हैं, और जो अनाज और सजीव पशुओं पर जीवन-निर्वाह करते हैं। पौदे सभी आबोहवावाले देशोंमें जीवित नहीं रह सकते और यही कारण है कि इन पर जीवन-निर्वाह करनेवाले कीड़े बहुत कम फैलने पाये हैं। हमारे घरोंमें पाये जानेवाले कीड़ोंमेंसे अधिकांश सभी आबोहवावाले देशोंमें जीवित रह सकते हैं। उदाहरणार्थ गृह-किंगुरको ही ले लीजिये। यह संसारके कई देशोंमें फैल गया है और संभव है और भी कई देशोंमें फैल जाय। चींटी आदि और भी कई कीड़े मानव-प्राणी और अनाजके साथ कई देशोंमें जा रहे हैं। उन कीड़ोंके साथ उनकी देह पर रहनेवाले परोपजीवी कीड़े भी विदेशोंमें जा बसे हैं। स्थानाभावके कारण सभी प्रकारके कीड़ों पर यहाँ कुछ भी नहीं लिखा जा सकता। थोड़ा सा दिग्दर्शन मात्र करा दिया है।

कीड़े और फूल

फूल और कीड़ोंका घनिष्ठ सम्बंध है और इस सम्बंधका होना अत्यावश्यक ही नहीं अनिवार्य्य है। क्योंकि फूलोंका गर्भाधान कीड़ोंकी ही बदौलत है, जिससे फल आते हैं। फूलोंका गर्भाधान और भी कई साधनों द्वारा होता है किन्तु उनका इस पुस्तकके विषयसे कुछ भी सम्बंध न होनेके कारण उनपर यहाँ कुछ लिखना अप्रासंगिक होगा।

प्रकृतिने फूलोंको भाँति भाँतिके रंग, सुगंध और मधुप्रदान किया है। इन्हींसे आकर्षित होकर शहद की मक्खी तितली, पतङ्ग आदि उन पर आकर बैठते हैं। कीड़ा फूल पर बैठ कर मधुपान करनेके लिए अपनी सूंड फूलके भीतर डालता है। ऐसा करनेसे कीड़ेको मधु तो मिल ही जाता है; परन्तु साथ ही उसके पांव, पंख या मुखमें फूलका पुंकेसर भी लग जाता है। मधुपान कर लेनेके बाद कीड़ा वहांसे उड़कर दूसरे फूल पर जा बैठता है। और तब शहदके लिए अपनी सूंड फूलके अंदर डालता है। ऐसा करनेसे पहले फूलके पुंकेसरका दूसरे फूलके स्त्रीकेसरसे अनायास ही संयोग हो जाता है जिससे गर्भ धारण हो जाता है।

कुछ फूलोंमें दोनों ही प्रकारका केसर एक ही फूलमें विद्यमान रहता है। ऐसे फूलोंका गर्भाधान कीड़ोंकी सहायता बिना ही हो जाता है। परन्तु कुछ पौदे ऐसे भी हैं, जिनके स्त्री-और पुंकेसर-धारी पुष्प जुदे जुदे पौदे पर होते हैं। ऐसे फूलोंका गर्भाधान करानेके लिए किसी मध्यस्थकी जरूरत होती है और कीड़े यह काम सरलता पूर्वक कर सकते हैं।

भ्रमर ही एक ऐसा प्राणी है, जो दिन भर फूलों पर गुंजारता रहता है। यह कीड़ा बहुत बड़ा होता है और उसकी जीभ भी लम्बी होती है। सनके फूलोंका गर्भाधान यही कीड़ा कराता है। द्वि दल जातिके पौदोंका गर्भाधान भी इसीकी बदौलत होता है। यह कीड़ा अधिकतर समतल प्रदेशोंमें ही पाया जाता है।

पहाड़ी प्रदेशोंमें भ्रमरका स्थान बरबल मक्खी ने ग्रहण कर लिया है। यह कीड़ा २००० फुटकी ऊँचाई से नीचेके प्रदेशोंमें नहीं पाया जाता।

शहदकी मक्खी भी फूलोंका गर्भाधान कराती है; भारतवर्षमें मधुमक्षिकाकी तीन जातियाँ पाई जाती हैं। कुछ विद्वानोंका मत है कि एक जातिकी मधुमक्षिका एक मिनटमें ३० जूटके फूलोंका रस चूसती है। दूसरी जातिकी मक्खी एक मिनटमें ३५ फूलोंका रस पीती है। परन्तु ए. फलोरिया जातिकी शहदकी मक्खी एक मिनटमें १०-१५

फूलोंका मधु-प्राशन कर सकती है। इस जाति-की मधुमक्खिका कपासके फूलोंका रस भी पीती है। अनुमान किया गया है कि यह मक्खी एक मिनटमें १६ फूलोंको संभाल सकती है। यह मक्खी जूट, पवोल बलस और ऐसे ही अन्य फूलोंका रस पीती है।

बड़ी और छोटी जीभवाली बरैया भी फूलोंका मधुपान करती है। बल्क पत्त वर्गके अनेकों कीड़े फूलोंका गर्भाधान करानेमें मदद पहुँचाते हैं। कई जातिके पतंग और तितलियां अहर्निश मधु-पान करती हुई गर्भाधानके कार्यमें व्यस्त रहती हैं। द्वि-पत्त वर्गके कुछ कीड़े भी यह काम बड़ी उत्तमतासे करते हैं।

क्या कीड़े समाज बनाकर रहते हैं

सभी कीड़े समाज बनाकर नहीं रहते। शहद-की मक्खी, दीमक, चींटी आदि कुछ ही कीड़े ऐसे हैं जो समाज बनाकर रहते हैं। शेष सब जातिके कीड़े इस कोटिके नहीं माने जा सकते; क्योंकि कुछ जातिके कीड़े कीटावस्थामें ही एक स्थान पर इकट्ठे रहते हैं। कुछ जातियोंमें पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए कीड़े ही इकट्ठे रहते हैं। और कीड़ोंकी कई जातियाँ तो ऐसी हैं कि जिनमें प्रत्येक प्राणी जुदा जुदा रहता है और बिलकुल स्वतंत्र-जीवन व्यतीत करता है।

समाज प्रिय कीड़े मिलकर एक ही साथ रहते हैं और सम्पत्तिशास्त्रके श्रम-विभागके तत्वके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति रातदिन अपना अपना कार्य करनेमें निमग्न रहता है। परन्तु तनहां जिंदगी बितानेवाले कीड़ोंकी बात बिलकुल निराली है। वह बिलकुल तनहा रहता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके अस्तित्व पर बिलकुल ध्यान नहीं देता। अनंग देवके पुष्प-शरोंसे बिद्ध हो, वह कुछ समयके लिए काम शान्त्यर्थ अपने साथीके साथ रहता है। और काम-शान्ति होते ही वह पुनः तनहा रहने लग जाता है।

ऋग्वेद ज्योतिष श्लोक १६ (कूट)

[लेखक गो० स० आपटे M. A. B. Sc.
प्रिन्सिपल माधव कालेज उज्जैन]

ऋग्वेद कालके ज्योतिष विषयक ज्ञानकी विज्ञप्ति करानेवाला 'वेदांग ज्योतिष' नामक ग्रन्थ ४६ श्लोकोंका है, जिससे हमें तत्कालके ज्योतिषका ज्ञान प्राप्त होता है। दक्ष ग्रन्थपाठी वैदिक इसे अपने पाठमें बोला करते हैं। श्रुति परम्पराके कारण, आज सहस्रों वर्ष बीत जाने पर भी यह ग्रन्थ उपलब्ध है। इसलिये हम वेदाभ्यासियोंकी जितनी प्रशंसा करें थोड़ी ही है; क्योंकि इन्होंने एक मात्राकी भी भूल न करते हुए, बड़े परिश्रमसे अभ्यास कर वेदोंकी संरक्षा की है। जब लेखन कलाका बहुत प्रचार हुआ और वैदिक ग्रन्थ लिखे गये, तब उनमें हस्तदोष अवश्य हुए होंगे। जैसे लघुलेखन कलामें पूरा पूरा ध्यान देने पर भी कुछ न कुछ भूल अवश्य ही हो जाया करती है। भाषामें काना, मात्राके अथवा ह्रस्वदीर्घके परिवर्तनसे अर्थमें कैसा अन्तर हो जाता है और कभी कभी कैसे अनर्थ उपस्थित हो जाते हैं; छड़ीके बदले छुरी वा अजमेर गयेके बदले आज मर गये इत्यादि विन्यास भी भलीभांति सबको विदित ही हैं। विशेषतः गणित ग्रन्थोंमें तो सात सौके बदले साठ सौ लिखनेसे या सुननेसे अथवा तीन सौके बदले तीस लिख जानेसे अर्थ और व्यवहारमें कैसी गड़बड़ हो जाती है; यह तज्ञोंके सन्मुख विशेष स्पष्ट करने की आवश्यकता ही नहीं। ऐसा ही हाल कहीं कहीं वेदांग ज्योतिषके पुष्कल पाठोंमें भी हुआ है। इस कारण थीबो, मोड़क, सुधाकर द्विवेदी और छोटेलाल इत्यादि विद्वानोंको वेदांग ज्योतिषके पाठोंका अर्थ करनेमें बड़ा ही परिश्रम उठाना पड़ा और एकने दूसरेकी विद्वत्ता, कल्पना और प्रतिभाका लाभ उठाया तथापि अभी तक ४६ श्लोकोंमेंसे १२ श्लोकोंका अर्थ पूरा पूरा समझमें नहीं आया उनमेंसे एक श्लोक हम नीचे लिखते हैं।

अश्विष्ठाभ्यां गुणाभ्यस्तान् प्राग्विलग्नान् विनिर्दिशेत्।
सूर्यान् मासान् षडभ्यस्तान् विद्याच्चान्द्रमसान् ऋतून् ॥

इस श्लोक का पूर्वार्ध अब तक दुर्बोध समझा जाता है; परन्तु उसका अर्थ इस प्रकार हो सकता है। अभ्यस्त विशेषणका अर्थ कुछ फेरफारसे किया जाता है। गुण अर्थात

तीन और गुणाभ्यस्त अर्थात् त्रिगुणित इस प्रकार साधारण अर्थ है। गुणनका अर्थ किसी संख्याकी नियमित बार पुनरावृत्ति है। अभ्यस्त शब्दका वाच्यार्थ पुनरावृत्त और इसी अर्थमें व्याकरणमें भी इस शब्दकी योजना की जाती है। इसी प्रकार गुणाभ्यस्त अर्थात् तीनसे पुनरावृत्त होने वाला—तीनके बाद फिर फिर आने वाला शब्द मास शब्दका विशेषण है। श्रविष्ठा शब्दका उपयोग साधारणतः बहुवचनमें और क्वचित् एक वचनमें भी किया हुआ देखा जाता है; परन्तु इस श्लोकमें इसका उपयोग द्विवचनमें किया गया है। एतदर्थ यहां कुछ विशिष्ट हेतु होना चाहिये। श्रविष्ठा छोड़ने पर तीन महीनेके पश्चात् सूर्य विषुवदिन स्थान पर आता है और इसी प्रकार फिर श्रविष्ठा नक्षत्र पर आनेके तीन महीने पहिले द्वितीय विषुवदिनके स्थान पर आता है। श्रविष्ठा पर सूर्य दो बार आता है। पहिले विषुवद्दिनके तीन मास पहिले और दूसरे विषुवद्दिनके तीन मास पश्चात्, इस आशयसे ऐसा मालूम होता है कि श्रविष्ठा शब्दकी योजना द्विवचनान्तकी है। अतः प्रस्तुत श्लोकके प्रथमार्धका अन्वय उत्तानुरोधसे इस प्रकार किया जा सकता है। श्रविष्ठाभ्यां गुणाभ्यस्तान् (मासान्) प्राग्विलग्नान् विनिर्दिशेत्। इससे यह अर्थ निष्पन्न होता है कि श्रविष्ठा नक्षत्र पर सूर्य आनेके पूर्व और पश्चात् तीन माससे जो मास आते हैं वे प्राग्विलग्न वा पूर्व बिन्दु स्थानीय होते हैं। वेदांग ज्योतिषके अनुसार सूर्य माघ मासमें श्रविष्ठा अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र पर उदय होता है, उसके तीन मास पूर्व कार्तिक आता है। और मघाके तीन मास पश्चात् वैशाख आता है। इन (कार्तिक वा वैशाख) महीनोंमें वर्षके दोनों विषुवद्दिन आते हैं। इन दोनों दिनोंमें सूर्य पूर्व बिन्दुपर उदय होता है। इसीलिए सम्पूर्ण पृथ्वी पर ३० घड़ीका दिन और ३० घड़ीकी रात होती है और यही कारण है कि कार्तिक और वैशाख महीनोंको प्राग्विलग्न (जिनमें सूर्य ठीक पूर्वमें उदय होता है) कहा है। वेदांग ज्योतिषमें एक युग अर्थात् ५ वर्षका पंचांग दिया है; अतएव पांच कार्तिक और ५ वैशाखके अनुलक्षसे 'मासान्' शब्द बहुवचनमें प्रयुक्त किया गया है।

छोटेलालकी पुस्तक, थीबो, दीक्षितादि विद्वानोंकी पुस्तकोंके पीछेकी है। उसमें उनका किया हुआ अर्थ असमीचीन है। उनके मतानुसार सूर्य श्रविष्ठासे अष्टम नक्षत्र पुंज (कृत्तिका) विषुवद्वृत्त पर अर्थात् ठीक पूर्वमें उदय होता है, परन्तु श्रविष्ठा शब्दके द्विवचनके लिये 'गुणाभ्यस्तान्' 'प्राग्विलग्नान्' शब्दोंके पुल्लिंग व बहुवचनके लिये कुछ भी परिहार नहीं किया। वे समझते हैं कि प्राग्विलग्न नक्षत्र अध्याहृत शब्दका विशेषण हैं, परन्तु नक्षत्र वाचक सब शब्द नपुंसक लिंग होते हैं। ऋृ शब्द कभी कभी पुल्लिंग होता है। अपितु वेदांग ज्योतिष में यह शब्द कई बार आया है, वहां भी इसका अर्थ नपुंसकलिंगमें ही किया है। तारा, उडु शब्द स्त्रीलिंग हैं; परन्तु यहां तो स्त्रीलिंगके प्रश्नका अवकाश ही नहीं है। इसके सिवाय गुण शब्दका आठ अर्थ भी अपूर्व ही है। अतः ऐसा कहनेमें कुछ भी प्रत्यवाय नहीं है कि उनका किया हुआ अर्थ श्लोकसे नहीं निकलता।

अब हम श्लोकके उत्तरार्धके अर्थ पर विचार करते हैं। लालाजी और दीक्षितजीने जो अर्थ किया है, वह इस प्रकार है। सौर मासको छःसे गुणा करनेसे चान्द्र ऋतुएं होती हैं ऐसा अर्थ करनेसे लाभ केवल यही है कि शब्दोंकी खींचातानी कहीं भी नहीं करनी पड़ती; इस अर्थसे उपयुक्त बात कुछ भी ज्ञात नहीं होती और जो होती भी है वह भी पूर्णतया ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि चान्द्र ऋतुकी कल्पना सौर ऋतुसे की गई है। यह कल्पित ही कही जा सकती है। क्योंकि एक चान्द्र मासमें चन्द्रकी उत्तर या दक्षिण क्रान्तिसे जो ऋतुएं मानी जायंगी वह हवामानकी दृष्टिसे बिलकुल अनुभवमें नहीं आतीं। इसी प्रकार यह उल्लेख भी कहीं नहीं पाया जाता कि यज्ञ, यागादिकमें भी अमुक चान्द्र ऋतु उक्त है वा अनुक्त है। इसलिये चान्द्रऋतुकी कल्पना अनुपयुक्त हैं और गणितसे भी ठीक नहीं है क्योंकि ६० सौर महीनोंमें राशिचक्र परसे चन्द्रकी ६७ प्रदक्षिणाएं होती हैं अर्थात् प्रत्येक सौर मासमें चन्द्रकी $१\frac{७}{६०}$ प्रदक्षिणा होती है। राशिचक्रकी एक प्रदक्षिणा करनेसे ६ ऋतुएं होती हैं। इस लेखेसे एक सौर मास में $१\frac{७}{६०} \times \frac{६}{१} = ६\frac{७}{१०}$ वह लगभग ७ चान्द्र ऋतुएं होती हैं। इस लिये यह कहना भूल है कि प्रत्येक सौर मास में छः चान्द्र ऋतुएं होती हैं। अतः लाला छोटेलाल और दीक्षितजीकृत उत्तरार्ध श्लोक का अर्थ वास्तविक स्थिति से ठीक नहीं मिलता।

यह स्पष्ट है कि अर्थका मेल जब तक वस्तु स्थितिसे न मिले तब तक वह कदापि ग्राह्य नहीं हो सकता। लेखकके मतानुसार प्रस्तुत श्लोकके अर्थका अन्वय इस प्रकार हो

सकता है। सूर्यान् मासान् चन्द्र मसान् च (मासान्) षडभ्यस्तान् ऋतून् विद्यात्—इस प्रकार अन्वय करनेसे इस श्लोकसे यदि कुछ उपयुक्त और वास्तविक अर्थ उत्पन्न हो सकता है तो यह है—एक पांच संवत्सरमय युगमें जो सौर मास और चान्द्रमास आते हैं वे छःसे पुनरावृत्त होनेवाली ऋतुओंसे बने हुये होते हैं अर्थात् एक युगमें ६० सौर मास अथवा ६२ चान्द्र मास ऋत्वात्मक होते हैं। ये ऋतुएं षडभ्यस्त अर्थात् ६, ६ बार बार आती हैं। पहिले जिस प्रकार गुणाभ्यस्त शब्दमें अभ्यस्त विशेषणका अर्थ जैसा किया है वैसा ही यहां भी किया है। षट्+अभ्यस्त अर्थात् छः (ऋतुके) बीतने पर फिर आनेवाला। एकवार बसन्त आया कि ऋतुओंके बाद वही वसन्त ऋतु पुनरावृत्त होती है। इसी प्रकार अन्य ऋतुओंके विषयमें भी जानना चाहिये।

यद्यपि बारह सौर मासमें (नक्षत्र चक्रमेंसे) चन्द्रके १३$\frac{1}{3}$ पर्याय होते हैं तथापि उतनी अवधि में ऋतुएं केवल छः ही होती हैं और इसी प्रकार आगेके सौर वर्षमें वह ही ऋतुएं उसी क्रमसे फिर आती हैं इस प्रकार प्रस्तुत श्लोकके उत्तरार्धका आशय है। इस ऊहापोहसे पूरे श्लोकका अर्थ ऐसा होता है कि धनिष्ठा पर सूर्य आनेके तीन मास पहिले और तीन मास बाद वह ठीक पूर्व विन्दु पर उगता है और जिन (कार्तिक' वैशाख) मासोंमें वह ऐसा उदय होता है उन्हें प्राग्विलग्न मास कहते हैं। इसी प्रकार एक युगमें जो सौर मास और चान्द्र मास होते हैं वह एकसे ऋत्वात्मक होते हैं। वह ऋतुएं छः होती हैं और एक ही क्रमसे बार बार आती हैं।

अब यह प्रश्न अपने आप ही उत्पन्न होता है कि उपर्युक्त अर्थ भी क्यों विशेष महत्वका माना जाय और यद्यपि वह वास्तविक स्थितिका दर्शक है तो भी उसके लिये एक पूरा श्लोक लिखनेसे उसमें क्या विशेषता है? परन्तु कुछ विचार करनेसे इस प्रश्नका समाधान लक्षमें आ जाता है और वह इस प्रकार है—वेदांग ज्योतिषमें पंच संवत्सरके पंचांगका विवेचन है। पांच वर्षमें जिस क्रमसे या जितनी अवधिसे नक्षत्र, तिथि, पर्व, अयनारम्भ तिथि, ऋत्वारम्भ तिथि, विषुवदिन तिथि और क्षय तिथियां आती हैं, उसी क्रमसे आगे के पांच वर्षमें भी वह फिर आती हैं अर्थात् पांच वर्षकी अवधिमें उनकी पुनरावृत्ति न होकर आगेके पांच वर्षमें होती है; इस पुनरावृत्तिके कारण ही उस कालमें पांच वर्षका युग माना गया था, जैसे कि वर्त्तमानकालके ज्योतिषने १६ वर्षका चक्र माना है। इसलिए पांच वर्षकी अवधिमें जिन जिन बातोंकी पुनरावृत्ति होती है वह बातें विशेष रूपसे समझानी उचित हैं। यदि वह बातें प्रतिवर्ष बार बार आती हैं तो फिर एक ही वर्षका युग मानना चाहिये था; अपितु एक वर्षका युग न मानकर पांच वर्षका क्यों माना इस शंकाका परिहार प्रस्तुत श्लोकमें है। एक पंच संवत्सर युगमें होनेवाली ज्योतिष विषयक बातें वह युग सम्पूर्ण होनेके पहिले पुनः कभी नहीं होती। इस प्रकार पंच संवत्सर युगकी कल्पना प्रस्तुत श्लोकके अर्थमें है। यद्यपि यह सत्य है तो भी इस नियमके लिए कई अपवाद हैं वह इस श्लोकमें दिये हैं। प्राग्विलग्न मास सौर वर्षमें आते हैं वह ही दूसरे वर्षमें भी आते हैं। उनकी पुनरावृत्तिके लिए दूसरे युग आने तक नहीं ठहरना पड़ता। उसी प्रकार, यद्यपि एक युगके पांच ही वर्षोंमें चान्द्र मास और सौर मासका सम्बन्ध अन्ततक वैसा ही नहीं रहता; तो भी हवा मानके अनुभवसे ज्ञात होनेवाली छः ऋतुओं की पुनरावृत्ति प्रतिवर्ष होती है; वास्तविक प्रत्येक ऋतु छः ऋतुओंके पश्चात् फिर आती है इतना ही प्रस्तुत श्लोक में कहा है, परन्तु ऋग्वेद ज्योतिष श्लोक ६ में पहिले ही कहा जा चुका है कि ४$\frac{1}{2}$ नक्षत्रोंकी एक ऋतु होती है इस परसे सूर्यके २७ नक्षत्रोंमें अर्थात् एक सौर वर्षमें ६ ऋतुएं होती हैं, यह स्पष्ट है और वह प्रतिवर्ष वैसे ही पुनः पुनः आती हैं ऐसा प्रस्तुत श्लोकमें कहा है।*

* First Oriental Conference अर्थात् पहिली पौर्वात्य सभामें जो नवम्बर सन् १६१६ ई० को पूनामें हुई थी, एक निबन्ध पढ़ा गया था; उससे यह अर्थ विशद किया है; इसके अतिरिक्त वेदांग ज्योतिषमें कुछ और भी कूट श्लोक हैं उनका अर्थ यथावकाश प्रकट करनेका लेखकका विचार है।

घोरतम रात्रिमय दिन

न्यू इंगलैण्ड या अमेरिकामें १७८० ई० की १६वीं मईका दिन जनताको चिरस्मरणीय होगा। उस दिन अमेरिकाके आकाश और भूतल दोनों घोर अन्धकारसे आच्छादित थे। उस दिनको देखकर जनताके हृदय दैवी प्रकोप से भस्म हो गये थे। सभीके हृदयों में 'हा, क्या होगा? क्या प्रलय होगी? इत्यादि' व्याकुलता के संकल्प विकल्प बराबर उठ रहे थे। उस दिनके दृश्यसे पशु और पक्षी गण भी विस्मित होकर विपरीत भाव दर्शा रहे थे। सब पक्षी उड़ उड़ कर अपने बसेरोंमें जा छिपे, गाय भैंसे भी अपने बाड़ोंमें आघुसीं। उस दिन सहस्र बुद्धिमान पढ़े लिखे पुरुषोंको यह पूरा विश्वास होगया था कि आज भूतल की सब वस्तुओंका प्रलय आ पहुंचा है। बहुत से लोगोंने अपने रोजमर्राके व्यवसाय छोड़ कर धार्मिक स्तुति या पाठ करने शुरू कर दिये। बहुतों ने समझा कि यह घोरतम अवसर भगवानका प्रकोप है जो इस ज़मानेके घोर पापों और अत्याचारोंका दुष्फल है। यही इस बातकी सूचना देता है कि भूतलपर ऐसा घोर संहार होने वाला है जिसमें यह सब ज़मीन नष्ट हो जायगी। इस तरहकी घटनाओंका उल्लेख कई स्थानोंपर बाइबिलमें है। लोग उन्हीं घटनाओं का स्मरण करके इस दिनके दृश्यकी उन वर्णनोंसे तुलना करते और उन परिणामोंकी संभावना समझते थे। सब कहते थे कि यदि इसका शीघ्र ही शान्ति-उपचार और सुधार न किया तो घोर संहार होकर रहेगा। अज्ञजन अपनी अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार इस दिनकी विचित्र घटनाओंके अद्भुत अद्भुत कारण बतलाने लगे और जो विद्वान भी थे वह भी केवल आकाशमें दृष्टि फिरा और तारोंको देख रह जाते थे। उनको भी अद्भुत घटनाका स्पष्ट कोई कारण समझमें नहीं आ रहा था। यह कहा जाता है कि उस समय कनेक्टिकट प्रान्तकी व्यवस्थापक सभाका अधिवेशन था परन्तु इतना अधिक अंधेरा था कि व्यवस्थापक सभाके सदस्य भी इस विचारसे भयभीत हो गये कि आज ही क़यामतका दिन आगया है। उसी समय सभा विसर्जनका प्रस्ताव उपस्थित हुआ। उस समय एक सदस्य मि० डिवानपोर्टने उठकर कहा कि "महोदय! यह दिन क़यामत का है या नहीं है। यदि यह दिन क़यामतका नहीं है तब तो सभा विसर्जित करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि क़यामतका दिन ही है तब मेरी इच्छा है कि मैं अपना कर्तव्य पालन करता हुआ खुदाके दरबारमें हाज़िर किया जाऊँ। मैं प्रस्ताव करता हूं कि मोमबत्तियां जला ली जांय और हम अपना कार्य करें।"

यह घोरतम अन्धकारमय दिन शुक्रवारको दोपहरके दस ग्यारह बजेसे ही प्रारम्भ होकर अगली रात तक रहा। परन्तु भिन्न भिन्न स्थानों पर इस दिनकी घटनाएँ भी भिन्न भिन्न हुई। इस घोरतम घटनाके प्रारम्भ होनेके समय सबसे पहले दक्षिण-पश्चिममें इस घटनाका दृश्य उपस्थित हुआ। उधर ही से एक आंधी उठती हुई दिखाई दी और बादलोंके साथ घोर रात्रिका सा अन्धकार फैलने लगा। अन्धकारकी मात्रा भी भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न थी। बहुत से प्रदेशोंमें अन्धकार इतना अधिक था कि लोग साधारण पुस्तक भी पढ़ नहीं सकते थे। वह दीवालपर लगी घड़ीसे समय भी ठीक प्रकारसे देखकर नहीं बतला सकते थे। वह अपने भोजनकी व्यवस्था तथा और घरके धन्धोंमें भी बाधा अनुभव करने लगे। उनको उस समय छोटे छोटे कामोंमें भी दीपक, मोमबत्ती तथा लैम्पों की आवश्यकता पड़ने लगी।

पहले पहल वह अन्धकार न्यू इङ्गलैण्डके पूर्व भागके स्थानों पर प्रकट हुआ। कई घण्टे तक तो अन्धकारका लेप सा लिये हुए घनी छायाके समान अन्धकार रहा। खुले मैदानमें भी पुस्तक

पढ़ना कठिन था। अन्धकार दक्षिणमें कनेक्टिकट और अलवेनी तक फैल गया और दक्षिणमें समुद्र तट पर दूर तक फैला जान पड़ता था। उत्तरकी अमेरिकन रियासतोंमें सभी स्थानों तक फैला हुआ था। सम्भव है इसके विस्तारकी सीमा और भी दूर तक हो; परन्तु इस सम्बन्धमें ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। बोस्टनमें यह अन्धकार १४, १५ घण्टे तक रहा। इस घटनाका परिणाम यह हुआ कि चारों तरफ सुनसान था, मुर्दाघाट, मसानका सा दृश्य दीखता था; सब तरह अन्धेरा फैला था, सब ओर कुछ अजबसा मालूम होता था। घरोंमें दिये जल गये थे। पक्षिगणने अपनी सब उछल कूद बन्द कर दी थी और शान्तिसे अपने घोंसलोंमें जा छिपे थे। बहुत से पक्षी अपने सायंकालिक गानमें लग गये थे। सायंकालका सा नज़ारा दीखने लगा था। शनैः शनैः वह सायंकालिक पक्षियोंकी चहचहाहट भी शान्त हो गयी। घोर रात्रिका दृश्य उपस्थित हुआ। चक्षुओंने अन्धेरेमें अपना काम करनेसे जवाब दे दिया। समीपके पदार्थोंने भी अच्छा खासा अन्धकारमय चोला पहन लिया। लोगोंके मस्तिष्कपर तो ऐसा प्रभाव पड़ा, जिसका वर्णन करना वाणीसे परे है।

हारवर्ड कालिजके अध्यापक प्रो० विलियम्सने उस दिनके बाद ही उस समयकी बहुत सी घटनाओंको संग्रह किया और अन्य अन्य स्थानों पर भी घटनाके सम्बन्धमें जो कुछ कारणानुसंधान हुए उनको भी संग्रह किया। इस घटना संग्रहको पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि बहुत से स्थानों पर उस दिनसे भी कई दिन पहले लोगों ने यह अनुभव किया था कि वायुमण्डलमें धुआं और कुहरा अधिक है। सूर्य और चांदके बिम्ब असाधारण रूपसे लाल लाल दीखते थे। उनकी प्रखर कान्ति और चकाचौंध करनेवाली चमचमाहट नष्ट हो गयी थी। दिगन्तके समीप यह अन्धकार और भी अधिक था। उतरते हुए सूर्य और चन्द्रके बिम्ब दिगन्तके समीप तो लुप्त ही हो जाते थे। न्यू इंगलैण्ड की सभी रियासतोंमें यह दशा उस दिनके ४,५ दिन पहलेसे दिखाई दे रही थी। वातका प्रवाह बदलता था; परन्तु अधिकतर दक्षिण पूर्व और उत्तर पूर्वसे ही बहता था। तापमापकमें पारा ४७ से ४५ अंश तक ही रहा। वायु भारमापकसे वायुका अधिक भार ज्ञात होता था।

अब वायुमण्डलकी दशा पर विचार कीजिये। जब अन्धकार छा गया तो यह देखनेमें आया कि वायु मण्डलकी गुरुता लगातार घटने लगी; कैम्ब्रिजमें वायुभारमापकमें पारा मध्यान्हके १२ बजेके अवसर पर २९ इंच ७० पर खड़ा था। आधे ही घण्टेके बाद $\frac{1}{100}$ वाँ इंच पारा नीचे उतर आया। एक बजे पारा उतर कर २९ इञ्च ६७ पर आ गया। ३ बजे २९ इञ्च ६५ पर और आठ बज कर आठ मिनट पर २९ इं० ६४ पर आगया। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर उस दिन पारा ६ बजे २९ इं० ८२ पर था, १० बजे अंधकार फैलने लगा, तब २९ इं० ६८ पर था, पौने ग्यारह बजे अंधकार बहुत अधिक था। उस समय पारा २९ इं० ६७पर था। अन्धकार १½ घण्टे तक लगातार बढ़ता गया और पारा भी २९ इं० ६५ तक उतर आया। बादमें अन्धकार कम होने लगा। पारा रात भर वहीं रहा। ८ बजे कुछ और गिरा। इस निरीक्षणसे यही परिणाम निकलता है कि वायुमण्डलका भार दिन भर घटता रहा।

उस दिन पदार्थोंकी रंगत भी बड़ी ध्यान देने योग्य थी। उस दिन बादल हलके लाल रंगके छाये हुए थे। उनमेंसे, कुछ पीले और कुछ भूरे थे। जब अन्धकार छा गया तब समस्त पदार्थ इतने घोर हरे हो गये कि वह नीलेमें परिणत हो गये। सब सफ़ेद रंगके पदार्थ पीले मालूम पड़ते थे। उस दिनका वर्णन लिखनेवाले प्रायः सभी लेखकों ने यह विशेषता लिखी है। अध्यापक विलियमने भी लिखा है कि उस दिन क्या पासके और क्या दूरके सभी पदार्थ पीले जान पड़ते थे।

उस दिन एक विशेष ध्यान देने योग्य पदार्थ कुहरा था। आकाश प्रातःकालसे ही कुछ मेघावृत्त था। बादलोंमें से ही सूर्य भी कुछ कुछ दीखता था। सूर्यका रंग गहरा लाल था। सूर्यका लाल रंग कई दिन पूर्वसे ही दिखाई दे रहा था। कई स्थानों पर प्रातःकालके अवसर पर भी आकाशमें मेघ गर्जते सुनाई पड़े थे। दक्षिण पश्चिमसे बादल उमड़ने प्रारम्भ हुए। मन्द मन्द वायु भी बहने लगी। आठ बजेके पहले कुछ बून्दाबान्दी भी हुई। अन्य स्थानोंपर आगे पीछे भी बूंदें पड़ीं। आकाश-से वर्षा हुई। पानी भी अद्भुत रूप रंगका था। वह बिलकुल घोर काजलका घोल मालूम होता था; मासाचैसटके पूर्वीय भागका वासी एक विद्वान लिखता है कि उस दिन लोगोंने बरसे हुए पानीको कण्डालोंमें इकट्ठा किया। उसका रंग और गन्ध भी अजब था। उसको देखकर लोग बहुत विस्मित हुए। उस दिन ध्यानसे देखा गया कि पानीके ऊपर एक तह सी जम जाती थी। यदि उसको अंगूठे और अंगुलीसे लेकर मसलते थे तो जले हुए पत्तोंकी राख सी मालूम होती थी। जो गन्ध वायुमण्डलका था उस दिनके बरसे हुए पानीका भी वही गन्ध था। यही विशेषता अन्य स्थानोंपर भी पाई गयी। विशेषकर मेरिमेक नदीके जल पर भी उसी प्रकारका काला काजल बहुत मात्रामें तैरता हुआ पाया गया। रातके समय पूर्वोत्तर की हवा बही और सब काजल नदीके दक्षिण तट पर आ लगा। जब लहर उतरी तब वही काजल मय द्रव्यकी कई मीलों तक तह जमी हुई पाई गयी। यह तह भी ४, ५ इञ्च गहरी थी। इसके जलमय पदार्थकी बहुत से रसायनवेत्ताओंने परीक्षा की। उसमें गन्धकका कोई भी अंश पाया नहीं गया। प्रो० विलियमने उस दिन कुछ एक कागज के सफेद ताव बाहर बिछा दिये थे। उन पर पानी पड़ा और वही काजलका सा पदार्थ जम गया। वह काले हो गये थे। उनको जला कर देखा गया तो भी गन्धक या शोरेके किसी समास-का उसमें पता न चला।

उस समयके वायुमण्डलमें विचित्र घटना घट रही थी। नौ बजेके लगभग कुछ वर्षाके बाद एक मेघमय दीर्घाकार स्तम्भ उठने लगा। वह उठते उठते पर्वतोंसे भी ऊँचा हो गया और फैलने लगा। इसी प्रकार दूसरा मेघ उठा और वह भी कुछ ऊंचा जा कर फैल गया। १५ मिनटके बाद तीसरा उठा वह भी कुछ उठ कर फैल गया। ९ बजेके बाद तीनों मेघोंके रूप रंग बदले। सबसे पहलेका रंग लाल था, दूसरा कहीं कहींसे हरा और कहीं कहींसे नीला था। तीसरा तो बिलकुल श्वेत था।

एक महाशय ने लिखा है कि आकाशमें उस दिन बादलोंकी तहों पर तहें चढ़ी थीं और मेघ भी बड़े वेगसे आगे पीछे ऊपर नीचे सरक रहे थे। अंध-कार इतना बढ़ गया था कि दूरके पहाड़ और वृक्ष आदि सब लुप्त हो गये थे। अन्धकारकी घोरताके अवसर पर रातको एक पुरुषने चौरस्ते पर एक लैम्प जलाया। उसका प्रकाश मेघोंके पर्दों पर ध्रुवीय वैद्युतिक विलासोंके समान प्रतिबिम्बित होने लगा। यह प्रतिबिम्ब भी २०, ३० फुट दूर ही पड़ा मालूम होता था।

बहुत सा कुहरा उस दिन ज़मीन पर बरसता सा मालूम होता था। मानों बादल नीचे आ आकर विश्राम ले रहे थे। रात्रिके समय मेघोंमें बहुत वैद्युतिक पटल चमक रहे थे। भूमितलके पदार्थोंकी एक ही समयमें बहुत सी छायाएं दीख रही थीं। बिचारे छोटे छोटे पक्षी गणका तो प्राण घुट रहा था। उनका दम घुट जानेसे वह मर मर कर भूतल पर बरस रहे थे। बहुत से व्याकुलतासे भटक भटककर घरोंमें फड़फड़ा रहे थे और पागल हुए फिर रहे थे।

न्यूहैवन (कनेक्टिकट) स्थान पर प्रातःकाल कुछ वर्षा हुई। सूर्योदय होने पर भी प्रकाशमें कुछ वृद्धि न हुई थी। सवेरेके आकाशमें मेघ घिरे थे

और अन्धेरा छा रहा था। ११, १२ बजे अन्धेरा और भी घना हो गया। वायु मण्डल शान्त था। आकाश पीतलके समान पीले बादलोंसे मढ़ा मालूम होता था। १२ बजे घोर अन्धेरा छा गया। सायंकाल दिया जलानेका सा समय हो गया!

इन सब निरीक्षणोंसे ज्ञात होता है कि उस दिन वायुमण्डलका भार कम था और इसी कारण जल पृष्ठोंसे बहुत अधिक वाष्प उठी और वायुकी अपेक्षा हलके होनेके कारण ऊपर चढ़ गयी। जिन स्थानों पर वायु हलकी न थी वहां वह फिर नीचे उतर आयी। जलीयवाष्प वातावरणमें इतने अधिक हो गयी थी कि कुछ ठिकाना न था।

प्रो० विलियमका अनुमान है कि जलीय वाष्पकी अधिकताके कारण ही यह सब घटनाएं उपस्थित हुईं। आपका कथन है कि किन्हीं कारणों से या पासके घने जंगलोंमें आग लगनेके कारण भिन्न भिन्न प्रकारकी वाष्प ही नाना दृश्य दर्शाने का कारण थीं।

कुछ लोग समझते थे कि यह दृश्य सूर्यग्रहण-के कारण है। कोई कहते थे कि बुध या शुक्र सूर्य बिम्बपरसे गुजर रहा है। ऐसी ही नाना प्रकार-की उलटी सूधी सम्भव असम्भव गप्पें उड़ीं कि जिसकी कोई सीमा न रही; यहां तक कहा गया कि पृथ्वी परसे कोई विशाल पर्वत उड़ा और सूर्यको उसने छिपा लिया।

उस समयके प्रसिद्ध नामी ज्योतिषियोंने सिद्ध कर दिया था कि सूर्यग्रहण आदि कोई कारण इस घटनाके न थे। एक कल्पना उठी जिसका बहुत समर्थन हुआ कि सूर्यकी प्रखर किरणों से, जल गन्धक, शोरा आदि पदार्थ उड़ कर आकाशमें चढ़ गये। इधर ज्वालामुखीके धूम पटल फैले। समुद्र नद नदी ताल आदिका पानी उड़ उड़ कर वाष्प रूपमें आच्छादित हो गया; इसीसे यह अन्धकारमय दिन प्रकट हुआ।

इस प्रकारके दिन पहले भी कई बार प्रकट हुए थे जैसे २१ अक्तूबर १७१६ और १९ अक्तूबर १७६२को भी यही दशा थी। १९ अक्तूबर १७६२ को तो सूर्यका बिम्ब साधारणसे तिगुना बड़ा दीखता था, वातावरणका रंग भूरा पीला था। वर्षाके साथ काजलका बरसना उस दिन भी वैसा ही हुआ। कागज़ वर्षामें रखे गये वह भी काजल से काले हो गये। जब इनको अग्नि दिखाई गयी तो पीले हो गये। जब जलाया गया तो श्वेत द्रव्य उन पर छा गया। उस दिन भी नदियों पर काले झाग जमा हो गये थे।

इस प्रकार के दिन प्रायः लौट कर बार बार आते हैं; परन्तु उनपर सर्वसाधारण बहुत कम ध्यान देते हैं।

प्राचीन वैज्ञानिकोंने केवल दृश्यों और घट-नाओं का उल्लेख किया है; पर कारणोंका अनुसं-धान बहुत कम किया है। यह वैज्ञानिक संसार का कर्त्तव्य है कि पूर्वीय ग्रन्थोंसे उन घटनाओं-की खोज लगावें और पाश्चात्य दृष्टिसे उन घट-नाओंके कारणोंको स्पष्ट करें; तभी ज्ञानका सागर मथा जा सकता है।

—जयदेव शर्मा विद्यालंकार।

प्राचीन मिश्रकी एक दुर्घटना

प्राचीन मिश्र निवासी मनुष्य, वानर, विडाल, मत्स्य आदि उपास्य जन्तु-ओंके मृत शरीरको सुरक्षित रखा करते थे। साधारण शव सुखा दिया जाता था, किन्तु श्री सम्पन्न व्यक्तियोंका शव नाना प्रकारसे परिरक्षित रहता था। अभी थोड़े दिन हुये एक असाधारण सुन्दर शवागार खोला गया था, जिसमें एक सुन्दरीका शरीर अवस्थित था। चित्र वर्णमालाके एक शिला लेखसे यह बात प्रकट होती थी कि वह सुन्दरी एमेनके स्वर्ण महलके द्वारपालकी पुत्री ताशात थी।

शवागारके अंतस्थलमें एक उच्च कुटुम्बकी बालिकाका मुखमंडल अंकित था। २००० वर्ष

पहले ताशात महादेव एमेनके मन्दिरमें पूजा करती हुई जिस अवस्थामें थी उसीकी तस्वीर वह थी।

वैज्ञानिकोंने शरीरके चारों ओर लपेटे हुए वस्त्र को खोलना उचित न समझा; क्योंकि इससे वस्त्र तथा शवके नष्ट हो जानेका भय था। इधर एक्सरे द्वारा सुन्दरीका स्वरूप वस्त्रोंके नीचे दिखाई देने पर वस्त्रोंके खोलनेकी आवश्यकता भी न थी। एक्सरे द्वारा फोटो लेने पर चित्र तैयार हुआ तो विचित्र दृश्य दिखायी पड़ा।

सुन्दरीका सिर कटा हुआ था। शरीरके ऊर्ध्वांशसे मसाले और गोंदकी सहायतासे सिर जुड़ा हुआ था, किन्तु एक ओर कुछ टेढ़ा हो लटक रहा था और भीतरसे बिल्कुल अलग था। अनेक शताब्दी तक पड़े रहनेके कारण कटे हुए चमड़ेके किनारे टेढ़े मेढ़े हो गये थे। चित्रसे यह भी मालूम हुआ कि भारी बोझके दबावसे शरीरका आभ्यंतरिक वाम भाग विमर्दित हो गया था। पसलियाँ भी टूटी ही नहीं थीं बलिक रीढ़ से छुटक गई थीं। बांया हाथ कोहनीके ऊपरसे टूट गया था।

चिरकालसे शवागार कभी खोला नहीं गया था। किसी प्रकार आघात पहुँचने पर शरीरके अंग भंग होनेके साथ आगार भी टूट फूट गया होता, किन्तु उस पर इस प्रकारका कोई चिन्ह नहीं है। वह जिस प्रकार आजसे ३००० वर्ष पहले रखा था वैसे ही अब भी पड़ा हुआ है। फिर वस्त्रकी मोटी तह और शवको सुगन्धित रखनेके लिए नाना प्रकारके पदार्थ इसकी रक्षा करनेमें पूरी सहायता पहुँचाते थे। जैसा एक्सरे द्वारा विदित होता है किसी बोधगम्य बाधासे इस प्रकार सिरका धड़से अलग हो जाना सम्भव नहीं। मिश्रके उन प्राचीन पुरुषोंसे भी यह घटना होनी सम्भव नहीं जो इसमें सुगंधित पदार्थ लगानेके लिए नियुक्त हुये थे, क्योंकि मृत शरीर अत्यंत पवित्र माना जाता था।

अब यह प्रतीत होता है कि एमेनके द्वारपालकी पुत्री मृत्युके पश्चात् इस अवस्थामें नहीं पहुंची बल्कि जिस कारण मृत्यु आ पहुँची उसी कारण से यह अवस्था भी हुई होगी। जो मिश्रके प्राचीन रहस्योंसे परिचित हैं वह सरलतया जान सकते हैं कि सिर क्यों अलग हुआ होगा और पसलियां क्यों विमर्दित हुई होंगी। इस रमणीने एक अनर्थ कर डाला था; एक देवता की पुजारिनी की अवस्था में ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते समय वह किसीसे प्रेम करने लगी थी, इसी कारण पुजारियों द्वारा अपमानित होकर उसे इस प्रकार दंडित होना पड़ा।

उस सुन्दरीके शवागार पर बने कतिपय संकेतोंसे यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि वह पुजारिनी रह चुकी थी। उसका पिता अवश्य ही उच्च-श्रेणीके उन पुरोहितोंमेंसे होगा जो एमेनके मन्दिर में रहते थे; क्योंकि स्वर्ण महल उस मंदिरका कोष था और उसीका द्वारपाल ताशातका पिता था। द्वारपालका अर्थ चौकसी करनेवाला नहीं है, बलिक अधिकारी से तात्पर्य है। एमेन ही सम्पूर्ण मिश्र का परम आराध्य देव माना जाता था, इस कारण उसके मन्दिरका कोष (स्वर्ण महल) देश भरमें सबसे अधिक सम्पत्ति शाली था और मंदिर के पुजारी अत्यंत शक्ति सम्पन्न थे। इस अभागिनी-रमणी का पिता मिश्रके प्रधान पुरुषोंकी श्रेणीमें अवश्य रहा होगा। इन्हीं कारणोंसे पापकी मृत्यु होने पर भी ताशातका शव पवित्र मृत शरीर की भांति रखा गया, जिससे उसकी आत्मा अपवित्र न होने पावे। जब ताशातको दण्ड दिया गया उस समय उसकी अवस्था १५ वर्षसे अधिक न थी। इस बातका अनुमान वैज्ञानिकों ने एक्सरे द्वारा पैरकी अस्थायी अस्थियोंको देख कर किया है। यदि उसकी अवस्था इससे अधिक होती तो अस्थायी अस्थियां अवश्य जुड़ कर कड़ी हो गयी होतीं और उनकी आकृति भी भिन्न होती। मिस्र देशमें १५ वर्षकी बालिकाके मनमें प्रेम उत्पन्न होना आश्चर्य जनक नहीं। प्राचीन लेखों से इस बातका पता चलता है कि पूर्ववर्ती मिश्रमें १२

वर्षकी बालिका ही विवाह करने योग्य समझी जाती थी।

अन्य मन्दिरोंकी भांति एमेनके मंदिरमें भी बहुसंख्यक पुजारिनी रहती थीं; उनके लिए कतिपय नियमोंका पालन करना अनिवार्य था, जिनके तोड़ने पर तीव्र यन्त्रणा वा मृत्यु दंड वा कभी कभी दोनों दंड निश्चित थे। इन नियमोंमेंसे एक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन भी था। जो रमणी देवताओंके प्रेमसे विमुख होकर अपने हृदयमें मिट्टीके पुतलेके प्रति प्रेम अंकुरित करती थी उसे यह भली भांति विदित था कि इस प्रेमका भंडा फोड़ हो जाने पर मर्मांतिक यंत्रणा वा प्राणदंड बिल्कुल निश्चित है। उसके लिए उसकी हड्डी चूर चूर कर दी जायेगी और सदोष हृदयके कारण छाती पर बड़ा भारी बोझ लाद कर उसे विमर्दित कर दिया जायेगा और सिर धड़से अलग कर दिया जायेगा। कभी कभी अन्य दण्ड भी दिया जाता था किन्तु बहुत कम ऐसा होता था। पुजारिनीको वस्त्र विहीन करके चारों ओर छाल लपेट कर सजीव शव सा बना देते थे। उसमें दो छोटे छोटे छिद्र श्वास लेनेके लिए छोड़ दिये जाते थे। जब तनिक भी हिल डुल सकना कठिन हो जाता था तो उसे एक अंधकार मय कूपमें डाल देते थे जहां भयानक मृत्यु ही उसे मुक्त करती थी।

जान पड़ता है कि ताशातके पिताके प्रभावसे उसका दंड कुछ कम कर दिया गया था क्योंकि उसकी हड्डियाँ तोड़ी नहीं गयी थीं। बोझके अकस्मात गिरनेसे बांया हाथ टूट गया और हृदयके ऊपरकी पसलियोंके टूटनेसे मृत्यु शीघ्र हुई। तत्पश्चात् शिर काट डाला गया। पिताके प्रभाव से ही उसका शव न तो गड्ढेमें फेंका गया और न कुत्तोंके सामने ही डाल दिया गया।

उसका सिर गर्दनसे जोड़ कर क्षत अंगोंको ठीक कर दिया गया और अनेक मसालों द्वारा शरीर को सुरक्षित रखनेके लिए चारों ओर वस्त्र लपेट कर शवागारमें रखा गया; पवित्र पुजारिनीकी अवस्थामें मृत्यु होने पर शवकी जो अवस्था होती वही सब कुछ इस स्थितिमें भी हुई।

धीरे धीरे अनेक शताब्दी व्यतीत हो गयीं। एक के पश्चात् दूसरे कितने प्रभावशाली सम्राट् अपनी चमकती हुई तलवारें सम्पूर्ण संसारको दिखा गये। एमेनका प्रसिद्ध मंदिर भी वसुन्धराके गर्भ में चला गया। स्वयं एमेन महादेवका नाम लेनेवाला भी कोई न रह गया और ताशातके समय का कोई प्राणधारी नाम लेनेको भी न बच सका। आज ३००० वर्ष पश्चात् नये साजो सामान सहित विज्ञान मय नूतन संसार आ उपस्थित हुआ है, अब तक वह सुन्दरी सो ही रही है। उसकी अवस्था अभी वैसी हीं है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ३००० वर्ष अभी एक दिनकी भांति व्यतीत हुए हैं; क्योंकि उसकी सम्पूर्ण कथा और प्राचीन लज्जाजनक बातें प्रकट हो गई हैं।

—जगपति चतुर्वेदी

दांत

यह बात निस्सन्देह है कि दुःख कोई भी अच्छा नहीं होता। कभी कभी छोटे छोटेसे दुःख भी प्राणघातक हो जाते हैं, इस कथनको भी बहुधा लोग स्वीकार करेंगे; परन्तु ऐसा अवश्य देखा गया है कि ऐसी घटना प्रायः लोगोंकी भूल और असावधानीसे ही होती है। अतएव किसी भी दुःखको छोटा न समझ कर उसे जन्मसे ही समूल नष्ट करनेका यथा शक्ति प्रयत्न करना चाहिये।

आँख, नाक, कान उदरादि अनेक शारीरिक अङ्गोंके दर्दके सदृश दाँतका दर्द भी महा हानिकारक होता है। इससे लोगोंको विशेष दुःख होता है और बहुतेरोंको तो इसीमें प्राण दे देना पड़ता है।

दाँतके विषय में श्रीयुत डाक्टर श्रीपत गोबिन्द रानडे, एल. एम. एस (बम्बई), एल. आर. सी. पी. एस., डी. पी. एच. (एडिनबरा) और

डी. टी. एम (लन्दन) ने कुछ अपने अनुभव-सिद्ध विचार प्रकट किये हैं; वह तथा कुछ और भी उपाय तथा ओषधियां प्रस्तुत लेखमें दी जाती हैं। दाँतोंके कुछ चित्र भी दिये हैं; आशा है कि वाचक लेखसे अवश्य लाभ उठावेंगे।

उक्त डाक्टर महोदयका कथन है कि "अनेक वर्षोंके अनुभवसे मुझे इस बातका पता लगा है कि लोग दाँतोंकी स्वच्छताके विषयमें रञ्चमात्र भी चिन्ता नहीं रखते। दाँत स्वच्छ रखनेकी कितनी आवश्यकता है; यह बात बहुधा लोगोंको विदित ही नहीं है। यह विषय कितने महत्वका है; इस पर ध्यान न देनेसे शरीर वा प्रकृतिको क्या क्या हानियां होती हैं तथा इन हानियोंसे बचनेके लिये किन किन उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये, यह बतलानेके लिए मैं अपनी कुछ दांत सम्बन्धी अनुभव-सिद्ध बातें वाचकोंके लाभार्थ यहां देता हूं।"

दांत स्वच्छ रखनेका काम कुछ कठिन नहीं है। इसी प्रकार दन्त-विकार भी कुछ अधिक नहीं हैं। जो हैं उनसे आराम पानेके लिए पाश्चात्य-वैद्यक-शास्त्रने अनेक सहज उपाय बना रखे हैं। केवल उनका उपयोग मात्र विशेष सावधानी और ख़बरदारीके साथ करना चाहिये।

दांतोंकी खबरदारी कैसे रखनी चाहिये; इस विषयमें हम लोग विशेष अभिज्ञ हैं। बहुतेरे डाक्टर लोग भी इस विषयकी ओर यथोचित लक्ष्य नहीं रखते हैं। इस सम्बन्धके ऐसे अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं कि जिन्हें श्रवण कर विशेष खेद वा आश्चर्य होता है। ऐसा देखा गया है कि अपचन, रक्तहीनता, मूत्र रोग, क्षय (हार्ट डिसीज), न्यूमोनिया, विषमज्वर, दस्तकुन्द (?) इत्यादि बीमारियोंका मूलारम्भ बहुधा दन्त-विकारसे ही होता है, और जहां दन्त-विकार अच्छा हुआ कि शरीर आप ही आप नीरोग हो जाता है। मुझे अनेक बारके अनुभवसे इस बातका पूर्ण विश्वास हो चुका है कि बहुधा बीमारियां दन्त-विकारोंसे ही उत्पन्न होती हैं। इस सम्बन्धमें मेरे जाने हुए कुछ दृष्टान्त नीचे लिखे हैं।

(१) एक भाटियाको अपचन होता था। उसने अनेक औषधोपचार किये; परन्तु वह विकार अच्छा न हुआ। भाटियाके दांतोंकी दशा खराब थी। कुछ दांत गिर गये थे। जो शेष थे हिलते थे। हिलनेवाले दांतोंकी जड़ोंसे पीप निकलती थी; जो पेटमें जाती थी। यही अपचनका प्रधान कारण था। डाक्टरोंकी सम्मति मान उसने दांत निकलवा डाले; उक्त विकार आप ही आप लुप्त हो गया।

(२) एक बंजारा विशेष धर्मात्मा, पराक्रमी और परिश्रमी था। उसके शरीरकी दशा खराब थी। अतएव हार्ट डिसीज़की बीमारी जो पहिले उसे नाम मात्रको थी, इससे पूर्ण जोर पकड़ गई थी। अन्तमें हिलते हुए दांत उखाड़ डालनेके लिये उसे डाक्टरों ने अनेक बार सम्मति दी; परन्तु उसने एक न मानी। वह हर बार यह कह देता था कि मैं इतने वर्षोंसे आराम देनेवाले दांतोंको कभी न उखड़वाऊँगा। अन्तिम फल यह हुआ कि बंजारेका इसीमें प्राणान्त हुआ।

(३) एक मुसलमान गृहस्थ दांतोंकी बीमारीसे बीमार हुआ; उसने हिलने एवं दुःख देनेवाले दांत उखड़वा डालनेकी सम्मति जो डाक्टरों ने दी थी न मानी। अन्तमें उसी बीमारीमें उसका देहान्त हो गया। इसी विकारसे बीमार एक दूसरे मारवाड़ी गृहस्थने डाक्टरोंकी सम्मति मान साहस करके दांत उखड़वा डाले तो वह चङ्गा हो गया।

(४) एक सेठ जी दिन प्रति अशक्त होते जाते थे। बम्बईके एक विद्वान् डाक्टरने उनके रोगकी जांच की कि हृदयका मांस कम होकर चर्बी अधिक बढ़ गई है। इस आदमीको पुनः संधिवायु हो गया है। अनेक उपाय करने पर भी रोग समूल नष्ट न हुआ। सेठ जीके दांतोंकी दशा अत्यन्त ख़राब थी। दांतोंकी यथोचित सुदशा करनेसे सब रोग आप ही आप अच्छे हो गये।

(५) एक तरुण बजाज़की कमर विशेष दर्द करती थी। कमरमें दर्द होनेका इतर दोष कुछ न मिला। जांच करनेवालोंने उसके दांतोंमें ही दोष बतलाया। उसके दांत सब मजबूत थे; परन्तु मसूड़ों पर काली रेखा दृष्टि पड़ती थी। उस रेखाको ज्यों ही उंगलीसे दबाया, त्यों ही उसमेंसे पीप निकल पड़ी। वही पीप पेटमें जाती थी। इसीके विकारसे कमरमें दर्द होता था। जहां इसका इलाज किया कि कमर-दर्द नष्ट हो गया।

(६) उक्त गृहस्थकी स्त्रीको भी यही विकार था। उसे अच्छा होनेके निमित्त इलाज करानेकी सम्मति दी गई। परन्तु उसने उस पर लक्ष्य न दिया। सौरीमें उसे विष-ज्वर आया। अतएव गर्भाशयके आसपास पीप पड़ गई। कुल रक्त दूषित होगया। परिणाम यह हुआ कि इसीमें उसकी मृत्यु होगई।

उपर्युक्त कथनानुसार ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनकी दशा मैंने स्वयं देखी है। एतदर्थ प्रत्येक व्यक्तिको निरन्तर खबरदारी रखनी चाहिये कि दांतोंमें कभी किसी प्रकारका विकार उत्पन्न न होने पावे। यदि कभी हो जावे तो उसे अच्छा करनेके लिये शीघ्र उचित उपचार करना चाहिये। इसमें विलम्ब करना जीवन दुःखप्रद बना लेना ही है।

दांतोंकी बीमारीसे अनेक भयङ्कर परिणाम होते हैं और ध्यान न देनेसे यह रोग अपना अधिकार शरीरके कुल अङ्ग प्रत्यङ्ग पर जमा लेता है। यह रोग स्त्री पुरुषोंको, उनके परस्पर सम्बन्धसे उनकी सन्तानको तथा कुटुम्बके छोटे बच्चोंको होकर कुछ दिनमें कुटुम्बका ह्रास करने लगता है। मैंने यह बात स्वयं अनुभव-सिद्ध पायी है कि इस विषयमें अन्य लोगोंकी अपेक्षा गुजराती लोग विशेष असावधानी करते हैं। इसका यथार्थ कारण चाहे जो हो परन्तु मेरे विचारानुसार इन लोगोंमें स्वच्छताका ही विशेष अभाव रहता है।

गुजराती लोग उक्त बातमें विशेष असावधान रहनेके अतिरिक्त अपनी सन्तानको स्वच्छता सम्बन्धी आवश्यक बातोंका भी शिक्षण नहीं देते। महाराष्ट्र मंडलीमें बहुत अधिक सन्तान रहती है, उनमेंसे अनेक तो हमेशा अपने दांतोंको कष्ट कटाते ही रहते हैं। यह त्रुटियां अवलोकन करनेसे विदित होती हैं। परन्तु उन लोगोंमें यह देखा जाता है कि जब तक बच्चे दांत, मुँह न धो डालें तब तक वह उन्हें चाय दूध रोटी आदि कुछ भी खानेको नहीं देते। गुजराती लोगोंमें इस सम्बन्धसे अत्यन्त असावधानी रहती है। अस्तु! यह बात सत्य है कि जिन्होंने दन्त-स्वच्छताकी ओर पूरा पूरा लक्ष्य नहीं रखा, उनका सपरिवार ह्रास हो गया।

सर जार्ज बर्डवुडने हिन्दुस्थानी लोगोंकी दाँत-स्वच्छताके विषयमें एक लेख लिखा था। इसमें उन्होंने यह बतलाया था कि और लोगोंकी अपेक्षा हिन्दुस्तानी लोगोंके दाँत विशेष स्वच्छ रहते हैं और इसका कारण भी यह बतलाया था कि वह लोग दांतन (झाड़की पतली गीली सलाई) चबाकर उसकी कूचीसे दाँत घिस कर स्वच्छ करते हैं। दाँत स्वच्छ करना किसी प्रधान साधन पर अवलम्बित नहीं है। स्वच्छ करनेकी किसी भी क्रियाका उपयोगा यथोचित रीतिसे करनेसे अवश्य लाभ होता है।

मैं बाल्यावस्थामें बैलगाड़ीसे प्रवासको निकला। इस समय मैंने भी दांतनका उपयोग किया था। छींद (खजूर) जामुन, बेर, बबूल, इमली आदि इन झाड़ोंकी दांतनका उपयोग अच्छा होता है। वैद्यकमें बतलाया है कि कथित झाड़ोंकी छालका अर्क उतार उसके कुल्ला करनेसे भी दाँत सुदृढ़ होते हैं। यथार्थमें यह बात विश्वसनीय है; परन्तु दांतनका उपयोग यथोचित रीतिसे करना चाहिये।

दांतन ऊपर बतलाये हुए झाड़ोंकी होनी चाहिये। वह ताजी टूटी हुई होनी चाहिये। उसे इतना बारीक चबाना चाहिये कि उसकी कूचीके रेशे अत्यन्त नर्म हो जावें। यह रेशे मोटे रहनेसे दाँतोंकी जड़ोंको उखाड़ते और उनमेंसे रक्त निकाल

देते हैं। ऐसा होनेमें दाँतोंकी जड़ोंमें दर्द होने लगता है और होते होते वह हिल कर गिरने लगते हैं।

बहुधा देखा जाता है कि लोग इकट्ठी बहुत सी दांतन लेकर या तो पानीके बर्तनोंके पास बाहर डाल देते हैं अथवा कोई कोई पानीके बर्तनों हीमें डाल देते हैं। बाहर पड़ी हुई दांतनें एक दो दिनमें सूख जाती हैं। इससे फिर उनकी यथोचित कूची नहीं बनती। पानीमें पड़ी हुई दांतन जब तक पूरी न हो जावें तब तक लोग उन्हींका उपयोग करते रहते हैं। दांतन कई दिन तक पानीमें पड़ी रहनेसे सड़ जाती हैं। उनमेंसे दुर्गन्ध निकलने लगती है, परन्तु लोग इसपर कुछ ध्यान नहीं देते। ऐसी दांतनसे लाभ न होकर हानि होनेकी विशेष सम्भावना रहती है। अतएव जहां तक हो दांतन नित्य ताजी तोड़ कर ही उपयोगमें लानी चाहिये। बरगदके रेशे (जड़ें) जो डालियोंसे निकल कर नीचेकी ओर बढ़ते हुए जमीन तक पहुँच जाते हैं, और जिन्हें पाये कहते हैं, उनकी दांतन भी दाँतोंके लिये विशेष सुखप्रद होती है।

सम्प्रति ऐसे अनेक साधन उपलब्ध हो चुके हैं कि जिनके आगे अब दांतनके उपयोगकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं रही है। अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं, जो उपयोगी हैं, जिनका उपयोग सहज है तथा जो सरलतासे प्राप्त हो सकती हैं; जैसे दाँत स्वच्छ करनेके पाउडर्स, साबुन, लोशन्स आदि इतने निकले हैं कि उनमेंसे किसका उपयोग करे किसका नहीं, मन इस भ्रममें पड़ जाता है।

दाँत स्वच्छ करनेके लिये किसी भी जातिकी चाक मिट्टी, राख, गोबरकी अधजली राख जो खाक न हुई हो, बादामके छिलकोंकी राख, फिटकरी, कपूर, कोयलेकी बुकनी कार्बोलिक एसिड आदि पदार्थ उत्तम हैं। लोग इन्हीं चीजोंके मिश्रणसे दन्त-मंजन तैयार कर लेते हैं। उसमें सुगन्ध वा रंग लानेके लिए और भी कई पदार्थ शामिल कर देते हैं।

दन्त-सम्बन्धमें ऊपर बतलाई हुई वस्तुओंके गुणोंका विवेचन नीचे लिखे अनुसार है।

कार्बोलिक एसिड, कुनैन, सुहागा (फुलाया हुआ) और अजवानी फूल-यह चीजें दाँतोंकी जड़ों या पोलोंमें घुसकर सड़नेवाली चीजोंको सड़नेसे रोकती हैं। मुखसे दुर्गन्ध नहीं आने देती; परन्तु ध्यान रहे कि कार्बोलिक एसिड और अजवानी फूल अकेले इनका उपयोग भूल कर भी न किया जावे। इतर वस्तुओंके समान इनका प्रयोग बहुत ही कम मात्रामें करना चाहिये। जैसेः—एक तोले कार्बोलिक एसिडके साथ एक सेर ३ छटांक चाक, इसी प्रकार १ तोले अजवानी फूलके साथ साढ़े बारह सेर चाक या कोयलेकी बारीक पिसी हुई बुकनी मिलानी चाहिये। सबसे उत्तम होगा कि बतलाये हुए प्रमाणसे सब चीजें तौलकर कई दिनके लिये एक ही बार मिश्रण बना लिया जावे। ऐसा करनेसे कभी जल्दीके समयमें कोई चीज़ कम ज़्यादा होकर हानि पहुँचनेकी सम्भावना न रहेगी। यह उपाय दुर्गन्धको नष्ट करता है।

सुपारी, कत्था, बोल, विजय-सार, फिटकरी इन चीज़ोंको बारीक पीसकर घिसनेसे मसूड़े दृढ होते हैं। कमजोर मसूड़े जिनको घिसनेसे खून आने लगता है इससे सुदृढ़ हो जाते हैं और खून आना बन्द हो जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि फिटकरी दांतोंमें अधिक समय तक न रगड़ी जावे, नहीं तो लाभ पहुँचनेके बदले हानि पहुँचनेकी सम्भावना रहती है।

कोयला—एक प्रकारका पदार्थ जो कि चीज़ोंके सड़नेसे दाँतोंमें पैदा हो जाता है कोयलेके उपयोगसे नष्ट हो जाता है। चाक, सोडा मेगनीसिया या कोयलेमें विषैली हवाको खींचने, दुर्गन्ध नष्ट करने तथा द्रव पदार्थोंको सुखानेका गुण होता है।

दांतों पर घिसने वाली चीजें खास कर कोयला खरिया आदि बिलकुल बारीक पीस लेनी चाहिये। इनकी दरदरी (मोटी) बुकनी रगड़नेसे दाँत पर रहने वाला एक प्रकारका आच्छादन जिसे अना-

स्टेनसनके छिद्र (Foramina of stenson)
तालूके आगेका गढ़ा (Anterior palatine Fossa)
स्कार्पाके छिद्र (Foramina of Scarpa)
ऊपरके जबड़ेकी हड्डीका तालूका भाग (palatine process of maxalic)
तालूकी हड्डीका आड़ा भाग (Horizontal plate of Palatine bone)
तालूकी हड्डी (Accessory palatine canal)
तालूकी हड्डीके पीछेके छेद (posterior Palatine canal)
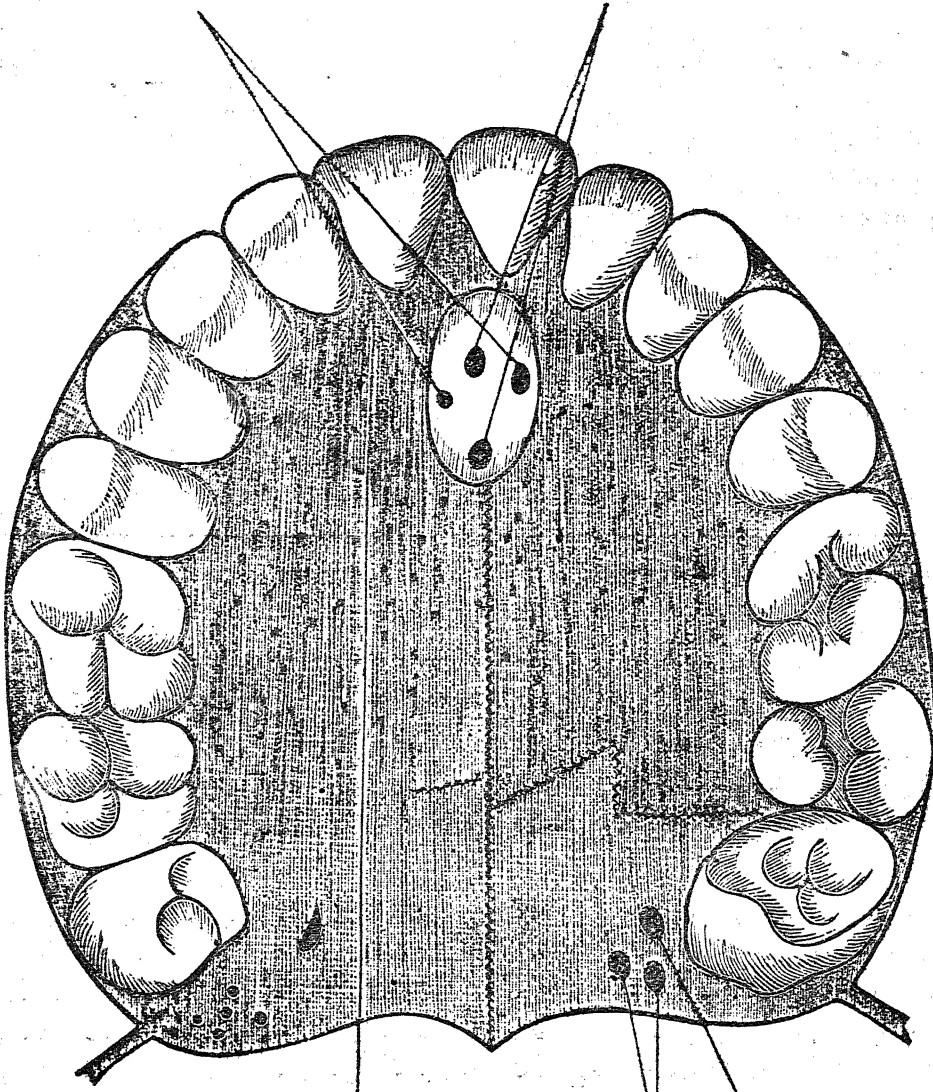
चित्र—५
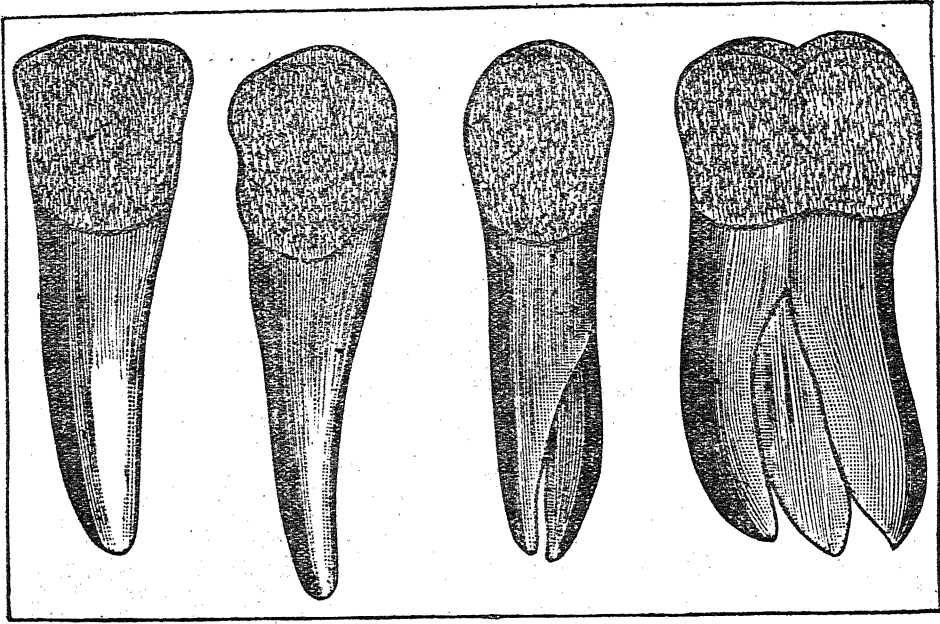
चित्र—६ छेदक दन्त भेदक या रदनक अग्र चर्वणक द्विखण्ड दन्त दाढ़

मल कहते हैं छिल जाता है। इससे दाँत कमज़ोर हो जाते हैं, अतएव उक्त चीज़ोंका उपयोग बहुत बारीक पीसकर सावधानीसे (धीरे धीरे) करना चाहिये। हिन्दुस्तानमें बहुधा नमक और कोयला मिलाकर भी दाँत रगड़नेकी प्रथा है; लेकिन इस उपयोगमें भी सावधानीकी विशेष आवश्यकता है।

चाकमिट्टी—यह चाहे जितनी बारीक पीसी जा सकती है और हर वस्तुके साथ ठीक ठीक मिलाई जा सकती है। यह दाँतों वा जबड़ोंके हर स्थानमें प्रविष्ट हो सकती है और यह भीगनेसे शीघ्र पानीमें मिल जाती है।

बारीक पिसी हुई जली सुपारी, चाक और कोयला सम प्रमाण मिलाकर घिसनेसे मुंह स्वच्छ होता है और दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है। एक छटांक बबूलकी छाल, १० छटांक पानीके साथ १० मिनट तक उबालो; पश्चात् छान कर ठंडा होने पर कई बार कुल्ले करो। इससे मसूड़े मजबूत होते हैं।

बोल, शहद, सुहागा पांच पांच आने भर और रौसेका उबाला हुआ पानी तीन छटांक मिलाकर कुल्ला करनेसे मुंह स्वच्छ रहता है।

कत्था, चाक, फिटकरी माजूफल पांच पांच आने भर और कसीस दो आने भर मिला कर सब चीजोंका महीन चूर्ण दांतों पर घिसनेसे मुंह स्वच्छ रहनेके अतिरिक्त मसूड़े मजबूत होते हैं।

जली हुई सुपारी वा कत्था दस दस आना भर और दाल चीनी दो आना भर मिलाओ। सब चीजोंका मिश्रण महीन पीस छानकर दांतों पर घिसो तो दांत वा मुखकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और मसूड़े मजबूत होते हैं।

अपचनका कारण खोजकर उसका इलाज कर देनेसे दांतोंका दर्द शीघ्र बन्द हो जाता है।

वास्तवमें दाँत स्वच्छ करनेके लिए अँगुली, ब्रश और गरम पानी इतनी ही सामग्री बस है। दाँत स्वच्छ करनेके पश्चात् ऐनकमें देखो।
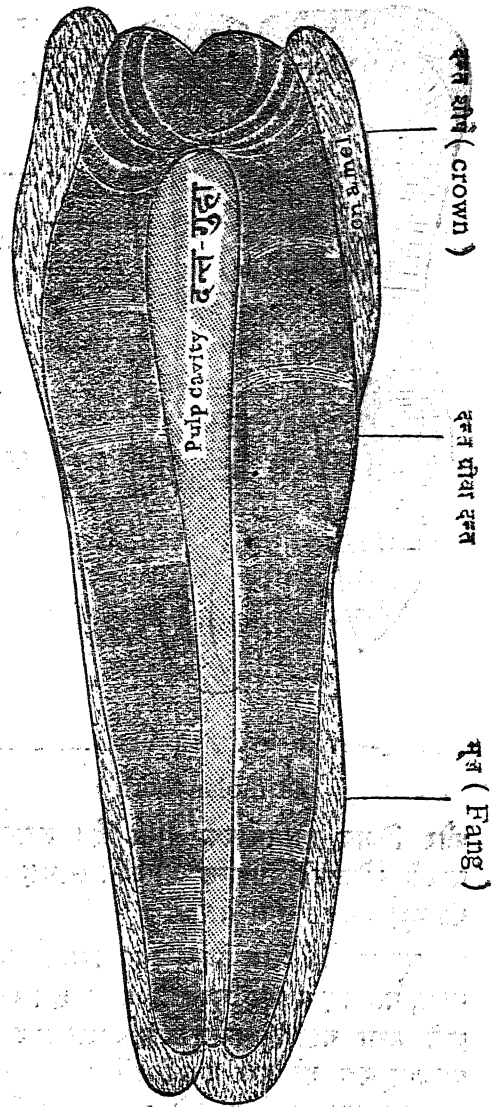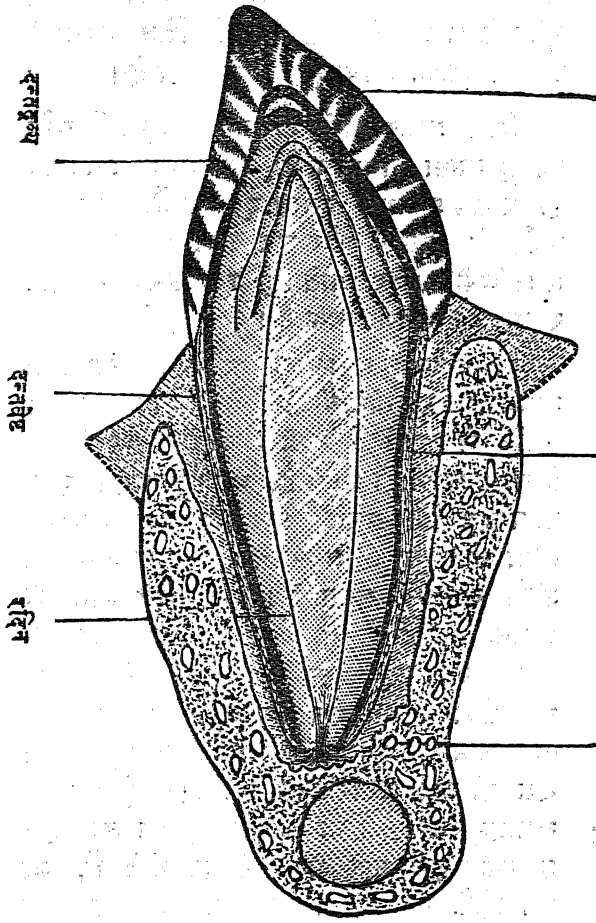
चित्र ७—(Vertical section of a tooth in situ)
दांतकी ऊर्ध्व काट (अनुवीक्षणसे)

चित्र ८—द्विखण्ड दांतकी ऊर्ध्व काट (Vertical section of a bicuspid tooth; enamel worn away)

यदि किसी दाँत पर या दाँतकी जड़में थोड़ा भी मैल दृष्टि पड़े तो उसे ब्रश या अंगुलीसे छुटा कर कुल्ला कर डालना चाहिये। पाउडर, साबुन, लोशन आदि का उपयोग करनेसे हर प्रकारकी मुख-गन्ध मिट जाती है। कार्बोलिक एसिड या कपूर यह सुगन्धित पदार्थ हैं। इनकी सुगन्धसे अस्वच्छता एवं कीड़ोंका नाश होता है।

दाँत स्वच्छ करनेका समय भोजनोपरान्त ही उत्तम है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि लोग दिन रातके चौबीस घंटोंमें केवल सबेरे ही दातन करते हैं। ऐसा करनेसे दाँतोंमें लगा हुआ दिन और रात भर का मैल अथवा उनकी जड़ोंमें भ[illegible] हुआ भोजनांश सड़ कर दुर्गन्ध देने लगता
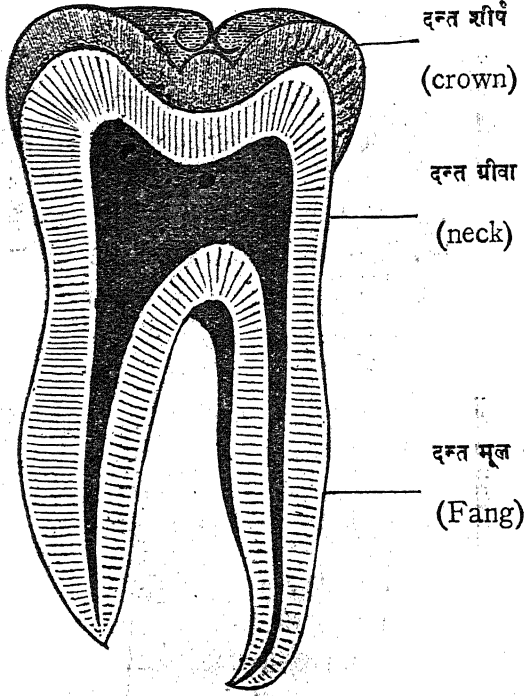
चित्र ६—दाढ़का ऊर्ध्व काट (Vertical section of a molar tooth)

और विशेष हानिकारक होता है। अतएव हर ग्रासके भोजनके उपरान्त ही दाँत स्वच्छ करनेका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

हम लोगोंमें भोजनोपरान्त सुपारी, लौंग; इलायची, पानादि पदार्थ खानेकी प्रथा है। यह कुछ बुरी प्रथा नहीं है; परन्तु उक्त चीजोंका भोजनके पश्चात् एक ही बार उपयोगमें लाना ठीक है। बार बार उपयोगमें लानेसे दाँतोंको हानि पहुंचती है।

सुपारी क्रिमिनाशक वस्तु है। लौंग, इलायची और पान पचनक्रियाको विशेष शक्ति देते हैं। इसका कारण यह है कि इनके चर्वणमें मुंहसे लार निकलती है। एतदर्थ वह किये हुए भोजनको और भी जल्द पचा देते हैं। कत्था भी गुणकारी है। जिसका गुण ऊपर बतलाया जा चुका है। यह चूनेके साथ खानेसे ओष्ठ-सौन्दर्य वर्द्धित करता है अतएव उसका उपयोग कुछ बुरा नहीं है।

जिस प्रकार शरीरकी नीरोगावस्थामें दाँत स्वच्छ रखना आवश्यक है, उसी प्रकार रोग ग्रस्त होकर सब प्रकारसे हताश हुई दशामें, जब शरीर दुर्बल हो जाता है और दुष्ट जन्तु प्रत्येक श्वासमें शरीरके अन्दर जाते हैं उस समय भी दाँत स्वच्छ रखना आवश्यक है।

शरीर-रचना हायपोब्लास्ट, मेसोब्लास्ट तथा एपिब्लास्ट इन तीन बीजोंसे होती है। बालक जब गर्भाशयमें रहता है तभीसे दाँत तैयार होनेकी क्रिया प्रारम्भ हो जाती है, छठवें सप्ताहमें दन्तस्थान कड़े होने लगते हैं। सातवें सप्ताहमें उसके दोनों ओर कुछ चौड़ा सा होकर, मध्य-भाग कुछ ऊंचा सा होने लगता है। इस चौड़े होनेवाले भागका वाहिरी-हिस्सा ओष्ठोंकी ओर व भीतरीभाग जीभकी ओर होता है। मध्यके ऊंचे भागमें दाँत तैयार होते हैं इस क्रियाके लिए कमसे कम बारह सप्ताह लगते हैं। इस प्रकार कुल दाँतोंकी एक ही जड़ तैयार होती है। पश्चात् एक दो सप्ताहमें उक्त ऊंचे भागके दस नीचेके तथा दस ऊपरके जुदे जुदे भाग तैयार होते हैं, जो पय-रदोंके स्थान हैं। उनमें एक विशिष्ट ऊंचा भाग रहता है। इसे 'पेपिला' कहते हैं। इस ऊंचे भागका आकार भविष्यमें निकलनेवाले दाँतोंके सदृश रहता है। इसके मध्यसे दाँतोंके ऊपर 'डेण्टाईन' वा उससे पत्र अर्थात् मगज तैयार होता है। उसके पीछेके भागसे 'एनेमल' तैयार होता है। इस प्रकारकी क्रिया चालू रहनेसे दाँतोंकी जड़ तैयार होती हैं। इस रीतिसे दाँत तैयार होते हैं।

दूधके दाँत २० रहते हैं। इनके स्थानपर स्थायी (कायम रहने वाले) बीस दाँत निकलते हैं। इसके अतिरिक्त आठ दस या बारह नवीन दाँत निकलते हैं। इन नवीन दाँतोंकी वृद्धि दुग्ध-दाँतोंके

नीचे होती है। स्थायी दाँत अवस्था; शारीरिक-शक्ति और दाँतोंके उपयोगके प्रमाणसे अच्छे निकलते और उत्तम बने रहते हैं।

दाँत निकलनेका समय नीचे लिखे अनुसार है। दुग्ध-दाँत :—

नीचेके इनसाइज़र्स—६ से ९ वें महीने तक। ऊपरके इनसाइज़र्स—८ से १० वें महीने तक।

नीचेके इनसाइज़र्स (पहिली दाढ़) १५ से २१ वें मीहने तक।

सुड़े—१६ से २० व महीने तक।

ऊपर की दाढ़ २० से २४ वें मीहने तक।

ऊपरके जबड़ेकी अपेक्षा नीचेके जबड़ेके दाँत बहुत जल्दी और पहिले निकलते हैं।

स्थायी (कायम रहने वाले दाँत)

पहिली दाढ़—६ ठे वर्ष में।

मध्यके दो इन साइज़र्स—७वें वर्ष में।

पार्श्व के इन साइज़र्स ८वें वर्ष में।

पहिले (बायक स्पिड) दो ९ वर्ष में।

दूसरे " १०-वर्ष में।

सुड़े— ११ से १२वें वर्ष तक।

दूसरी दाढ़— १२ से १३वें वर्ष तक।

बुद्धि दाढ़— १७ से २५वें वर्ष तक।

६ वर्षके पश्चात् बीस दूधके दाँत और ४ दाढ़ कुल २४ दांत निकलते हैं। उपर्युक्त स्थायी दांत देखकर मनुष्यकी अवस्था बतलाई जा सकती है।

जन्तु विकार—यह जन्तु वनस्पति एवं प्राणी इनके मध्यस्थ वर्गमेंसे हैं, अथवा दोनों वर्गोंमें उनका समावेश हो सकता है। वह वनस्पति नहीं हैं; क्योंकि वनस्पतिका जो हरा रँग (क्लोरोफिल) रहता है, वह उनका नहीं। मुख वा दांतोंको जन्तुसे विशेष दुःख होता है। जन्तुओं की वृद्धिके लिये आवश्यक अन्न, पानी, उष्णता निवासस्थलादि मुखमें पूर्ण प्रकारसे रहते हैं। किसी भी प्रकारसे जहां मुखमें जन्तुप्रवेश हुआ कि फिर उसकी बाढ़ अधिकाधिक होने लगती है और दांत तथा मुखको इनसे होने वाला दुष्परिणाम दृष्टि पड़ने लगता है। उक्त परिणाम निराले निराले जातिके फरमेण्टेशन से होता है। फरमेण्टेशन एसिड, लिक्विफाइङ्ग, टाक्सिक (विषैला)—इन तीन प्रकारका होता है। एसिड और लिक्विफाइङ्ग फरमेण्टेशनसे कीड़ा लगता है। तदनन्तर टाक्सिक फरमेण्टेशन प्रारंभ हो मुख में और तब उदरमें सूजन आ जाती है। अतएव रक्त दूषित होकर नाना रोग उत्पन्न होते हैं।

जन्तु सर्वत्र हैं। वह हवा, पानी, अन्न, वस्त्र, घर, बाहर, आदि सब जगह रहते हैं। उनका क्षय शक्य नहीं है। परन्तु विश्व-रक्षक विभुने ऐसी योजना की है कि उनसे पद पद पर अपना संरक्षण हो सकता है। यदि ऐसा न होता तो पृथ्वी पर हमारा रहना असम्भव था।

अपनी त्वचा अभेद्य है। 'म्युकसमेम्ब्रेन' जीभका ऊपरी नरम हिस्सा कायम है। अतएव एकाएक उसमें इन दुष्ट जन्तुओंका प्रवेश नहीं होता। वह जन्तु परस्पर एक दूसरेको खाकर नहींसे हो जाते हैं। यदा कदाचित् शरीरके अन्दर उनका प्रवेश हुआ भी तो शरीर जिन 'सेलस' का बना है वही उनका नाश करती हैं।

रक्तमें पानी अर्थात् 'प्लाज़मा' (रक्तका पतला हिस्सा) अपने स्वाभाविक गुणके अनुसार जन्तुओंका नाश करता है।

एमेटीन हैड्रोक्लोराइडकी पिचकारी लगानेसे इन कीड़ोंका नाश होकर पीप बहना बन्द हो जाता है और मसूड़े भी अच्छे हो जाते हैं।

उपर्युक्त कथनानुसार यद्यपि हम सब जन्तुमय हैं तथापि उनसे रक्षा करनेके लिये परमेश्वर ने अनेक साधन निर्माण किये हैं। उक्त रीतिसे शरीर रक्षा करनेकी शक्तिको 'इम्युनिटी' कहते हैं। उक्त साधन शिथिल होनेसे इन जन्तुओंका जोर उन्नत होता है। यह दशा रोग ग्रस्त स्थितिमें बहुधा प्राप्त होती है।

उक्त रोग-जनक जन्तुओंसे न्युमोनिआ, डिप्थीरिआ, क्षय, अक्टिनोमायकोसीस वगैरः रोग उत्पन्न होते हैं। इनसे पाचन शक्ति, रक्त मूत्र होता है तथा शरीरकी सब अंगों पर बुरा प्रभाव होकर शरीरका ह्रास होता है।

दांतों पर इसका परिणाम मुख्य दो प्रकारसे होता है। एक जाति के जन्तुओंसे उनकी जड़ोंमें एसिड उत्पन्न होता है। इससे दांतोंका एनेमल निकल कर जबड़ेमें दबे हुए भाग खुलने लगते हैं। और दूसरी जातिके जन्तु उक्त खुले हुए दन्त-भागका पानी बनाने लगते हैं। दाँतोंमें इन्हीं जन्तुओं से एक प्रकारका रोग लग जाता है जिसे 'किरी' या कृमि रोग कहते हैं। किसी किसी जातिके जन्तुसे 'एलकेलाइन पुट्रीफेक्शन' होता है। इससे मुखसे दुर्गन्ध आने लगती है और किसी किसी जातिके जन्तुओंके विषसे दांतों पर रंग चढ़ जाता है।

अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज आदि जितने चैतन्य प्राणी हैं, उन सबको आहार तथा उसके योग्य पचन करनेके लिये ईश्वर ने उचित साधन दिये हैं। वनस्पति को उसने मूल, पत्ते दिए हैं। इनके योगसे वह जीवन रस तथा वायु सेवन करती है। अनेक वनस्पतियां मांसाहारी होती हैं। ऐसी वनस्पतियोंमें दयालु परमेश्वर ने एक प्रकारका रस उत्पन्न किया है; जिसके लोभ से छोटे छोटे कीड़े उन पर पहुँचते हैं। वह उन्हें पचाकर पुष्ट होती हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म, बीज-रूप सदृश जो अत्यन्त छोटे जीव हैं, उन्हें भी उसी प्रमाणसे साधन दिये हैं। अमीबा केवल सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे दृष्टि पड़ने वाला एक अत्यन्त छोटा जीव है। वह रज-कणसे भी छोटा होता है। उसके हाथ, पैर, नाक, मुख आदि कुछ भी दृष्टि नहीं आते, परन्तु वह खाद्य पदार्थों पर अपना शरीर पसार कर गीला कर देते हैं और द्रव-रूपमें लाकर उससे अपना पोषण करते हैं।

डांस, पिस्सू, मच्छड़ आदि अनेक प्राणी ऐसे हैं जो अपनी सूँड़ (रक्त चूसनेकी बारीक नली) प्राणियोंके शरीरमें प्रविष्ट कर नलियों द्वारा पोषण पदार्थका शोषण कर उदर-पोषण करते हैं।

सर्प, अजगर आदि ऐसे प्राणी हैं जो छिपकली, मेंढक, चूहा आदि छोटे छोटे प्राणियों को निगल कर अपना पोषण करते हैं। इन प्राणियों के दांत बारीक होते हैं। इनका उपयोग अन्न बारीक करनेके काममें नहीं हो सकता। उन्हें चर्वण का काम ही नहीं पड़ता।

पक्षी आदि अनेक प्राणी ऐसे हैं जिनके दांत नहीं होते। मछली, कछुवे, मगर वगैरः जीवों को अपना भक्ष्य पकड़नेके कामके सिवा अन्य कामोंमें दांतोंका उपयोग नहीं पड़ता। वह अपना भक्ष्य समूचा निगल जाते हैं।

प्राणियों के दो भेद हैं। एक जुगाली करने वाले, दूसरे मांसाहरी। जुगाली करनेवाले प्राणियोंके इनसाइज़र्स, अर्थात् अन्न काटने वा बारीक पीसनेवाले दांत तथा दाढ़ें, यह दोनों प्रकारके दांत रहते हैं। 'केनाइन, अथवा सुड़े उनके नहीं होते (चूहोंके 'इनसाइज़र्स' विशेष तीक्ष्ण रहते हैं।

बिल्ली, कुत्ते, बाघ, सिंह, तेंदुए आदि मांसाहारी प्राणियोंके इन साइज़र्स, छोटे और केनाइन्स, (सुड़े) बड़े बड़े रहते हैं। इनके सिवा दाढ़ें भी रहती हैं। बन्दर वा मनुष्य इनकी दन्त-रचनामें विशेष साम्य है। हमें जो दन्त-रचना दी है उसे देखकर हमारी गणना सर्वाहारी प्राणियोंमें की गई है।

मुखकी आरोग्यता—दाँत वा मुख इनकी स्वच्छता कैसे रखनी चाहिये यह समझ लेना विशेष आवश्यक है। दाँत वा मुख यह सदा स्वच्छ कैसे रह सकते हैं, इस बातकी निरन्तर चिन्ता रखनी चाहिये। विशेष कर जनक-जननीको अपनी संतानको और नर्सस वा डाक्टर लोगोंको अपने बीमारोंको दाँत स्वच्छ कैसे रह सकते हैं, इस विषयकी शिक्षा सदैव देते रहना चाहिये।

मुख और दांतोंकी आरोग्यता सम्बन्धमें कुछ आवश्यक सूचनाएँ नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) छोटे बच्चोंके लिये जो अन्न उपयुक्त है वही खानेको देना चाहिये। इस सम्बन्धमें लापरवाही करनेसे बच्चोंके शरीर-वृद्धिके-कार्यमें बाधा होती है और इससे रोग उत्पन्न होते हैं। दिनमें दो बार अथवा किसीभी प्रकारका अन्न खानेके पश्चात् मुख स्वच्छ करना चाहिये। यह नित्यका प्रधान कर्म जानना चाहिये।

(२) बच्चोंको जो अन्न देना चाहते हो वह उनकी आयुके प्रमाणसे उपयुक्त हो। जब तक उनके दांत न निकलें तब तक उनका पोषण एकमात्र दूध पर ही होना चाहिये। कुछ दाँत निकलने पर दूध और अन्नकी अदल बदल करते रहना चाहिये। जैसे जैसे दाँत निकलते जावें वैसे वैसे चर्वण-क्रिया सिखाते जाना चाहिये। ऐसा करनेसे जबड़े और स्नायु दृढ होकर दांत सम प्रमाणके तथा सुदृढ निकलते हैं।

(३) बच्चोंको अँगुली एवं अँगूठा आदि चोखनेकी आदत न पड़ने देनी चाहिये। इसी प्रकार रबर आदिकी चुंगीभी चोखनेको न देनी चाहिये। यह आदत बहुत बुरी है। यह आदत एक बार पड़ जाने पर कठिनतासे छूटती है।

(४) शक्कर, मिठाई वा मिष्ठान्नसे बने हुए पदार्थ खानेको देनेसे बालकोंके दाँत सड़ जाते हैं, बहुधा मनुष्योंका ऐसा विचार है। विशेष कर पाश्चात्य देशके लोगोंमें यह विचार और भी अधिक पक्का है। उक्त विश्वास अत्यन्त असत्य है, ऐसा नहीं है; परन्तु विचार पूर्वक देखा जाय तो कथित पदार्थोंमें ऐसा विशेष दोष नहीं है। दोष केवल अस्वच्छतामें ही पाया जाता है।

(५) सुपारी, कत्था, चूना, पान, तम्बाखू आदि खानेकी आदत बहुधा लोगोंमें देखी जाती है। इन वस्तुओंका अधिक प्रमाणसे उपयोग करना निस्सन्देह बुरा है; कड़ी सुपारीकी अपेक्षा चिकनी सुपारी उपयोगमें लाना उत्तम है। उक्त वस्तुओंका उपयोग उपरोक्त विधानानुसार करना हानिकारक नहीं है।

(६) अपचन होनेसे छोटे बच्चोंके दांतोंमें विकार पैदा होता है। ठीक उसी प्रमाणसे उपदंश-रोग ग्रस्त माता पिताकी सन्तानके दांत बिलकुल बिगड़ जाते हैं। उनके ऊपरके इनसाइज़र्समें लकीरेंसी पड़ जाती हैं। अतएव दाँत स्वच्छ कपड़ेकी चिन्धी, ब्रश एवं बोरिक लोशनसे बार बार स्वच्छ करना चाहिये।

जब बच्चे समझने लगें तब उन्हें मृदु ब्रशका उपयोग सिखाना चाहिये। कमसे कम दिनमें दो बार उनसे दाँत स्वच्छ कराना चाहिये, पर यहां ब्रशके विषयमें भी मैं कुछ सूचना करना चाहता हूं। और वह यह कि काम हो चुकने पर ब्रश अच्छी तरह स्वच्छ कर डालना चाहिये। उसे यथोचित प्रबन्धसे रखना चाहिये। ब्रशमें यदि किसी किस्मका मैल लगा रहा या असावधानीसे रखनेके कारण उसमें कुछ लग गया तो अनेक हानियां हो सकती हैं। अस्वच्छ ब्रशसे दांत स्वच्छ करनेकी अपेक्षा दांत स्वच्छ न करना ही अच्छा है।

अनेक लोगोंको दाँतोंके मध्यमें सींक या पिन करने की सहज ही आदत पड़ जाती है। और वह यहां तक बढ़ती है कि अन्त तक नहीं छूटती। बहुधा भोजनोपरान्त कुछ खाद्य-पदार्थ दाँतों व दाढ़ोंके मध्यमें भर जाते हैं। उसे निकालनेके लिए लोग उपर्युक्त उपाय करते हैं। इससे दाँतों व जबड़ोंके मध्य में उक्त पदार्थ भरनेकी और भी अधिक गुंजाइश हो जाती है। वह अन्न पहिलेसे अधिक भर कर सड़ने लगते हैं। और दांतोंकी जड़ोंमें रोग पैदा करते हैं इसमें दांतोंकी जड़ कच्ची पड़ जाती हैं और बहुधा हिल कर गिर भी जाते हैं। अतएव दांत टोंचनेके कार्यसे हर मनुष्य को दूर रहना चाहिये।

दांतके दर्दके कुछ इलाज—कोकेन और कपूर मिलाकर लगानेसे दर्द बन्द हो जाता है। पोली दाढ़ोंके अन्दर इस दवासे भिगोई हुई कपास रखनी चाहिये। ऐसा कुछ समय किये रहनेसे दर्द कम हो जाता है।

क्रियोसोट—इस दवासे भीगी हुई कपास भी पोली दाढ़ोंके अन्दर रख लेने से दर्द नहीं रहता। तेज कार्बोलिक एसिडकी सींक भी दर्द मिटा देती है। इसका उपयोग बहुत कम रूपमें सावधानीके साथ करना चाहिये। इससे भीगी हुई कपासको दबानेसे भी विशेष लाभ है; परन्तु ध्यान रहे कि नीचेकी दोनों दवा सिवा दांतोंमें दर्द देने वाली जगहके अन्य स्थानमें न लगने पावें नहीं तो लाभके बदले हानि पहुँचती है।

ब्रजलाल गोबर्द्धन यादव टी. आर. टी. सी

ताम्र (Copper)

[ले० श्रीयुत कविराज प्रतापसिंह जी]

ताम्बा मिले हुए प्रयोगोंका कदाचित ही घातक प्रभाव होता है। जब कभी इसके विषका प्रभाव देखा गया है तब मलिन ताम्बेके पात्रों द्वारा ही हुआ है, जिनमें नीला नीला रंग लगा हुआ होता है। उन पात्रोंमें पके हुए भोजनके करनेसे ही विषैला प्रभाव देखा गया है। टीनमें बन्द किए हुए फलों या शाकोंमें हलका रंग देनेके लिये तूतिया मिला दिया जाता है, किन्तु यह इतनी न्यून मात्रामें होता है कि किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचा सकता। तूतिया ताम्बे और गन्धकका यौगिक है। अंग्रेजीमें इसको Cupri sulphas or Copper Sulphate कहते हैं। यही आत्मघात अथवा नर हत्याके लिये प्रयुक्त होता है; किन्तु इसका स्वाद इस कार्य्यके लिये उपयुक्त नहीं होता। पानी, गन्धकका तेज़ाब, ताम्बेके टुकड़े मिलाकर यह बनाया जाता है। देखनेमें यह गहरा नीला, चमकदार, और डलियोंके रूपमें होता है। इसका प्रभाव दाहक, संकोचक, वमनकारक और शक्ति प्रद होता है। संकोचक प्रभावके लिए $\frac{1}{6}$ ग्रेनसे २ ग्रेन तक दिया जाता है। वमनकारक प्रभावके लिए ५ ग्रेनसे १० ग्रेन तक दिया जाता है।

शरीरके अवयवोंपर प्रभाव—साधारण त्वचाके ऊपर तूतियाका कुछ प्रभाव नहीं होता; किन्तु छिली हुई जगह अथवा श्लेष्म धरा कला पर लगानेसे दाहक प्रभाव उत्पन्न करता है। यदि नेत्रकी श्लेष्म धराकला पर लगाया जाय तो इसका दाहक प्रभाव बहुत शीघ्र देखनेमें आता है। पानीमें डाल कर हलका घोल बनाकर लगानेसे रक्तकी प्रनालियोंको संकुचित करता है; इस कारण इसको संकोचक मानते हैं।

महा श्रोत—यदि यह दन्त मंजनोंमें मिलाकर चिरकाल तक दांतोंमें लगाया जाय तो यह दांतकी जड़ोंके मैलके साथ मिलकर एक मुख्य प्रकारकी नीली लकीर उत्पन्न कर देता है, यह रेखाएं मसूड़ों पर नहीं होतीं, वरन दांतों परही होती हैं, सीसेके विषैले प्रभाव होने पर मसूड़ों पर होती हैं; इस कारण इसका भ्रम नहीं करना चाहिये। यदि अल्प मात्रामें ओषधिके रूपमें सेवन किया जाय तो यह संकोचक प्रभाव करता है। ५ ग्रेनसे १० ग्रेनकी बड़ी मात्रामें वमन कारक प्रभाव करता है। इसके प्रयोगसे शरीरमें अवसन्नता और उत्क्लेद होता है। यदि इससे वमन न उत्पन्न हो तो आमाशयको तुरन्त ही खाली कर देना चाहिये; अन्यथा आमाशय तथा आंतोंके अन्दर यह दाहक प्रभाव उत्पन्न कर देगा। यह छोटी मात्रामें शरीरके अन्दर शोषित होजाता है और संखियाकी भांति प्रभाव करता है; इसके सेवनसे भोजनका रस शरीरमें उत्तम विधिसे धातुओंमें परिणित हो जाता है, जिससे शारीरिक बल बढ़ता है। इस कारण यह बात नाड़ियोंका बल देनेवाला और रसायन माना जाता है। यह अधिक सेवन

करनेसे हृदय और श्वासाशयकी नाड़ियोंके केन्द्रों-का लकवा उत्पादक है। यह आंतोंकी श्लेष्म धरा कलाके द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और वहां संकोचक प्रभाव उत्पन्न करता है। यह यकृतके भीतर जमा रहता है।

संशोधन—तूतिया शरीरसे बाहर आमाशय, आंतोंकी श्लेष्म धराकला, पित्त, मूत्र, लाला और स्वेदके द्वारा निकलता है।

तात्कालिक विषलक्षण—यह लक्षण बहुत कम देख पड़ते हैं। यदि बड़ी मात्रामें खाया जाय तो उससे आमाशय और आंतोंमें भयंकर दाह उत्पन्न होता है और साथ ही इसके श्वासाशय और हृदयके नाड़ी केन्द्रोंको लकवा मार जाता है।

प्रति विष—इसके प्रति विषमें वमनकारक ओषधि दें। यदि वामक ओषधि ठीक लाभ न करे तो आमाशयको पम्पद्वारा धो डालें और अण्डेकी सुफैदी दूधमें मिलाकर दें। स्नेहकारक पदार्थ पिलावें। अफीमके प्रयोगोंकी मिली हुई गरम गरम पुलटिस पेट पर बांधें।

चिरकालिक विष लक्षण—जो मनुष्य ताम्बे या पीतलके कारखानोंमें कार्य करते हैं, वह प्रायः पाण्डु, शिर शूल, वातनाड़ी दौर्बल्य, (Debility) निद्रा नाश, अपचन, सर्वांग या एकाग्र वात कम्प, मुख स्राव, रक्तष्ठीवन (Heamoptysis); कास (खांसी) दांतोंके मूलमें नीले रंगकी रेखाएं और कभी कभी भयंकर उदर शूल आदि रोगोंसे पीड़ित होते हैं।

ताम्रके साथ अमल मिलकर जो एक काला अस्वच्छ भाग बन जाता है उसको अंग्रेज़ीमें (copper acetate) कहते हैं और भाषामें जंगाल कहते हैं। ताम्बेके बर्तनमें घी या तेल भरकर रखने से एक दूसरी चीज उत्पन्न होती है उसको (Fatty acid salts) आंगारक लवण कहते हैं। उसके खानेसे भी कभी कभी आकस्मिक विषका प्रभाव होता है। ताम्र के ऊपर वानास्पतिक अम्लोंक प्रयोग करनेसे एक नया विषात्मक योग बन जाता है।

घातकमात्रा—तूतिया २½ तोलेकी मात्रामें घातक सिद्ध हुआ है। जंगाल इससे भी अधिक कम समयमें घातक होता है इसका समय अभी तक ठीक निश्चित नहीं हुआ है। ४ घन्टेमें प्रायः मनुष्य इससे मरते हुए देखे गये हैं।

सूर्य-सिद्धान्त

(गतांकसे सम्बद्ध)

$$\therefore \text{ज्या २ उ} = \text{ज्या २ म} + \text{च} (\text{ज्या ३ म} - \text{ज्या म}) + \frac{\text{च}^{२}}{२}(\text{२ ज्या ४ म} - \text{२ ज्या २ म})$$

$$+ \frac{\text{च}^{३}}{\lfloor ३} \times \frac{१}{४} (\text{२५ज्या५म} - \text{२७ज्या३म} + \text{४ज्याम})$$

$$+ \frac{\text{च}^{४}}{\lfloor ४} \times \frac{१}{८} (\text{२१६ज्या६म} - \text{२५६ज्या४म} + \text{५६ज्या२म}) + \cdots\cdots$$

$$= \left(-\text{च} + \frac{\text{च}^{३}}{६}\right) \text{ज्याम} + \left(१ - \text{च}^{२} + \frac{\text{७च}^{४}}{२४}\right) \times \text{ज्या२म} + \left(\text{च} - \frac{\text{९च}^{३}}{८}\right) \text{ज्या३म} + \left(\text{च}^{२} - \frac{\text{४च}^{४}}{३}\right) \times \text{ज्या४म} + \frac{\text{२५च}^{३}}{२४} \text{ज्या५म} + \cdots\cdots$$

यदि फि (उ) = ज्या३उ तो फि (म) = ज्या३म और फि' (म) = ३कोज्या३म, इसलिए लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार इसी प्रकार,

$$\text{ज्या३उ} = \text{ज्या३म} + \text{चज्याम} \times \text{३कोज्या३म} + \frac{\text{च}^{२}}{\lfloor २} \frac{\text{ता}}{\text{ताम}} \{\text{ज्या}^{२}\text{म} \times \text{३कोज्या३म}\}$$

$$+ \frac{\text{च}^{३}}{\lfloor ३} \frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}} \{\text{ज्या}^{३}\text{म} \times \text{३कोज्या३म}\} + \cdots\cdots$$

$$= \text{ज्या३म} + \frac{३}{२} \text{च} (\text{ज्या४म} - \text{ज्या२म}) + \frac{\text{च}^{२}}{२} \times \frac{३}{४} \times (\text{५ज्या५म} - \text{६ज्या३म} + \text{ज्याम})$$

$$+\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{६}}\times\frac{\text{३}}{\text{८}}\left(\text{३६ज्या६म}-\text{४८ज्या४म}+\text{१२ज्या२म}\right)+\cdots$$

$$=\frac{\text{३च}^{\text{२}}}{\text{८}}\,\text{ज्याम}-\left(\frac{\text{३च}}{\text{२}}-\frac{\text{३च}^{\text{३}}}{\text{४}}\right)\text{ज्या२म}$$

$$+\left(\text{१}-\frac{\text{९च}^{\text{२}}}{\text{४}}\right)\text{ज्या३म}$$

$$+\left(\frac{\text{३च}}{\text{२}}-\text{३च}^{\text{३}}\right)\text{ज्या४म}+\frac{\text{१५च}^{\text{२}}}{\text{८}}\,\text{ज्या५म}$$

$$+\frac{\text{९च}^{\text{२}}}{\text{४}}\,\text{ज्या६म}+\cdots\cdots$$

इसी तरह, $\text{ज्या४उ}=\text{ज्या४म}+\text{च ज्याम}\times\text{४कोज्या४म}$

$$+\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}\,\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\{\text{ज्या}^{\text{२}}\text{म}\times\text{४कोज्या४म}\}$$

$$=\text{ज्या४म}+\text{२च}\left(\text{ज्या५म}-\text{ज्या३म}\right)$$

$$+\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}\left(\text{६ज्या६म}-\text{८ज्या४म}+\text{२ज्या२म}\right)$$

$$=\text{च}^{\text{२}}\text{ज्या२म}-\text{२च ज्या३म}$$

$$+\left(\text{१}-\text{४च}^{\text{२}}\right)\text{ज्या४म}+\text{२च ज्या५म}+\cdots\cdots$$

और $\text{ज्या५उ}=\text{ज्या५म}+\frac{\text{५}}{\text{२}}\text{च}\left(\text{ज्या६म}-\text{ज्या४म}\right)+\cdots$

$$=-\frac{\text{५च}}{\text{२}}\,\text{ज्या४म}+\text{ज्या५म}+\frac{\text{५च}}{\text{२}}\,\text{ज्या६म}+\cdots$$

इस प्रकार समीकरण (च) के उ, ज्याउ, ज्या२उ इत्यादि के मान तो आ गये परन्तु इसके प, प$^{\text{२}}$, प$^{\text{३}}$ इत्यादि के मान जानना रह गये। यहां प

$$\frac{\sqrt{\text{१}+\text{च}}-\sqrt{\text{१}-\text{च}}}{\sqrt{\text{१}+\text{च}}+\sqrt{\text{१}-\text{च}}}$$ के लिए रक्खा गया है।

इसके किसी घातका विस्तार लैग्रेंजके सिद्धान्त के अनुसार जाना जा सकता है। परन्तु पांच छः घात तकके विस्तार जिनमें च$^{\text{७}}$से अधिकके अंक लानेकी आवश्यकता नहीं है द्वियुक्पद सिद्धान्त (Binomial Theorem) से भी जाने जा सकते हैं जो यहां दिखलाये जाते हैं:—

$$\text{प}=\frac{\sqrt{\text{१}+\text{च}}-\sqrt{\text{१}-\text{च}}}{\sqrt{\text{१}+\text{च}}+\sqrt{\text{१}-\text{च}}}$$

$$=\frac{\text{१}-\sqrt{\text{१}-\text{च}^{\text{२}}}}{\text{च}}$$

$$=\frac{\text{१}}{\text{च}}\left(\text{१}-\sqrt{\text{१}-\text{च}^{\text{२}}}\right)$$

$$=\frac{\text{१}}{\text{च}}\left\{\text{१}-\left(\text{१}-\text{च}^{\text{२}}\right)^{\frac{\text{१}}{\text{२}}}\right\}$$

$$=\frac{\text{१}}{\text{च}}\left(\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}+\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{६}}}{\text{१६}}+\cdots\cdots\right)$$

$$=\frac{\text{च}}{\text{२}}+\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{१६}}+\cdots\cdots$$

$$\text{प}^{\text{२}}=\left(\frac{\text{च}}{\text{२}}+\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{१६}}\right)$$

$$=\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{४}}+\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{८}}+\frac{\text{५च}^{\text{६}}}{\text{६४}}+\cdots\cdots$$

$$\text{प}^{\text{३}}=\left(\frac{\text{च}}{\text{२}}+\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{१६}}\right)\left(\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{४}}+\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{८}}+\frac{\text{५च}^{\text{६}}}{\text{६४}}\right)$$

$$=\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{८}}+\frac{\text{३च}^{\text{५}}}{\text{३२}}+\frac{\text{९च}^{\text{७}}}{\text{१२८}}+\cdots\cdots$$

$$\text{प}^{\text{४}}=\left(\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{४}}+\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{८}}+\frac{\text{५}}{\text{६४}}\text{च}^{\text{६}}\right)^{\text{२}}$$

$$=\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{१६}}+\frac{\text{च}^{\text{६}}}{\text{१६}}+\cdots\cdots$$

$$\text{प}^{\text{५}}=\left(\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{१६}}+\frac{\text{च}^{\text{६}}}{\text{१६}}\right)\left(\frac{\text{च}}{\text{२}}+\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{१६}}\right)$$

$$=\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{३२}}+\cdots\cdots\cdots$$

अब समीकरण (च) में प, प$^{\text{२}}$, प$^{\text{३}}$ इत्यादि तथा उ, ज्याउ, ज्या२उ इत्यादि के विस्तृत मान उत्थापन किये जायं तो इसका रूप यह होगा:—

$$\text{स}=\text{म}+\left(\text{च}-\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{१९२}}\right)\text{ज्याम}+\left(\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}-\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{६}}\right.$$

$$\left.+\frac{\text{च}^{\text{६}}}{\text{४८}}\right)\text{ज्या२म}+\left(\frac{\text{३च}^{\text{३}}}{\text{८}}-\frac{\text{२७च}^{\text{५}}}{\text{१२८}}\right)\text{ज्या३म}$$

$$+\left(\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{३}}-\frac{\text{४च}^{\text{६}}}{\text{१५}}\right)\text{ज्या४म}+\frac{\text{१२५च}^{\text{५}}}{\text{३८४}}\,\text{ज्या५म}+\cdots$$

$$+\text{२}\left\{\left(\frac{\text{च}}{\text{२}}+\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{१६}}\right)\left[\left(\text{१}-\frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{८}}+\frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{१९२}}\right)\times\right.\right.$$

$$\text{ज्याम}+\left(\frac{\text{च}}{\text{२}}-\frac{\text{च}^{\text{३}}}{\text{६}}+\frac{\text{च}^{\text{५}}}{\text{४८}}\right)\text{ज्या२म}$$

$$+\left(\frac{३च^{३}}{८}-\frac{२७च^{५}}{१२८}\right)\text{ज्या३म}+\left(\frac{च^{४}}{३}-\frac{४च^{६}}{१५}\right)\times$$

$$\text{ज्या४म}+\frac{१२५च^{५}}{३८४}\text{ज्या५म}+\cdots\cdots]$$

$$+\tfrac{१}{२}\left(\frac{च^{२}}{४}+\frac{च^{४}}{८}+\frac{५च^{६}}{६४}\right)\left[\left(-च+\frac{च^{३}}{६}\right)\text{ज्याम}+\right.$$

$$\left(१-च^{२}+\frac{७च^{४}}{२४}\right)\text{ज्या२म}$$

$$+\left(च-\frac{९च^{३}}{८}\right)\text{ज्या३म}+\left(च^{२}-\frac{४च^{४}}{३}\right)\times$$

$$\left.\text{ज्या४म}+\frac{२५च^{३}}{२४}\text{ज्या५म}+\cdots\cdots\right]$$

$$+\tfrac{१}{३}\left(\frac{च^{३}}{८}+\frac{३च^{५}}{३२}\right)\left[\frac{३च^{२}}{८}\text{ज्याम}-\left(\frac{३च}{२}-\frac{३च^{३}}{४}\right)\times\right.$$

$$\text{ज्या२म}+\left(१-\frac{९च^{२}}{४}\right)\text{ज्या३म}+\left(\frac{३च}{२}-३च^{३}\right)\times$$

$$\left.\text{ज्या४म}+\frac{१५च^{२}}{८}\text{ज्या५म}+\frac{९च^{३}}{४}\text{ज्या६म}+\cdots\cdots\right]$$

$$+\tfrac{१}{४}\left(\frac{च^{४}}{१६}+\frac{च^{६}}{१६}\right)[च^{२}\text{ज्या२म}-२च\text{ज्या३म}$$

$$+(१-४च^{२})\text{ज्या४म}+२च\text{ज्या५म}]$$

$$+\tfrac{१}{५}\times\frac{च^{५}}{३२}\left[-\frac{५च}{२}\text{ज्या४म}+\text{ज्या५म}\right.$$

$$\left.+\frac{५च}{२}\text{ज्या६म}\right]\Bigg\}$$

स के इस मानमें ज्या६मके आगेके पद तथा वह सब पद जिसके गुणक $च^{६}$ या उससे अधिक हैं छोड़ दिये गये हैं क्योंकि इससे कोई विशेष अशुद्धि नहीं हो सकती। इस मानको सरल करने पर ऐसे पद भी मिलेंगे जिनके गुणक $च^{६}$ से अधिक हैं। इनको भी छोड़ देने तथा ज्याम, ज्या२म इत्यादिके गुणक एकत्र करने पर

$$स=म+\left(२च-\tfrac{१}{४}च^{३}+\frac{५}{९६}च^{५}\right)\text{ज्याम}$$

$$+\left(\tfrac{५}{४}च^{२}-\frac{११}{२४}च^{४}+\frac{१७}{१९२}च^{६}\right)\text{ज्या२म}$$

$$+\left(\frac{१३}{१२}च^{३}-\frac{४३}{६४}च^{५}\right)\text{ज्या३म}$$

$$+\left(\frac{१०३}{९६}च^{४}-\frac{४५१}{४८०}च^{६}\right)\text{ज्या४म}$$

$$+\frac{१०९७}{९६०}च^{५}\text{ज्या५म}\cdots\cdots\cdots\cdots\cdots(छ)$$

मध्यम और स्पष्ट ग्रहका सम्बन्ध प्रकट करनेके लिए यही प्रधान समीकरण है। इससे यह जाना जाता है कि यदि द्रष्टा सूर्यके मध्यमें हो तो किसी ग्रहके मध्यम और स्पष्ट स्थान अपने अपने कक्षावृत्तमें किस समय क्या होते हैं। जिस ग्रहकी केन्द्रच्युति च के स्थानमें रखी जायगी उसी ग्रहके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंका सम्बन्ध समीकरण (छ) से जाना जा सकता है। व्यवहारमें सुविधाके लिए ज्याम, ज्या२म इत्यादिके गुणकोंको च का यथार्थ मान रख कर सरल करके एक संख्यामें प्रकट किया जा सकता है। जैसे गुरुकी केन्द्रच्युति* ०·०४८२५४ है, इसलिए

$$च=०·०४८२५४$$
$$च^{२}=०·००२३२८४$$
$$च^{३}=०·०००११२४$$
$$च^{४}=०·०००००५४$$

$च^{५}$, $च^{६}$ के मान जाननेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि दशमलवके छठे स्थानमें यदि ५ का अंक हो और वह छोड़ दिया जाय तो १ विकलाकी अशुद्धि हो सकती है। इसलिए,

$$स=म+(·०९६५०८-·००००२८१)\text{ज्याम}$$
$$+(·००२९१०६-·०००००२५)\text{ज्या२म}$$
$$+·०००१२१८\text{ज्या३म}+·०००००५८\text{ज्या४म}$$

$$\text{अथवा } स=म+·०९६४७९९\text{ज्याम}+·००२९०८१$$
$$\text{ज्या२म}+·०००१२१८\text{ज्या३म}$$
$$+·०००००५८\text{ज्या४म}\cdots\cdots\cdots\cdots(ज)$$

*केन्द्रच्युति कई कारणोंसे स्थिर नहीं रहती वरन् अत्यन्त मंदगतिसे बदलती रहती है, इसलिए भिन्न भिन्न कालमें इसका मान कुछ भिन्न होता है। यह केन्द्रच्युति संवत् १९५६ वि० के अंतकी है।

यह समीकरण सूर्यकेन्द्र गत गुरुका स्पष्ट स्थान जानने के लिए पर्याप्त है। यदि म, २म, ३म इत्यादि-की ज्याएं भारतीय रीतिसे कला या विकलामें प्रयोगकी जायं तो समीकरण (ज) के दाहिने पक्षमें म के अतिरिक्त जो कुछ आवेगा वह कला या विकलामें होगा और सूर्यके मध्यसे यही गुरुका मंदफल होगा। यदि ज्याओंको आजकलकी रीतिसे भिन्नमें प्रकट किया जाय तो सरल करने पर म के अतिरिक्त जो संख्या दशमलव भिन्नमें आवेगी वह रेडियनमें होगी जिसकी कला या विकला बनानेके लिए ३४३७·७५ या २०६२६५ से गुणा करना होगा। दोनों रीतियोंसे फल एक ही होगा।

गुरुके लिए जिस तरह समीकरण (ज) प्राप्त किया गया है उसी तरह प्रत्येक ग्रहके लिए उसकी केन्द्रच्युतिको समीकरण (छ) में उत्थापन करनेसे एक सरल सूत्र प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक ग्रहकी केन्द्रच्युति तथा अन्य आवश्यक बातें आगे एक सारिणीमें दे दी जावेंगी।

सूर्यके मध्यसे ग्रहकी दूरी किस समय क्या होती है यह जाननेके लिए एक समीकरण है जो समीकरण (२) अर्थात् कर्ण = त (१ − च कोज्याउ) से लैग्रेंज सिद्धान्तके अनुसार १ − च कोज्याउ का मान जान लेनेसे आ जाता है। लैग्रेंज सिद्धान्तके अनुसार,

$$\text{१} - \text{चकोज्याउ} = (\text{१} - \text{चकोज्याम}) + \text{चज्याम}\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}$$

$$(\text{१} - \text{चकोज्याम}) + \frac{\text{च}^{\text{२}}}{|\underline{\text{२}}} \cdot \frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left\{\text{ज्या}^{\text{२}}\text{म} \times \text{चज्याम}\right\}$$

$$+ \frac{\text{च}^{\text{३}}}{|\underline{\text{३}}} \cdot \frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left\{\text{ज्या}^{\text{३}}\text{म} \times \text{चज्याम}\right\}$$

$$= \text{१} - \text{चकोज्याम} + \frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}} - \frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}\text{कोज्या२म}$$

$$+ \frac{\text{३}}{\text{८}}\text{च}^{\text{३}}\text{कोज्याम} - \frac{\text{३}}{\text{८}}\text{च}^{\text{३}}\text{कोज्या३म} - \frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{३}}$$

$$\text{कोज्या४म} + \frac{\text{च}^{\text{४}}}{\text{३}}\text{कोज्या२म} + \cdots\cdots\cdots$$

$$= \left(\text{१} + \frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}\right) - \text{च}\left(\text{१} - \frac{\text{३}}{\text{८}}\text{च}^{\text{२}}\right)\text{कोज्याम}$$

$$- \frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}\left(\text{१} - \frac{\text{२}}{\text{३}}\text{च}^{\text{२}}\right)\text{कोज्या२म}$$

$$- \frac{\text{३}}{\text{८}}\text{च}^{\text{३}}\text{कोज्या३म} + \cdots\cdots$$

$$\therefore \text{कर्ण} = \text{त}\left\{\left(\text{१} + \frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}\right) - \text{च}\left(\text{१} - \frac{\text{३}}{\text{८}}\text{च}^{\text{२}}\right)\text{कोज्याम}\right.$$

$$\left. - \frac{\text{च}^{\text{२}}}{\text{२}}\left(\text{१} - \frac{\text{२}}{\text{३}}\text{च}^{\text{२}}\right)\text{कोज्या२म} - \frac{\text{३}}{\text{८}}\text{च}^{\text{३}}\text{कोज्या३म}\right\} \cdots (\text{झ})$$

गुरुके कर्णके लिए समीकरण (झ) का रूप होगा।

$$\text{५२०२·८}\{(\text{१} + \text{·००११६४२}) - (\text{·०४८२५४} - \text{·००००४११})\text{कोज्याम} - (\text{·००११६४२} - \text{·००००१८})\text{कोज्या२म} - \text{·००००४११ कोज्या३म}\}$$

$$\text{अथवा ५२०२·८}(\text{१·००११६४२} - \text{·०४८२११९ कोज्याम} - \text{·००११६२४ कोज्या२म} - \text{·००००४२१ कोज्या३म})$$

$$\text{अथवा ५२०८·८६} - \text{२५१·०६ कोज्याम} - \text{६·०५ कोज्या२म} - \text{·२२ कोज्या३म}$$

५२०२·८ सूर्यसे गुरुका मध्यम कर्ण है जब कि पृथ्वीका मध्यम कर्ण १००० समझा जाय। इसी तरह अन्य ग्रहोंके कर्ण जाननेका सूत्र सरल हो सकता है।

समीकरण (छ) से ग्रहका जो स्पष्टकेन्द्र आता है वह उसके नीच (Perihelion) से कक्षावृत्तमें ग्रहकी दूरी होता है। यदि ग्रहका कक्षावृत्त पृथ्वीके कक्षावृत्त अर्थात् क्रान्तिवृत्तके ही धरातलमें होता तो यही क्रान्तिवृत्तमें भी ग्रहकी दूरी होता। परन्तु प्रत्येक ग्रहके कक्षावृत्तका धरातल क्रान्तिवृत्तके धरातलसे कुछ कोण बनाता है जिसे ग्रहका परम शर कहते हैं और जिसकी चर्चा पहले अध्यायमें अंतिम तीन चार श्लोकोंमेंकी गयी है इसलिए कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्रमें कुछ संस्कार करनेसे क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र आता है।
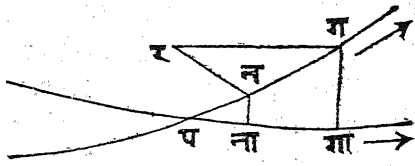
चित्र—१०

मान लो प ग ग्रहका कक्षावृत्त और प गा क्रान्ति-वृत्त है, प ग्रहका उत्तर पात है र सूर्यका मध्य है तथा न ग्रहका नीच (Perihelion) है। ग ग्रहका स्पष्ट स्थान और ग गा क्रान्तिवृत्त पर लम्ब है अर्थात् गा ग वृत्त क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव पर जाता है। तब <न र ग कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्र तथा र ग की दूरी ग्रहका स्पष्ट कर्ण हैं जो (छ) और (झ) समीकरणोंके अनुसार जाने जाते हैं। न से न ना लम्ब भी क्रान्ति-वृत्तीय ध्रुव पर जाता है। क्रान्तिवृत्तमें ना और गा विन्दुओंके बीचकी जो दूरी है वही ग का क्रान्ति-वृत्तीय स्पष्ट केन्द्र कहलाती है। नेपियरके नियमों-के अनुसार प ना और प गा दूरियोंको सहज ही जान सकते हैं। फिर दोनोंका अन्तर जान लेनेसे ना गा दूरी (क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र) जानी जा सकती है। परन्तु व्यवहारमें सरलता उस समय होती है जिस समय केवल यह जानना रहता है कि प न या प ग में क्या घटाया बढ़ाया जाय कि प ना और प गा का मान निकल आवे। जितना घटाने या बढ़ानेसे, पातसे ग्रहकी क्रान्तिवृत्तीय दूरी निकलती है उसको परिणति कह सकते हैं। इसलिए यह जानना चाहिये कि परिणति कैसे निकालते हैं। परिभाषाके अनुसार नीच परिणति

= प न − प ना

ग्रह परिणति = प ग − प गा

ग गा को ग्रहका इष्टकालिक शर, <ग प गा को ग्रहका परमशर, प ग को पात से ग्रहकी दूरी या विपात ग्रह कहते हैं। <ग गा प समकोण है इसलिए ग प गा गोलीय समकोण त्रिभुज है और नेपियरके नियमोंके अनुसार,

(१) ज्या (९०° − प ग) = कोज्या (ग गा) × कोज्या प गा

(२) ज्या (ग गा) = कोज्या (९०° − ग प गा) × कोज्या (९०° − प ग)

(३) स्परे (ग गा) = ज्या (प गा) × स्परे (ग प गा)

(४) स्परे (प गा) = कोज्या (ग प गा) स्परे (प ग)

ज्या (प ग − प गा) = ज्या (प ग) कोज्या (प गा) − कोज्या (प ग) ज्या (प गा)·········(ट)

पहले चार सूत्रोंसे कोज्या (प गा) और ज्या (प गा) के मान परमशर, इष्टकालिकशर और विपात ग्रह-में स्थापित करना चाहिए। सूत्र (३) से

$$\text{ज्या (प गा)} = \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

सूत्र (४) से, $\frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (प गा)}} = \text{कोज्या (ग प गा) स्परे पग}$

$$\therefore \text{कोज्या (प गा)} = \frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{स्परे (प ग}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (गगा)}}{\text{स्परे(गप गा)}} \times \frac{1 \times \text{कोज्या (पग)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{ज्या प ग}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (गपगा)}} \times \frac{\text{कोज्या (पग)}}{\text{ज्या (पग)}}$$

ज्या (प गा) और कोज्या (प गा) के मानोंको समीकरण (ट) में उत्थापन करनेसे,

$$\text{ज्या (प ग—प गा)} = \text{ज्या (प ग)} \times \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (प ग)}} - \text{कोज्या (प ग)} \times \frac{\text{स्परे (गा)}}{\text{स्परे (ग प ग)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)} \times \text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} - \frac{\text{कोज्या (प ग)} \times \text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा) कोज्या प ग}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \left\{ (1 - \text{कोज्या (ग प गा)} \right\}$$

$$= \frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{कोज्या (ग गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \text{उत्क्रमज्या (ग प गा)}$$

परन्तु सूत्र (२) से $\frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} = \text{ज्या (प ग)}$

$$\therefore \text{ज्या (प ग—प गा)} = \frac{\text{ज्या (प ग) कोज्या (प ग)}}{\text{कोज्या (ग गा)}}$$

$\times$ उत्क्रमज्या (ग प गा)

बुधको छोड़कर सब ग्रहोंका परमशर ३°·४ से अधिक नहीं है इस लिए इनका इष्ट कालिक शर और भी छोटा होगा; जिससे यह मान लेनेमें कोई अशुद्धि नहीं है कि कोज्या (ग गा) एकके समान है। ऐसी दशा में,

$$\text{ज्या (प ग — प गा)} = \text{ज्या (प ग) कोज्या (प ग) उत्क्रमज्या (ग प गा)}$$
$$= \tfrac{1}{2}\ \text{ज्या २ (प ग) उत्क्रमज्या (ग प गा)}$$

अर्थात् ज्या (परिणति) = $\frac{1}{2}$ परम शरोत्क्रमज्या $\times$ ज्या २ (विपात ग्रह)········ (८)

इस समीकरणसे ग्रह और उसके नीच दोनोंकी परिणति जानकर क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र जाना जा सकता है।

अब यह जानना रह गया कि पृथ्वीके मध्यसे ग्रह किस दिशामें और कितनी दूर देख पड़ता है। यह तो स्वयं सिद्ध है कि पृथ्वीसे किसी ग्रहकी दिशा और दूरी जाननेके लिए यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी स्वयं कहां है।
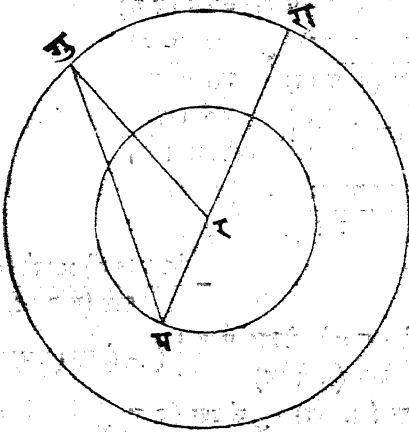
चित्र—११

यह समीकरण (६) सेही जाना जाता है क्योंकि इसीकी कक्षाके धरातलमें तो अन्य ग्रहोंकी परिणति करनी पड़ती है। जब पृथ्वीपर स्थान शीत होगया तब सूर्यका स्थान सहज ही जाना जा सकता है; क्योंकि सूर्यसे पृथ्वी जिस दिशामें देख पड़ती है उससे १८०° पर पृथ्वीसे सूर्य दीखेगा। इस लिए पृथ्वीके स्पष्टकेन्द्रमें १८०° जोड़ने या घटानेसे सूर्यका स्थान निकल आता है। ग्रहके क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्रसे सूर्यका स्थान घटा देने पर शीघ्र केन्द्र जाना जा सकता है। चित्र ११ में र प और गु क्रमसे पृथ्वी और बृहस्पतिके स्थान है। र वह विन्दु है जहां सूर्य पृथ्वीके मध्यसे देख पड़ता है; इसलिए रा र गु कोण बृहस्पतिका शीघ्रकेन्द्र हुआ प र गु कोण १८०°—रा र गु कोणके समानहै। इसलिए पर गु त्रिभुजके दो भुज प र और गु र ज्ञात हैं; क्योंकि यह सूर्यसे पृथ्वी और गुरुकी दूरी अर्थात् पृथ्वी और गुरुके स्पष्ट कर्ण हैं और इनके बीचका कोण प र गु भी ज्ञात है। इसलिए प गु, $\angle$र प गु और $\angle$प गु र भी जाने जा सकते हैं; क्योंकि लोनीकी त्रिकोणमिति भाग १ पृष्ठ १०४ अथवा हाल और नाइटकी त्रिकोणमिति पृष्ठ १७१ से स्पष्ट है कि

$$\text{स्परे}\ \frac{\text{र प गु — र गु प}}{२} = \frac{\text{र गु — र प}}{\text{र गु + र प}}\ \text{स्परे}\ \frac{\text{र प गु + र गु प}}{२}$$

परन्तु $\angle$ र प गु + $\angle$ र गु प = $\angle$ रा र गु = शीघ्रकेन्द्र

$$\therefore\ \text{स्परे}\ \frac{\text{र प गु — र गु प}}{२} = \frac{\text{र गु — र प}}{\text{र गु + र प}}\ \text{स्परे}\ \frac{\text{शीघ्रकेन्द्र}}{२}$$

जिससे र प गु—र गु प ज्ञात हो सकता है। और $\angle$ र गु प + $\angle$ र प गु ज्ञात ही है; इसलिए इन दोनोंको जोड़कर आधा कर देनेसे र प गु कोण जाना जा सकता है। यही कोण बृहस्पति और सूर्यके बीचका कोण है; जो पृथ्वीसे देख पड़ता है। इसीको इनान्तर कहते हैं क्योंकि इन सूर्यका पर्याय है।

पृथ्वीसे गुरुकी दूरी पगु जिसे शीघ्रकर्ण कहते हैं त्रिकोणमितिके अनुसार इस प्रकार जान सकते हैं:—

$$\frac{\text{गु प}}{\text{ज्या} \angle \text{ प र गु}} = \frac{\text{गु र}}{\text{ज्या} \angle \text{ र प गु}}$$

परन्तु ज्या प र गु=ज्या रा र गु = ज्या शीघ्रकेन्द्र
∴ शीघ्रकर्ण=ज्या शीघ्रकेन्द्र × ग्रहका मंदकर्ण

$$\times \frac{१}{\text{ज्या इनान्तर}} \cdots (६)$$

यह इनान्तर और शीघ्रकर्ण क्रान्तिवृत्तीय धरातल के हैं अर्थात् उस दशाके हैं यदि ग्रह क्रान्तिवृत्तमें देख पड़ता परन्तु यथार्थमें ग्रह कुछ उत्तर या दक्खिन रहता है। इसलिए शीघ्रकर्णको यदि ग्रहके इष्टकालिक शरकी कोटिज्यासे भाग दे दिया जाय तो यथार्थ शीघ्रकर्ण ज्ञात हो जायगा। इसी प्रकार क्रान्ति वृत्तीय इनान्तर में भी संस्कार करनेसे यथार्थ इनान्तर जाना जाता है। चित्र १२ से जो गाडफ्रे की एस्ट्रोनोमी पृष्ठ २७४के अनुसार है यह सब बातें एक साथ ही स्पष्ट होती हैं:—

चित्र १२
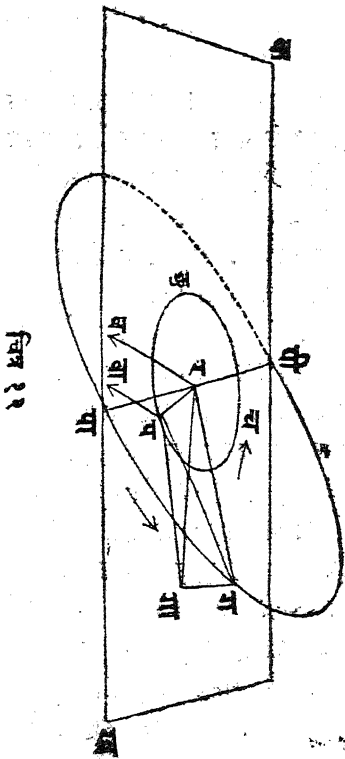
क ख क्रान्तिवृत्तीय धरातल है, जिसमें पृथ्वीकी कक्षा अर्थात् क्रान्तिवृत्त प च छ है। कक्षावृत पा ग पी है, जो क्रान्तिवृत्तीय धरातलको पा पी विन्दुओं पर काटता है। पा उत्तर पात और पी दक्षिण पात हैं। र, प और ग क्रमसे सूर्य, पृथ्वी और ग्रहके यथार्थ स्थान हैं; ग से गगा क्रान्तिवृत्तीय धरातल पर लम्ब गिराया गया है; व वसंत संपात विन्दु है; <वरगा और वरगा ग्रहके सूर्य केन्द्रीय शर और भोगांश (Longitude) हैं। <ग प गा और वा प <गा ग्रह के भूकेन्द्रीय शर और भोगांश है। पवा, रवा समानान्तर हैं। <वपर सूर्यकेन्द्रकीय पृथ्वी का भोगांश है; इसलिए <वरप+१८० भूकेन्द्रीय सूर्यका भोगांश है र पगा त्रिभुज चित्र ३४के त्रिभुज चित्र १२ के त्रिभुज र प गु से मिलता है। प गा ग्रहका क्रान्तिवृतीय शीघ्र कर्ण और <र प गा क्रान्तिवृत्तीय इनान्तर है; प ग यथार्थ शीघ्रकर्ण और < र प ग यथार्थ इनान्तर है। $\text{पग} = \frac{\text{पगा}}{\text{को ज्या} < \text{ग प गा}}$

चंद्रमा का स्थान जानने के लिए अनेक संस्कार करने पड़ते हैं; जिनमें पांच मुख्य हैं; इनकी चर्चा आगे की जायगी।

क्रमशः

आयुर्वेदका प्राचीन इतिहास

[गतांकसे आगे)

हमने जो कुछ पिछले लेखमें दिखलाया है, केवल दिग्दर्शन मात्र ही है, जो ग्रन्थोमें मिलता है। इससे अधिक कुछ भी पता नहीं लगता है। न उस देशके, जहां ब्रह्मासे लेकर इन्द्र तक हुये, किसी और चिकित्सकका पता चलता है। किन्तु मेरा ख्याल है कि छोटे मोटे हजारों चिकित्सक अवश्य ही हुए होंगे जिनमें विशेषता न होनेसे इतिहासमें परिगणित न हुए।

भरद्वाज ऋषि द्वारा जबसे उक्त चिकित्सा इस देशमें आई तबसे उसके इतिहासका कुछ

विशेष पता चलता है। उनके पीछेके बहुतसे चिकित्सकोंका भी पूरा पूरा पता मिलता है और उनके लिखे बहुत कुछ ग्रन्थ भी मिलते हैं। भरद्वाज जीके बाद आत्रेयजी सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हुए; यह भरद्वाज जीके ही शिष्य थे। यह चिकित्सा शास्त्रमें इतने प्रवीण हुए कि अपने गुरुके समान ही समस्त वैद्य समाजमें आदरणीय हो गये और इनकी गणना सर्वश्रेष्ठ वैद्योंमें हो गई। कुछ ही कालमें इनका अनुभव इतना बढ़ा कि इन्होंने चिकित्सा-शास्त्र पर अपने नामकी एक स्वतन्त्र संहिता लिख डाली। इतनी उच्चताको देख अच्छे योग्य वैद्य इनसे चिकित्सा-शास्त्र सीखनेके लिए आने लगे।

इनके अनेक शिष्योंमेंसे अग्निवेश पाराशर, क्षीरपाणि, भेड़ (भेल), जातुकर्ण, और पाराशर नामक छः शिष्य इतने निपुण निकले, और कुछ ही हो कालमें इतने दक्ष होगये कि प्रत्येकने अपने गुरुका अनुकरण कर अपने अपने अनुभवसे पूर्ण एक एक संहिता निर्म्माण की। यद्यपि सब ग्रन्थ छपे नहीं हैं तथापि, इन सबकी प्रतियां भारतके ग्रह गुफाओंमें रखी पाई गई हैं। प्रसन्नता की बात है कि आयुर्वेदके सर्व प्राचीन ग्रन्थ आत्रेय-संहिताकी दो प्रतियां एक पञ्जाब पब्लिक लायब्रेरीमें और दूसरी दयानन्द एङ्गलो वैदिक कालेज लायब्रेरीमें विद्यमान हैं। इन दोनोंको मिलाकर डी. ए. वी कालेजका पुस्तक प्रकाशन-विभाग प्रकाशित करनेके लिए संशोधन कर रहा है। आशा है कि यह ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो जायगा। इसके पश्चात्की पाराशर तथा भेल (ड़) संहिता तो छप ही चुकी हैं।

इन चिकित्सकोंके कुछ समय पश्चात् विशुद्धमुनिके पुत्र चरक जी महाराज हुए; जिन्होंने उक्त ग्रन्थकारोंकी निश्चित की हुई चिकित्सा प्रणालीको तथा उनके प्राचीन इतिहासको बड़े परिश्रमसे संकलित किया। उन्होंने अपने संकलित ग्रन्थका नाम चरक-संहिता रखा। इनका लिखा यह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध और आदरणीय हुआ कि विदेशी भाषाके पण्डितोंने इसका अनुवाद अपनी अपनी भाषामें किया। यह अनुवाद आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व हुए। चरक जीके पश्चात् प्रसिद्ध चिकित्सक काशीके राजा दिवोदास जी हुए, जो चिकित्सा शास्त्रमें इतने प्रवीण थे कि जनता उनको धन्वन्तरिका अवतार मानती थी।

धन्वन्तरि नामके भी कोई प्रसिद्ध चिकित्सक आदि कालमें हुए हैं; जिनकी उत्पति समुद्र मन्थन से बतलाई जाती है। इनके सम्बन्धमें यह कथा पुराणोंमें मिलती है कि जिस समय राजा परीक्षितको सर्पने काटा था यह उनके मृत शरीरको सजीव करने जा रहे थे; मार्गमें उनको यमराज शरीर धारण करके मिला और पूछने लगा कि आप कहां जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि राजा परीक्षितको सर्पने काट लिया है; उनको जीवित करने जा रहा हूं। यमराजने कहा मृत प्राणी भी कहीं जी सकता है। उन्होंने कहा हां? यमराजजी कहने लगे, यदि मृत जीवित हो सकते हैं तो इस सूखे बट वृक्षको हरा करके दिखला दीजिये; धन्वन्तरिजीने अपनी प्रायोगिक शक्तिसे बट वृक्षको हरा कर दिया। यमराज उनकी इस शक्तिको देखकर दंग रह गया। उसने पूछा कि आप उनको किस लिए जीवित करना चाहते हैं है। धन्वन्तरिजी ने कहा कि वह राजा है, उसको जीवित करके उससे काफी धन लाऊंगा। यमराज ने कहा यदि धनकी इच्छासे जीवित करना चाहते हो तो जितने धनकी इच्छा हो इस भूमिके अमुक स्थलको खोदकर इच्छानुकूल धन लेकर अपने गृहको वापस चले जाओ। धन्वन्तरिजी धन पाकर वहींसे वापस हो गये। एसे एसे प्रभावोत्पादक कार्योंसे ही धन्वन्तरि जी ने संसारमें प्रसिद्धि पाई और उनका नाम कहावतोंमें प्रचलित हो गया।

काशीके राजा दिवोदास भी चिकित्सामें धन्वन्तरि ही जैसे माने जाते थे। इसीसे इनके पास विश्वामित्र जीके पुत्र सुश्रुत ऋषि चिकित्सा विषयक ज्ञान प्राप्त करने आये। उक्त राजा दिवोदासकी बनाई धन्वन्तरि-संहिता और सुश्रुत जीकी बनाई सुश्रुत-संहिता—जिसको नागार्जुन जीने संकलित किया था—आज संसार प्रसिद्ध हो रही हैं।

यह उस आयुर्वेदका प्राचीन इतिहास, है जो ब्रह्माजीसे लेकर इन्द्र तक देवलोकमें रहा; उसके बाद भरद्वाजजीसे लेकर सुश्रुत जीके समय तक आर्यावर्त्तमें खूब विकासको प्राप्त होता रहा। यह इतिहास आयुर्वेदके आदि युगका इतिहास कहलाता है; जिसका ठीक ठीक समय आजतक निश्चित नहीं हो सका है। इसके पश्चात् सुश्रुतसे लेकर शार्ङ्गधर जीके समयतकका इतिहास आयुर्वेदके मध्य युगका इतिहास कहलाता है, जिसपर फिर कभी विचार करूँगा और बतलाऊँगा कि यह किस किस समयमें हुए। अगले लेखमें चिकित्सा-पद्धति पर विचार करूँगा।

—स्वामी हरिशरणानन्द

मनोवांछित संतान किस प्रकार हो

वीना विश्व विद्यालयके प्रसिद्ध डा० पाल कामरट एक ऐसा जीव सम्बन्धी प्रयोग कर रहे हैं जिससे मनोवांछित सन्तान पैदा करनेकी सत्यता सिद्ध हो सके। कई अन्य प्राणियों पर प्रयोग कर उन्होंने उनकी सन्तान पर जो प्रभाव पड़ता है उसे देख लिया है। उन्हें बच्चोंके रूप रंग और स्वभाव बदलनेमें भी सफलता प्राप्त हुई है। उनके इस प्रयोगसे जर्मनी, इङ्गलैन्ड, अमेरिकामें सनसनी फैल गई है। उनके पिछले व्याख्यानके पश्चात्से अनेक वैज्ञानिकोंके कटाक्ष इनके ऊपर आ रहे हैं किन्तु उनके साथी भी बड़े पराक्रमी वीर हैं।

डा० कामरट अपनी "मानवी योग्यताका प्रवर्द्धन और तारुण्य प्राप्ति" नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि हम लोग कृत्रिम रूपसे ऐसा परिवर्तन कर सकते हैं कि सन्तानमें पिताके गुण और अवगुण पूर्णतया पाये जायँ। हम लोगोंको उसके प्रत्यक्ष होनेकी प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम लोग सजीव प्राणी मन माने रूपमें ढाल सकते हैं। क्रम विकाश सुयोग पर छोड़ देने योग्य चीज़ नहीं है; हम लोगोंको अपना सुयोग आप ढूँढ़ना चाहिये। यह डाक्टर चमत्कारकी प्रतिज्ञा नहीं करते हैं बल्कि मनुष्यके शरीर में धीरे धीरे वृद्धि करने वाला किन्तु शक्तिशाली विकाशका उपकरण बतलाते हैं।

डा० कामरटका कहना है कि हमसे लोग पूछते हैं कि हम इच्छानुसार संतानके बर्द्धनमें किस प्रकार परिवर्तन कर सकते हैं? मनुष्य उत्पन्न करनेकी कौन सी युक्ति हमारे पास है? इस प्रश्नसे यही प्रकट होता है कि लोगों ने मेरे विचारको अच्छी तरह नहीं समझा। मुझे केवल एक सिद्धान्त ज्ञात हुआ है किन्तु वह ऐसा है जिससे बहुत आशा हो रही है। मेरे प्रयोगोंसे केवल अन्य प्राणियोंके प्रारम्भिक सन्तानोत्पादनके नियमोंके समझनेमें सफलता प्राप्त हुई है। मैं इस बातको मानता हूं कि सम्भवतः मनुष्यकी उत्पत्तिमें इसी प्रकारकी सफलता प्राप्त कर सकूं, अभी हम मस्तिष्कके भिन्न भिन्न लक्षणों पर प्रभाव डालनेमें असमर्थ हैं क्योंकि हमें यही नहीं मालूम कि उसके कौन कौन उपादान हैं और उनको किस प्रकार प्रभावित कर सकते हैं? इस बातको बल पूर्वक कहा जा सकता है कि मनुष्यकी मनोवांछित सृष्टि किसी साधारण क्रियासे तथा शीघ्र नहीं हो सकती।

इस प्रकार के प्रयोग डाक्टर साहब ने छोटे छोटे पालतू तथा अन्य जानवरों पर किये हैं। पहले पहल उन्होंने गिरगिटोंकी पीठका रंग बदला था। उनकी पीठ का रंग काला और पीला था जिनकी

पीठ काली थी उनको काले स्थान में रखा; उनकी पीठ अधिक काली हो गई और पीले पीठवालों को पीले स्थानमें रखनेसे उनकी पीठ और अधिक पीली हो गई यही प्रयोग दुबारा दो और डाक्टरों द्वारा किया गया था।

दूसरा प्रयोग जो डा० कामरटके द्वारा हुआ वह अन्धे सुद्रगोधाओंकी आंखोंमें पुनः प्रकाश पहुंचाना था। अन्धी गुफाओंमें रहनेसे उनकी आंखों की ज्योति विनष्ट हो गई थी और उनकी सन्तान भी अन्धी पैदा होती थी। डाकूर महोदय ने उन्हें कुछ दिनतक उज्ज्वल प्रकाशमें रखा; किन्तु उन्हें मालूम हुआ कि इस प्रकार प्रकाश उनकी आंखोंके सामने परदे का काम करता है; इसके बाद उन्होंने लाल रंग के प्रकाश का प्रयोग किया। पांच वर्षमें उनकी आंखोंमें ज्योति फिर आ गई। उनके बच्चे भी आंखों सहित उत्पन्न होने लगे।

वायुको अत्यन्त गरम कर डाकूर साहब ने जमीन पर रहनेवाले कुछ मेढकों को पानीमें रहने के लिए बाध्य किया। जब उनकी संतान हुई तो उनमें भी यही विचित्र परिवर्तन था।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १९ } मिथुन, संवत् १९८१ । { संख्या ३

रबर और उसकी खेती

संक्षिप्त इतिहास और प्रचार-प्रसंग

छोटी छोटी चीज़ें कई बार जगत्में बड़ा युगान्तर उपस्थित कर देती हैं। जिन वस्तुओं पर कभी कभी हमारा ध्यान तक नहीं जाता, वही इतनी क़ीमती हो जाती हैं कि जिनका स्मरण करते ही आश्चर्य होता है। सोना एक ऐसी धातु है जिसके लिए सभीका जी ललचाता है और सभी सोनेका नाम सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं। यदि कहीं उन्हें लोहेका नाम सुनाया जाय तो वह इसे अशुभ मानेंगे। बेचारा लोहा यह कह कर तिरस्कृत किया जाता है कि यह शनिश्चरजीका दान है। परन्तु वर्तमान समयमें वह कितना क़ीमती और आवश्यक चीज़ हो रहा है, यह बात सभी जानते हैं। जिधर देखो उधर ही लोहेका साम्राज्य है। वर्तमान कल कारखाने लोहेके बिना दो कौड़ीके हैं। मतलब यह है कि जब चीज़ उपयोगमें लाई जाती है, तभी उसकी क़द्र होती है। आज कल तो हड्डीसे भी जो काम लिये जाते हैं, वह किसीसे छिपे नहीं हैं।

आज हम जिस छोटी सी वस्तुका हाल "विज्ञान" के प्रेमी पाठकोंको सुनावेंगे, उसका नाम है—रबर। आजकल रबरका भी जिधर देखो उधर साम्राज्य फैला हुआ है। यूरोप और अमेरिकाकी बात छोड़ दो, भारतवर्षमें भी आज कल ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसने रबर देखा नहीं हो या उसका नाम नहीं सुना हो। बल्कि, अब तो रबर हमारे नित्य व्यवहारमें लानेकी चीज़

हो गई है। रबर कहाँ नहीं है? सब जगह रबर मौजूद है। जूतेके तलेमें रबर, बाइसिकलके पहियेमें रबर, मोटरगाड़ीके पहियोंमें रबर, पेंसिलके सिरेमें रबर, सारांश यह कि रबरका सर्वत्र ही अबाध व्यवहार है। चीज़ है भी बहुत सुभीतेकी। यह न तो ऊँचेसे गिरने पर टूटती है, न पानीमें गलती है, न हवामें सूखती है और न मामूली धूपमें ही इसका कुछ बिगड़ता है। हाँ, भय केवल अग्निका है। थोड़ी सी अग्निसे भी इसकी रक्षा नहीं है। यदि इसमें आग लग जाय, तो जब तक यह पूरा नहीं जल जावेगा, बुझनेका नहीं।

रबरका आदि जन्म स्थान अमेरिका है। वहाँके आदिम अधिवासी बहुत दिनोंसे रबरका व्यवहार करते हैं; परन्तु व्यवहारकी असली प्रणाली वह पहले नहीं जानते थे। वह सिर्फ़ इतना ही करते थे कि रबरके पेड़से जो रस अपने आप बाहर निकलता है, उसे धूपमें सुखा कर अपना काम चलाते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के पहले तक एटलांटिक महासागरके इस पारके लोग, रबरको देखना तो दूर रहा, इसका नाम तक नहीं जानते थे। शायद इस पारके लोगोंमें सबसे प्रथम रबरको देखनेवाला कोलम्बस था। कोलम्बसके साथ जो लोग अमेरिकाका आविष्कार करने गये थे, उन्होंने सब से प्रथम रबरको देखा होगा।

यूरोपमें सबसे प्रथम स्पेनमें रबरका व्यवहार आरम्भ हुआ। सं० १६९२ वि० में केनविसके ओवरकोटके ऊपर स्पेन वासियोंने एक प्रकारका प्रलेप जल निवारणके लिये लगाया। बस यह रबर ही था। इसके बाद १७८८ ई० में लाकनडेमिन नामका एक व्यक्ति विषुवत् रेखाके निकटके देशोंका निरीक्षण करके आया; और आते समय एक प्रकारका दुर्गन्धयुक्त काले रंगका रबर लेता आया। यहाँ आकर उसने एकडिमीके निकट प्रकट किया कि पेरू और ब्रेज़िलके लोग इसका अधिक परिमाणमें व्यवहार किया करते हैं। जल या कीचड़में फिरनेके लिये वह इससे जूते बना लेते हैं और आगमें गला कर शरीरके कपड़ों पर भी इसका मोटा लेप कर लेते हैं, जिससे वह वृष्टिमें बचाव करनेके लिये बड़ा उपयोगी हो जाता है।

आजकल हम सहजमें ही पेंसिलका लिखा रबरसे मिटा देते हैं। इसके लिए रबर लगी हुई पेंसिलें ख़ास तौर पर मिलती हैं। इस तरकीबका आविष्कार डाक्टर प्रिस्टलीने सं० १८२७ वि० में किया। जिस समय आपने सबसे प्रथम इस तरकीबको निकाला, उस समय रबरका मूल्य भी बहुत कम था। दो इंच लम्बा और एक इञ्च चौड़ा रबरका टुकड़ा तीन शिलिंग अर्थात् अबके हिसाब से प्रायः ३) में मिल जाता था। उस समय चित्रकारोंके सिवा और कोई इसे नहीं खरीदता था।

रबरको शिल्पकार्यमें लगानेकी चेष्टा १८४८ वि०में आरंभ हुई, और इसका सबसे प्रथम मार्ग सामुएलपील नामके एक अंगरेज़ने दिखाया। आपने तारपीनके तेलमें गले हुए रबरका कपड़े पर लेप करके वाटर-प्रूफ़ तैयार करना शुरू किया। यद्यपि इस प्रकार वाटर-प्रूफ़ बनानेसे कपड़ेमें दुर्गन्ध आने लग जाती थी और वह हमेशाके लिये चिपचिपा हो जाता था, तौ भी वहांके लोग इसका आग्रहके साथ व्यवहार करते थे और इसे छोड़ना नहीं चाहते थे। परन्तु पील महाशय इस काममें अधिक कृतकार्य नहीं हुए। हाँ, उन्होंने सबको एक नूतन पथ अवश्य दिखा दिया और उन्हींके दिखाये हुए मार्गका अनुसरण करके बहुत से लोग नाना प्रकारकी चेष्टा करने लगे।

अन्तमें १८८० वि० में चार्ल्स मेकिनटश नामके एक स्काटलैंड निवासी भद्रपुरुषने उन्नत प्रकारका वाटर-प्रूफ़ तैयार किया, और इस प्रकार रबरकी प्रयोजनीयता सबको और भी अच्छी तरह समझा दी। परन्तु उनका कपड़ा भी एक दम निर्दोष नहीं बना था। उसमें धूपकी तेज़ीसे कड़कड़ापन पैदा हो जाता था और शीतके समय

वह अत्यन्त सख्त हो जाता था। यह दो दोष उसमें रह ही गये, हां केवल दुर्गन्ध नहीं रही।

इसके बाद सं० १८९७ वि०में अमेरिका निवासी चार्ल्स गुडइयर ने समपरिमाणमें गन्धक और रबरको अग्निके उत्तापसे गलाकर उसके द्वारा वाटर-प्रूफ़ बनाना शुरू किया। यह वाटर प्रूफ़ कपड़ा वास्तवमें बिलकुल निर्दोष था। संसारमें गुणकी ही क़द्र होती है। अतएव गुडइयर महाशयका यह निर्दोष वाटर प्रूफ़ स्वर्ण-मूल्यमें बिकने लगा। इस बार मनुष्योंने रबरको भली भाँति पहचाननेका सुयोग पाया।

इसके कुछ दिनों बाद ही वालकेनाइट् महाशय ने एक नया आविष्कार करके गुडइयरके रबर-शिल्पमें नया युग पैदा कर दिया। रबरकी कई परीक्षाएँ कर एवम् सर्वस्व लगाकर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि इससे मोटर टायर और बाइसिकलके टायर तैयार किये जा सकते हैं। रबरकी अपेक्षा गन्धकका भाग अधिक देकर तेज़ अग्निके उत्तापमें कुछ देर रख कर गला लेनेसे एक काले रंगकी सख्त चीज़ तैयार होती है, बस यही वालकेनाइट् है। बाइसिकलके टायर आदि भी इसी तरह तैयार किये जाते हैं। सं० १९०२ में राबर्ट विलियम टामसनने गवर्नमेंटसे—वालकेनैज़्ड टायरका पेटेंट ले लिया। तबसे रबरकी खपत बीस गुनी अधिक बढ़ गई है।

आजकल डनलप टायरका विज्ञापन कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े बड़े शहरोंमें खूब देखा जाता है। गली गलीमें, मकानोंकी छतों पर, पेड़ों पर, ट्राम गाड़ी पर जिधर देखो उधर ही डनलप टायरका विज्ञापन मौजूद है। इस डनलप टायरके उद्भावक जे. बी. डनलप थे। आप पशु चिकित्सा भी अच्छी जानते थे। आपका घर था आयर्लैंडके बेल्फास्ट शहरमें। जब चारों तरफ़से लोग रबरकी परीक्षामें लगे, रबरको मनुष्यके उपयोगी काममें लगानेके लिए जब यूरोपके सभी लोग कमर बाँध कर लग गये, तब आप भी निश्चेष्ट नहीं थे। बाइसिकिलका पहिया पहले दृढ़ था। उसको चलाना फिराना भी अत्यन्त असुविधा जनक था। बार बारकी दिक्कतसे आरोहीके प्राण कंठमें रहते थे; डनलप महाशय बहुत दिनोंसे इसके प्रतिविधानकी चेष्टामें लगे हुए थे। उन्होंने सोचा कि वायु पूर्ण एक नल यदि पहिये और टायरके बीचमें बिठा दिया जाय और उस नलको नरम अर्थात् नमनशील रखा जाय कि जिससे दबाव लगाने पर वह स्प्रिंगकी गद्दीके समान हिले तो यह कष्ट हलका हो सकता है; नहीं तो दूसरा उपाय नहीं। अन्तमें बहुत सोच-विचारके बाद डनलप महाशयने रबरको ही इस काममें लगानेका निश्चय किया। पहले उन्होंने रबर और गन्धकको आगकी तेज़ीसे गलाकर सांचेमें ढाल कर उसके द्वारा बाइसिकलके ट्यूब तैयार किये, फिर उस ट्यूबको अपनी बाइसिकलमें लगाकर डनलप महाशयने अपने घरके आँगनमें परीक्षा करना शुरू किया। परीक्षा का फल भी खूब संतोषजनक हुआ। कुछ दिनोंके बाद ही डनलपका पुत्र इस प्रकारकी ट्यूबवाली बाइसिकलको लेकर एक बाइसिकलकी रेसमें सबसे प्रथम हुआ। इस अत्यावश्यक आविष्कारसे सभीकी आंखोंमें चकाचौंध छा गई। और रबरकी प्रयोजनीयता भी सौ गुनी अधिक बढ़गई।

यहाँ पर रबरकी बात कहते समय मि० एच० ए० विकेन्हमका नाम नहीं भूलना चाहिये। यह महाशय बड़े पदार्थ तत्वज्ञ थे। इन्हीं विख्यात विज्ञानीकी अक्लान्त चेष्टा से आज पृथ्वीके सब देशोंमें अधिक परिमाणमें रबर पैदा होता है। वास्तवमें रबरके पेड़के नामसे कोई पेड़ निर्दिष्ट नहीं है। भिन्न प्रकारके प्रायः बीस पेड़ोंसे सफ़ेद रस लेकर रबर तैयार किया जाता है। इन सब पेड़ोंमें हिविया जातिका पेड़ सबसे श्रेष्ठ है। इस पेड़के रससे जो रबर तैयार होता है, उसे पेरा रबर कहते हैं। पेरा ब्रेज़िलका एक शहर है।

इस शहरमें तैयार होनेसे ही इसका नाम पेरा रबर रखा गया है। पेराके सिवाय, सियेरा और मेनायम् नामके और भी दो शहर ब्रेज़िलके हैं। वहाँ भी उत्तम रबर पैदा होता है। लेकिन बाज़ारमें पेरा रबरकी कीमत सबसे ज्यादे है।

सन् १६३२ वि० में रबरको बहुत ऊंचे मूल्यमें बिकते देखकर ब्रेज़िलकी गवर्नमेंटने रबरका व्यवसाय अपने हाथमें लेनेकी इच्छा की, इसका फल यह हुआ कि अन्य देशोंकी बात तो दूर रही, अमेरिकामें भी एक देशसे दूसरे देशमें रबरके हिविया पेड़के बीज और पौधे सरकारी अनुमति के बिना जाना बंद हो गया। विकेनहम उस वक्त ब्रेजिलमें थे और यह परीक्षा कर रहे थे कि ब्रेजिल के सिवाय दूसरे देशमें भी हिविया पेड़ पैदा हो सकते हैं या नहीं? यदि पैदा हो सकते हैं तो उनसे पेरा-रबरके समान उच्च श्रेणीका रबर उत्पन्न हो सकता है या नहीं? बहुत परीक्षाके बाद जब वह जान सके कि हिविया पेड़ सभी देशोंमें पैदा हो सकते हैं और उनसे उत्कृष्ट रबर भी मिल सकता है, तब उन्होंने हिवियाके बीज संग्रह करनेमें मन लगाया। लंडनके बोटेनिकल-गार्डन-के उस समयके अध्यक्ष जोसेफ़ हुकर उनके परम मित्र थे। उन्होंने अपने इन मित्रको सब वृत्तान्त विस्तारसे लिखकर जानना चाहा कि बीज मिल जाने पर आप अपने बाग़में रबरकी खेती करा सकते हैं या नहीं? इसके जबाबमें हुकर महाशय ने गवर्नमेंटसे अनुमति लेकर विकेनहम साहबको बीज भेज देनेके लिये लिख दिया। मगर डाकके ज़रियेसे बीज भेजनेका कोई उपाय नहीं था, यहां तक कि गुप्त मनुष्यके साथ आध सेर बीज भेजना भी असम्भव था; ब्रेजिल-पुलिसकी तादण दृष्टिके सामने कोई भी बीज अथवा पौधा लेकर विदेश नहीं जा सकता था। यदि पकड़ा जाता तो उसे सात वर्षकी कड़ी कैद होती; विकेनहम बड़ी द्विविधामें पड़ गये। परन्तु स्थिर संकल्प और दृढ चेष्टा कभी विफल नहीं होती; विकेनहमको सुयोग मिला। इस समय ब्रेजिल गवर्नमेंट आमाजन नदीके मुहाने पर एक नया जहाज़ बनवा रही थी। जहाज़के तैयार होते ही विकेनहमने भारत गवर्नमेंटकी तरफ़से उस जहाज़को किरायेपर लेनेके लिये आवेदन पत्र दिया। किन्तु भारत गवर्नमेंट इस बातको नहीं जान सकी। काम हुआ सिर्फ चोरी से। जो हो, आवेदन-पत्र दाखिल कर उसी रातको विकेनहम महाशय कुछ विश्वस्त अनुचरोंके साथ जाकर उस जहाज़के एक गुप्त स्थानमें रबरके बीज छिपा आये। इधर, आवेदन-पत्र मंजूर हुआ। विकेनहम फ़ौरन ही जहाज़को लेकर अपने देश की तरफ़ रवाने हुए। जिस दिन वह रबरके बीजोंको लेकर लंडनमें पहुँचे, वहाँ चारों ओर आनंद छा गया। बहुत जल्दी बोटेनिकल-गार्डनके एक हिस्सेमें कांचका घर तैयार हुआ और उसमें रबरके बीज बोये गये। थोड़े दिनोंमें ही बीज से छोटे छोटे पौधे पैदा होकर घर भर गया। इङ्गलैंडके दारुण शीतमें रबरके पेड़ अच्छी तरहसे पैदा नहीं होंगे, यह जानकर पौधोंको यथा समय भारतवर्ष, मालय द्वीप, सिंहापूर और सिंहल द्वीपमें रोपनके लिए भेजा गया। इन सब देशोंमें आजकल जो हिविया पेड़ हैं, वे सब विकेन-हम साहबके लाये हुए पौधोंके वंशज हैं।

रबरकी खेती और तैयारी

अब तक रबरके इतिहास और प्रचारके सम्बन्धमें थोड़ा सा दिग्दर्शन कराया गया। अब यह बताया जायगा कि रबरकी खेती कैसे होती है और उसे किस तरह तैयार करते हैं।

जिस ज़मीनमें वर्षाका जल नहीं ठहरता है, अर्थात् वृष्टिका जल जिस ज़मीनमें इकट्ठा नहीं होता, वह ज़मीन रबरकी खेतीके लिए विशेष उपयोगी मानी गई है। कुछ सख्त मिट्टीमें रबर अच्छा पैदा होता है।

(१) ज़मीन को अच्छी तरह जोत कर साफ़ करना चाहिये। किसी तरह का फालतू घास,

कूड़ा, पत्थर अथवा कोई जंजाल उसमें नहीं रहना चाहिये। यदि इनमेंसे कोई चीज़ ज़मीनमें रह जाय तो रबरकी पैदायश अच्छी नहीं होती। फालतू घास उखाड़ कर फेंकनेको हमारे यहां "निकाई" कहते हैं। यह काम हफ्ते में दो बार अवश्य होना चाहिये, क्योंकि चौथे रोज़ खेतमें फिर भी घास पैदा हो जाती है, इसलिये चौथे रोज़ मज़दूर लगाकर खेतको इससे साफ कराना चाहिये। ऐसा करनेमें रुपये ज़रूर खर्च होते हैं, पर फ़सल अच्छी होती है।

(२) ज़मीन जोतकर साफ़ होनेके पहिले एक एक घमलेमें, बाल्टीमें या ऐसे ही किसी चौड़े मुंहके बर्तनमें बारीक मिट्टी डालकर बीज बोने चाहियें। दिनमें दो तीन बार जल सींच कर उस मिट्टी को ताजा रखना बहुत ज़रूरी है। लाल चींटियाँ रबरके बीजोंकी बड़ी शत्रु हैं। कुछ असावधानी होते ही यह दलके दल आकर बीजके भीतरके सार भागको खा डालती हैं। इसलिये इनसे बीजको बचानेके लिये पूरी पूरी सावधानी रखनेकी ज़रूरत है।

(३) बीजसे पत्ते निकलनेमें मामूली तौर पर ७—८ दिन लगते हैं। पौधा जब ५—६ अंगुल लम्बा हो जाय तब उसे उखाड़ कर जुती हुई ज़मीनमें रोप देना चाहिये। एक एकड़ ज़मीनमें एक सौसे लेकर डेढ़ सौ तक पौधे रोपे जा सकते हैं। रबर-वृक्ष के शत्रु अनेक हैं। पौधेके घमलेमें रहते समय जैसे चींटियोंके भयसे हमेशा सावधान रहनेकी ज़रूरत है, वैसेही खेतमें भी जब तक पौधा कुछ बड़ा न हो जाय उसको सूर्यकी तेज़ीसे बचाना पड़ता है। इस काममें बहुत दिनों तक पौधोंको एक आवरण से ढके रखना पड़ता है, नहीं तो सूर्यके तेजसे पौधा एक दम नष्ट हो जाता है। रबरके खेतमें व्यर्थका घास पैदा हो जाता है। रबरके खेतमें व्यर्थकी घास पैदा हो जानेसे रबर अच्छा पैदा नहीं होता। इसलिए खेतकी "निकाई" या लुनाई अच्छी तरह होनी चाहिये। ज़मीनकी उर्वरताकी कमीवेशीके लिहाज़से वृक्षके आकारमें भी भेद हो जाता है। वृक्षका घेरा साधारण तौरपर अठारहसे चौबीस इञ्च तक हो जाता है। ऊँचाई का कोई निर्दिष्ट परिमाण नहीं है।

पेड़में छेद करके रस निकालनेको "टेप करना" कहते हैं। जब पेड़की अवस्था चार वर्ष की हो जाती है, तब टेप करते हैं। इससे कम अवस्था वाले पेड़को कभी टेप नहीं किया जाता। टेप करना दो प्रकारसे होता है। पहले वृक्षमें १०—१२ अंगुल छालके ऊपरसे तेज़ छुरी देकर बहुत पतला छालकी एक तह निकाल लेते हैं। इसके बाद इस साफ़ जगहके नीचे छुरीकी नोक से आध इञ्च चौड़ा एक लम्बा नल बना कर नल के माथेमें, होमिओ पैथिक दवाकी बूँद डालनेके काँचकी नलिकाके समान लकड़ीकी एक नली फँसा देते हैं। नलीके नीचे बाल्टी रख दी जाती है। दूधके समान सफ़ेद रस इस नलके द्वारा आकर बाल्टीमें इकट्ठा होता जाता है। यह तो हुआ एक प्रकारका टेप करना। अब दूसरे प्रकार का टेप करना सुनिये। यह दूसरे प्रकारका टेप करना बिलकुल सीधे ढंग का है। वृक्षमें ऊपर नीचे एक लम्बा खड्डा बना कर इस खड्डेके मस्तकमें नल बिठा देते हैं और उसके नीचे बाल्टी रख देते हैं। बस, नल के द्वारा रस आकर बाल्टीमें गिरता रहता है।

रबरके रसका पारिभाषिक नाम "लेटेक्स" है। लेटेक्स लेनेके लिये रबरके खेतके टेप किये हुए समस्त पेड़ोंके नीचे, संध्या समय एक एक बाल्टी रखनी पड़ती है। प्रातःकाल बाल्टियोंको फेक्टरीमें लाते हैं और एक साफ़ कपड़ेमें लेटेक्स छाना जाता है। छाननेके बाद उसे एक बहुत बड़े पात्रमें डाल देते हैं। फिर इसे सुखाते हैं। सुखानेके लिए एक प्रकारकी कल काममें लाई जाती है। इस कलका आकार मोटर-कारके पेट्रोल रखनेके गोल डिब्बेके समान होता है। किन्तु उसकी

बनिस्बत यह बहुत कुछ लम्बी और मोटी होती है। इस कलके भीतर ताड़ अथवा खजूर की लकड़ी के कोयलोंकी आग जलाकर उस आगके ऊपर बड़ी रकाबीके समान लोहेका एक पात्र रखा जाता है। इस पात्रमें थोड़ा थोड़ा लेटेक्स डाल कर उसे धीरे धीरे हिलाते हैं। नीचेकी अग्निके उत्तापसे लेटेक्स धीरे धीरे सूखकर गौर वर्णका हो जाता है। फिर जब यह गौर वर्णके एक बड़े स्पंजका आकार धारण कर लेता है तब इसे नीचे उतार कर एक दूसरी कल इसमें लगा दी जाती है। यहां उसके भीतरका जलीय अंश दबाव देकर बाहर निकाल दिया जाता है। जलीय अंश बाहर निकल जानेपर रबर चपटा और पतला हो जाता है। इस प्रकार के रबरको "क्रेप" कहते हैं। लेटेक्ससे क्रेप तैयार होते ही रबरकी तैयारीका काम ख़त्म हो जाता है। फिर वह इसी अवस्थामें जगह जगह बिक्रीके लिये भेजा जाता है।

ब्रेजिलके निवासी पेरा रबरको बहुत सहजमें तैयार कर लेते हैं। इसके लिये किसी कलका उपयोग भी नहीं करते। हाँ बड़ी बड़ी फेक्टरियोंकी बात जुदी है, वहाँ तो जितने काम होते हैं, सब कलोंसे। परन्तु यहाँ पर गृहस्थोंकी बात है। जिस गृहस्थके पास सिर्फ़ दो चार पेड़ होते हैं, वह लेटेक्स इकट्ठा करके निम्न लिखित उपायसे पेरा रबर तैयार कर लेते हैं।

(क) एक चौकोर लोहेके पात्रमें ताड़की लकड़ीकी आग जला कर इस पात्रके ऊपर एक तंग मुंहकी चिमनी जमा देते हैं।

(ख) बादको चिमनीके इस मुखके ऊपर एक बड़ा चमचा औंधा करके रख देते हैं। फिर दूसरे एक चमचे से थोड़ा थोड़ा लेटेक्स पहलेके चमचेकी उलटी पीठ पर डालते हैं।

(ग) थोड़ी देरके बाद लेटेक्स आगकी तेज़ीसे बिलकुल सूख जाता है। फिर इसे नीचे उतार कर ठंडा कर लेते हैं।

(घ) बस यह उत्कृष्ट पेरा रबर तैयार हो गया। इस प्रकारके रबरको "बोलाचा" रबर कहते हैं। बोलाचा शब्दका अर्थ है बिस्कुट। यह रबर भी उसी आकारका तैयार होता है। बाज़ारमें बोलाचा रबरके दाम बहुत अधिक होते हैं।

इस प्रकार ब्रेजिलके निवासी पेरा रबरको सहजमें ही तैयार कर लेते हैं। अब रबरकी खपतके बारेमें दो चार बातें कह कर लेख समाप्त किया जायगा।

रबरकी खपत

गत यूरोपीय महायुद्धमें रबरके दाम और व्यवहार बहुत अधिक बढ़ गये थे। एरोप्लेन, मोटर एम्बूलेंस, मोटर-लारी, मोटर साइकल, साधारण साइकल, इत्यादिके टायर तैयार करनेमें हज़ारों टन रबर काममें आया है। इसके सिवाय जूता, विषैले गैस निवारक कोट और नकली चेहरे, बरसाती ओवरकोट, गीली मिट्टी पर बिछानेके लिये मोटी चादर, अस्पतालके काममें, रोगियोंके नीचे बिछानेके लिये चद्दर, आदि नाना प्रकारकी चीज़ें रबरसे तैयार की जाती हैं। युद्धके समय रबरका मूल्य बढ़ कर दूना हो गया था; परन्तु आजकल बहुत कम हो गया है, तब भी सब देशोंमें प्रतिवर्ष रबरकी खेती बढ़ रही है। भारत वर्षमें, सिंहलमें और सिंगापुरमें उत्कृष्ट रबर पैदा होता है। अब भी रबरको लेकर नाना प्रकारकी परीक्षाएँ की जा रही हैं। काग़ज़, सिमेंट और दूसरी प्रयोजनीय चीज़ें रबरसे तैयार करनेकी चेष्टा हो रही है।

सं० १९६७ वि० तक ब्रेजिल और अफ्रीका ने सब पृथ्वीको रबर भेजा है। इस वर्ष ब्रेजिलसे ४१ हज़ार टन और अफ्रीकासे २१ हज़ार टन रबर मिला था। सं० १९७२ वि० में संसारमें सब मिला कर एक लाख साठ हज़ार टन रबर पैदा हुआ था। इसमें सिर्फ़ ७० हज़ार टन ब्रेजिल, मेक्सिको और अफ्रीकामें उत्पन्न हुआ। सं० १९७८ वि०में

समग्र पृथ्वीमें सत्रह लाख एकड़ ज़मीनमें रबरकी खेती हुई। उसमें रबर पैदा हुआ तीन लाख पचास हज़ार टन। यद्यपि अमेरिका ही रबरका आदि जन्मस्थान है, तो भी रबरके पेड़ आज सारी पृथ्वीमें फैल गये हैं। मालूम होता है कि भविष्यमें रबर लोहेसे भी अधिक प्रयोजनीय वस्तुओंमें गिना जाने लगेगा।

—कृष्णगोपाल माथुर, साहित्य रत्न

कीट-विज्ञान

(गतांकसे आगे)

क्या कीड़े मनुष्यके भोजन हैं ?

यह तो सब कोई जानता है कि पक्षी कीड़े खाते हैं और कुछ कीड़े भी अपने सजातीयको मार कर खा जाते हैं। परन्तु हमारे बहुत कम पाठक यह बात जानते होंगे कि मनुष्य भी कीड़े खाते हैं। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो किसीको नहीं छोड़ता—सब कुछ खा जाता है। हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य सर्व-भक्षक है। मेंडक, चूहे, छछूँदर, कीड़े आदि किसी प्राणीको उसने नहीं छोड़ा है।

पाश्चात्योंने तो ग़ज़ब ही ढा दिया है। दीमकके समान मैले कुचैले कीड़ोंको भी उन्होंने नहीं छोड़ा है। साधनोंके अभावके कारण खाये जानेवाले कीड़ोंकी नामावली नहीं दी जा सकती। तथापि पाश्चात्य प्रवासियोंके प्रवास वर्णनोंको पढ़नेसे यह बात साफ ज़ाहिर हो जाती है कि भोज्य पदार्थोंकी कमीके कारण प्रवासियोंको कभी कभी कीड़े खाकर अपने प्राणोंकी रक्षा करनी पड़ी है। सुना जाता है कि असभ्य और जंगली लोग कीड़ोंको ज्यादा खाते हैं। भय है कि सभ्यताके प्रसारके साथ ही साथ कीड़े खानेकी रीति भी बंद होती जायगी। हमने किसी पुस्तकमें पढ़ा है कि जो चीज़ बंदर खाते हैं, वह मानव-प्राणियोंके लिए भी खाने योग्य होती है और यह तो निर्विवाद है कि बंदर कीड़े खाते हैं।

भारतवर्ष, अरब आदि देशोंमें टिड्डी खाई जाती है। कहा जाता है कि कलकत्तेमें टिड्डीसे कढ़ी बनाई जाती है। अरब लोग भी इसको बड़े चावसे खाते हैं। टिड्डी-दलके आगमनकी राह वह बड़ी उत्कंठासे जोहते रहते हैं। ब्रह्मदेशमें एक जातिके जलचर जीवकी इल्ली खाई जाती है।

अफ्रीकाकी तरह भारतवर्षमें भी 'रानी दीमक' खाई जाती है। दक्षिण भारतके कुछ प्रान्तोंमें बारह चौदह वर्षके-लड़केको 'रानी दीमक' खानेको दी जाती है। इसको खा लेनेके बाद वह दो चार मील तक दौड़ते हैं। कहा जाता है कि ऐसा करनेसे वह खूब दौड़ सकते हैं और थकते नहीं है। भारत वर्षके—जंगली लोग एक जातिकी मधुमक्षिका (A. borsata) की इल्ली और कोश खाते हैं। टसरके रेशमके कोशके ऊपरका रेशम निकाल लेनेके बाद उसके अन्दरका कीड़ा भी कहीं कहीं खाया जाता है। मेक्सिकोमें एक कीड़ेके अण्डे खाये जाते हैं। वेस्ट इण्डीज़में ताड़के झाड़ पर पाये जानेवाले कीड़ेकी इल्ली खाई जाती है। न्यासा लैंडमें में मक्खीको खाते हैं; पेरूके लोग एलमिस नामक कीड़ा खाते हैं।

वैलेस साहब अपने 'अमेज़नमें खाये जाने वाले कीड़े' नामक लेखमें लिखते हैं—

"वहांके आदमी, सौबा नामक चींटियोंके, छत्तेमें से बाहर निकलनेका समय आने पर टोकनियां लेकर जंगलमें जाते हैं और उनको जमा करके ले आते हैं। मज़दूर दीमकको भी वहांके लोग बड़े चावसे खाते हैं।"

साउथ अमेरिकाके इण्डियन लोग अपक्षवर्ग के कीड़े खाते हैं। क्यूवियर अपनी 'नेचरल हिस्टरी' नामक पुस्तकमें एक स्थान पर लिखते हैं—

अरब आदि कुछ पूर्वी देशोंके लोग टिड्डीको भून कर खाते हैं; कहीं टिड्डीको पीस कर उसके

आटेसे रोटी बनाई जाती है। बगदादके बाज़ारोंमें टिड्डियोंके आजाने पर दूसरे पदार्थोंका-भाव बहुत घट जाता है। मिश्रके लोग जिंदा टिड्डीको कोयले पर भून कर खाते हैं। अरब लोग इनको भून कर मक्खनके साथ खाते हैं। मोरक्कोके लोग टिड्डीको सुखा और उबालकर खाते हैं। बारबरीके कुछ लोग इनका अचार डालते हैं।

तिलचुत्ता, कुछ जातिकी इल्लियां, गोबी पर पाये जानेवाले सफेद पतंग और एक जातिकी तितली ऊपर लिखी हुई रीतिसे पकाकर खाई जाती हैं।

कीड़ोंका प्रकाशकी ओर आकर्षित होना

अनेक जातिके कीड़े प्रकाशकी ओर आकर्षित होते हैं। बरसातके मौसममें कीड़ोंका बाहुल्य रहता है। इन दिनों दीपक जलाते ही झुंडके झुंड कीड़े प्रकाशकी ओर दौड़ पड़ते हैं। दीपकका प्रकाश जितना ही अधिक स्वच्छ होगा और उसकी किरणें जितनी ही अधिक दूर तक जायँगी, उतने ही ज्यादा कीड़े प्रकाशकी ओर आकर्षित होंगे। यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि तेलके दीपककी अपेक्षा बिजली या गैसके दीपोंकी ओर ज्यादा कीड़े आकर्षित होते हैं। इसका कारण यह है कि तेलके दीपका प्रकाश पीला होता है और बिजली और गैसका सफेद। इसके अलावा बिजली और गैसके दीपोंकी किरणें बहुत दूर तक जाती हैं। कह नहीं सकते कि रंगीन प्रकाशकी ओर कीड़े आकर्षित होते हैं या नहीं; क्योंकि अनुसंधानकी यह शाखा अभी तक अछूती ही पड़ी हुई है। *इसके अलावा अभी तक पर दार कीड़े ही प्रकाशकी ओर आकर्षित होते देखे गये हैं। प्रयोगोंके अभावके कारण कहा नहीं जा सकता कि जमीन पर चलनेवाले बे परके कीड़े भी प्रकाशकी ओर आकर्षित होते हैं या नहीं।

* बरसातमें यदि बिजलीके बल्वोंपर हरा या लाल कागज चढ़ा दें या इन्हें रंग दें तो कीड़े बहुत कम आते हैं।—सं०

तिलचुत्ते, छोटे सींग वाले अँखफुड़वा आदि कुछ कीड़े प्रकाशकी ओर, बहुत ज्यादा संख्यामें, आकर्षित होते हैं। यहाँ तक कि यह घरोंमें भी घुस जाते हैं। घासमें पाया जानेवाला एक टिड्डा भी प्रकाशकी ओर आकर्षित होता है। झिल्लीको जातिके प्राणियोंको भी प्रकाश बहुत प्यारा है। परदार दीमक, परदार चींटियाँ पट-पत्त वर्गके रात्रि-चर कीड़े और तितलियाँ भी प्रकाशकी ओर आकर्षित होती हैं। द्वि-पत्त वर्गके दो प्राणी भी प्रकाशकी ओर आकर्षित होते हुए देखे गये हैं।

कीड़ोंकी आयु

कई अनिवार्य्य कारणोंसे अभी तक यह नहीं सिद्ध हो पाया है कि कौन कीड़ा कितने वर्ष तक जिन्दा रहता है। तापक्रम, भोज्य-पदार्थ आदिका कीड़ोंकी वृद्धि पर बहुत असर पड़ता है। भोज्य पदार्थोंकी अधिकतासे कीड़ा जल्दी पूर्ण बाढ़को पहुँच जाता है और जननेंद्रियका भी पूर्ण-विकास हो जाता है। इसीसे कीड़ेकी आयु घट जाती है। अपौष्टिक भोजन या भोजनकी कमीके कारण या तो कीड़ेकी पूर्ण बाढ़ होनेको एक लम्बा समय लगता है या उसकी जननेन्द्रियकी बाढ़ रुक जाती है। इस प्रकार कीड़ा तब तक जिन्दा रहता है, जबतक कि वह अण्डे नहीं रखता। जब तक इल्लीके लिए पर्याप्त भोजन मिलनेकी संभावना नहीं होती, मादा अण्डा ही नहीं रखती क्योंकि मादा अण्डे वहीं रखती है जहाँ नवजात कीड़ेके लिए भोजनकी बहुलता होती है। इसीलिए मादा को भोजन पदार्थोंकी बहुलताका मौसम आने तक जीवित रहना पड़ता है।

यदि कीड़ा अपने शत्रु, परोपजीवी कीड़े, की बदौलत और आकस्मिक घटनासे न मर कर, अपनी मौत मरे, तो वह कितने वर्षकी उम्र होने पर मरता है? स्थूल मानसे कहा जा सकता है कि प्रजोत्पादनका कार्य समाप्त होते ही कीड़ा मर जाता है, क्योंकि प्रजोत्पादनका काम पूरा हो जाने पर उसके लिए और कुछ करनेको नहीं रह

जाता—उसका इस जगमें अवतीर्ण होनेका हेतु पूर्ण हो जाता है। नर टिड्डा गर्भाधानका कार्य पूर्ण करनेके बाद मर जाता है और मादा अण्डे रखनेके बाद इस असार संसारको छोड़ कर परलोक सिधार जाती है; फिर चाहे, भोज्य-पदार्थोंकी बहुलता और मौसम सुख-पूर्वक जीवन बितानेके उपयुक्त ही क्यों न हों। अधिकाँश कीड़ोंमें नर गर्भाधान करनेके बाद और मादा अण्डे रखनेपर मर जाती है। बहुत से कीड़ोंकी पूर्ण बाढ़ होनेको एक ही मौसम पर्याप्त नहीं होता और गर्भाधान और अण्डे रखनेका अनुकूल समय न होनेके कारण—अर्थात् शीतकी अधिकता और भोजनकी कमीके कारण—पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए प्राणी नवजात शिशुके लिए काफी भोजन न जुटा सकनेके कारण, दो तीन या इससे भी ज़्यादा साल तक जिन्दा रहते हैं। अमेरिकामें एक कीड़ा १३ साल तक और एक दूसरा कीड़ा १७ साल तक जिन्दा रहा था। एक वर्षमें पतंगकी पुश्तें गुजर जाती हैं। द्वि-पक्षवर्गके कई कीड़े अधिकसे अधिक १४ दिन तक जिन्दा रहते हैं और उनकी कमसे कम उमर ७ दिनकी होती है।

भोजनकी जितनी ही बहुलता होती है, कीड़े भी उतने ही कम दिनों तक जिन्दा रहते हैं; भोजनके अभाव या न्यूनताके कारण ही कीड़ोंकी उम्र बढ़ जाती है; ऐसा क्यों होता है, यह बात ऊपर बताई जा चुकी है।

—शंकरराव जोशी

कोकेन (Cocaine)

[ले०—कविराज श्री० प्रतापसिंह जी]

यह द्रव्य कोका नामक पौदेके पत्तोंसे निकाला जाता है। देखनेमें श्वेत रंगका चूर्ण और स्वादमें कड़वा होता है। जीभपर लगानेसे स्फुरण और अवसन्नता (जड़ता) उत्पन्न करता है।

मात्रा—इसकी मात्रा $\frac{1}{10}$ ग्रेनसे लगाकर $\frac{1}{2}$ ग्रेन तक है।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—कोकेन हायड्रोक्लोराइड (Cocaine Hydrochloride) नामक औषध ही सबसे अधिक तीव्र और घुलनशील (soluble) होती है। यद्यपि त्वचाके ऊपर लगानेसे इसका कुछ प्रभाव नहीं होता तथापि यदि श्लैष्म धरा कला पर लगाया जाय तो वहां रक्त वाहक नाड़ियोंके प्रवाहमें रुकावट उत्पन्न करता है। ज्ञान नाड़ियोंके अन्तिम भागों पर लकवेका प्रभाव करके जड़ता तथा अवसन्नता उत्पन्न करता है। यदि इन्जेकशन द्वारा त्वचाके अन्दर प्रवेश किया जाय तो सुई-प्रवेशके स्थानपर सुर्खी उत्पन्न कर देगा और वह स्थान मुर्दा हो जायगा। यह प्रभाव ५—१० प्रति शत घोलसे उत्पन्न हो सकता है। किन्तु इसका प्रभाव दीर्घ काल तक नहीं रहता; यदि मुखमें लगाया जाय तो जिह्वाकी ज्ञान और स्वाद ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है और तालु तथा कण्ठकी भी यही दशा होती है। इसके प्रयोगसे लाला रस अल्प बनता है। पचास प्रति शत घोल मसूड़ोंको ज्ञानशून्य कर सकता है।

आमाशय और आन्तोंपर प्रभाव—यह अति अल्प मात्रामें आमाशयपर पाचक और उत्तेजक प्रभाव उत्पन्न करता है। साधारण मात्रामें आमाशयिक रसको कम उत्पन्न करता है और वहांकी क्षुधा और शूलके ज्ञानको नष्ट करता है; बड़ी मात्रामें आंतोंकी गतिका निरोध करता है, जिससे अतीसार या विबन्ध हो जाता है।

हृदय और रक्त परिभ्रमण—इसकी साधारण मात्रा सेवन करने से नाड़ीकी गति बढ़ती है, रक्तका दबाव अधिक हो जाता है; बड़ी मात्रामें सेवन करनेसे नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है और रक्तका दबाव भी कम हो जाता है।

श्वासाशय पर प्रभाव—यदि इसको नाकके अंदर लगाया जाय तो यह पूर्वमें नासाकी श्लेष्म धरा

कलाको मुर्दा बना देता है; खानेके पश्चात् प्रथम तो यह श्वास क्रियाको उत्तेजित करता है और बादमें शिथिल कर देता है। और इस प्रकार दम के घुटने से ही मृत्यु हो जाती है।

वात संस्थान पर प्रभाव—मस्तिष्क पर इसका प्रभाव क़हवाइन (caffeine) नामक औषधके समान ही होता है। किन्तु वैसे इसका प्रभाव उसकी अपेक्षा अधिक तीव्र होता है, जिसके कारण खानेवाले मनुष्यको अपने शरीर और मनमें शान्ति उत्साह और आनन्द अनुभव होता है; शरीर तथा मनमें थकान नहीं होती। इसके सेवनसे अनिद्र रोग उत्पन्न होता है; किन्तु उसमें विशेष कष्ट नहीं होता; यदि दीर्घ मात्रामें सेवन किया जाय तो मस्तिष्कको अवसन्न कर देता है।

नेत्रोंपर प्रभाव—इसका चार प्रतिशतके हिसाब से बनाया हुआ घोल यदि नेत्रोंमें डाला जाय तो नेत्रोंको मुर्दा बना देता है। और नेत्र तारकको प्रसारित (dilate) कर देता है।

शरीरोष्मा—यह शरीरमें विशेष परिवर्तन नहीं करता; किन्तु विषात्मक प्रभाव होने पर शरीर में ऊष्मा बढ़ जाती है।

वृक्क और जननेन्द्रिय पर प्रभाव—कोकेन मूत्रके द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है। इसके रहनेसे मूत्रकी मात्रा अधिक बढ़ जाती है। यह जननेन्द्रियकी उत्तेजना शक्तिको कम करता है।

तत्कालिक विष लक्षण—कोकेनके विष लक्षण प्रायः देखे जाते हैं। $\frac{3}{4}$ ग्रेनकी मात्रा सेवन करनेसे विष लक्षण होते देखे गये हैं। इसके विषमें भी मनुष्य भांग पिये हुएके सदृश चलता फिरता रहता है। कभी कभी उन्माद, सिरका घूमना, श्वासाशय और हृदयमें शूल और हाथ पैरोंमें ऐंठन होकर उनके हिलानेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। शरीरमें यह अनुभव होता है कि ऊपर पत्थर रखे हैं या अन्दर कीड़े से चलते हैं। विशेष कर त्वचाके अन्दर ऐसा प्रतीत होता है मानों कीड़ियां रेंग रही हैं। यह लक्षण इसके विषके विशेष लक्षण समझे जाते हैं।

प्रतिविष—वामक औषध देना, आवश्यकतानुसार आमाशयको पम्प द्वारा धोना, नौसादर, तेज़ क़हवा और स्ट्रिकनिया (Strychnine) का इन्जेकशन करना लाभदायक है।

चिरकालिक विष लक्षण—अफ़ीम और मद्यकी लतको छोड़नेके लिये लोग प्रायः इसका सेवन करने लगते हैं। अथवा इसकी क्षणिक उत्तेजित शक्तिके लिए भी इसका सेवन करते हैं। इसके निरन्तर सेवन करनेसे पाचन क्रियाका नाश, शिरमें चक्कर आना, कृशता; नाड़ीकी गतिका तीव्र होना, निद्रा नाश, नेत्रोंकी मन्दता आदि लक्षण होते हैं। नित्य खानेवाले मनुष्य इसको १० से ३० ग्रेन तक खा सकते हैं।

इसको छोड़नेके लिए शक्तिप्रद औषधियोंका प्रयोग करना पड़ता है। साधारणतया तेज कहवा या कुचलेके प्रयोग काममें ला सकते हैं। इसकी आदत छुड़ानेमें जल वायुका परिवर्तन करना भी विशेष सहायता करता है। भारतवर्षमें कोकेन खानेकी आदत दिनों दिन बढ़ती जा रही है। लोग इसको बने हुए पानमें रखकर खाते हैं, कुछ लेखकोंका मत है कि इसके खानेसे दांतों और होठों पर स्याही आजाती है।

घातक मात्रा—इसका त्वचाके द्वारा किया हुआ $\frac{2}{3}$ ग्रेन का इन्जेकशन घातक (Mortal) सिद्ध हुआ है। मुखके द्वारा खाई हुई १० ग्रेनकी मात्रा मारक मानी जाती है। १० ग्रेन खानेसे १ घंटेमें मृत्यु हो जाती है, किन्तु साधारणतया ८ से १० घन्टे तक इसका घातक समय समझा जाता है।

नगर रचना

[ले०—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद बी.ए.; एफ.ई.एस. एस.]

नगर रचनाके नियम पूर्वीय वा पश्चिमी नगरोंको एकसे लागू हैं। इनके संबंधमें बहुत सा हाल हमें पश्चिमी नगरोंके नकशे देखनेसे मालूम हो सकता है। यह उचित ही है कि हम भारतीय नगरोंको सुधारनेके लिए उन्हें काममें लावें। प्रत्येक नगरका चाहे वह भारतमें हो या विलायतमें कुछ न कुछ इतिहास अवश्य रहता है। हां लायलपुर सरीखे नगर जिनका उद्भव नहर वगैरहके कारण हुआ है एक निराले ढंगके हैं। ऐसे एक दो नगरोंको छोड़कर सब बड़े बड़े नगर छोटे छोटे गांवोंसे बढ़कर वर्त्तमान स्थितिको प्राप्त हुए हैं। परन्तु बहुत से नगरोंका विकाश बहुत ही अनियमित रूपसे हुआ है। यदि किसी नगरके प्राचीन हिस्सेको हम देखें तो पता चलेगा कि वहां पहले तीन गली वाला गांव था जो धीरे धीरे नगर बन गया। इसका कारण यही है कि लोग अपने अपने ज़ात और रोजगारके अनुसार इकट्ठे होकर रहने लगे। प्रयाग शहरका ही उदाहरण लीजिये। चमार उन्हीं मोहल्लोंमें रहते हैं जो चमारोंके हैं; वकील उन्हीं मोहल्लोंमें जा बसते हैं जहाँ पहलेसे वकील रह रहे हैं और हर एक मनुष्य उसी मोहल्लेमें या उसके आसपास मकान ढूंढता है जिसमें उसके धन्धेके और लोग रहते हैं।

नगर रचना एक नई विद्या कला (art) है; यह विचार करना बिलकुल गलत है। इसमें कोई शक नहीं कि आजकल इस विद्याकी बहुत उन्नति हो रही है। परंतु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि प्राचीन कालमें भी लोगोंको यह विद्या मालूम ही न थी। भारतमें यूरोपके सब देशोंके सदृश लोग अपना अपना शहर खास खास तरीकों पर रचते थे। बहुत से रोमन शहर जो दो हजार वर्ष पहले बने थे चतुष्कोणके आधार पर बने थे। इनमें मकान इस तरकीबसे बनाये गये थे कि उनका दर्वाजा सड़कपर होता था और उनके पिछवाड़े एक बड़ा मैदान रहता था। यह चतुष्कोण आधार प्राचीन समयके लोगोंका आदर्श मालूम होता है; क्योंकि ग्रीस भारतवर्ष इत्यादि देशोंमें कई जगह नगर इसी तरीके पर रचे हुए हैं। इसका क्या कारण है ?

इसका उत्तर यही हो सकता है कि उस समयमें सब नगर दीवालोंसे घिरे रहते थे; जिन्हें कि हम कोट कहते हैं। इस कोटके अंदर मकान पास पास बनाये जाते थे। अब जन संख्याके बढ़नेसे और शहरोंमें रहनेकी रुचिके बढ़नेसे पुराने शहर बढ़ चले हैं, यहां तक कि एक शहर तो कोटके भीतर और दूसरा उसके बाहर देखा जाता है; और तो भी दोनोंका नाम एक ही रहता है जैसे जयपुर, झांसी।

यूरोपमें रोमन समय से लेकर अब तककी नगर रचनाका इतिहास बहुत थोड़े शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है—रोमन लोग नगर रचनाके कार्यमें दिनपर दिन कम ध्यान देने लगे, म्युनिसिपल जीवनके बुरे दिन आये और नगर अनियमित रूपसे बढ़ने लगे और लोग अपने मकान मनमानी जगहों पर बनाने लगे। यह दशा अठारहवीं शताब्दी तक रही। तब लोगोंने नगर रचनाका महत्व समझा और यह चाहा कि सड़कें आमदरफ़्के लायक बनें और मकान एकसे और सुथरे हों। लंडन, पेरिस, वाशिंगटन, न्यूयार्क, फिलाडेलफिया इत्यादि नये शहरोंके देखनेसे यह मालूम होता है कि उनकी रचना नियमानुसार हुई है।

तब भी सुधार करनेके लिए अभी बहुत गुंजाइश है। आमदरफ़्के लिए अनेक मार्ग, खेलने कूदनेके लिए शहरके बीचमें खुले मैदान, और औद्योगिक वा स्थायी प्रदेशोंके उन्नत नमूने उन्नतिशील मनुष्योंको तसल्ली न दे सके और इसका फल यह हुआ कि कोई २० वर्ष पहिले नगर रचना

विद्यामें एक नया विचार घुस पड़ा और वह है बागवाले शहरों (garden cities) अर्थात् उद्यान पुरीक आदर्श।

तंग वा बेहवादार मकानोंमें रहकर जनताका स्वास्थ्य बिगड़ चला था, इसलिए मनुष्योंको यह लालसा उत्पन्न हुई कि शहरमें रहनेके लाभ वा देहातमें रहनेकी तन्दुरुस्ती एक जगह मिला दी जाय। इसके फलस्वरूप बागवाले शहरोंकी रचना का आरंभ हुआ। बागवाले शहरोंमें जनताके मकान और कारोबारकी इमारतें शहरके बीचमें बनाई जाती हैं और कारखाने वगैरा इनसे बहुत दूर रहते हैं। शहरके अंदर और चारों तरफ़ बड़े बड़े खुलासा मैदान रहते हैं और हरएक मकानके अहातेके पीछे कुछ खाली जमीन रहती है-जिसपर मकानके रहनेवाले अपना दिल बहलाव कर सकते हैं। बागवाले शहरोंके बेशक कई फायदे हैं; परन्तु उनसे सबसे बड़ा फायदा यह है कि इन शहरोंमें अन्य शहरोंकी अपेक्षा मौतें बहुत कम होती हैं। इन शहरोंमें रहनेवाले लोग भी अन्य शहरोंमें रहनेवालों की अपेक्षा ज्यादा और अच्छा काम कर सकते हैं। आधुनिक समयके शहरोंमें, विशेषकर उनके उन भागोंमें जहांपर बस्ती बहुत घनी है, बागवाले शहरोंकी रचनाके नियमोंसे कुछ लाभ नहीं हो सकता। परंतु उन्हीं शहरोंके वे हिस्से जोकि अभी पूर्ण विकाश को नहीं प्राप्त हुए हैं इन नियमोंके उपयोगसे उन गलतियोंसे बच सकते हैं जिनके कारण अन्य भागोंमें रहने वालोंको बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। आजकल जो कुछ सुधार यूरोपके शहरोंमें हुआ है वह बागवाले शहरोंके नियमोंके अनुसार ही हुआ है और इस सबका श्रेय बागवाले शहरोंके प्रचारक (असोसियेशन) समाजको है जिसने कि इस दिशामें बहुत कुछ कार्य करके दिखलाया है।

आयुर्वेद-पद्धति

[ले० श्री स्वामी हरिशरणनारायणनन्द जी]

आयुर्वेदका अर्थ है आयुका ज्ञान, और पद्धतिका अर्थ है उसकी रक्षाका क्रम अर्थात् जिन रोग समूहोंसे आयु क्षीण होकर मनुष्य इह लोक लीला सम्बरण करने लगता है, उन रोग समूहोंके आदि कारणको जान कर आयुकी रक्षाका क्रम निर्द्धारित करना, उससे इस जीवनको बचाना और पूर्ण आयु तक पहुँचाना आयुर्वेद-पद्धतिका लक्षण कहलाता है। यथाः—

आयुर्हिताहितंव्याधि निंदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते॥

इस आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धतिमें व्याधिके हेतु, व्याधिके चिन्ह, और ओषधि परिज्ञान नामक तीन अंग मुख्य माने जाते हैं। इन्हीं तीनोंको जान कर प्राणीमात्रकी आयु और स्वास्थ्यकी रक्षा की जा सकती है। हम इसके एक एक अङ्ग पर विचार करेंगे।

आयुर्वेदके मूल-तत्व और व्याधिके कारण

"दोष धातु मल मूलं हि शरीरम्" सुश्रुत-संहिता।

१ दोष (बात, पित्त, कफ) २ धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) ३ मल (विष्टा, मूत्र, प्रस्वेद, प्रश्वासादि) यह तीनों शरीरके मूल पदार्थ हैं। तथा यहीं तीनों व्याधियोंके भी मूल हैं। यथाः—

(१) "वायुः पित्त कफश्चोक्ताः शारीरो दोषसंग्रहः"
चरक संहिता।

वायु पित्त और कफ यह तीनों दोष जब शरीरमें संग्रह हों यानी बढ़ जायं तो इनके बढ़नेसे शरीरमें विकार उत्पन्न हो जाता है; अर्थात् शरीर व्याधि ग्रसित् हो जाता है।

(२) "विकारो धातु वैषम्यं" —सुश्रुत संहिता।

शरीरके धातुओंकी न्यूनाधिकताको विकार अर्थात् व्याधिकी दशा कहते हैं।

(३) " सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः "

वाग्भट ।

समस्त व्याधियोंका मूल कारण शरीरस्थ मलों-का प्रकोप अर्थात् विकृति है। शरीरमें जिस समय यह मल विकृत होते (सड़ते) हैं, तभी कोई न कोई व्याधि उठ खड़ी होती है।

इन्हीं तीनों पदार्थोंको मूल मान कर आयुर्वेद पद्धति की नींव बाँधी गई है। और इन्हींके आश्रय-भूत चिकित्सा क्रम निर्द्धारित किया गया है। किन्तु इन तीनों शरीरके मौलिक तत्वोंमेंसे वात, पित्त और कफ नामक तीन दोषोंको प्रधान माना है। यथाः—

नित्यं प्राण भृतां देहे वात पित्त कफास्त्रयः ।
विकृता प्रकृतस्था वा तान् बुभुत्सेत पण्डितः ॥ वाग्भट

अर्थात् मनुष्यके शरीरमें वात, पित्त, कफ नामक तीन दोष (चाहे वह विकार युक्त अवस्थामें हों, चाहे अविकार युक्त अवस्थामें) सदा ही विद्य-मान रहते हैं। इसीलिए पण्डितोंको उचित है कि इनका विचार अवश्य करें; क्योंकि यथार्थमें इन्हींकी न्यूनाधिकतासे प्रायः व्याधियोंका प्रादु-र्भाव देखा जाता है और इन्हींके आधार पर चि-कित्साका क्रम निर्द्धारित किया जाता है।

दोषोंके आधार पर चिकित्सा-पद्धति

जब शरीरमें किसी तरह कोई व्याधि प्रादुर्भूत हो जाय, तो उक्त व्याधिको देख कर यह निश्चय किया जाता है कि रोगीके शरीरमें कोई न कोई दोष अवश्य प्रकुपित हो गया है, जिसके कारण व्याधि उत्पन्न हुई और उत्पन्न होकर बढ़ रही है। इन बढ़े हुये दोषोंको वैद्य व्याधिके लक्षणोंसे ज्ञात करता है। और जब उक्त दोषोंमेंसे किसी दोषका निश्चय हो जाता है तो उक्त दोषके शामक द्रव्य (औषधि) का प्रयोग निश्चय किया जाता है। उक्त दोषोंका शमन करना, अपनी पूर्वावस्थामें लाना ही व्याधिका प्रतीकार और रोग नाशक क्रिया कहलाती है।

व्याधि किसी कारणसे हो सबमें दोष ही मुख्य कारण कहलाते हैं। इसीसे दोषोंको मुख्य मानकर प्रत्येक दोषोंके आश्रित होने वाली व्याधियोंकी एक संख्या नियत कर दी है। यथा वातसे ८० पित्तसे ४० श्लेष्मसे २० प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं; और जितने रोग हैं चाहे बड़े हों या छोटे प्रायः इन्हींके अन्तर गत माने जाते हैं और सबमें त्रिदोषको ही कारण माना जाता है।

किसी व्याधिके होने पर दोषोंका निश्चय किस तरह किया जाता है?

आयुर्वेद-पद्धतिमें इसकी निम्न लिखित विधि है। किसी मनुष्यको जब मौसमी (मले-रिया) बुखार होता है तो यह दिखाई देता है कि उसको ज्वर चढ़नेसे पूर्व प्रथम वमन होने लगता है। जिसमें बहुधा खट्टा, कड़वा, पीला, हरा पानी (पित्त) निकलता है। ज्वर से पूर्व कुछ न कुछ शीत प्रतीत होकर, पुनः शरीर का उत्ताप बढ़ने लगता है, जिसको ज्वर आना कहते हैं। जैसे जैसे ज्वर बढ़ता है तृषा, प्रलाप व्याकुल-तादि उपद्रव बढ़ते जाते हैं, मूत्र अत्यन्त लाल उत-रता है, मूत्र के समय मूत्र नलिकामें दाह प्रतीत होता है। ऐसे रोगीमें जो पित्तपात, दाह, ज्वर वेग, तृषा प्रलापादि उपद्रव देखे जाते हैं, यह सब मनुष्यमें पित्तके धर्म कहलाते हैं। इन उपद्रवोंका होना पित्त दोषके अधिक होनेकी सूचना समझी जाती है। इससे भिन्न जब ऐसे रोगीको सर्वाङ्ग-पीड़ा या शिरःशूल कटि-शूल आदि होते हैं, तो उक्त पीड़ाका कारण वात दोष माना जाता है; इसी लिए फिर ऐसे ज्वरको वात-पित जन्य ज्वर कहते हैं। जब इस प्रकार एक व्याधिके दोषोंका निश्चय कर लेते हैं तो उक्त व्याधि और दोषोंके विपरीत गुणकारी द्रव्योंको ढूँढ कर वातपित्त या केवल पित्तज्वरको हरण करनेवाली और दोषोंको पूर्वा-वस्थामें लानेवाली औषधका प्रयोग करते हैं। यही क्रम हर एक व्याधिके लिए निश्चित है। वैद्य व्याधिको देखकर पहले उसका शरीरमें स्थान और असली रूप जानता है; तत् पश्चात् उपद्रवोंको

देखकर दोषकी पहिचान करता है, इसके पश्चात् उसका नाम निश्चित कर उसपर कोई, व्याधि और दोषके विपरीत, औषध निश्चित कर देता है। यह आयुर्वेदका क्रम बहुत प्राचीन समयसे एक निश्चित रूपसे व्यवहृत होता चला आता है।

बहुत कालसे इसका एक निश्चित क्रम बना रहनेके कारण, उनका प्रायोगिक ज्ञान यहां तक बढ़ा कि उन्होंने संसारके व्यवहारमें आनेवाले प्रत्येक द्रव्योंमें उक्त दोषोंके शमन करनेकी शक्तिको जाना और भिन्न भिन्न अङ्गों तथा व्याधियोंपर उनका प्रभाव देखा। पूर्व कालमें खाद्य द्रव्यों और ओषधि सम्बन्धी द्रव्योंकी संख्या इतनी वृहत् न थी कि वह इस विषयको चिकित्साके ग्रन्थोंसे अलग लिखते। प्रत्युत् उन्होंने प्रत्येक चिकित्साके ग्रन्थोंमें सबसे पूर्व पदार्थोंके दोष गुण प्रकृति प्रभावको लिख कर फिर निदान और अन्तमें चिकित्सा लिखी। किन्तु, काल पाकर ओषधिरूपमें व्यवहृत होनेवाले द्रव्योंकी संख्या इतनी बढ़ी कि उनकी चिकित्साके ग्रन्थोंके भीतर रखना कठिन हो गया; इसीलिए उन्होंने इसका एक भिन्न विभाग ही बना दिया; जिसका नाम उन्होंने निघण्टु (मेट्रिया मेडिका) रखा। उनके इस तरहके पदार्थोंके गुण दोष सम्बन्धी अनुसन्धान से भविष्यमें हुये और होनेवाले वैद्योंको महान् लाभ हुआ। उनके इस कार्यसे वैद्योंको इतना सुख मिला कि वैद्योंमें ओषधि सम्बन्धी खोज बहुत कुछ मात्रामें जाती रही, और वह किसी आप्त वाक्यके आधार पर ही यह निश्चय कर बैठे कि इससे परे अब और विवेचना हो नहीं सकती। आगे चल कर इन्हीं निश्चित की हुई ओषधियोंको वह भिन्न भिन्न रोगों पर एक एक करके या कइयों-को मिला कर देते रहे। जो जो ओषधियोंके यौगिक जिन जिन रोगों पर अद्भुत लाभकारी सिद्ध हुए, जिनको बारम्बार आज़माने पर एक निश्चित फल पाया गया, ऐसे यौगिक द्रव्योंका उन्होंने एक नाम निश्चित कर दिया। यथाः—योगराज गुग्गुल, चन्द्र प्रभा वटी, सीतोपलादि चटनी, वसन्त मालती रस इत्यादि।

जब हरएक वैद्यके प्रयोग और अनुभवसे भिन्न भिन्न यौगिक बनने लगे, और वैद्य परस्पर एक दूसरे के योगों (नुसखों) से लाभ उठाने लगे तो उन्होंने ऐसे नुसखोंको समय पाकर संकलित करना प्रारम्भ कर दिया और काल पाकर उन योगोंका भिन्न भिन्न व्याधियोंके अनुसार विभाग कर दिया और उनकी तालिका निश्चित करदी, जो आज हमको बड़ी बड़ी पुस्तकोंके रूपमें (फार्मोकोपियाके रूपमें) मिलती है। इन ग्रन्थोंके इस प्रकार एक क्रमसे बनने और विकसित होनेके इन्हीं ग्रन्थोंमें अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि जो आयुर्वेद इस समय इतनी उन्नतावस्थामें है उसके विकाशमें काफी समय लगा होगा। आयुर्वेदके ग्रन्थोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि पूर्व कालसे लेकर आज तक इसका विकास मन्द गतिमें रहा है; इसीलिए इसमें विशेष फेर फार नहीं हुआ। दूसरे आयुर्वेदके निश्चित किये योग भी धीरे धीरे वैद्योंको शिथिल बनाते गये; क्योंकि किसी रोगकी व्यवस्था देना और उसके लिए किसी योगका निश्चित करना साधारण कार्य था; रोगीके रोगका निश्चय कर अपनी फार्मोकोपियामें लिखे नुसखों (योगों) को देखकर शीघ्र यह निश्चित कर दिया जाता था। यदि एक योगसे लाभ न हुआ तो दूसरा, तीसरा कहां तक गिनती करावें पचासों योगों तक नौबत पहुंच जाती थी। इसीसे तो आज कई शताब्दीसे वैद्योंका समुदाय बिना परिश्रमके भोजन मिलते रहनेके कारण बहुत कुछ विचार-शून्य, क्रिया-शून्य हो गया है। और आज इतना अपने प्रतिद्वन्दियों के द्वारा उत्तेजित किया जाने पर भी निस्तब्ध बैठा है। खैर जो हो आज यह पद्धति संसारकी और चिकित्सा पद्धतियोंके सामने बड़ी दृढ़तासे चल रही है और प्रतिवर्ष जो लाखों असाध्य रोगी और चिकित्साओंसे निराश रह जाते हैं, इससे लाभ उठाते हैं।

लोमड़ी

जिस प्रकार छछूंदर घरोंमें बहुतायतसे पायी जाती है उसी भांति गांवसे बाहर मैदानमें और जंगलोंमें लोमड़ी अधिक संख्यामें पायी जाती हैं। जब हम घरमें रहते हैं तो रातको और कभी कभी दिनको भी इधरसे उधर छू छू कर भागती हुई छछूंदरको देखते हैं। घरसे बाहर सवेरे साँझ जब घूमने निकलते हैं वा खेतोंको देखने जाते हैं तो खे खे करती हुई खेखरि मिल जाती है। छू छू और खे खेके कारण इनका छछूंदर और खेखरि नाम बिल्कुल उपयुक्त है। हमारे दैनिक गृहस्थ जीवनसे इनका बड़ा साथ है। दोनों जानवर लोगोंमें इतने प्रसिद्ध हैं कि यह एक कहावत सी बन गई है कि 'घरमें छछूंदर और वन में खेखरि'। छछूंदर की भाँति लोमड़ी भी बिलके अंदर ही रहती है।

जिन्हें खेखरिकी कथा नहीं मालूम है उन्हें इसका विवर देखकर बड़ा आश्चर्य होगा। छछून्दर के आगेके दोनों पैर ज़मीन खोदनेके लिए बने ही हैं; उसके पंजे गड्ढा खोदनेमें बड़े तेज होते हैं। उसकी हथेली खुरपेकी भांति काम करती है; मांस पेशियोंमें भी अपूर्व बल होता है। उसके शारीरिक अवयव बिल खोदनेमें विशेष काम आते हैं; थोड़ी बहुत चलने फिरनेमें भी सहायता पहुंचाते हैं; किन्तु लोमड़ीके पैर तीव्र गतिके ही लिए बने हैं; इसी लिए वह बहुत तेज़ दौड़ सकती है। जैसे छछूंदर जमीन खोदनेकी शक्तिसे चल फिर भी सकती है वैसे ही लोमड़ीके दौड़ धूपमें अद्भुत शक्तिशाली पैरोंको किसी प्रकार खोदनेका भी काम करना पड़ता है।

ध्रुवीय शीत प्रदेशोंमें यह बिल तैयार करनेमें तेज़ होती है। मौसिमकी कठिनाईसे बचनेके लिए बिल बहुत गहरा बनाना पड़ता है और एक स्थानमें अलग अलग २५, ३० लोमड़ियोंके बिल दिखलाई पड़ते हैं। यदि इनके एक भिटेको खोदा जाय तो विचित्र बात दिखाई पड़ेगी। ज़मीनके अंदर पचीस सुरंग मिलेंगी, जिनमें प्रत्येक सर्वाङ्गपूर्ण होगी, उसके अंतमें एक बड़ा सा कमरा होगा। ऐसे कमरोंमें भिन्नभिन्न अनेक मार्ग बने होते हैं और विश्राम करनेका स्थान उनके निम्न भागमें होता है। कमरा काफी बड़ा होता है और वहाँसे किसी खटके से लोमड़ीका जल्दी से भाग निकलना बड़ा आसान होता है। यहाँसे एक सुरंग दूसरे कमरे तक जाती है जहाँ मादा बच्चे देती है और उनका पालन पोषण होता है। यह कमरा बहुत बड़ा नहीं होता। अब पता चला है कि ध्रुवीय लोमड़ियोंका विवर छछूंदरके विवरसे बिलकुल मिलता जुलता है। दोनोंके निवासस्थान दुर्ग होते हैं; जिनके मध्य के बड़े कमरेसे बहुत से मार्ग बाहरकी ओर जाते हैं और बच्चोंकी रक्षाके लिए उसमें छोटा सा सुरक्षित स्थान होता है। पांच पांच, छः छः बच्चोंको यहाँ आश्रय मिलता है। बाहरवाले कमरेमें और इसमें खुलनेवाली कई एक सुरंगोंमें बहुत सा भोजनका भंडार रहता है; यहां पर प्रायः खरगोश, बतक जैसे छोटे जानवरोंकी हड्डियाँ पड़ी रहती हैं।

लोमड़ी बड़ी चालाक होती है। ध्रुव प्रदेशमें यात्रा करनेवालोंने प्रायः इसको मूर्ख बतलाया है; क्योंकि यह बड़ी आसानीसे पकड़ी जा सकती थी। किसी साधारण जालमें भी यह फँस जाती थी। थोड़े ही समयमें शिकारियोंने दस दस पन्द्रह पन्द्रह लोमड़ियोंका शिकार किया था। यह उनको देख कर अपनी जान बचानेका यत्न न कर सकती थी; किन्तु अब इनको पकड़ना कठिन हो गया है। अबके यात्रियोंको इसके शिकारकी कठिनाई भली भाँति ज्ञात है। उनका कहना है कि इनमें बड़ी चालाकी होती है और इनका फन्देमें फँसना बिलकुल असम्भव सा है। बात यह है कि इसके सुन्दर बालोंके लोभसे यूरोपसे आ आ कर शिकारियोंने इनका पीछा करना प्रारम्भ कर दिया है। शिकार करते समय जो पकड़ ली जाती हैं उसका

तो अंत ही हो जाता है; किन्तु जो बच निकलती वह सदाके लिए चेत जाती हैं। धीरे धीरे बहुतसी लोमड़ियाँ बचकर निकल भागीं और इनको शिकारियोंके जालसे सदाके लिये छुट्टी मिल गई है। अब इनमेंसे प्रत्येकको मनमें असाधारण पदार्थको देख
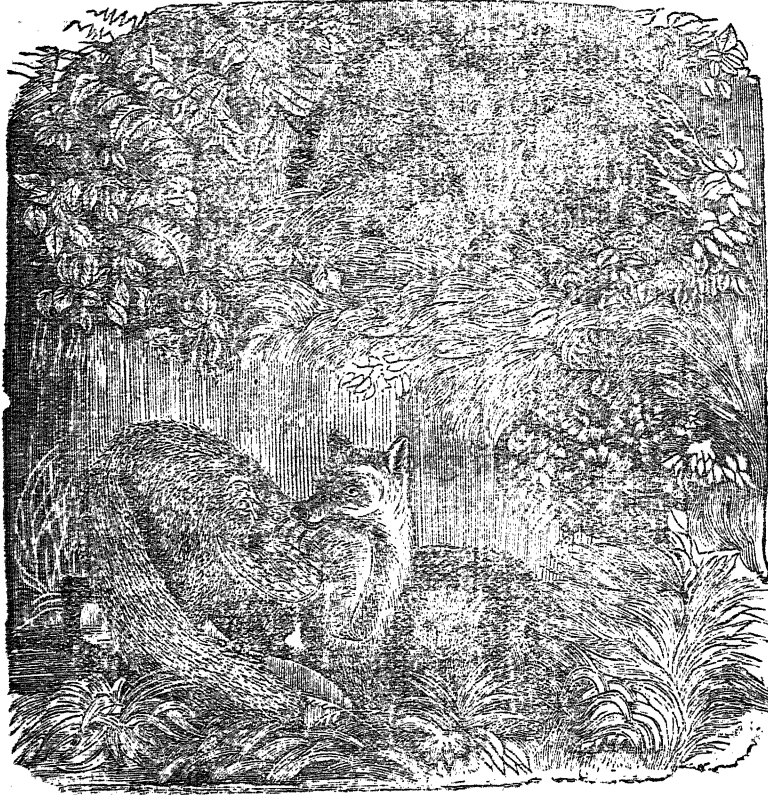
चित्र १३

सन्देह उत्पन्न हो जाता है; किसी फन्दे वा रस्सी तथा अन्य किसी दूसरे पदार्थको जो उनके दैनिक जीवनमें काम नहीं आते, देख कर उसके मनमें तुरन्त शंका उत्पन्न हो जाती है; उसके पास तक नहीं फटकती। कभी किसी विचित्र वस्तुको न तो छूती है और न सूंघती है। नयी वस्तुको देख कर दूरसे ही भाग जाती है।

मांसाहारियोंका कहना है कि लोमड़ीका मांस खानेमें बड़ा स्वादिष्ट होता है; किन्तु अधिक अवस्थाकी लोमड़ीका मांस बड़ा कड़वा होता है और उसे खानेसे मुंहमें छाले पड़ जाते हैं।

ध्रुव प्रदेशकी लोमड़ीका चमड़ा साधारण अवस्थामें भी अच्छा होता है; किन्तु जब, वह जाड़ेमें स्वच्छ हो जाता है और बिल्कुल श्वेत रंगका निकलता है तो इसका मूल्य बहुत अधिक होता है। ऐसे चमड़ेका बना चुगा केवल लाखोंमें ही मोल लिया जा सकता है। इतना ही नहीं इस जन्तुके रोयें भी बहुमूल्य होते हैं। वृद्धा लोमड़ीके महीन और सुन्दर रोयें अच्छी दशामें अपने कई गुने तोलके सोनेके मूल्यके होते हैं।

दूसरे देशोंकी लोमड़ी जहाँतक होता है बिल खोदनेसे जी चुराती है और बनी बनाई भटको ही ढूँढ़ती है। किसी खरगोशके बिलको वह प्रायः अपना लेती है। यद्यपि लोमड़ी खरगोशसे बहुत बड़ी होती है तथापि उस छोटे बिलको ही अधिक चौड़ा कर अपना बिल बना लेती है; जिसमें अधिक परिश्रम से ज़मीन खोदनी न पड़े। जैसे बर्मे द्वारा लकड़ीमें एक छोटे छेदके स्थान पर चौड़ा छेद बना लेना सुगम होता है उसी प्रकार लोमड़ी को भी छोटे बिलको चौड़ा कर लेना सरल होता है। जब कभी किसी अवसर पर अभाग्यसे ऐसा बिल न मिल सका तो उसे स्वयं पूरा बिल खोदना पड़ता है। वहां पर वह अन्य बहुत से जन्तुओंकी भाँति दिनमें सोया करती है और रात को बाहर निकल पड़ती है। यहीं पर मादा बच्चे देती है। कभी कभी सन्ध्याको सम्पूर्ण

कुटुम्ब बिलके आसपास घूमता दिखायी पड़ता है; बच्चे बिलसे कभी दूर नहीं जाते।

—जगपति चतुर्वेदी

सीसा (Lead, Plumbum)

[ले०—कविराज श्रीप्रतापसिंहजी]

मुरदासंगको अंग्रेजीमें Proto-oxide of lead या litharge कहते हैं। सफैदाको अंग्रेजीमें whitelead, कहते हैं। सिन्दूरको Red lead कहते हैं।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—साधारण चर्मके ऊपर इसके क्षारोंका अल्प प्रभाव होता है। किन्तु छिली हुई त्वचा, श्लेष्म धराकला, घाव और छालों पर लगानेसे निम्न लिखित प्रभाव उत्पन्न होता है।

१—इसके क्षार घावके द्रवके साथ मिलकर घाव पर तलछट बनाते हैं और उसपर एक खुरण्ड बांध देते हैं।

२—व्रणके स्थान पर धातुओंसे जो द्रव निकलता है उसको गाढ़ा कर देते हैं।

३—रक्तकी नालियोंको संकुचित करते हैं, जिससे व्रणसे द्रव निकलना बन्द हो जाता है।

४—स्थानिक वात नाड़ियोंके कार्य मन्द करते हैं; जिससे कण्डु (खाज) आदि कम होती है।

इस कारण इसको स्थानिक संकोचक, प्रदाहनाशक और वातनाड़ी वेदना शामक मानते हैं।

महास्रोत—अन्य घुलनशील सीसेके क्षार स्वाद रहित होते हैं। घुलनशील क्षार, तेज़ संकोचक और मधुर स्वादवाले होते हैं। इनका यही प्रभाव चर्म, मुख, आमाशय और आंतों पर पड़ता है। घुलनशील क्षार सीसक भस्म आदि, मुख आमाशय और आंतोंमें अल्ब्युमिनेट (Albuminate) नामक द्रव्यमें परिणित होकर शरीरमें शोषित हो जाता है और जो शेष भाग रह जाता है वह मलके साथ मिलकर बाहर निकल जाता है। आंतोंके अन्दर सीसक क्षार मुख्यतः तीन कार्य करते हैं।

१—आंतोंके द्रवको कम करते हैं।

२—रक्तवाही धमनियोंका संकोचन करते हैं।

३—आंतोंकी गतिको कम करते हैं।

इस कारण सीसेके क्षारोंको आन्त्र संकोचक और रक्तावरोधक मानते हैं। इनके सेवन से विबन्ध उत्पन्न होता है, खून रुक जाता है, और पित्तका प्रवाह भी कम होता है।

रक्त—सम्भवतः सीसक क्षार, अलब्युमिनेट नामक परिवर्तित दशामें आंतों, आमाशय और कभी कभी श्वासाशयके द्वारा रक्तमें प्रवेश करता है। उससे शरीरका रक्तस्थ द्रव अधिक जलवाला हो जाता है और उससे हीमोग्लोबिनि (Hæmoglobin) नामक लोह धातु विशिष्ट रक्तको रंजन करनेवाला पदार्थ कम हो जाता है और रक्त कण भी संख्यामें कम हो जाते हैं। इस कारण अल्प पाण्डु रोग (anæmia) हो जाता है।

धातु—सीसा शरीरकी धातुओं द्वारा शरीरमें पहुंचता है और वहां जमा भी रहता है। विशेषतः मस्तिष्क, सुषुम्ना कांड, यकृत, वृक्क और अस्थिके अन्दर जमा रहता है। इस कारण वर्द्धनशील धातु कोषों (cells) के साथ इसका सम्बन्ध होता है। उसको सीसक विषलक्षण, या Plumbism कहते हैं।

संशोधन—सीसा मूत्र, पित्त और स्वेदके द्वारा शनैः शनैः शरीर से बाहर निकलता है और इसका विशेष शोध आंतोंके द्वारा होता है। यह शरीरसे यूरेट्स (Urates) नामक क्षारोंको मूत्रके द्वारा कम बाहर निकलने देता है; अतः इस कारण सन्धिवात (Gout) रोग उत्पन्न करता है।

तत्कालिक विष लक्षण—इसका तेज घोल चर्म पर लगानेसे दाह उत्पन्न करता है, किन्तु इसका विषात्मक प्रभाव कदाचित ही देखनेमें आता है। परन्तु स्त्रियां Diachylon Plaster

नामक वस्त्र लिप्त मलहमका प्रयोग गर्भपातके लिए करती हैं, इसके प्रयोगसे अवश्य गर्भपात हो जाता है और साथ ही इसके विष लक्षण रूप लकवा अन्धापन, उन्माद और कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है।

इससे शरीरमें दाह, उदर शूल, गलेका शोष, तृषा वमन, पित्तशूल (Colic) विवन्ध, स्लेटके रंगका दस्त, ठण्डे पसीनेका आना, हाथ पैरोंमें पेंठन और मूर्छा आदि लक्षण होते हैं।

प्रतिविष (antidote)—आमाशयको पम्पके द्वारा साफ करें। यशद गन्धेत (Zinc sulphate) वामक और प्रति विष है, इस कारण इसका प्रयोग करें। तदनन्तर दूध, अण्डेकी सुफ़ेदी, जल मिश्रित गन्धकाम्ल, (Dilute Sulphuric acid), सोडा सल्फ (Sodium Sulph.) और मेगनेसियम सल्फ (Magnesium Sulph.) आदि का प्रयोग करें। यह रासायनिक प्रतिविष हैं। मारफीया और स्नेह द्रवोंका भी प्रयोग करें जिससे आन्तरिक पित्त और शूल शमन हो जाय।

दीर्घ कालिक विष लक्षण—इस प्रकारका विष लक्षण भी प्रायः देखा जाता है, धीरे धीरे शरीरमें इस ओषधिके शोषित होने और अल्प मात्रामें धातुओंके साथ संग्रहीत होनेके कारण यह लक्षण उत्पन्न होते हैं; क्योंकि सीसा शरीरमें संग्रहीत होकर विष लक्षण उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सीसेके कारखानोंमें काम करते हैं या इसका लेन देन अपने हाथोंसे करते हैं वह बिना धोये हाथोंसे प्रायः अन्नको छूकर विषाक्त बना लेते हैं। मद्य, कोसमेटिक्स (Cosmetics), बाल रंगनेकी चीज़ें (खिज़ाब); नास; जो सीसेके टीनोंमें बन्द हुई आती हैं; पीनेका पानी जो सीसेकी टंकियोंमें भरा और सीसेके पम्पद्वारा कार्यमें प्रयोग किया जाता है यह सब वस्तुएं सीसक विषके भयंकर कारण हो सकते हैं। इस विषके विशेष लक्षण यह हैं कि पाचन शक्तिके खराब होनेके साथ ही विबन्ध, मुखमें मधुर स्वाद, आंतोंमें शूल और मसूड़ों और दांतों में एक नीले रंगकी लकीर हो जाती है। यह लक्षण सबसे पहिली दशामें दृष्टि पड़ते हैं; उक्त कारणोंसे ही गुदाके आस पास भी नीली नीली लकीर दृष्टि पड़ती हैं। पैरोंके टखनोंके पास बहुत पेंठन होती हैं और साथ ही अगले हाथोंको लकवा मार जाता है; जिस कारण कलाईका जोड़ उठ नहीं सकता, स्थानिक नाड़ियों पर विष प्रभावके कारण यह लक्षण होता है। कभी कभी वात संस्थान पर विषात्मक प्रभाव होनेके कारण अपस्मार और उन्माद रोग भी हो जाते हैं; जिससे नेत्र दौर्बल्य या अन्धता (Blindness) हो जाती है। सीसेकी भस्म यूरेट (urate) नामक मूत्र क्षारको रक्तसे बाहर नहीं निकलने देती, और जोड़ोंमें सन्धि-वात जन्य शोथ उत्पन्न कर देता है। दीर्घ कालिक सीसेके विषसे गुर्दोंके अन्दर दानेसे पड़ जाते हैं। इसका कारण अभीतक ठीक विदित नहीं हुआ है कि इन सीसक क्षारोंके विषात्मक प्रभाव से या किसी अन्य कारणसे यह दाने उत्पन्न होते हैं। गर्भपात इसका एक विशेष उपद्रव है; इसी कारण Diachylon Plaster नामक ओषधिका प्रयोग भ्रूण हत्याके कार्यमें प्रयुक्त होता है।

चिकित्सा—विषके कारणोंको दूर करना, शूल और विबन्धको दूर करनेके लिए, क्रमशः फिटकरी और बेलेडाना (Belladonna) का प्रयोग करना; पोटासियम आयोडाइड (Potash Iodide) और मेगनेसिया सलफेट (Mag-sulph.) शरीरके शोधनके लिये तथा उन क्षारोंको घुलनशील बनानेके लिए प्रयोग करना; उदर शूलको शमन करनेके लिए चर्म द्वारा मारफीया (morphia) का इन्जेकशन (Injection) करना; गन्धकका स्नान कराना, लकवा मारे हुए मांसों पर बिजलीका प्रयोग और मालिश करना, गन्धक मिश्रित जलसे बनाया हुआ लेमोनेड (lemonade) का प्रयोग करना, पीनेके लिए केवल दूध देना, शारीरिक शुद्धतापर पूर्ण ध्यान देना आदि उपाय

विशेष उपयोगी हैं। नीबूके तेज़ाब (Citric acid) और इमलीके तेज़ाब (Tartric acid) का बना हुआ सोडा प्रयोगमें न लाना चाहिये।

बीवर और विचित्र बांध

सामाजिक प्राणियोंमें बीवरका सर्वोच्च स्थान है। यह अन्य जन्तुओंकी भांति केवल एक साथ मिल जुल कर रहना ही नहीं जानते; बल्कि अपनी जाति मात्रका कल्याण करनेवाले कामोंको भी संयुक्त होकर करनेमें उत्साह दिखलाते हैं। यह बात अन्य प्राणियोंमें बहुत कम पाई जाती है। बीवरको पानीसे बहुत अधिक प्रेम है। भूमि पर भ्रमण करनेसे पानीमें तैरना इन्हें अधिक पसन्द है। यही कारण है कि सदा जलसे भरी नदियोंके तट पर इनका निवास स्थान होता है। यदि किसी कारण वश जल कष्टकी सम्भावना हो तो बीवर साधारण जन्तु होने पर भी बल-पूर्वक सरिताको अपनी जलकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए बाध्य करते हैं। जिस प्रकार आज-कल पनचक्कीके स्वामी बांध द्वारा जल एकत्रित कर अपना मतलब सिद्ध करते हैं उसी ढंगसे बीवर भी मोटे मोटे पेड़के तनों और शाखादिके विकट बांध द्वारा जल प्रवाह रोककर जल राशि जुटा लेते हैं। इस प्रकार कभी कभी अनेक स्थानों पर मीलों तक पचासों बांध तैयार हो जानेसे खेतोंको बड़ा लाभ पहुंचता है। यदि इस प्रकारके बांध मनुष्य द्वारा तैयार किये जाते तो २५,३० सहस्र मुद्रा पर सहज ही पानी फिर जाता। इस प्रकारसे जलावरोध द्वारा जितना लाभ पनचक्की-वालोंको होता है उतना ही बीवरोंको भी होता है; किन्तु जिस समय मनुष्यने बांध तैयार करना नहीं सीखा था वा उसे चक्की चलाने तकका ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था उस समय भी बीवर बांध बांध लेनेमें कुशल थे और ऐसे जलावरोधसे जल राशि एकत्रित कर आनन्द लूटते थे। लोगों-को इतना तो पहले ही ज्ञात हो चुका था कि बीवर जलावरोध तैयार कर लेते हैं; किन्तु इस बातका पता लगाना कठिन था कि बांधमें किस प्रकार किन वस्तुओंका प्रयोग कर उसे सुदृढ करते हैं। बीवर बांध तैयार करनेमें प्रायः पेड़के तनों, शाखों और झाड़ झंखाड़ आदिकी सहायता लेते हैं। बड़े बड़े पेड़ोंको अपने तेज़ दांतोंसे काट कर गिरा देते हैं; कभी कभी एक एक गज मोटे वृक्षोंको इतनी सुगमतासे काट डालते हैं जैसे लकड़हारा कुल्हाड़ेकी सहायतासे काटता है। इन पेड़ोंका कुछ अंश तो बांधमें लग जाता है; अवशिष्ट भोजनके काममें आता है। गर्मीके दिनोंमें पेड़की जड़, झरबेरी और पत्तियों पर निर्वाह करते हैं। किन्तु जाड़ेके दिनोंमें पूर्व संचित पेड़की छालोंसे ही काम चल जाता है, शेष तने बड़े कौशलसे जल में छोड़े जाते हैं। वह छोटी छोटी टहनियोंके साथ बांध तैयार करते हैं। मोटी लकड़ियोंका चौकोर सुन्दर आकार देख कर यही ज्ञान पड़ता है कि वे मनुष्य निर्मित हैं।

जब बीवर किसी पेड़को अपने कार्यके उपयुक्त समझते हैं, तो उसके तनेमें चारों ओर एक नाली बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। धीरे धीरे उसीको बढ़ा लेते हैं। चारों ओर गड्ढा काट लेनेके बाद पेड़को बड़े ध्यानसे चारों ओरसे देखते हैं, मानों गणित द्वारा पेड़का झुकाव देख रहे हों। जब एक ओरसे पेड़ गिरनेका निश्चय हो जाता है तो दूसरी ओर जाकर दो ही तीन बारमें बड़ा सा गड्ढा बना लेते हैं जिसके कारण पेड़का एक ओरका बल बहुत कम हो जाता है और धड़ा-मसे पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

पेड़के गिर जाने पर उनके तनोंको कई टुक-ड़ेमें कर डालना भी बीवरोंके लिये कुछ कठिन नहीं होता। उसके एक एक गजके अनेक टुकड़े कर डालते हैं। कटे हुए टुकड़े बिल्कुल गोल और नोकीले होते हैं। इस प्रकारके टुकड़े कई एक

स्थानों पर रखे रहते हैं जिन्हें देख कर आश्चर्य होता है। इन्हीं टुकड़ोंसे बाँध बनता है। जब एक ओर कुछ विद्वान बीवरको अत्यंत विकट और चतुर जन्तु सिद्ध कर इसके बलकी प्रशंसा करते दिखाई पड़ते हैं तो कुछ सज्जन ऐसे भी मिलते हैं जो सब कुछ धो डालते हैं और इसकी सत्यता अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि वे बाँध बीवरके बनाये नहीं होते बल्कि धारा द्वारा प्रवाहित लट्ठोंके जुट जानेसे आपसे आप बन जाते हैं; जहाँ बीवर पीछे अड्डा जमा कर सब छालको स्वाहा कर डालते हैं।

इस पर सहज ही विश्वास किया जा सकता है कि उन बांधोंकी रचना आकस्मिक नहीं हुई है; क्योंकि यदि दैवयोगसे लट्ठे इकट्ठे हो गये होते तो बाँध बेढंगे तौर पर बना होता किन्तु इनमें तो प्रत्येक टुकड़ा ढंगसे रखा जान पड़ता है; जहाँ जैसे टुकड़ोंकी आवश्यकता हुई है वहाँ वैसे ही टुकड़े लगे होते हैं। इनके बनानेमें धारा प्रवाहका भी ध्यान रखा जाता है। जहाँ पर पानी धीरे धीरे बहता है वहाँ बाँध बिल्कुल सीधे बने होते हैं किन्तु जहाँ प्रवाह तीव्र है वहाँ पर धाराका ध्यान रख बाँध बक्राकार बना होता है; इस कारण उन पर धाराका बल नहीं लग सकता।

बांध बांधनेके लिए लट्ठोंको जमीनमें घुसाते नहीं हैं बल्कि कंकड़ पत्थरसे ढक कर योंहीं पानीके अंदर डुबा कर रखते हैं। इसी प्रकार बहुतसे लट्ठे एकके ऊपर एक रख दिये जानेसे बांध तैयार हो जाता है। इनकी काम करनेकी शक्ति बड़ी तीव्र और आश्चर्यजनक होती है। इनका कौशल निपुण इंजीनियरोंसे भी बढ़ा चढ़ा होता है।

लोगोंका यह कहना है कि प्रकृतिकी कृपासे इन बांधोंकी रचना आपसे आप हुई है कुछ अंशमें सत्य कहा जा सकता है। जब बीवरोंका बांध तैयार हो जाता है तो वह कर आई हुई बहुत सी वस्तुओंकी ढेरी लग जाती है और धीरे धीरे बाँधका विस्तार अधिक होता जाता है। बीवर बराबर कीचड़ और मिट्टी डालते जाते हैं, जिससे बाँध ज़मीन सा बन जाता है। उस पर बहुत से बीज उगने लगते हैं। धीरे धीरे पेड़ पौधोंके जम जानेसे उनकी जड़ें बाँधको अधिक दृढ बना देती हैं। साधारण तौर पर बांध गज भर चौड़े बने होते हैं किन्तु प्रकृतिकी सहायतासे इनका विस्तार बहुत अधिक हो जाता है।

बीवरकी गिनती जलचरोंमें की जा सकती है। जहाँ कहीं इसे जल यात्राका अवसर मिलेगा स्थल मार्गसे दूर ही रहेगी। सूखी जमीन पर आनेसे पानीके अन्दर पड़ा रहना इसे आनन्ददायक प्रतीत होता है। इसी कारण जहाँ तक सम्भव होता है इनका निवास स्थान पानीके बिल्कुल निकट होता है। उसमें दो मार्ग होते हैं एक तो पृथ्वीके ऊपर होता है और दूसरा पानीके अन्दर जाता है। इस कारण वहांसे पानीमें आना जाना सुगम होता है; इनके रहनेके कमरे वृत्ताकार होते हैं; जो प्रायः ३ फुट ऊंचे और ६–७ फुट व्यासके होते हैं। इसके बाहरकी दीवाल पेड़की डालों और कीचड़के संयोगसे बहुत मोटी होती है। जाड़ेके दिनोंमें जब बर्फ जमने लगती है दीवाल पत्थरकी भांति कठोर हो जाती है। एक एक भिट्टे में अनेक बीवरोंका निवास होता है। गर्मीके पहुँचते ही सब भिट्टे खाली हो जाते हैं। सबके सब पानीमें पहुँच जाते हैं और कई मास तक वहांसे नहीं लौटते। इनमें कुछ सुस्तीके कारण कभी घर नहीं बनाते और एक सीधी सुरंगमें जीवन व्यतीत करते हैं, किन्तु ऐसे सुस्त नर ही होते हैं, जिनका पकड़ लेना शिकारीके लिए बड़ा आसान होता है।

बालिकाके शरीरमेंसे सूई

एक दिन एक स्त्री सीं रही थी, सींते सींते उसने सूई मुंहमें दे ली। उसी समय उस ने बड़े ज़ोरसे छींका, और सुई पेटमें चली गई। तीन महीने पीछे उसका विवाह हुआ; विवाहके १० मास पीछे उसके लड़की हुई और लड़कीके शरीरमें से वह सूई निकली।

चित्र १४

यह एक अद्भुत घटना है; यह श्रीमती फ्रेंक जे. श्विगका (Mrs. Frank J. Schwing) अनुभव है। इसने सब डाक्टरोंको अचरजमें डाल दिया है। कुछ डाक्टरोंका कहना है कि ऐसा किस प्रकार हुआ यह बात समझमें नहीं आती। इसमें तो सन्देह नहीं कि सूई वही थी, नकूपर वह एक विशेष ढंगसे टूटी हुई थी और जिस रूपमें वह चौदह मास पूर्व माताके पेटमें गई थी, उसी रूपमें पुत्रीके अंगमेंसे निकली।

जबसे कन्याने जन्म लिया था, वह बहुत ही चिड़चिड़ी और रोनेवाली थी; सदा बेचैनी से तड़पा करती थी। अजीर्ण, शूल, अपर्याप्त पोषण आदि के लिए जितनी औषधें प्रायः दी जाती हैं, उन सब को देकर परख लिया, उनसे कोई लाभ नहीं हुआ; किन्तु जब उसके शरीरमें से सूई निकाल ली गई तो उसका चिड़चिड़ापन जाता रहा; रोना बन्द हो गया और वह हंस हंस कर प्रसन्नता प्रकट करने लगी। आरम्भमें तो उसके कष्टका निदान करना असम्भव था, किन्तु जब बड़ी हुई तो रोते रोते कन्धे तक हाथ ले जाती थी; इसकी माने इस बातको देखा और अनुमान किया कि उसके कन्धे में ही पीड़ा होती है। एक दिन जब वह इस लड़कीके कपड़े उतार रही थी तो उसने कन्धेपर एक लाल स्थान देखा। ध्यान से जांच करने पर उसको पता चला कि टूटे नक्कूकी सूई उसमें से झांक रही है। तुरन्त ही उसने दांतोंसे पकड़ कर सूईको खींच लिया। इसके पश्चात् कन्याका दुख दर्द जाता रहा।

उक्त महिला एक कारखानेमें काम करती थी उसका बयान है कि एक दिन मैं अपने लंहगेमें गोट लगा रहीथी। गोटको ठीक स्थानपर रखनेके लिए पिनकी आवश्यकता थी; इतने पिनोंका मिलना कठिन था कि पूरी गोट पर लगा दिये जांय; अतएव एक पुरानी टूटे नक्कूकी सूई से भी काम लेनेका निश्चय कर लिया। उस समय इनफ्लूएंज़ाका प्रकोप था। मुझे दिन भर छींक आती रहीं। मैंने कार्य वशात सूई मुँहमें दे ली। मुँहमें देते ही बड़े ज़ोरकी छींक आई, दम घुटने लगा; दम लेने के लिये मुँह खोला तो वायुके वेग से सूई गलेमें चली गयी। जब तक निकालनेका प्रयत्न करूँ तब तक सूई पेटमें चली गई।

डाक्टर रेजीनल्ड स्मिथ इस विषय पर लिखते हैः—

"इस स्त्रीका कहना सत्य प्रतीत होता है। सूई उक्त प्रकार से यात्रा कर सकती है। पहले सूईने उदरकी दीवालको भेदा होगा, तदनन्तर इधर उधर चल फिर कर गर्भाशयमें प्रवेश कर अर्भकके शरीरमें घुस गई होगी। इस सूचीकी यात्रामें माताको कष्ट तो थोड़ा बहुत अवश्य हुआ होगा, परन्तु उसे अनुभव नहीं हुआ होगा। सूई-की प्रेरक शक्ति मांस पेशियोंकी गति थी। उनकी आकृतिके अनुसार उसकी गति विधि रही होगी।

"यह भी स्मरण रहे कि सुइयोंको सदा योंही भूलसे नहीं निगलते, कुछ स्त्रियां जान बूझ कर सूई या पिन निगला करती हैं। ऐसी बहुत सी घटनाएं ज्ञात हैं। किन्तु उनमेंसे एक बहुत रोचक है। इसका उल्लेख डाक्टर बेस्टियनने (Dr. H. Charlton Bastian, F.R.S.) क्लिनिकेल सोसाइटी लण्डनके मुखपत्र (१८९१-९२) में किया था। एक स्त्रीको मृगीका रोग था, वह एक फेक्टरीमें काम करती थी। उसके संगी साथी जानते थे कि ठीक १०० आलपीन और सुइयां उसने निगली थीं। इनमेंसे ३१ तो साधारण रीतिसे शरीरके बाहर निकल गयीं; १४ मरनेके बाद शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंमें टटोलने पर मिलीं, और ५५ शरीर के भिन्न भिन्न स्थानोंसे स्वयम् निकल पड़ीं। उक्त डाक्टरने इनका भली प्रकार निरीक्षण किया था और पूरा पूरा हाल लिख लिया था।

डा० बेस्टियनने जबसे उसका इलाज शुरू किया उसके पहले वह ४५ सूई और १ आलपीन निगल चुकी थी। दो मासमें उसने ३४ और डकार लिये और कुछ सप्ताहमें (उक्त समय से मृत्यु होने तक) २० सूई और खा लीं। इनमेंसे छः बाहर निकलीं।

एक डेनिश बालिकाने २१७ पिन आदि खाये थे; इनमेंसे १०० कंधेके एक गुल्ममें निकले। स्काटलेण्डमें एक स्त्रीने ३०० निगले थे। इन सब घटनाओंमें सबसे अधिक आश्चर्य जनक श्रीमती शिवग-की बालिका वाली ही है।"*

—मनोहर लाल

सोम याग

[लेखक—पं० ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल']

यदि भारतवर्षकी पूर्वावस्थाके सम्बन्धमें विचार किया जाय तो निराश न होना पड़ेगा। यह हमको पूर्णतया मालूम है कि इस सम्बन्धमें यदि हम खोज करें तो सम्भवतः सफलता भी प्राप्त होगी। इसीलिए हमने इस लेखकी रचना की है। आज हम आर्य्योंकी याग (यज्ञ) सम्बन्धी कुछ धार्मिक बातों पर विचार करेंगे।

वैदिक समयमें दो प्रकारके यज्ञ प्रचलित थे। एक प्रकारका यज्ञ दूध, दही, घी आदि पिष्टक पदार्थोंकी आहुति देकर किया जाता था। दूसरे प्रकारका यज्ञ सोम रसकी आहुति देकर किया जाता था। प्रथम प्रकारके यज्ञका नाम 'हविर्यज्ञ' और दूसरे प्रकारके यज्ञका नाम 'सोम याग' अथवा 'सोम यज्ञ' था।

---

* Sc. S. 1667

हविर्यज्ञके कुछ दिनोंके बाद 'सोम यज्ञ' प्रचलित हुआ। इसका प्रमाण अथर्ववेदमें है। अथर्ववेदके गोपथ ब्राह्मणमें लिखा है कि प्रथम 'भृगु' और 'अङ्गिरा' ऋषियोंने सोम यज्ञकी स्थापना की।

हविर्यज्ञ कई प्रकारका होता है, और सोमयज्ञके भी अनेकों भेद हैं। कृष्ण यजुर्वेदके पहले काण्डमें बहुत से यज्ञोंके नाम दिये गये हैं और उनके करनेकी विधि भी भली भांति लिखी गई है। किन्तु ब्राह्मण काण्डोंमें जो कुछ लिखा गया है वह प्रायः अस्पष्ट सा है। मतलब यह है कि यजुर्वेदके प्रचारके समयमें इन यज्ञोंका अधिक प्रचार हुआ। इसका ऋगवेदके समयमें नाम मात्रका प्रचार था। इसीलिए ऋषियोंने कहा है कि—"त्रेतायां योग्यमुच्यते"।

कृष्ण यजुर्वेदके प्रथम काण्डमें यज्ञोंके नाम तथा उत्पन्न होनेके सम्बन्धमें यह लिखा है—यथा—

प्रजापतिर्यज्ञानसृजत। अग्निहोत्रं चाग्निष्टोमञ्च पौर्णमासी श्चोकत्थञ्चामावास्याञ्चातिरात्रं। इत्यादि।

हविर्यज्ञ प्रायः ७ प्रकारका होता है। जिनके नाम हैं—अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास, आग्रयणी, चातुर्मास्य, पशुबन्ध और सौत्रामनी।

सोमयज्ञ भी प्रधानतः ७ प्रकारका होता है। जिनके नाम हैं—अग्निष्टोम अत्याग्निष्टोम, उक्थ, षोड़षी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम। राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ भी इसी सोमयज्ञके अन्तर्गत हैं। किन्तु ब्राह्मण ऐसा कहते नहीं हैं।

इस सोम यज्ञके अन्तर्गत और भी अनेक प्रकारके यज्ञ हैं। चाहे सोमयज्ञके जितने भी भेद हों किन्तु उनमें 'अग्निष्टोम' ही प्राकृतिक और प्रधान है। इसलिए विशेष विशेष प्रकारके 'अग्निष्टोम' यज्ञ विशेष विशेष 'संज्ञा' में व्यवहरित किये जाते हैं।

इस प्रकारसे 'सोम यज्ञ' के और भी तीन भेद हैं। १—अहीन २—सत्र और ३—एकाह।

जो यज्ञ एक ही दिनमें समाप्त हो जाय उसे 'एकाह' कहते हैं।

जो यज्ञ दो दिनसे अधिक बारह दिनमें समाप्त हो उसे 'अहीन' कहते हैं।

जो यज्ञ एक पक्षसे अधिक साल दो सालमें समाप्त हो उसे 'सत्र' कहते हैं।

'सत्र' के बाद और भी 'दीर्घ सत्र' इत्यादि कई भेद हैं। 'सत्र' का एक विशेषलक्षण फिर बतलाया जायगा। अग्निष्टोम यज्ञ करनेका समय इस प्रकार लिखा गया है। यथा—"वसन्तेऽग्निष्टोमः" (कात्यायन सूत्र), "वसन्ते ज्योतिष्टोमेन यजेत" (आपस्तम्भ सूत्र)। इसलिए वसन्त काल ही सोमयज्ञ करनेका समय है। वसन्तमें ही अधिक सोम पाया जाता है। इसलिए ऋषि लोग वसन्त कालमें ही सोम यज्ञ करते थे।

सोम यज्ञके देवता अग्नि हैं। अग्नि देवकी वंदना करनेसे इसका नाम 'अग्निष्टोम' पड़ा। इस यज्ञके करनेमें अग्नि देवकी ही आराधना करनी होती है। साथमें और और देवताओंकी भी पूजा होती है।

इस यज्ञके करानेके लिये विद्वान चतुर ब्राह्मण नियुक्त होते थे। पहले यज्ञ करनेके लिये एक सुन्दर सुहावनी तथा पवित्र भूमि खोजी जाती थी। इधर उधर अपवित्र स्थानोंमें यह यज्ञ नहीं होता था। कुछ दिनोंमें यह प्रथा प्रचलित हो गई कि जहां वेदज्ञ ब्राह्मण निवास करें वहीं यज्ञ भूमि बनाई जाय। इसके सम्बन्धमें शतपथ ब्राह्मणोंमें निम्न लिखित श्लोक उद्धृत किया गया है। यथा—

"तदुहोवाच यज्ञवल्क्यो वार्ष्मायत् देवयजनं जीषपितु मैम। तत् सात्ययज्ञोऽब्रवीत सर्व्वा वा इयं पृथिवी देवयजनं यत्र वा अस्यै कच यजुषैव परिगृह्य याजयेति।"

इसका अर्थ यह है—याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं, कि एक समय हम वार्ष्मेजीके लिये यज्ञोपयुक्त

स्थानकी खोज कर रहे थे। रास्तेमें सत्ययज्ञसे भेंट हो गई; उन्होंने कहा कि सभी स्थानों पर यज्ञ किया जा सकता है। जहां आपकी इच्छा हो मंत्र द्वारा उस स्थानको पवित्र करके वार्ष्म जीके साथ आप लोग यज्ञ कीजिये।

स्थानके निश्चित हो जाने पर वहाँ एक मण्डप तय्यार किया जाता था। मंडपकी लम्बाई चौड़ाई बराबर होती थी अर्थात् १२ अरत्नि* लम्बा और १२ अरत्नि चौड़ा होता था। इस मण्डपका नाम "प्राचीन वंश" रखा जाता था। इसमें चार दरवाज़े रहते थे। इस मंडपके चारों ओर लताओंका ढेर लटकाया जाता था।

इस प्रकार 'प्राचीन वंश' मंडप तय्यार हो जाने पर पुरोहित यजमानको उसी घरमें ले जा कर दीक्षित करते थे अर्थात् यज्ञ विषयक उपदेश देते थे। सोम यज्ञ करानेके लिए कितने पुरोहितोंकी आवश्यकता होती थी इस सम्बन्धमें विचार करना यहाँ आवश्यक है।

सभी यज्ञोंके लिए बराबर बराबर पुरोहितोंकी आवश्यकता नहीं होती थी। अन्याध्यायके लिये चार, अग्नि होत्रके लिये १०, पौर्णमास्यके लिये ४, चातुर्मास्यके लिए ५, पशुबन्धके लिए ६, सोमयज्ञके लिए १६ पुरोहितोंकी आवश्यकता होती थी।

इन छहों ऋषियोंके भिन्न भिन्न नाम और कार्य्य हैं। नाम निम्न लिखित हैं यथा—ब्रह्मा, उद्गाता, अध्वर्य्यू, होता, ब्राह्मणाच्छन्सी, मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, पोता, प्रतिहर्ता, अच्छावाक, नेष्टा, आग्निध्रु,' सुब्रह्मण्य, ग्रावस्तुत् और उन्नेता।

आपस्तम्ब जी कहते हैं कि इस यज्ञमें एक 'सदस्य' की भी आवश्यकता होती है। इस प्रकार सोमयज्ञके लिए १७ पुरोहितोंकी आवश्यकता है। इनमेंसे—'उद्गाता' अध्वर्य्यू, ब्रह्मा, होता यही चार प्रधान होते हैं और चार इनके सहकारी होते हैं।

* अरत्नि—१ अरत्नि एक हाथसे कुछ कम होता है।

कौन किसको सहकारी होता है यह निम्न प्रकार है—

अध्वर्य्यूके सहकारी 'प्रति प्रस्तोता' नेष्टा, उन्नेता यह तीन हैं।

उद्गाताके सहकारी यह तीन हैं 'प्रस्तोता' प्रति हर्ता, सुब्रह्मण्य। होताके सहकारी यह तीन हैं—मैत्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत। देवताओंका स्तव करना 'होता' का कार्य्य है। देवताओंके लिए सन्तोष जनक साम गान करना 'उद्गाता' का काम है। किसी विशेष कामकी आज्ञा देना तथा औरोंके कामकी जाँच करना 'ब्रह्मा' का काम है। यजमान पहले इन पुरोहितोंका वरण करते थे। सभी पुरोहित यजमानको यज्ञ मंडपके भीतर ले जाकर दीक्षित करते थे।

दीक्षा ग्रहण करनेके बाद यजमान क्षौरकर्म करवाता था। फिर क्रमशः स्नान तथा सुन्दर वस्त्र धारण करता था। फिर अपने कुटुम्बके साथ आनन्दित होकर यज्ञशालामें प्रवेश करता था। पुरोहित लोग कुश गुच्छसे उसके शरीरको मार्ज्जन करते थे। मंत्रोंका उच्चारण करते हुये पुरोहित लोग यजमानको उस 'प्राचीन वंश' नामक यज्ञ मण्डपमें पूर्व द्वारकी ओरसे प्रवेश कराते थे। प्रवेश करानेके पहले ही यजमान फिर एक बार दीक्षित किये जाते थे। यही यज्ञका प्रारम्भिक काम होता था। 'इसका नाम 'दक्षिणीय इष्टि' है।

इस प्रकार दीक्षाका काम समाप्त हो जाने पर पहले अध्वर्य्यू ऊँचे स्वरसे देवताओं तथा मनुष्योंको यह सुनाता कि—'अदीक्षिष्टाऽयं ब्राह्मणः' अर्थात् इस ब्राह्मणने दीक्षा ग्रहण की। चाहे क्षत्री हो अथवा वैश्य वह भी ब्राह्मणके नामसे पुकारा जाता था। दीक्षित हो जाने पर यजमान स्वयं एक 'प्राणोष्ट' नामक छोटा यज्ञ करता था। यह होम सूर्यदेवको प्रसन्न करनेके लिए करता था। इसे समाप्त करनेके बाद सोम यज्ञ आरम्भ होता था। आगे कुछ लिखनेके पहले यहाँ सोम विक्रेताके सम्बन्धमें कुछ लिखना आवश्यक है।

एक लम्बा मृगचर्म बिछाया जाता था, उसके ऊपर कुश और कुशके ऊपर सोमलता वृक्षकी लतायें अधिक संख्यामें बिछाई जातीं थीं। वहीं पर सोम विक्रेता अपना सब सामान रख कर सोम बेचता और अपनी वस्तुओंकी सफ़ाई करता रहता था। इसके बाद १७ पुरोहित यजमानके साथ वहां जाते थे और सोम रस सोम विक्रेतासे खरीदते थे। वह पुरोहित लोग सोम विक्रेतासे रस एक वर्षकी अरुणवर्णकी एक गाय देकर खरीदते थे। जब गाय वहां उपस्थित हो जाती थी तब पहले अध्वर्य्यू और सोम विक्रेतामें लेन देनकी बात चीत होती थी। वह निम्नलिखित है।

पहले अध्वर्य्यू कहते—'अयि भो विक्रेत व्यस्ते सोमो राजा ?" अर्थात् राजा क्या तुम सोमको वेंचोगे ?

सोम विक्रेता—'अस्ति विक्रेतव्यः' हां बेचूंगा।

अधवर्य्यू—गोः कलया मूल्येन क्रीणीमः" अर्थात् इस गायके सोलह अंश देकर खरीदूँगा।

सोम विक्रेता—'इतोऽमि भूयः सोमो राजाऽर्हति" अर्थात् हे राजा! सोम इसकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान है।

अधवर्य्यू—सत्यं गोरपि विशिष्टो महिमा। पय त्वौर सारं दध्यामिक्षा नवनीत मुदश्वित घृतम् इत्येवमादीनि संसारोपयोगि "वस्तु जातानिगोभ्यः समुद्भवन्ति।" अर्थात हाँ ठीक है सोम अधिक मूल्यवान है। किन्तु गायकी महिमा भी अपूर्व है। तुम्ही बताओ दूध, दही, घी, मलाई, रबड़ी अनेक पौष्टिक वस्तुयें गायसे प्राप्त होती हैं।

सोम विक्रेता—अस्तोतत् तथापि गोः षोड़शांशादधिकं सोमोरजाऽर्हति।" अर्थात् ठीक है राजसोम गायके सोलहवें अंशसे अधिक मूल्यवान है।

फिर अध्वर्य्यू ४ भागका एक भाग देता था और सोमके खरीदनेकी इच्छा प्रगट करता था। सोम विक्रेताके राज़ी न होनेपर वह गाय देकर सोमखरीद लेता था। तब सोम विक्रेता कहता था—"विक्रीतो मया सोमः परन्तु वस्त्रादिकं पारितोषिकमप्यहं लब्धुमिच्छामि" अर्थात मैंने सोम रस बेंच दिया अब मुझे कुछ पारितोषिक मिलना चाहिये। ऐसा कहने पर राजा सोम विक्रेताको कुछ पुरस्कार देता था। राजा सोम रसको उसी 'प्राचीन वंश' नामक यज्ञ शालामें पूर्वके द्वारकी ओरसे भीतर ले जाता था। वह 'अहवनीय' नामक अग्नि कुंडके दक्षिणकी ओर एक काठके ऊपर मृग चर्म बिछाता और उसे उसीके ऊपर रख देता था। इसी समय 'अतिथ्येष्ठि' नामक एक छोटा सा यज्ञ किया जाता था। इसका मतलब यह है कि सोम वहाँ अतिथिके रूपमें प्रथम आया है इसलिए राजा उसका अतिथि सत्कार करता।

फिर सोम यज्ञके विघ्नकारी असुरोंकी पराभवकी कामनासे यजमान ३ दिन तक 'उपसद्' नामक यज्ञका अनुष्ठान करता। इस यज्ञका यह उद्देश होता कि सोम और विष्णु देवताको घृत द्वारा आहुति दी जाय। कृष्ण यजुर्वेद संहितामें 'उपसद्' का कुछ वर्णन किया गया है। वह यहाँ दिया जाता है।

इस 'उपसद्' यज्ञ करनेके लिए प्रथम एक सौमिक वेदी तय्यारकी जाती थी। यह वेदी 'प्राचीन वंश' के सामनेसे तीन पग पृथ्वी छोड़ कर पूर्व पश्चिमकी ओर बनाई जाती थी।

इस वेदीके ऊपरकेभागको लताओंसे आच्छादित किया जाता था। इसके आगेके भागको 'अंश' और पीछेके भागको 'श्रोणी' कहते थे। इस वेदीके अंश प्रदेशके उत्तर भागके आयतनमें १० पदकी एक वेदी और निर्माण की जाती। इसका रूप अग्निहोत्र वेदीके सदृश्य होता था। इसका नाम 'उत्तर वेदी' होता था। इस वेदीके अंश प्रदेशके उत्तर भागमें एक पदके आयतनकी एक वेदी और निर्मित की जाती थी। इसका रूप भी अग्निहोत्रकी वेदीके तुल्य होता था। फिर उस सबसे बड़ी वेदीके ऊपर एक श्रोणी रेखा खींची जाती थी। मध्यसे अंश प्रदेश तक इस रेखाका नाम 'पृष्ठ्य' होता था। फिर महावेदीके उत्तरके अंशके पीछेकी ओर तीन

पदकी दूरी पर एक गड्ढा खोदा जाता था। इसको ऋषि लोग 'चात्वालक' के नामसे पुकारते थे। इस 'चात्वालक' गड्ढे से १२ पदकी दूरी पर एक दूसरा गड्ढा खोदा जाता था। ऋषि लोग उसको 'उत्कर' कहते थे।

इन सबके हो जाने पर अध्वर्य्यू और प्रतिपस्थाता "हविर्धान" नामक दो प्रकारकी गाड़ियाँ उत्कर गडढेसे पश्चिमकी ओर ले आकर श्रोणीके निकट रखते थे और विपृष्ठ्य रेखाके दक्षिण उत्तरके कोने पर गाड़ी खड़ी कर देते थे और दक्षिण उत्तरकी ओर ही क्रमशः ३ अरत्नि और पश्चिमकी ओर ६ अरत्नि चौकोण, चार स्तम्भोंसे युक्त एक मण्डप निर्माण करते थे। इस मण्डपका नाम 'हविर्धान मण्डप' होता था। पूर्व और पश्चिमकी ओर दो दरवाज़े होते थे। वह भी लताओंके द्वारा आच्छादित किया जाता था।

इसके बाद मण्डपके बीचमें बराबर बराबर चार प्रकोष्ठ निर्माण किये जाते। अग्नि कोणमें स्थित प्रकोष्ठके बीचमें एक वर्ग कल्पना करके, प्रत्येक कोणमें लगभग एक हाथके चार गड्ढे और खोदे जाते थे। गड्ढेके ऊपर वरुण लकड़ीसे गड्ढेको अच्छादित करते और उसके ऊपर वृष चर्म बिछाते थे। फिर उसके ऊपर एक बड़ा पत्थर रखते थे। उसीमें सोम रखा जाता था।

'हविर्धान' मण्डपके सामने 'प्रष्ठ्य' नामक स्थानके दक्षिण हविर्धान मण्डपकी ही भाँति 'एक 'सदोमण्डप' नामक मण्डप और तय्यार किया जाता था। यह मण्डप ६ अरत्नि लम्बा और १० अरत्नि चौड़ा होता था। यह मण्डप भी स्तम्भोंसे सुशोभित और साफ़ सुथरा होता था। इस मण्डपके बीचमें यजमानके बराबर ही एक 'उदुम्ब' काष्ठका खूँटा लाया जाता था। फिर 'हविर्धान' और 'सदोमण्डप' के उत्तर भागमें 'अग्निध्रशाला' स्थापितकी जाती। इसकी लम्बाई चौड़ाई सदोमण्डपकी भाँति होती थी। इसमें दो द्वार होते थे, एक दक्षिणकी ओर और दूसरा पूर्वकी ओर।

उपरोक्त 'सदोमण्डप' और 'अग्निध्रशाला' में मिट्टीसे जो वेदी निर्माण की जाती थी उसको ऋषि लोग 'धिष्ण्या'के नामसे पुकारते थे। फिर अग्निध्रशालाके बीचमें 'मार्जलीय' और 'आग्निध्रीय' नामक दो वेदी और निर्मित की जाती थी। इसके उपरान्त 'होता' के लिए १, मैत्रावरुणके लिए १, प्रशास्ताके लिए १, 'ब्राह्मणच्छंशीके लिए १, होताके लिए १, नेष्ठाके लिए १, और अच्छावाक्के लिए १ इस प्रकार सात वेदी वहींपर और भी निर्मित की जाती थी।

महावेदीके सामनेके भागमें अहवनीय कुँडके निकट यज्ञका बड़ा स्तम्भ निर्मित किया जाता था।

महावेदीके निर्माणके उपरान्त और विसर्जन नामक होमके हो जाने पर 'अग्निष्ठोमीय' पशु यज्ञ आरम्भ होता था। यह यज्ञ सोम यज्ञका पूर्वाङ्ग है। उसी समय 'प्रांङ्ग वंश शाला' में स्थापित सारी सोमलता लाकर 'हविर्धान' नामक मण्डपमें रक्खी जाती थी। फिर यज्ञके पशुको पवित्र जलसे स्नान करा कर बड़े स्तम्भके सामने पश्चिमकी ओर मुँह करके खड़ा करते थे। फिर मंत्रसे पवित्र करते थे। उपकरण कार्य्य समाप्त हो जाने पर उसके वध करने तक जो कार्य्य किया जाता उसको ऋषि लोग 'पश्वालम्भन' के नामसे पुकारते थे।

बली, दृढ़ और रोग विहीन बकरा ही इस यज्ञमें काम आता था।

जब पशु बीच मंडपमें लाया जाता था तो ऋषि लोग बड़े ज़ोरसे वेद मंत्र गान करने लगते थे। इन मंत्रोंका अर्थ यह होता—'हे व्यापक इन्द्रिय समूह! हम इस पशुको यज्ञमें 'हवि' चढ़ाते हैं। पीछे इसका जीव देवरूपमें सम्मिलित हो जावे।" मंत्रोच्चारण समाप्त हो जाने पर वे निम्नलिखित अंगोंको काट कर और 'शामित्र' नामक कुंडमें पवित्र करके मंत्रोच्चारण करते हुये आहुति देते थे। अंगोंके नाम

हैं, हाथ पैर, जीभ इत्यादि। इतनी देर तक जो काम किया जाता उसको ऋषि लोग 'अग्निष्टोमीय पशु यज्ञ' कहते थे।

इसके अनन्तर पुरोहित और यजमान 'चात्वालक' और 'उत्कर' भूमिके उत्तर भागमें स्थिति जलाशयसे जल लाकर यज्ञशालामें रखते थे। इस जलका वैदिक नाम 'वसतीवरी' था। इन दिनों यजमान रात्रिको जागते और ब्राह्मणोंसे अनेक प्रकारके पुराने इतिहास और देवचरित्र सुनते थे। इस लिये ऋषि लोग इन दिनोंको 'उपवसथ' के नामसे पुकारते थे।

इसके दूसरे दिनका नाम 'सत्य दिवस' होता था। इस दिन प्रातः काल अधवर्य्यू प्रभृति अनेक ब्राह्मण स्नान इत्यादि करके वैध कार्य्य करना आरम्भ करते थे।

पहले हविर्धान गाड़ीसे सोम लाकर 'उपसव' स्थान पर रखा जाता था। अधवर्य्यू प्रातःकाल उठ कर 'होता' को 'प्रेम मंत्र' पढ़ कर जगाता था। 'होता' भी मंत्रोंके द्वारा अश्वनी कुमारोंका जप करता था। 'अग्निध' अनेकों प्रकारकी वस्तुयें इकट्ठा करनेमें लग जाता और 'उन्नेता' सोम पात्रको सजानेमें लग जाता था।

फिर दक्षिण हविर्धान गाड़ीके नीचे एक कलसा स्थापित किया जाता था। उत्तर हविर्धानकी गाड़ीके ऊपर दो बड़े बड़े कलसे और रखे जाते थे। उन दोनोंमेंसे एकका नाम 'उपभृत' और दूसरेका नाम 'आधवनीय' होता था। फिर उत्तरकी गाड़ीके नीचेके भागमें दस काठके पात्र और पांच मिट्टीके घड़े स्थापित किये जाते थे। इन सभी कर्मोंको उन्नेता करता था।

फिर अधवर्य्यूकी आज्ञासे यजमान पत्नी सहित उन्हीं घड़ोंको पानीसे भर लाता। यजमान जो पानी लाता उसको 'एक धन' के नामसे पुकारते थे। और स्त्री जो पानी भर लाती थी उसको 'पान्ने जन' के नामसे पुकारते थे। अधवर्य्यू इन दो प्रकारके पानीको पूर्वोक्त कहे गये 'वसतीवर' जलके साथ मिला देता था। फिर यजमानको प्रतिप्रस्थाता नेष्ठा अधवर्य्यू और कई एक ऋषि मिलकर आज्ञा देते थे कि तुम सोमपात्रको स्पर्श करो। यह काम दिन भरमें तीन बार होता था। प्रातः कालके कामको प्रातः सवन, दोपहरके कामको मध्यान्ह सवन, सायंकालके कामको सायं सवन कहते थे। इसके अनन्तर सोम यज्ञ आरम्भ होता था। इसके अनेकों प्रकारके दृष्टान्त वेदोंमें पाये जाते हैं।

पहले थोड़ी थोड़ी आहुति दी जाती थी। फिर पुरोहितोंके द्वारा सोम रसकी अधिक आहुति दी जाती थी। पहले सोम पीसा जाता था। प्रतिप्रस्थाता इत्यादि पीसनेका काम करते थे। अधवर्य्यू उसमें पानी छोड़ता था। अच्छी प्रकार पीसे जाने पर वह 'आधवनीय' नामक घड़ेमें छाना जाता था। रस घड़ोंमें भर दिया जाता था, उस समय अनेक प्रकारके मंत्रोंका गान किया जाता था। फिर भिन्न भिन्न देवताओंको आहुति दी जाती थी।

सोम यज्ञके देवता सूर्य्य, अग्नि, इन्द्र, वायु, मित्र, वरुण अश्वनी कुमार, विश्वदेव, इन्द्र, महेन्द्र, वैश्वसराग्नि इत्यादि हैं।

इस प्रकार काम कर चुकने पर पुरोहित और यजमान सोमरसका पान करते और अपनी आत्माको कृतकृत्य करते थे। पुरोहित और यजमानको सोमपान करनेका भी नियम है। पुरोहित प्रत्येक 'सवन' का सोमरस पी सकता था किन्तु यजमान केवल 'सायं सवन' का सोमरस पी सकता था।

यज्ञके समाप्त हो जाने पर यजमान नियमानुसार पुरोहितोंको दक्षिणा देता था। अग्निष्ठोममें १२०० गाय सोना, वस्त्र, घोड़ा, बकरे इत्यादि दक्षिणामें देनेका नियम है।

किन किन पुरोहितोंको क्या क्या दक्षिणा दी जाती थी वह निम्नलिखित है।

ब्रह्माको	१२ गाय	कुछ सोना इत्यादि
उद्गाताको	"	"
होता	"	"
अध्वर्य्यू	"	"
ब्रह्मणाच्छंशी	"	"
प्रस्तोता	"	"
मैत्रावरुण	"	"
प्रतिप्रस्थाता	"	"
पोताको	६ गाय	"
प्रति हर्ता	"	"
अच्छावाक	"	"
नेष्ठा	"	"
अग्निध्रिको	३ गाय	"
सुब्रह्मण्य	"	"
ग्रावस्तुत	"	"
उन्नेता	"	"

इसी प्रकार और और पुरोहितोंको भी गाय हिरण्य इत्यादि दक्षिणामें दिये जाते थे।

उसी समय और और लोगोंको जैसे, अंधे, पंगुल, दीन दुखियोंको भी कपड़ा, भोजन सोना आदि दक्षिणामें दिया जाता था।

यज्ञ समाप्त हो जाने पर एक काम और करना पड़ता था उसका नाम 'अवभृत' स्नान है। यह स्नान कार्य्य बड़े समारोहके साथ होता था। पुरोहित, स्त्री, यजमान सभी इकट्ठा होकर किसी बड़ी नदीमें स्नान करने जाते थे। चलते समय प्रस्तोता नामक पुरोहित आगे आगे चलता था और यजमानकी पत्नी इत्यादि पीछे पीछे चलती थीं। चलते समय गाना भी होता था। नदीके किनारे पर पहुँच जाने पर पहले एक होम होता था फिर बड़े समारोहके साथ जल क्रीड़ा करते थे। यह 'अवभृत' स्नान सभी बड़े बड़े यज्ञोंका एक मुख्य अंग था। इस स्नानसे ब्रह्महत्यादि सभी पाप नष्ट हो जाते थे।

ऋग् वेद संहितासे यह सब सोम यज्ञकी बातें लिखी गई हैं। इसमें मुख्य मुख्य बातों पर प्रकाश डाल दिया गया है।*

महान श्वेत धातु

प्लाटीनमका इतिहास सोनेके इतिहाससे कम मनोरंजक नहीं है, यद्यपि सोनेकी लालसा ही गत छः हजार वर्षोंकी अनेक ऐतिहासिक घटनाओंकी प्रेरक रही है। सोने ने अनेकोंको सुख दिया है, पर लाखोंको बरबाद भी किया है। किन्तु प्लाटीनम श्वेताम्बरी महात्माकी तरह मौनव्रत धारण किये एकान्त वास और तप करता रहा है। वह सोनेसे सुन्दरतामें कम न होते हुए भी उपयोगितामें उससे बहुत बढ़ा चढ़ा है। उसके अनमोल गुणोंकी बराबरी भड़कीला सोना स्वप्नमें भी नहीं कर सकता।

सोनेके स्थान पर जब प्लाटीनम हीरे और जवाहिरातकी जड़ाईके काममें आता है, तो जो अनोखी शोभा-वृद्धि होती है उससे तो हमारे आभूषण-प्रिय पाठक परिचित ही होंगे, किन्तु रासायनिक उद्योग धंधों और गवेषणाओंमें जो किरिश्मे प्लाटीनम दिखलाता है उनका ज्ञान बहुत कम आदमियोंको होगा। प्रयोगशालामें प्लाटीनम अनमोल पदार्थ समझा जाता है, और बड़े बड़े उद्योग धंधोंकी जन्मयात्री प्रयोगशालाएं ही हैं, अतएव स्पष्ट है कि प्लाटीनमका कैसा ऊंचा स्थान है। यदि संसारमें जौहरियों और सुनारोंकी कारीगरीका लोप हो जाय तो भी सभ्यताका स्रोत पूर्ववत बहता रहेगा, किन्तु प्लाटीनमके लुप्त होनेसे रासायनिक खोजका मार्ग रुक जायगा। चीनी या फायर क्लेकी घरिया बड़े ऊंचे तापक्रमको नहीं सह सकतीं; सोने या चांदीकी भी वही दशा होती है; किन्तु तपस्वी प्लाटीनम विद्युत् भट्टेमें से भी

---

* श्रीयुत रामदास सेनके एक लेखके आधार पर

अछूता निकल आता है। प्लाटीनमके पतले कागज जैसे पत्तरकी बनी घरिया भी विद्युत् भट्टेमें श्वेत उत्तप्त हो जाती है और उसमें रखे हुए द्रव्योंको ३०००° फा० पर भी घोलनेके लिए द्रवोंमें घरिया सहित डाल देते हैं। इस पर बहुतसे रासायनिक द्रव्योंका किंचिन्मात्र प्रभाव नहीं होता। यदि इसने हार मानी है तो केवल शोरा और लवणके अम्लोंके मिश्रणसे। सच है कि दो तो मट्टीके भी बुरे होते हैं, इत्तफाक़ बड़ी चीज़ है।

प्लाटीनमका तार भी बहुत ही पतला खींचा जा सकता है। मकड़ीके जालेका तार $\frac{1}{5000}$ इञ्च व्यासका होता है। इसी के दो टुकड़े अच्छे अच्छे दूर्बीन और खुर्दबीनोंमें पहले लगाये जाते थे, किन्तु आजकल $\frac{1}{10000}$ इञ्च व्यासका प्लाटीनमका तार प्रयुक्त होता है।

प्लाटीनम एक और महान् उद्योगके लिए अनिवार्य है—यह उद्योग है गंधकाम्लका निर्माण। किसी बड़े भारी वैज्ञानिकका कथन है कि किसी भी देशकी औद्योगिक उन्नतिका अनुमान उस देशमें खपने वाले गन्धकाम्लके परिमाणसे लगाया जा सकता है। गंधकाम्ल शांतिके समयमें तो बड़ा उपयोगी पदार्थ है ही, किन्तु युद्ध कालमें इसकी उपयोगिता औरभी बढ़ जाती है। प्लाटीनम ओषजन और गंधक द्विओषिदको सहजमें ही संयोग करा देता है, जिससे गंधक त्रिओषिद बन जाता है और त्रिओषिदको पानीमें घुला कर गंधकाम्ल बना लेते हैं।

प्राचीन मिश्रवाले न केवल सोना, चांदी, ताम्बा आदि धातुओंसे परिचित थे और उनसे अनेक आभूषण पात्र आदि बनाते थे, प्रत्युत वह प्लाटीनमसे भी परिचित थे। थेबिसमें भी कुछ दिन हुए एक अद्भुत सन्दूक निकली थी जो प्लाटीनम्, सोना और इरिडियम्के धातु मिश्रणसे बनी थी। परन्तु अभाग्य वश इस परमोपयोगी धातुका ज्ञान कालान्तरमें लुप्त हो गया। सोलहवीं शताब्दीमें फिर इसका नाम यूरोपियनोंको सुनाई पड़ा। स्केलिजर (Scaliger) और एक वैज्ञानिकमें इस प्रश्न पर बहस हो रही थी कि सब धातु तपा कर गलायी जा सकती हैं। स्केलिजर ने बतलाया कि यह कथन सर्वथा ठीक नहीं है, क्योंकि मेक्सिको में पायी जानेवाली एक धातु किसी विधिसे भी स्पेनियर्ड नहीं गला सके हैं।

१८ वीं शताब्दीमें इस धातुसे जनता भी परिचित हो गयी। एण्टोनियो डी उल्लाओ (Antonio de ülloa) ने १७६२ वि०में दक्षिण अमेरिकासे लौटकर बतलाया कि वहां एक अत्यन्त कठोर धातु मिलती है। उसने इस धातुका नाम "प्लाटिना डेल पिंटो' रखा। स्पेनिश भाषामें प्लाटा चाँदीको कहते हैं। उसीका छोटा रूप प्लाटीना हुआ, पिंटो उस नदीका नाम था जिसकी सुवर्णमयीरेतमें प्लाटीनम भी मिलता था। उक्त स्पेनिश जहाजी पदाधिकारी प्लाटीनमका नमूना भी लाया, जिसकी परख फ्राँस और इंगलेंडमें होने लगी; किन्तु इस घटनाके बहुत समय पीछे तक प्लाटीनमका असली मूल्य मालूम नहीं हुआ। १८३१ वि०में कुछ हालेंड वाले अमेरिकासे सोना लाये। उन्हें सोना चढ़े हुए प्लाटीनमके टुकड़े दे दिये गये, जब देशको लौटने पर उन्हें यह बात मालूम हुई तो वह बहुत झुंझलाये और जब वह दुबारा गये तो उन्होंने विक्रेताओंको फांसी दे दी।

प्लाटीनम सदैव मुक्तावस्थामें पाया जाता है, वह सदैव छोटे छोटे कणोंके रूपमें मिलता है जो चमकीले लोहेके रंगके होते हैं। इन कणोंके साथ सिकता, सुवर्ण, क्रोम-लोह, इरिडियम, रेडियम, पेलेडियम्, ओस्मियम, रूथिनियम धातुओंके कण भी पाये जाते हैं। अन्तिम पांच धातु प्लाटीनम वर्ग की ही हैं। कभी कभी सुवर्णकी नाई प्लाटीनमके भी डले मिल जाते हैं। इनका वजन आधी छटांकसे लगा १०½ सेर तक पाया गया है।

यद्यपि प्लाटीनम अनेक स्थानोंसे प्राप्त होता है तथापि रूस और कोलम्बिया दो ही मुख्य

स्थान हैं। आजकल भी रूसमें प्लाटीनमके रूप में असीम सम्पत्ति भरी पड़ी है

एक रोचक घटना

यूरेल पर्वतराशिमें निकोला पेवड़ा नामक स्थान पर प्लाटीनमका पता चला; तुरन्त उर्ध्व विवर बनाये गये और प्लाटीनमकी एक बड़ी राशि दृष्टि पड़ी। आस पासके गाँवोंमें जो यह समाचार फैला तो सब किसान काम छोड़ छोड़ कर चले आये और खदानमें उतर कर प्लाटीनम निकालनेका काम करने लगे, कुछ लोग खानमें काम करते थे और कुछ उन्हें खाना पीना पहुँचाते थे। पुलिसको खबर लगी तो कुछ सिपाही किसानोंको भगानेके लिए भेजे गये। यह भी वहां पहुँच लुटेरोंमें शामिल हो गये। जब कुत्ता चोरोंके साथ मिल जाय तो रखवाली कौन करे। दुबारा पुलिस भेजी गयी यह भी लुटेरोंमें जा मिली। अन्तमें खदानोंमें पानी भर देनेकी योजना की गई, जब पानी भरने लगा तो लुटेरे जान लेकर भागे। यदि ऐसा न किया जाता तो खान में रत्ती भर प्लाटीनम न बचता, तो भी इसके पहिले ही बढ़िया मट्टीमें से तो लुटेरे प्लाटीनम निकाल ही ले गये।

"समोरोदकी" प्लाटीनमके बड़े बड़े डालोंको रूसी भाषामें कहते हैं। सबसे भारी समोरोदकी जो अब तक मिला है २५ पौण्डका है। यह यूरेल पर्वत राशिमें मिला था और बाद में सेंट-पीटर्स वर्गके "डेमीडोव" अद्भुतालयमें रखा गया था। सम्भव है कि उक्त अद्भुतालयमें केवल उसकी नकल ही रखी हो और असली डला बेच दिया गया हो। इससे उतर कर उस समोरोदकीका नम्बर है जो हेनाव (Hanau) में एक जर्मनको मिला था। इसका भार १७ पौण्ड था, इसके साथ ५, ५ सेर के दो और डले मिले थे। युद्धके पहले इनका मूल्य ६००००) था; अब तो १८०००० रुपयेका माल है।

सौ वर्ष हुए कि रूसी सोना निकालने वालोंको दक्षिण अमेरिका और यूरोपका हाल मालूम ही न था, जब कभी उन्हें प्लाटीनम मिलता था तो बड़े अचरजमें पड़ जाते थे कि यह कैसी धातु है। सरकारी प्रयोगशालाके कार्य कर्ता भी असमंजसमें थे। अन्तमें एलेक्ज़ेण्डर वन हम्बोल्ट ने जो दक्षिण अमेरिकाके प्लाटीनम क्षेत्र देखकर लौटे थे उन्हें सच्ची बात बतला दी; फिर क्या था; सोनेकी तलाश छोड़ प्लाटीनमकी खोजमें न्यारिये निकल पड़े। उन्हें सर्वत्र प्लाटीनम मिलने लगा। उस समय रूसमें प्लटीनमके सिक्के बनने लगे थे, इसलिए इस उद्योगकी बड़ी उन्नति हुई। किन्तु जब सिक्कोंका बनना बन्द हो गया तो काम भी ढीला पड़ गया। उधर एलेक्ज़ेंडर द्वितीय ने गुलामों को मुक्त कर दिया, इससे भी उक्त उद्योगको बड़ा धक्का लगा। १६५७ वि० से गवर्मेण्ट ने इस उद्योगकी उन्नति की ओर अवश्य ध्यान दिया है और आधुनिक यंत्रों और औज़ारोंको मंगाकर काम आरम्भ किया है। आज कल क्या हालत है, यह पता चलाना कठिन है। पंजाबमें भी न्यारियोंको नदियोंकी रेत धोते समय सोनेके कणोंके साथ प्लाटीनमके सफेद कण मिल जाया करते थे। इनको वह सफेद सोनेके कण कहा करते थे।

सूर्य-सिद्धान्त

गतांक से आगे

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञानके अनुसार ग्रहों के स्पष्ट स्थान जाननेकी जो रीति बतलायी गयी है वह दिग्दर्शन मात्र है। इस क्रियासे जो स्पष्ट स्थान जाना जाता है उसमें और प्रत्यक्ष वेध द्वारा जाने गये स्थानोंमें कुछ सूक्ष्म अंतर देख पड़ता है। इसका कारण यह है कि किसी ग्रह पर केवल सूर्यका ही आकर्षण नहीं होता वरन् अन्य ग्रह

और उपग्रहोंका भी होता है जिनके कारण वह उस स्थानसे कुछ विचलित देख पड़ता है जो उपर्युक्त रीतिसे जाना जाता है। इसलिए सूक्ष्मता पूर्वक शुद्ध स्थान जानना हो तो अन्य ग्रहोंके आकर्षणके कारण जो परिवर्तन होता है उसका संस्कार भी करना चाहिये। परन्तु यह विषय बहुत गंभीर है। इसकी पूरी जानकारीके लिए भौतिक ज्योतिर्विज्ञान (Physical astronomy) गति विज्ञान (Dynamics), चलन कलन, चलराशिकलन इत्यादि उच्च गणितकी जानकारी भी आवश्यक है। इसलिए विस्तार भयसे उसका विचार यहां नहीं किया जायगा।

ऊपर बतलायी गयी रीतिसे यदि चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान निकाला जाय तो देखा जाता है कि बेध द्वारा जाना गया स्थान उससे कभी कभी तीन तीन अंश आगे पीछे होता है। इसका कारण यह है कि चंद्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमते हुए इसके साथ साथ सूर्यकी परिक्रमा भी एक वर्षमें कर लेता है; इसलिए चंद्रमा पर पृथ्वीके आकर्षणके साथ साथ सूर्यके आकर्षणका प्रभाव भी बहुत पड़ता है जिससे चंद्रमाका विचलन बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है। इसलिए चंद्रमाके सम्बन्धमें कुछ मुख्य संस्कार करनेकी आवश्यकता पड़ती है जिनकी चर्चा संक्षेपमें की जाती है।

सबसे पहले केपलरके नियमके अनुसार जो मंदफल संस्कार करना चाहिए उसका सरल रूप बतला देना आवश्यक है। चंद्रमाकी केन्द्रच्युति* १८५४ ई० के आरंभ में ०·०५४८४४२ थी।

इसलिए च = ०·०५४८४४१

$च^{२}$ = ·००३००७६

$च^{३}$ = ·०००१६४६६

$च^{४}$ = ·०००००९०५

$च^{५}$ इसके आगेकी संख्याओंके मान जाननेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह अत्यन्त छोटे हैं। चके घातोंके इन मानोंको समीकरण (छ) में उत्थापन करनेसे चंद्रमाके मंदफल संस्कारका रूप यह होगाः—

स=म + (·१०९६८८४ — · ०००४१२४) ज्या म
+ (·००३७५९९ — ·०००००४१५) ज्या २ म
+ · ०००१७८७ ज्या ३ म
+ · ०००००९७ ज्या ४ म
=म + ·१०९६४७१६ ज्या म + ·००३७५५७५ ज्या २ म
+ ·०००१७८७ ज्या ३ म + ·०००००९७ ज्या ४ म

यदि म म २, ३ म ज्याओंको आधुनिक रीतिसे दशमलव भिन्नमें लिखा जाय तो ज्या म, ज्या २ म के गुणकोंको जो रेडियनमें हैं, कलाओंमें विकलाओंमें लिखनेके लिए ३४३७·७५ या २०६२६५से गुणाकर देनेसे और भी सरलता होगी क्योंकि एक रेडियन ३४३७·७५ कला या २०६२६५ विकलाके लगभग होती है। ऐसा करनेसे इसका रूप यह होगाः—

स=म + ३७६′५६″·४ ज्या म + १२′५४″·७ ज्या २ म
— ३६″·९ ज्या ३ म + २·० ज्या ४ म

यहाँ यह याद रखना चहिये कि म मन्दकेन्द्र आजकलकी रीत्यनुसार नीच (perigee) से समझा गया है यदि मंदकेन्द्र पुरानी परिपाटीके अनुसार उच्च से समझा जाय।

स = म—३७६′५·६″ ज्याम + १२′५४″·७ म ज्या २ म
— ३६″·९ ज्या ३ म + २.० ज्या ४ म

इस प्रकार अन्य ग्रहोंके प्रधान समीकरणके ज्याम, ज्या २ म, इत्यादिके गुणकोंको कलाओं या विकलाओंमें लिखा जा सकता है।

इस समीकरणके दाहने पक्षमें मंद केन्द्र अर्थात् उच्चसे मध्यम चंद्रका भोगांश है, शेष मंदफल है जिसका संस्कार मंदकेंद्रमें करनेसे स्पष्ट चंद्र सिद्ध होता है। यह स्पष्ट है कि इस मंदफलमें पहला पद अर्थात् ३७६′५६·४ ज्याम बहुत बड़ा है। इसके पीछे दूसरा पद १२′५४·७ ज्या २ म है।

* देखो Loomis Practical astronomy पृष्ठ ४६२।

परन्तु जिस समय म का मान ९०° होता है उस समय ज्याम का मान १ और ज्या २ म का मान शून्य होता है इस लिए परम मंदफलका मान पहले ही पद पर अवलंबित रहता है और प्रायः ३७७′ अर्थात् ६°१७′ के समान होता है। परंतु हमारे ज्योतिषियोंने चंद्रमाके परम मंदफलका मान ५° के लगभग माना है इस लिए यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इतना अंतर क्यों है।

जब परममंद फलका मान ३७६′५६.४ ज्याम समझकर चंद्रमाका स्पष्ट स्थान निकाला जाता है तब इसको वेध करके मिलाने पर देख पड़ता है कि प्रत्यक्ष स्थान और गणित सिद्ध स्थानमें कभी कभी अधिकसे अधिक अंतर १° २०′ का होता है। कई वर्ष तक निरंतर वेध करने पर यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि अमावस या पूर्णिमा के दिन जब चंद्रमा मंदोच्चसे ९०° के लगभग दूर रहता है तब मंदफल संस्कृत स्पष्ट चन्द्रसे वेध सिद्ध चंद्रमा १°२०′ आगे रहता है और जब चंद्रमा मंदोच्चसे २७०° अथवा नोचसे ९०° आगे रहता है तब मंदफल संस्कृत स्पष्ट चंद्रसे वेध सिद्ध चंद्रमा १°२०′ पीछे रहता है। पहली दशामें मंदफलका संस्कार – ३७६′५६″.४ अथवा – ६°१६′ ५६″.४ होता है अर्थात् मध्यम ग्रहमें ६°१६′५६″.४ घटानेसे मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रह आता है। परन्तु इससे वेध सिद्ध ग्रह १°२०′ आगे रहता है इसलिए मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रहमें १°२०′ जोड़ना चाहिए। इसलिए यदि ६°१६′५६″.४ घटाने और १°२०′ जोड़नेकी जगह इन दोनोंका अंतर अर्थात् ४°५६′५६″.४ ही घटाया जाय तो भी वही फल होगा। इसलिए यदि परम मंदफल ६°१६′५६″.४ की जगह ४°५६′५६″.४ मान लिया जाय तो कोई हानि नहीं समझ पड़ती। दूसरी दशामें ६°१६′५६″.४ जोड़ना पड़ता है और १°२०′ घटाना पड़ता है जिसकी जगह यदि इन दोनोंका अंतर अर्थात् वही ४°५६′५६″.४ जोड़ा जाय तो कोई फेर नहीं पड़ेगा। जब पूर्णिमाके दिन चंद्रमा उच्च पर भी रहता है तब तो मंदकेन्द्र शून्य होनेसे मंदफल संस्कार शून्य होता है उस समय मध्यम और स्पष्ट चंद्रमाके स्थानोंमें कोई अंतर ही नहीं रहता। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णमासी या अमावसके दिन परम मंदफलका मान बेध करके जाननेमें ५° के लगभग ही आवेगा जो हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें दिया हुआ है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि परम मंदफलका मान ५° ही ठीक है ६°१६ नहीं। परन्तु बेधसे यह भी जाना गया है कि प्रत्येक पक्षकी अष्टमीके लगभग जब चंद्रमा मंदोच्च से ९०° पर रहता है तब ५° का मंदफलका संस्कार देने पर भी चंद्रमा कोई ३ अंश पीछे रहता है अर्थात् बेध-सिद्ध चंद्रमा मध्यम चंद्रमासे कोई आठ अंश पीछे ररता है। और यदि अष्टमी वे दिन चंद्रमा ९०° पर रहता है तब मध्यम चंद्रसे वेध सिद्धचंद्रमा ५° नहीं वरन् ८° के लगभग आगे रहता है। इस लिए यह मानना पड़ेगा कि परम मंदफल ५° मान लेनेसे पूर्णिमा या अमावास्याके दिन तो कोई हानि नहीं होती परंतु अष्टमीके लगभग ३° का अंतर देख पड़ता है। हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंको इस बातका पता इस लिए नहीं लगा कि वे, मेरी समझमें, ग्रहण कालसे मध्यम और स्पष्ट चंद्रमाका अंतर निकाल कर मंदफल निकालते थे जैसा कि केशवाचार्यके उद्धरणसे प्रकट होता है जो इसी अध्यायके १४वें श्लोकके भाष्य पृष्ठ १६७ में दिया गया है। इस उद्धरणसे यह भी पता लगता है कि केशवाचार्यको सूर्य सिद्धान्तके अनुसार स्पष्ट किये हुए चंद्रमासे वेध द्वारा देखा गया चंद्रमा ५′ कम देख पड़ा जैसाकि पहले दिखाया गया है कि पूर्णिमा या अमावस्याके मंदफल और च्युति संस्कार मिलकर ४°४७′ होते हैं। इस लिए केशवाचार्यका वेध बहुत सूक्ष्म सिद्ध होता है।

इसलिए यह आवश्यक है कि इस भेदका कारण किसी और जगह देखा। यह तो स्पष्ट है कि यह भेद चंद्रमा के उच्चसे विशेष सम्बन्ध रखता है और

यह भी देखा गया है कि यह सदैव इतना ही नहीं रहता वरन् घटते घटते कभी शून्य हो कर ऋणात्मक हो जाता है और कभी धनात्मक हो जाता है इस लिए यह नियत कालिक (periodical) भी है । इसे यूनानी ज्योतिषी टालमी ने विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें ही निश्चय कर लिया था, परन्तु इसके कारणका पता निउटनके पहले किसीने नहीं लगा पाया था। निउटनने आकर्षण सिद्धान्तसे सिद्ध किया कि चंद्रमापर पृथ्वीका ही आकर्षण नहीं होता वरन् अन्य ग्रहोंका भी पड़ रहा है और उपर्युक्त महान् अंतरका कारण सूर्यका आकर्षण है । भौतिक ज्योतिर्विज्ञानने गणितसे सिद्ध कर दिया है कि यह अंतर सूर्यके आकर्षणसे पड़ता है और इस संस्कारका मुख्य रूप जब मंदकेन्द्रकी गणना नीचेसे की जाय तो यह है +१° २०′·२६·″५× ज्या [२ (चन्द्रमा – सूर्य) — चन्द मन्दकेन्द्र] । इसके आगेके पद जो बहुत सूक्ष्म हैं छोड़ दिये गये हैं ।

टालमी ने इस संस्कारका नाम इवेकशन (evection) रखा था जो अब तक प्रचलित है । स्वर्गीय वेंकटेश बापू जी केतकर ने अपने ज्योतिर्गणितमें इसको च्युति संस्कार कहा है । इस पदमें चंद्रमा – सूर्यका अर्थ है सूर्यसे चंद्रमाका अंतर जो हमारे यहां तिथिके नामसे प्रकट किया जाता है। जिस समय अमावस या पूर्णिमा होती है उस समय चंद – सूर्यका अर्थ है सूर्यका मान शून्य या १८०° होता है इसलिए इस पद का रूप १° २०′ २६″·५ ज्या (— चंद मंद केन्द्र) या — १° २०° २६″·५ ज्याम होता है जो मंदफल संस्कारके रूप में है और जब मंदफल जोड़ा जाता है तब यह घटाया जाता है और जब मंदफल घटाया जाता है तब यह जोड़ा जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि यदि मंद फल को इन दोनोंके अंतर के समान समझ लिया जाय तो कोई हानि नहीं होती ।

चूंकि मंदफल च्युतिके मानपर आश्रित होता है इसलिए मंदफलके घटानेसे यह सूचित होता है कि चंद्रकक्षा की च्युति घट गयी है और बढ़ने से च्युतिके बढ़नेकी सूचना मिलती है । अर्थात् इस घट बढ़से यह अनुमान दृढ होता है कि चंद्रकक्षाका आकार सदैव एक सा नहीं रहता । यह बात आकर्षण सिद्धान्त से पूरी तरह मेल खाती है जैसा कि आगे दिखाया जायगा ।

परन्तु जब चंद्र – सूर्य ६०° या २७०° होता है अर्थात् अष्टमी होती है तब इसका रूप १°२०′ २६·५″ ज्या [२×६०° — चन्द्र मन्दकेन्द्र] अथवा १° २०′ २६″·५ ज्या म होता है जो है तो मन्दफल संस्कार के ही रूप का परंतु यदि मंदफल धनात्मक होता है तो यह भी धनात्मक होता है और मंदफल ऋणात्मक होता है तो यह भी ऋणात्मक होता है । इसलिए मंदफल ५° मानने से कभी ३° आगे पीछे का अंतर पड़ जाता है । इसी कारण सप्तमी, अष्टमी और नवमीके जो समय भारतीय रीति से बनाये गये पंचागों में लिखे रहते हैं वह आधुनिक रीति से जाने गये कालोंसे कभी कभी १४, १५ घड़ी आगे पीछे रहते हैं । यह बात बापू देव शास्त्रीके पंचांग और काशी के मकरंद सारिणी से बनाये गये पंचागों से भी प्रकट हो सकती है ।

निउटन ने इसका कारण जिस तरह समझाया है वह संक्षेपमें* यह है:—चंद्रमा और पृथ्वी की कक्षाओंके बीचका कोण केवल ५° के लगभग है इसलिए दोनोंको एक ही धरातल में मान लेने से विशेष हानि नहीं होगी परन्तु सरलता आ जायगी ।

मान लो र सूरज, प पृथ्वी और $च_1, च_2, च_3, च_4$ चंद्रमाकी कक्षा है । यहां यह न भूल जाना चाहिये कि प र, अर्थात् सूर्य से पृथ्वी का अंतर $प च_1$, अर्थात् पृथ्वी से चंद्रमाकी दूरी का कोई ४०० गुना है । यह भी समझे रहना आवश्यक है कि

* Heroes of Science: Astronomers के आधार पर

चंद्रमाका विचलन इसलिए होता है कि सूर्य पृथ्वी और चंद्रमा दोनोंको असमान रूपसे आकर्षित कर रहा है इसलिए इन दोनोंके आकर्षणके अंतरके कारण यह विचलन हो रहा है। यदि यह अंतर न होता अर्थात् सूर्यका आकर्षण चंद्रमा और पृथ्वी पर समान होता तो विचलन कदापि न होता क्योंकि तब तो दोनों साथ ही साथ आगे पीछे होते और चंद्रमाकी सापेक्ष गतिमें भिन्नता न पड़ती।

बहुत दूर है इसलिए यह शक्ति प र के प्रायः समानान्तर दिशामें र की ओर काम कर रही है। दूसरी दशामें पृथ्वी अधिक खिंचती है, इसलिए चंद्रमा पीछे रह जाता है जिससे जान पड़ता है कि विचालक शक्ति सूर्यसे विरुद्ध दिशामें चंद्रमा को धक्का देकर पृथ्वीसे दूर कर रही है। यह पहले ही कहा गया है कि सूर्य बहुत दूर है इसलिए विचालक शक्ति चंद्रमाको प र के समानान्तर दिशा
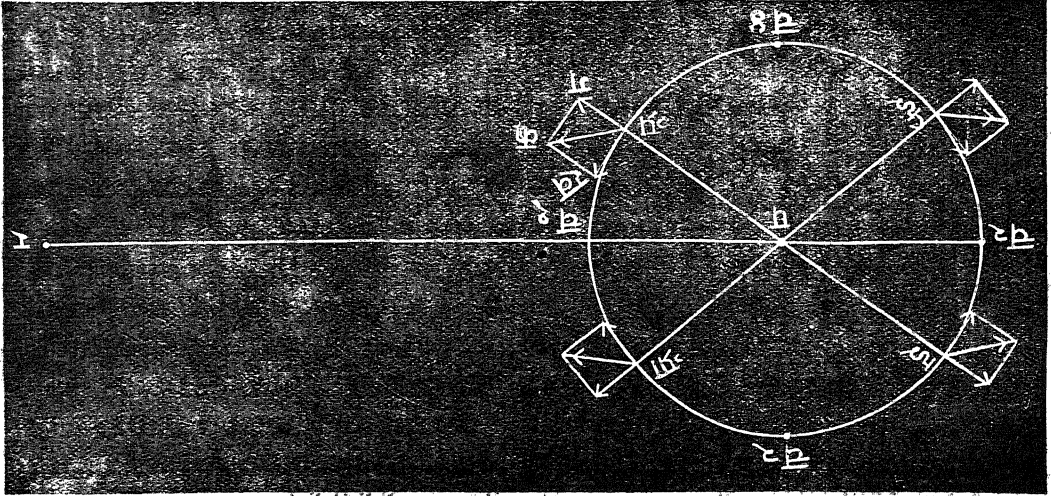
चित्र १५

चित्र १५ से यह स्पष्ट है कि जबतक चंद्रमा च$_4$ से च$_1$ होता हुआ च$_2$ तक चलता है तब तक यह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्यके निकट रहता है अर्थात् कृष्ण पक्षकी अष्टमी से लेकर शुक्ल पक्षकी अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वीकी अपेक्षा सूर्यके निकट रहता है और शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे कृष्ण पक्षकी अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वी की अपेक्षा सूर्यसे दूर रहता है। इसलिए आकर्षण सिद्धान्त के अनुसार पहली दशा में सूर्यका आकर्षण चंद्रमा पर अधिक होता है अर्थात् सूर्यकी ओर अधिक खिंचनेके कारण चंद्रमा पृथ्वीसे कुछ दूर हो जाया करता है जिससे जान पड़ता है कि विचालकशक्ति (perturbing force) चंद्रमाको पृथ्वीसे दूर खींचे जा रही है। चूँकि र

में र से दूर ढकेले जा रही है। इस लिए यह सिद्ध है कि यह शक्ति चंद्रमा और पृथ्वी को सदैव परस्पर दूर कर रही है, प र के प्रायः समानान्तर काम कर रही है, और इसका प्रभाव उस समय शून्य होता है जब चंद्रमा च$_2$ या च$_4$ पर रहता है क्योंकि उस समय चंद्रमा और पृथ्वी दोनों सूर्यसे समान दूर होते हैं।

मानलो यह जानना है कि जिस समय चंद्रमा च$_4$ और च$_1$ के बीचमें अ पर है और नीच पृथ्वी और सूर्यकी रेखा पर है। उस समय विचालक शक्ति किस प्रकार काम कर रही है। विचालक शक्तिको अ क रेखासे प्रकट किया जा सकता है और 'गतिके समानान्तर चतुर्भुज नियम' के अनु-

सार इस शक्तिको विभक्त करके अ ख और अ ग रेखाओंमें प्रकट कर सकते हैं जब कि अ ख रेखा अ पर स्पर्श रेखा है अर्थात् चंद्रमाकी गतिकी दिशामें है और अ ग रेखा मंदकर्ण (radius vector) की सीधमें है और बाहरकी ओर पृथ्वीके विरुद्ध काम कर रही है। विचालक शक्तिका जो भाग (resolved part) अ ग दिशामें काम कर रहा है वह चंद्रमाको पृथ्वीसे दूर कर रहा है और जिस समय चंद्रमा $च_1$ पर अर्थात् सूर्यकी सीधमें आ जाता है उस समय यह भाग ही प्रधान हो जाता है और दूसरा भाग शून्य हो जाता है। इसलिये विचालक शक्तिके इस भागसे चंद्रमा चाहे अ, आ, इ, ई पर जहां हो पृथ्वीसे दूर ही होता जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि चंद्रकक्षा अधिक लम्बी हो जाती है जैसा कि चित्र ३७ से प्रकट होता है:—
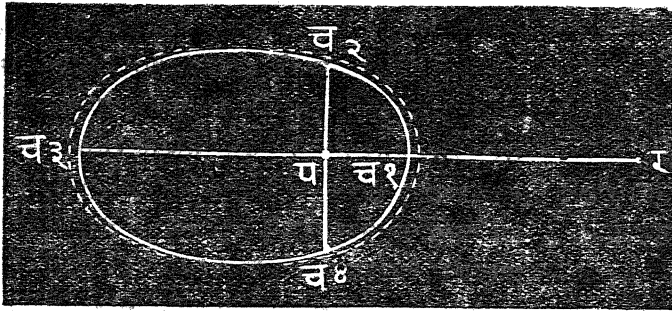
चित्र १६

पूर्ण रेखा से वास्तविक चंद्र कक्षा प्रकट होती है और कटी रेखासे चन्द्र कक्षाका नया रूप प्रकट होता है जो विचालक शक्तिके कारण हो गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चंद्रकक्षाकी च्युति बढ़ गयी क्योंकि दीर्घवृत्तिकी च्युति अधिक होनेसे इसका आकार लम्बा हो जाता है और कम होनेसे कुछ गोला हो जाता है। यह बात प्रत्यक्ष वेधसे भी देखी जाती हैं जिसका संकेत पहले किया गया है।

समीकरण 'छ' से यह भी सिद्ध है कि मंदफल संस्कार का मुख्य पद च्युति के मान पर कितना अवलम्बित है। यदि च्युति अधिक हो तो मंदफल भी अधिक होता है और च्युति कम हो तो मंदफल भी कम होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि इस विचालक शक्तिके कारण चन्द्रकक्षाकी च्युति यदि नीच सूर्यकी सीधमें हो तो अधिक हो जायगी जिससे मन्दफल संस्कार भी बढ़ जायगा। मन्दफल संस्कार यथार्थसे जितना बढ़ जाता है उसीको च्युति संस्कार (evection) कहा गया है।

इसके विरुद्ध यदि नीच सूर्यसे ९०° आगे या पीछे हो तो (देखो चित्र १६) चन्द्रकक्षाका आकार कुछ गोल हो जायगा और च्युति कम पड़ जायगी, जिससे मन्दफल संस्कार यथार्थसे उतना ही कम हो जायगा जितना पहली स्थितिमें बढ़ गया है। ऐसी दशामें च्युति संस्कार ऋणात्मक हो जायगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि विचालक शक्तिके उस भागसे जो चन्द्रमाके मन्द कर्णकी दिशामें चन्द्रकक्षाके बाहरकी ओर काम कर रहा है चन्द्रमामें इतना विचलन (deviation) हो जाता है कि च्युति संस्कारकी आवश्यकता पड़ती है।

अब इसके उस भागकी ओर ध्यान देना चाहिये जो चन्द्रकक्षाकी स्पर्श रेखाकी दिशामें काम कर रहा है। इससे यह फल होता है कि जब तक चन्द्रमा (देखो चित्र १५) $च_4$ और $च_1$ के बीच अथवा $च_2$ और $च_3$ के बीच रहता है तब तक चन्द्रमाकी साधारण गतिकी दशामें ही विचालक शक्ति भी अपना काम करती है और उसकी साधारण गति (जो पृथ्वीके आकर्षणके कारण होती है) को कुछ तीव्र कर देती है। परन्तु जब चन्द्रमा $च_1$ और $च_2$ अथवा $च_3$ और $च_4$ के बीचमें रहता है तब विचालक शक्ति चंद्रमाकी साधा-

रण गतिके विरुद्ध काम करती हुई उसको कुछ मन्द कर देती है। यह बात चान्द्रमासके प्रत्येक पक्षकी चौथ और एकादशीको बहुत देख पड़ती है, इसलिए इन तिथियोंके कालोंमें कुछ परिवर्तन कर देती है। इस विषमताके कारण चन्द्रमामें एक और संस्कार भी करना पड़ता है जिसे
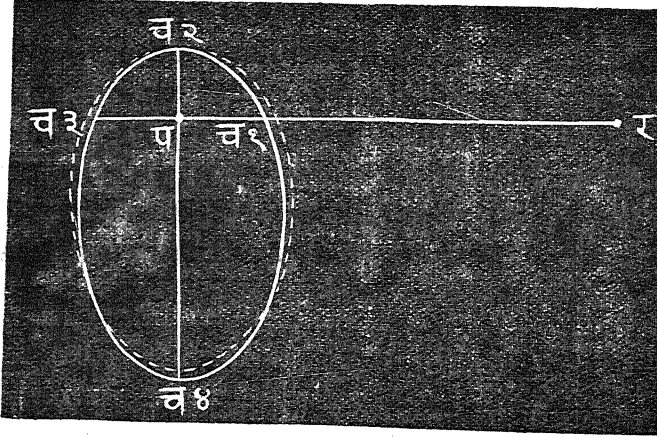
चित्र १७

पाक्षिक संस्कार (variation) कहते हैं। ज्योतिर्गणित में इसे तिथि संस्कार कहा गया है। इसके भी कई पद हैं जिनमें मुख्य पदका रूप यह है।

३५′ ४१″·६ ज्या २ (चंद्र—सूर्य)

जब यह बात निश्चित हो गयी कि पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके कारण चंद्रमाकी दूरी सूर्यसे कभी कम हो जाती है और कभी अधिक जिससे चंद्रमामें विचलन हो जाता है जो च्युति और पाक्षिक संस्कारों से दूर हो सकता है, तब यह समझना कुछ कठिन नहीं है कि सूर्यकी दूरी पृथ्वी से जो वर्ष भरमें घटती बढ़ती रहती है उससे भी चंद्रमाके स्थानमें कुछ अंतर पड़ जाता है और उपर्युक्त दो संस्कारोंसे पूरा नहीं होता। इसलिए एक और संस्कारकी भी आवश्यकता पड़ती है जिसे वार्षिक संस्कार कहते हैं इसका मुख्य रूप यह है।

११′ ११″·६७ ज्या (सूर्य मंद केंद्र)

इस प्रकार चंद्रमाके चार मुख्य मुख्य संस्कारोंकी चर्चा संक्षेपमें हो गयी और यह भी सूत्र रूपमें बतलाया गया कि इनके कारण क्या हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लघु संस्कार भी हैं जो उच्च गणित की अच्छी जानकारी बिना समझमें नहीं आ सकते और जिनका आविष्कार गत सौ वर्षमें हुआ है जब कि गणित और वैज्ञानिक यंत्रों की सूक्ष्मता हुई है।

पहले बतलाया गया है कि च्युति संस्कारका आविष्कारक टालमी है जो विक्रमकी दूसरी शताब्दी में यूनान में रहा है। परंतु इसका कारण निउटन के पहले नहीं मालूम हो पाया था। पाक्षिक संस्कार तथा वार्षिक संस्कारका आविष्कार टाइको ब्राही ने (Tycho Brahe जन्म १४ दि० १५४६ मृत्यु २४ अक्टूवर १६०१ ई०) अपनी अपूर्व निरूपण शक्तिसे किया था। इसका कारण उसको भी नहीं मालूम हो सका था क्योंकि उस समय तक उच्च गणित का तथा आकर्षण सिद्धान्तका अच्छा ज्ञान नहीं था। तिथि संस्कारका कुछ संकेत अबुल वफ़ा नामक मुसलमान ज्योतिषी ने भी किया था।

प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने मंदफल संस्कार के अतिरिक्त अन्य किसी संसारकी ओर ध्यान नहीं दिया था। मुंजाल * ने (८५४ शक वि०

* अयं संस्कारश्च "इवेक्शन् वेरियेशन् नामक संस्कारवत् प्रतिभाति। तत्र श्लोकौच।

इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः।
गुणो व्यर्केन्दु दोः कोट्योः रूप पञ्चाप्तयोः क्रमात् ॥
फले शशाङ्क तद गत्योर्लिप्तादो स्वर्णं योर्वधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्णं साम्यवधेऽन्यथा ॥

१८९६ वि० च्युति संस्कारकी तरह एक संस्कार तथा एक पाक्षिक संस्कारकी चर्चा की है और नित्यानन्दजी† ने (शक १५६१ वि० १६९६ में) पाक्षिक संस्कार और पात संस्कारकी चर्चा की है; परन्तु इनका प्रचार नहीं हुआ। सिद्धान्त दर्पणसे प्रकट होता है कि म० म० चन्द्र शेखर सामन्त ने भी संस्कारोंकी चर्चा की है। इन चारों संस्कारोंके साथ चन्द्रमा संबन्धी प्रधान समीकरणका रूप यह होगाः—

स=म
+ ३७६′५६″४ ज्या म
+ १३′५४″.७′ ज्या २ म
+ ३६″ ·९ ज्या ३ म
+ २.″० ज्या म
} मंदफल संस्कार
+ १°२०′२९″.५ज्या [२ (चंद्र—रवि)—म] च्युति संस्कार
+ ३५′४१″·६ ज्या २ (चंद्र—रवि) पाक्षिक संस्कार
+ ११′११·९७ ज्या (सूर्य मन्द केन्द्र) वार्षिक संस्कार

यहां स चन्द्रमा का स्पष्टकेन्द्र और म चंद्रमाका मंदकेन्द्र है, जब कि मन्द केन्द्रकी गणना नीच (perigee) से की गयी है। ज्योतिर्गणितमें च्युति और पाक्षिक संस्कारके और पद भी दिये गये हैं जो यहाँ नहीं दिये जाते। च्युतिके मंद परिवर्तन के कारण अङ्कोंमें एकाध कलाका अंतर पड़ता जाता है जिसका ध्यान रखना आवश्यक है।

आधुनिक ज्योतिषका इतना परिचय देना मेरी समझमें पर्याप्त है। उदाहरण देनेसे विस्तार बहुत हो जायगा; इसलिए उदाहरण नहीं दिये जाते।

—महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव

अत्र व्याख्याकारः "अयं संस्कारस्थिति भ योग साधने न क्रियते पूर्वेरूपेक्षितत्वात्" ॥

† अत्र मन्दफलातिरिक्तः पाक्षिक नामक संस्कारश्च मध्यम रवि चान्द्रान्तर वशतश्चन्द्रे देवस्तथाऽनेन विधिना जातश्चन्द्रो विमण्डल स्थो भवति············

सैकेरीनकी भयंकरता

आजकल भारतमें सैकेरीनका बड़ा प्रचार है। परन्तु बहुत कम आदमी यह जानते होंगे कि सैकेरीन विष है। अब तक साधारणतया लोग यह समझते थे कि सैकेरीन एक निर्दोष पदार्थ है, जिसका इन्द्रियों और तन्तुओं पर कोई प्रभाव नहीं होता। हालमें ही (Drs. A. J. Carlson, C. G. Eldridge, H. P. Martin) कुछ डाक्टरों ने परीक्षा करके दिखलाया है कि सैकेरीनके प्रभावसे पाचक रस कम बनता है और भूख कम लगती है। छोटी आंतोंमें पहुँच कर यह रसोंके शोषण (आत्मीकरण) को कम कर देती है। (erythrocytes) एरीथ्रोसाइटीज़ पर क्रिया कर हीमोलिसिस (hæmolysis) कम कर देती है। अतएव जनताको सचेत और सावधान हो जाना चाहिये।

मुर्चा न लगने वाला लोहा

मुर्चा लोहेको कुछ समयमें खा जाया करता है। इसीलिए लोहा नीची कोटिकी धातुओंमें गिना जाता है। यदि सोना चांदीकी नाईं लोहा भी मुर्चासे मुक्त हो जाय तो वह सोनेसे भी सौगुना उपयोगी साबित हो। बहुत दिनसे वैज्ञानिक लोग ऐसा लोहा बनानेकी फिक्रमें हैं, जिसमें मुर्चा न लगे। अब ऐसा प्रतीत होने लगा है कि वह दिन दूर नहीं है जब पुलों पर पेंट और वार्निश करना व्यर्थ होगा। स्वयम् लोहा इतना अच्छा बनने लगेगा कि उसकी बनी चीज़ें स्वच्छ और चमकदार सदा बनी रहेंगी। शायद पाठक यह समझें कि अब चीज़ें दाग़ न पड़नेवाले इस्पातसे बना करेंगी। किन्तु बेदाग इस्पात कुछ और ही चीज़ है। वह तो बहुत दिनसे काम आ रही है, किन्तु उससे काम लेना उसका ढालना या पीट कर उसकी चीज़ें बनाना बड़ा कठिन है। अभी तक वह चाकू छुरी नशतर आदिके बनानेमें काम

जाती थी; अभी तक उसके बड़े पैमाने पर बनाने-की भी परीक्षा नहीं हुई है। उसको बड़ी सावधानी-से संभालना पड़ता है, किन्तु जब एक बार उसकी चीज़ें बन जाती हैं तो वह बेदाग रहती है। मुर्चा-मुक्त लोहा इससे भिन्न होता है। उसका प्रयोग उसी भांति होता है जैसे साधारण इस्पातका। उसके पुल, गर्डर, शीट, प्लेट, तार, कढ़ाई, तवे, आदि बन सकते हैं। इस नवीन लोहेमें कर्बनकी मात्रा बहुत कम होती है और क्रोमियमकी १२–१४ प्रतिशत। बेदाग इस्पातमें और इसमें केवल कर्बनका अन्तर है।

मुर्चा-मुक्त लोहे पर पालिश भी खूब हो सकती है, जिस पर हवा पानीका प्रभाव नहीं होता। इसकी पतली पतली चद्दरें भी बन सकती हैं; अतएव यह लोहा टीनका तो पूरा बहिष्कार कर देगा।

क्या डैनोसौर अबतक जीवित हैं

प्राचीन कालके डैनोसौर सराट् वर्गके प्राणी क्या अभी तक जीवित हैं, यह प्रश्न बड़े महत्वका है। अबतक वैज्ञानिक मानते चले आये हैं कि अब इस वर्गके प्राणी भूमण्डलके किसी भागमें जीवित नहीं हैं। किन्तु हालमें ही कैमस्कटका (Kamchatka) प्रदेशमें ध्रुवीय हिमकी असीम कठोरताका एक वर्ष तक अनुभव करके एक मण्डली लौटी है और एक अपूर्व वस्तु जो उन्होंने वहां देखी उससे वह अबतक आश्चर्यके सागरमें हिलोरें ले रहे हैं। इस घटनासे प्राचीन युगोंके रहस्योंके उद्घाटनकी कुछ सम्भावना प्रतीत होती है। लाखों वर्ष पहले हिम-युगके प्रवर्तनके समय कौन सी असाधारण दैवी घटना हुई थी, जिसके कारण समस्त भूमण्डल बरफसे आच्छादित हो गया था? वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि पृथ्वीकी अक्ष अचानक अपनी असली जगहसे हटकर एक नई जगह आ गयी थी।

बुटलर-ड्यूपे-भ्रमण-मण्डलीका भी यही विश्वास है। उनका कहना है कि उक्त घटनाके साथ ही साथ गरम देशोंके महा काय प्राणी भी ध्रुवीय प्रदेशोंमें चले गये थे।

इस मण्डली ने एक सराट् जातिके शृङ्गीसराट् (Ceratosaurus) नामक जन्तुको एक नदीके कगारोंमें उतरते देखा। इसका आकार चार हाथियोंके बराबर था और वह ९ मन बोझका कैरिबौ दांतोंमें दबाये हुए था।

इस प्राणीके दर्शन मात्रसे जो भय और संकट के भाव दर्शकोंके हृदयमें पैदा हुए होंगे उनका अनुमान करना कठिन है; यह घटना ही वैज्ञानिक संसारमें खलबली पैदा कर देने भरके लिए पर्याप्त थी। परन्तु प्राचीन कालके इतिहास, भूगोल, जन्तु-शास्त्र आदिके सम्बंधमें इसके द्वारा जो प्रकाश पड़ना सम्भव है उसके कारण इसका महत्व और भी बढ़ गया है।

प्रायः यह समझा जाता है कि भूमध्यरेखा एक वृत्त है और ध्रुव दो विन्दु हैं जिनकी स्थितिमें परिवर्तन नहीं होता, किन्तु यह बात सर्वथा सत्य नहीं है। २० वर्ष हुए कि विज्ञानने यह बतलाया कि जबसे भूमण्डल पर प्राणी बसने लगे हैं तबसे कमसे कम एक बार तो पृथ्वीकी अक्षका स्थान अवश्य ही बदला है। यह स्थान-च्युति इतनी अधिक थी कि उष्ण और मन्दोष्ण प्रदेशोंके स्थान बदल गये। इस घटनाके पहले उत्तर ध्रुवका स्थान हडसन खाड़ी (Hudson Bay) के उत्तर पश्चिम किनारे पर था। वर्तमान न्यूयोर्क आर्कटिक वृत्त (arctic circle) के पास था। आज कल जिस सैबेरियाके सम्बंधमें कवि लोग कहा करते हैं कि उसकी हिममयी श्वास आरेके समान काटती है (icy breath that woundeth like toothed steel) उस प्राचीन समयमें मन्दोष्ण था। उसी प्रदेशमें मैमथ भी रहता था, जिसको शूकर और हाथीके मेलसे उत्पन्न हुआ मानते हैं।

जब ध्रुवीय प्रदेश दक्षिणकी तरफ हटा तो मेमथका लोप हो गया। उनमेंसे बहुत से तो बरफमें दब गये और शेषको शृङ्गी सराट् (सेराटो-सौरस) ने खा लिया। ध्रुवकी स्थितिके परिवर्तन के साथ ही निरक्षदेशका भी स्थान बदल गया और समुद्रोंने भी मर्यादा छोड़ कुछ देशोंको पानीमें डुबो दिया और कुछ धरती पानीके बाहर निकल आयी। इस प्रकार नये द्वीप और महाद्वीपोंकी रचना हुई।

चित्र १८

यह माना जाता है कि भीषण-सराट् (Dinosaur) मन्दोष्ण देशका रहनेवाला था। रूस और सैबेरियामें इन प्राणियोंकी हड्डियोंके पाये जानेसे उपरोक्त कथन प्रमाणित होता है; परन्तु यह स्मरण रहे कि उस समयका रूस कुछ दक्षिणकी ओर हटा हुआ था।

हालमें ही मंगोलिया-में एक भीषण-सराटकी खोपड़ी मिली है। यह ८½ इञ्च लम्बी है। यद्यपि यह बहुत ही छोटी है तथापि वैसी ही आकृतिकी है जैसी कि अलस्कामें पाये हुए शृङ्गी-सराट् प्राणीकी है। इसीसे सिद्ध होता है कि शाकाहारी शृङ्गी-सराट् एशियाकी ही पैदाइश है। पेरिसके "औटो" नामक पत्रमें जेम्स लिबिसबटलर (सिरेटो सौरस) शृङ्गी सराट् के दर्शनका वृत्तान्त इस प्रकार लिखते हैं:—

एक दिन कीचड़में हमने देखा कि कोई बड़े भारी आकारका प्राणी निकल गया है। तीन फुट गहरा गढ्ढा पड़ गया था, जो उसके निकल जानेका चिन्ह था। पैरके निशान भी थे जो लगभग डेढ गज चौड़े थे। दूसरे दिन सवेरे ही हम पांच आदमियोंने सुराग़ लगानेकी ठान ली और खोजका काम आरम्भ कर दिया। बहुत देर तक परेशान होकर हमने आशा छोड़ दी कि हम इस प्राणीका दर्शन न कर सकेंगे; इतनेमें ही बड़े जोरके दहाड़नेकी आवाज़ आई, बिजली गिरनेके से शब्द सुनाई पड़ने लगे और पत्थर मट्टी आदि इस प्रकार आने लगे मानों पहाड़ टूट कर खिसक रहा है। हम डरके मारे कांपने लगे, समझमें नहीं आता था कि यह महा प्रलयका सा कैसा दृश्य है। इतनेमें देखते क्या हैं कि एक जानवर, जिसका डील-डौल चार हाथीके समान था, जिसका शरीर बालोंसे ढका था, एक कगार परसे लुढकता चला आ रहा है। उसीके शरीरके वेगसे आस पासकी चट्टानें रोड़ोंकी नाईं टूट टूट कर गिर रही थीं। हम गोरोंको तो इतना डर लगा कि पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े ही रह गये; परन्तु काले लोग मुंहके बल धरतीमें गिर पड़े। दस मिनट तक हम पृथ्वी पर गड़े हुएसे खड़े रहे और इस प्राचीन कालके स्मृति-स्वरूप भयंकर दानवाकार जन्तुकी ओर देखते रहे।

वह जन्तु भी हमारी तरफ घृणा मय आश्चर्यसे देखता रहा। जान पड़ता था कि स्कंध और ग्रीवाके बीचका उठा हुआ भाग (कूब) ३० फुट ऊंचा है और नांकके सींगसे लगा पूंछके अन्ततक ७० या ८० फुटकी लम्बाई है।

एका एक उसने गर्दन उठाई और हिक़ारतकी निगाह से हमारी ओर देखकर उस नालेमें लगभग ४० मील प्रति घंटेके वेगसे दौड़ता हुआ भाग गया। उसके मुंहमें ६ मन भार वाला एक प्राणी दबा हुआ था। शायद इसीकी शिकार कर वह अपने घरकी तरफ लौट रहा था।

इस कथनका समर्थन फादर लेवेगन्यू (Father Lavagneux)* ने किया है। उनका कहना है कि मैंने इसके अतिरिक्त एक और भी प्राणी देखा था जो इसी जातिका था। वह शीतसे बरफमें परिणत हुए दरिया पर बवंडरकी नाईं भागा जा रहा था। उसके बालों पर बरफ जमी हुई थी और बड़ी बड़ी लाल आँखें संध्या कालके प्रकाशमें अग्निके समान चमक रही थीं। इसी प्राणीका चित्र यहां दिया जाता है। (चित्र १८)

घोड़ेके आकारके कुत्ते

पाठक वृन्द; सम्भव है कि हमारे बेटे या पोते घोड़ोंके बराबर कुत्ते देखनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकें। अभी तो यह घटना वैज्ञानिकोंकी कल्पना मात्र है किन्तु क्या प्राचीन समयमें छिपकलियोंके पूर्वज डैनोसौर (भीषण सराट्) ५०, ५० फुटके न होते थे?

आइये इसी बातपर आज वैज्ञानिकोंके विचारोंकी विवेचना करें।

प्राचीन कालसे ही असाधारण डील डौलके मनुष्य आश्चर्यसे देखे जाते रहे हैं। किन्तु आजकल आकारका आश्चर्य उसके कारणोंके अचरजोंके सामने फीका पड़ गया है।

दानवाकृति (giantism) की कुंजी तन्तुओंके इतने छोटे छोटे टुकड़ोंमें पायी गई है कि वह मुट्ठीमें बन्द किये जा सकते हैं। यद्यपि यह तन्तु इतने छोटे हैं, किन्तु "गुणवन्त" हैं; इसलिए इनको "लघु" गिनना न चाहिये। सर, गर्दन, धड़के विभिन्न स्थानों पर यह छोटे छोटे तन्तु-पिण्ड स्थित हैं। इनको छोटी छोटी रसायन शालाएं समझना चाहिये, जिनमें बड़े प्रभावशाली रस तय्यार होते रहते हैं। यह रस शरीरके कार्यों और वृद्धिमें बड़े

* यह भी उपर्युक्त पांच आदमियोंमें शामिल थे।

बड़े चमत्कार दिखलाते रहते हैं। इनका हालमें हो आविष्कार हुआ है; इनका तीन नामोंसे उल्लेख हुआ करता है—एनडोक्रीन आर्गन, डक्टलेस ग्लाण्ड (नाली शून्य ग्रन्थि) और ग्लाण्ड्स ओव् इण्टर नेल सीक्रिशन (आन्तरिकोद्गारकी ग्रन्थि)। इनके रस उन्हीं रुधिर वाहिनी नालियोंमें मिल जाते हैं जो उन तक रुधिर पहुँचाती हैं। इनका कार्य नलिकायुक्त ग्रन्थियोंसे भिन्न है, क्योंकि वह अपने रसोंको विशेष नालियों द्वारा शरीरके वाह्य तथा अभ्यान्तरिक भागों तक पहुँचा कर इकट्ठा करती रहती हैं, जैसे यकृत आदि।

मुख्य नाली विहीन ग्रन्थियां यह हैं:—पिटुइटेरी, पीनियल, थैरोयड, एड्रीनल, गोनड्, थैमस और क्लोमके द्वीपकी सैलें। इनमें जो आश्चर्य जनक रस बनते हैं उन्हें स्वौषध (autocoids) और हरकारे (hormones) कहते हैं। इन रसोंसे या तो शरीर धर्मों की गति-वृद्धि या गति-अवरोध होता है। शरीरके कार्यों पर इनका इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि उसकी कल्पना करना भी कठिन है। जिन प्रयोगशालाओंमें इन पर गवेषणा हो रही हैं, उनके संयोजक वस्तुतः विज्ञानके नाटकमें एक अपूर्व अध्याय लिख रहे हैं।

इस अध्यायके पात्र हैं, दीर्घाकार बौने, मोटे और दुबले पतले पुरुष और स्त्रियां। इसका सम्बन्ध खाने पीनेकी चीज़ों और दवाओं तक से है।

इन छोटे छोटे पिण्डोंके रहस्यों के सामने बड़ी बड़ी प्रभावशाली औषधोंके गुण फीके पड़ जायंगे। इनमेंसे एकका कुछ हाल पाठक पढ़ चुके हैं। मधुमेह या डाइबिटीज़का जो नया इलाज डा० बेंटिंगने क्लोमान्तर्गत द्वीपके रससे निकाला है उसने पुरानी चिकित्सा प्रणाली पर पानी ही फेर दिया है।

ग्रन्थियोंके प्रभावके जाँच करनेके लिए पशुओंकी ग्रन्थियोंके रसोद्गारोंको मनुष्योंको खिलाया गया है।

कभी कभी समूची ग्रन्थि ही मनुष्यके शरीरमें लगा दी जाती हैं। इन दो मार्गोंके अतिरिक्त विशेष विशेष अवस्थाओं में ग्रन्थियों के रसोंकी असाधारण मात्रा मिलने से भी बहुत कुछ रहस्य जाना जाता है।

इन निरीक्षणों और प्रयोगोंसे प्रतीत होता है कि भविष्यमें दीर्घाकार के मनुष्य और पशु उसी भांति सुगमतासे पैदा किये जा सकेंगे जैसे आज कल मनोवांछित आकार और गुणवाले फूल और पौधे वनस्पतिज्ञ पैदा कर सकते हैं। अभी तक इस प्रकारके प्रयोग मनुष्य पर तो नहीं किये गये हैं, पर कुत्ते आदि पशुओं पर अवश्य सफल हुए हैं। इनके परिणामों से आशा कर सकते हैं कि ३० या ४० वर्षमें घोड़ेके डीलडौलके कुत्ते पैदा होने लगेंगे।

आकार वृद्धिमें मुख्य भाग पिटुइटेरी ग्रन्थिका रहता है। यह ग्रन्थि नाककी जड़के पास एक निराले अस्थि निर्मित कोटरमें रहती है। इसका आकार कनिष्ठिकाके अगले पोरवेसे भी छोटा होता है। प्रकृतिने इसे कितना सुरक्षित रखा है! इसके निकाल देनेसे शीघ्र ही प्राण पखेरू उड़ जाता है। इस नन्हीसी ग्रन्थिके भी दो भाग हैं-पूर्व भाग और उत्तर भाग; उनमेंसे प्रत्येकके जुदे जुदे धर्म हैं। पूर्वभागसे शरीरकी वृद्धि निर्धारित होती है। अस्थियों और अस्थिपिंजरका आकार इसीसे निश्चित होता है। इस भागकी क्रियाशीलता बढ़नेसे शरीर वृद्धि भी जल्दी होने लगती है और उसकी क्रियाशीलता कम हो जानेपर मनुष्य बौना हो जाता है।

इन बातोंके बहुत से प्रमाण हैं। बौनोंकी परीक्षा एक्स-रे द्वारा की गई तो पता चला कि उनकी उक्त ग्रन्थि बहुत छोटी है। इसी प्रकार वृहदाकार मनुष्यमें यह ग्रन्थि असाधारण आकारकी पाई गई। एक ८ फुट ३ इंचके मनुष्यकी ग्रन्थि मरनेपर निकाली गई तो उसका आकार साधारण मनुष्यकी ग्रन्थिसे चौगुना मिला। उम्र ज्यादा हो जानेपर जब इस ग्रन्थि

की क्रियाशीलता बढ़ जाती है तो हड्डियां लम्बी न होकर मोटी हो जाती हैं। यह तो सीमान्त उदाहरण हैं। साधारण मनुष्योंमें भी उक्त ग्रन्थिकी थोड़ी बहुत क्रिया शीलताकी वृद्धिके लक्षण देखनेमें आते हैं। हाथ पैरकी हड्डियोंका चौड़ा या मज़बूत और भारी होना, जोड़ोंका भारी होना, दांत, नाक, जबडे आदि अंगोंका पुष्ट आकार, हाथों और पैरों पर ज्यादा बाल होना—यह सब लक्षण उक्त क्रियाशीलताके ही हैं।

पिटुइटेरी ग्रन्थिका प्रभाव मस्तिष्क पर भी होता है। इसी लिए इसको बुद्धि ग्रन्थि भी कहते हैं।

अन्य ग्रन्थियोंका भी प्रभाव शरीर वृद्धिपर पड़ता है, परन्तु अपरोक्ष रीति से। पिटुइटेरी ग्रन्थिके और कई काम हैं। सम्भवतः वही रुधिरमें लवणका परिमाण समुद्र जलके समान रखती है। जिन मनुष्योंकी पिटुइटेरी ग्रन्थि छोटी होती है वह सुस्त होते हैं, उन्हें सदा नींद लगी रहती है, खाना अंग नहीं लगता, तापक्रम कम रहता है, नब्ज़ धीमी चलती है, दर्द और भावोंका ज्ञान कम होता है। जो जानवर समाधि ले जाते हैं, उनकी ग्रन्थि समाधिके समयके आने पर छोटी होती चली जाती है और जब उनके जागनेका समय आता है तो फिर बढ़ने लगती है। सम्भवतः नींद भी इसी ग्रन्थिकी सामयिक दुर्बलता से आती हो।

कुछ वैज्ञानिकों का यह भी विचार है कि पूर्व और उत्तर भागके पुष्ट होनेसे मनुष्य में क्रमसे पुरुषोचित और अबलोचित गुणोंकी प्रधानता मिलती है। शायद उन्माद भी इसी ग्रन्थिसे सम्बन्ध रखता हो। अतएव यह अनुमान होता है कि मनुष्यका चरित्र और स्वभाव न केवल वातसंस्थानसे प्रभावित होता है, प्रत्युत रुधिर संस्थानसे भी उसका सम्बंध है। शायद ऐसा समय आजाय जब रुधिरमें विशेष पदार्थोंके मिला देने से अपराधियोंको तथा कुत्सित चरित्र-वालोंको शीलवान और चरित्रवान बना सकें।

स्वस्थ रहनेके कुछ उपाय

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि स्वास्थ्य सर्व सुखोंका मूल है। कहा भी है—"तनदुरुस्ती हज़ार न्यामत है।" ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो बीमारीका दुःख सहना चाहता हो। प्रत्येक मनुष्य निरन्तर नीरोग रहना चाहता है। परन्तु, बहुधा मनुष्य ऐसे हैं जो स्वास्थ्यके नियमोंकी ओर ध्यान नहीं देते। इससे न वह चङ्गे रह सकते हैं और न जीवन-सुख भली भांति भोग सकते हैं। स्वस्थ रहनेके अनेक उपाय हैं। उनमेंसे कुछका दिग्दर्शन यहां किया जाता है।

(१) मैदानकी स्वच्छ हवामें रहनेके लिए जितना समय व्यय हो सके, नित्य करना चाहिये।

(२) वस्त्र-रहित अङ्ग पर सूर्यकी तीक्ष्ण किरणें जितने समय तक पड़ने दे सको उतना ही अधिक लाभ-प्रद है।

(३) तुम्हारा श्वास कर्म नित्य नियमानुसार व्यवस्थित और यथोचित है या नहीं; इसपर निरन्तर लक्ष्य रखना चाहिये।

(४) दो दलवाले अन्न, फल, तरकारी, गायका तुरन्त दुहा हुआ दूध इत्यादि पदार्थ जहां तक बने नित्य खानेके उपयोगमें आने चाहियें। विशेष कर गायका दूध जितना अधिक मिल सके उतना ही अधिक उपयोगमें लाना हितकर होगा।

(५) भोजन विशेष बारीक चबा कर खाना चाहिये।

(६) जिन्हें माँस खानेकी चाट है उन्हें अधिकसे अधिक दिनमें एक बार ही उसका उपयोग करना चाहिये। इससे अधिक उपयोग करना हित के बदले अहित करेगा।

(७) प्रति दिन कुनकुने पानीसे स्नान करना चाहिये। हर अठवारेमें एक अथवा दो बार

वाष्प-स्नान करना चाहिये। यदि किसीका हृत्पिण्ड दुर्बल है तो उसे वाष्प-स्नानकी क्रियाका धीरे धीरे उपयोग करना चाहिये।

(८) शरीरसे सटा (लगा) रहनेवाला वस्त्र कपासके मोटे सूतका बना हुआ रहना चाहिये। सूत यदि हाथका कता हुआ हो तो अत्युत्तम है।

(९) यदि कालर लगानेका शौक़ हो तो, वह ऐसा होना चाहिये जो गलेको सुख-प्रद हो। कालर ऐसा न हो जो रगड़से गलेको लाल करदे, अथवा अपने कड़ेपनसे गर्दनका इधर उधर घूमना बन्द करदे और गर्दनकी नस नसमें दर्द पैदा करदे।

(१०) पैरका जूता इतना नरम और कुशादा होना चाहिये, जिससे पैरको आराम मिले। वह ऐसा कड़ा या तङ्ग न हो कि पैरको सुखके बदले दुःख दे। इतना ढीला भी न हो जो रगड़ रगड़कर पैरमें फफोले उठा दे या चमड़ा छील डाले!

(११) रातको जल्दी सोकर सवेरे जल्दी उठना चाहिये।

(१२) सोने (नींद लेने) के कोठेमें अन्धेरा और पूर्ण शान्ति रहनी चाहिये। कोठेकी खिड़की वगैरा सब खुली रहनी चाहिये।

(१३) यथाशक्ति कमसे कम छःसे साढ़े छः घंटे तक और अधिकसे अधिक सातसे साढ़े सात घंटे तक सोना चाहिये। स्त्रियोंके लिये साढ़े आठ घंटे सोना विशेष लाभकारी है।

(१४) आठ दिनमें एक दिन पूर्ण विश्राम करना चाहिये। उस दिन पढ़ने लिखनेका काम बिलकुल बन्द रखना चाहिये।

(१५) मनोविकारके अतिरिक्त मनको अत्यन्त उत्तेजक करनेवाली बातोंसे निरन्तर दूर रखना चाहिये। अनिवार्य कष्ट वा भविष्यमें आनेवाली बातोंके विषयके व्यर्थ विचाराविचारमें पड़ कर मस्तिष्कको कष्ट न देना चाहिये। दुःखदाई बातें कानोंसे ही न सुननी चाहियें।

(१६) विवाहित-अवस्था सर्व श्रेष्ठ एवं हितकर है।

(१७) चा और कहवाका सेवन जहाँ तक हो सके बिलकुल न करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो बहुत ही कम रूमात्रामें करना चाहिये।

(१८) तम्बाकू विशेष कर तीन तरह काममें लाई जाती है—खाने, पीने और सूँघनेमें। जहां तक बने उक्त तीन व्यसनोंसे दूर रहना चाहिये। तम्बाकूसे सिवाय सैकड़ों हानियोंके लाभ रंचमात्र भी नहीं है।

—व्रजलाल गोवर्द्धन यादव, टी. आर. टी. सी.।

बाल-विवाह प्रकृति-विरुद्ध है

महाराज मनु की आज्ञा है कि जब तक पुरुष दो या एक वेद का पूर्णतया अध्ययन न कर ले और स्वयं धनोपार्जन कर स्त्रीके भरण पोषण करनेके योग्य न बन जाय अथवा कमसे कम २५ वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य धारण कर शरीरमें दिव्य ज्योति, आत्मामें नैतिक बल और अंगोंमें पुष्टता न प्राप्त कर ले तब तक विवाह न करे।

२५ वर्ष तक वीर्य स्खलित न करने वाला पुरुष ब्रह्मचारी, और १६ वर्ष तक मैथुन न करनेवाली स्त्री ब्रह्मचारिणी कही जासकती है।

विवाह के समय यदि पुरुष की अवस्था २५ वर्ष से और स्त्री की १६ वर्ष से कम हुई तो वह विवाह बाल-विवाह कहलाता है। बाल-विवाह वास्तवमें काल-विवाह है। संसारमें समस्त दुष्कर्मोंकी उत्पत्तिका एक मात्र कारण यही है।

विधवाओंकी संख्या बढ़ानेमें, कुलवतियोंको वेश्या बनानेमें और देशमें रोगी, नपुंसक तथा ओज-सौन्दर्य-विहीन संततिकी उत्पत्ति करनेमें इस निन्दनीय और सर्वनाशकारी कुप्रथा की गणना सब से प्रथम की गई है। बालविवाह

धर्म और प्रकृति दोनोंके विरुद्ध है। निम्न लिखित प्रमाण भली भाँति सिद्ध करते हैं कि देशमें बाल विवाहकी ही प्रणालीका प्रचलित रखना जान बूझ कर देशको अवनतिके गढ़ेमें ढकेलना है।

[१] भट्टीमें कुम्हार द्वारा भली भाँति पकाया हुआ घड़ा कम पके हुये अथवा कच्चे घड़ेकी अपेक्षा अधिक दिन तक चलता है। कच्चा या कम पका हुआ घड़ा पानीके संयोग से बहुत शीघ्र टूट जाता है, परन्तु पके घड़े पर जलके संयोगका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार कच्चे वीर्यवाले या कम वीर्योपार्जित किए हुये पुरुष अथवा स्त्रियाँ यदि बाल्यावस्थामें ही विवाह कर "संतानोत्पादन" के कार्यमें प्रविष्ट कर दिये जाते हैं तो वह अकाल ही कालके गालमें विलीन हो जाते हैं। उनकी जीवन-लीला शीघ्र ही समाप्त हो जाती है।

[२] खेतोंमें जा कर देखिये कच्चे भुट्टों में पक्के भुट्टोंकी अपेक्षा घुन शीघ्र लगता है। अपने घरमें ही देखिये कच्चे काठको कीड़े बहुत शीघ्र नष्ट कर डालते हैं, परन्तु पके हुये काठ पर दृष्टि भी नहीं डालते।

इसी प्रकार यदि देश पर महामारी, हैजा, प्लेग, ताऊन इत्यादि रोगोंका आक्रमण होता है तो वह पुरुष अथवा स्त्रियाँ जिनका विवाह बाल्यावस्थामें ही हो गया है और जिन्होंने उसी अवस्थामें ईश्वरके सृष्टि-निर्माण कार्यमें सहायता देना प्रारंभ कर दिया है शीघ्र ही उन रोगोंके शिकार बन जाते हैं। परन्तु यदि भली भाँति अन्वेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि ब्रह्मचारियों पर इन रोगोंका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता।

[३] आँधी छोटे छोटे पेड़ोंको जड़से उखाड़ कर फेंक देती है, परन्तु बड़े बड़े और शक्तिशाली वृक्षोंको हिला भी नहीं सकती; ऐसे ही अनेक रोगोंका आक्रमण बाल्यावस्थामें ही माता पिता कहलानेवाले पुरुषों और स्त्रियोंको नष्ट भ्रष्ट कर डालता है; परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेवाले माता पिताओंके पास भी फटकनेका साहस नहीं करते।

इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य व्रतका भली भाँति पालन करना ही जीवन और असमयमें ही वीर्यका नाश कर देना मृत्यु है।

[४] किसानोंको देखिये कि वह कच्चे बीजको कभी खेतमें नहीं बोते; क्योंकि कच्चे बीज बोने से कृषिको, बीजों को और बोनेवाले मालिक सबको हानि उठानी पड़ती है। इसी प्रकार बाल्यावस्थामें स्त्री प्रसंग करनेवाले पुरुषोंका वीर्यका और उनके द्वारा उत्पन्न संतानका भी नाश अत्यंत ही शीघ्र हो जाता है।

(५) देखिये सूखा पड़ने पर भी किसान लोग भूखे रह जाते हैं, अधिक नाज देनेका प्रण करके रुपया उधार ले आते हैं, यहाँ तक कि कभी कभी अपमान सहते और भीख माँग कर अपनी क्षुधा निवृत्ति करते हैं परन्तु अपने बोए हुये बीजोंको उपयुक्त समयके पहले हाथ नहीं लगाते। इसी प्रकार पुरुषों और स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्याश्रमकी समाप्तिके पहले सांसारिक विषय-वासनामें पड़नेका ध्यान न करना चाहिये।

(६) कच्ची कलियाँ तोड़नेसे पुष्पका वास्तविक आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता; उसमें सुगंधि नहीं मिल सकती। सौन्दर्योपभोग नहीं किया जा सकता। वह केवल थोड़े ही समय तक लोगोंके चित्तोंको आल्हादित कर सकती है; विशेष समय तक नहीं। उसी प्रकार बाल-विवाहसे भी दंपतिको जीवनका सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सकता। शरीरमें इन्द्रिय-परायणताका निवास हो जाता है; थोड़े ही समयमें इन्द्रियां बलहीन और शिथिल पड़ जाती हैं और जीवन बोझ सा जान पड़ने लगता है। बाल्यावस्थाके भोग विलासकी लिप्सा थोड़े ही समय तक चित्तको आनन्द दे सकती है।

(७) कच्चे फलोंमें रस नहीं होते, वह स्वादिष्ट नहीं होते; कसैले होते हैं और शरीरमें रोगकी वृद्धिके साधन बन जाते हैं। ऐसे ही कच्चे वीर्यमें पुष्टता नहीं होती; हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ

संतान उत्पन्न करनेकी और विषय भोगके वास्तविक सुख देनेकी शक्ति नहीं होती। कच्चे वीर्य द्वारा संतान उत्पन्न करनेकी इच्छा शरीरको रोगमय, उत्साह हीन और निर्बल कर देती है।

(८) कच्चे फोड़े द्वारा मवाद निकालनेकी चेष्टा करना शरीरको मृत्यु-मुखमें डालना और जीवनी शक्तिका ह्रास करना है; वैसे ही अर्ध विकसितावस्थामें अपनेको भोग विलासमें लिप्त करना और हठ पूर्वक वीर्य-स्खलित करनेका उद्योग करना जान बूझ कर मृत्युको निमंत्रण देना है।

(९) कच्चे भोजनसे उदर-व्याधि बढ़ जाती है; वह पेटमें भाँति भाँतिके रोग उत्पन्न कर देता है। ऐसे ही कच्चे पनकी अवस्थाका विवाह दंपतिके तनमें वीर्यपात, नपुंसकता, दुर्बलता, क्षयी और प्रमेह इत्यादि भीषण रोग उत्पन्न कर देता है।

(१०) जब पेड़ोंमें कलियाँ लगती हैं तो उनमेंसे बहुत कुछ नष्ट हो जाती हैं; फिर फूल आते हैं उनमेंसे भी बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं, फिर सबके पश्चात् फल लगते हैं; उनमेंसे जो नष्ट होनेसे बच जाते हैं वह अंत तक उस वृक्ष पर स्थित रह सकते हैं।

ऐसे ही जो बालक बालिकाएँ बाल्यावस्थामें ब्याह दिये जाते हैं उनमेंसे बहुतोंकी मृत्यु हो जाती है; बहुतेरे जन्म भर रोगी रहते हैं; परन्तु ब्रह्मचर्याश्रमकी अवस्था समाप्त करनेके पश्चात जो शास्त्रोंके आदेशानुसार विधि पूर्वक गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं केवल वह लोग ही अपने जीवनकी पूर्ण अवस्था तक जीवित रह कर संसारके सच्चे आनन्दका उपभोग करते हैं। असमय ही मृत्युके मुखमें नहीं जा पड़ते।

(११) जो शीघ्र बढ़ता है वह शीघ्र ही गिरता भी है, यह प्रकृतिका एक स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है। घास अथवा तिनकोंमें लगी हुई अग्नि बहुत शीघ्र बढ़ जाती है परन्तु बहुत शीघ्र बुझ भी जाती है। पीपल महुआ और नीम इत्यादि वृक्षोंमें अग्नि शीघ्र नहीं लगती और यदि किसी भाँति लग भी जाती है तो शीघ्र बढ़ती नहीं और यदि बढ़ भी जाती है तो शीघ्र बुझती भी नहीं।

इसी प्रकार थोड़े ही जीवनमें जो विषय वासनाका सेवन करने लगते हैं उनकी अंतिम अवस्था भी थोड़ी ही आयुमें निकट आ जाती है। परन्तु अखंड ब्रह्मचर्यावस्थाकी समाप्तिके पश्चात् पूर्ण यौवनावस्थाके आने पर जिनकी इच्छा स्त्री-प्रसंगकी ओर झुकती है उनकी इन्द्रियाँ शीघ्र ही शिथिल नहीं हो जातीं और वह अपने जीवनकी अंतिम घड़ी तक जीवित रह कर सांसारिक आनन्दों और ऐश्वर्योंका उपभोग करते हैं और मरनेके पश्चात् भी संसारमें एक अनुकरणीय अनूठा और विचित्र आदर्श छोड़ जाते हैं।

(१२) केला, पपीता और रेंड़ी इत्यादिके वृक्षोंको देखिये कितने शीघ्र अंकुरित होने और फलने फूलने लगते हैं; परन्तु देखते ही देखते वह मुरझा जाते अथवा नष्ट भी हो जाते हैं और महुआ, इमली, अमरूद और आम इत्यादि वृक्ष कितने दिनोंके पश्चात् बढ़ने और फूलने फलने प्रारंभ होते हैं परन्तु साथ ही साथ वह चिरकाल तक स्थित भी रहते हैं।

उसी प्रकार जिन बालक बालिकाओंको लड़कपनमें ही संतानोत्पत्तिके काममें लिप्त हो जाना पड़ता है उन्हें बहुत ही शीघ्र कठिनतासे उपार्जन की हुई अपनी आरोग्यता अपना स्वास्थ्य और साथ ही साथ अपनी संपत्ति भी गँवाकर या तो डाक्टरकी या मृत्युकी शरण अवश्य ही लेनी पड़ती है और यदि किसी प्रकार अपने अध्यवसाय और परिश्रम द्वारा गाढ़ी कमाईके संचित किए हुए वीर्यको दिन रात पानीकी भाँति बहा कर उन्हें संतानका दर्शन भी होता है तो केवल सुन्दरता, तेज और ओज विहीन दुर्बल और रोगी संतानका।

उनकी यह दुर्बल संतान भी रोगोंके भयानक थपेड़ोंसे तंग आकर असमय ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर यमपुरकी राही हो जाती है और

अपने माता पिताओंके लिए बाल्य-विवाहका तथा बिना वीर्यकी पुष्टि हुए ही उसे प्रयोगमें लानेके परिणामका दुःखान्त उदाहरण छोड़ जाते हैं; परन्तु हाय ! इन सब बातोंके देखते हुये भी हमारे देशके लोगोंकी आंखें नहीं खुलतीं । वह आज भी "अष्ट वर्षा भवेद् गौरी" कह कर देशके भोले भाले बच्चों और बच्चियोंका व्याह कर उनके द्वारा संतानोत्पादन करा पौत्रका मुख देखनेके लिए आतुर रहते हैं । अभागे दंपति जो सांसारिक व्यवहारों से पूर्णतः अपरिचित रहते हैं वह हठ पूर्वक सांसारिक विषय भोगमें लिप्त कर दिये जाते हैं । भगवन् ! संसार के बहुत से दुःखान्त नाटक देख चुके; अब यदि सुखान्त दृश्य न दिखानेकी अभिलाषा हो तो मंचको खाली ही पड़ा रहने दीजिये । हम संतोष कर लेंगे परन्तु बालविवाहका भीषण दृश्य और उसके कुपरिणामोंकी लोमहर्षण घटनाएँ दिखलानेके पहले ही हमें इस विश्व से उठा लीजिये; महात्मा सुकरात सच कह गये हैं कि अकालमें ही माता पिता कहलाने वालोंको अकाल ही इस संसारका त्याग कर देना पड़ता है ।

केवल ऋतुमती हो जाना ही स्त्रियोंकी तरुणावस्थाका चिन्ह नहीं है । दूध पीनेवाले दाँतोंको चना चबानेके योग्य समझना घोर अनाड़ीपन है; बालिकाओंका जिन्हें अपने स्त्रिपनका पूर्णतया ज्ञान नहीं रहता विवाह कर देना भयंकर पाप और अक्षम्य अपराध है ।

"अष्ट वर्षा भवेद् गौरी" का समय अब नहीं रहा । तैरना सीखनेके पहले ही लड़केके गलेमें पत्थर बाँध देना उसे डुबोना नहीं तो और क्या है ? ब्रह्मचर्य व्रतका भली भाँति पालन किये बिना ही स्त्री रूपी व्याधिको उसके गले लगाना जान बूझकर उसके पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना है ।

बाल्यावस्था दोनोंके विद्योपार्जनका समय होता है—संतानोपार्जनका नहीं । विद्यार्थी जीवनमें व्याह कर देना मानों विद्यार्थी जीवनकी समाप्तिकी सूचना देना है; क्योंकि भोग विलासके मार्ग पर अग्रसर होनेपर बुद्धि, प्रतिभा, विचार शक्ति, स्मरणशक्ति, कल्पनाशक्ति और मेधाशक्ति इत्यादि सभी शक्तियोंका ह्रास होने लगता है और विद्यार्थी जीवनमें इन सब वस्तुओंके उपार्जन करनेकी आवश्यकता होती है न कि उनके व्यय करने अथवा नष्ट करनेकी; अतएव जब तक विद्यार्थी जीवन समाप्त न हो जाय तब तक बालकों तथा बालिकाओंका व्याह करना घोर मूर्खता और भयानक अनाड़ीपन है ।

भगवान स्कन्दजी कहते हैं कि जो पुरुष धनकी अथवा दहेजकी लालसासे अपनी अबोध कन्याको किसी बालक पतिके गलेमें जिसे अपने पुरुषत्वका भी ज्ञान नहीं रहता मढ़ देता है वह मरने के बाद पिचाश-योनिमें जन्म लेता है और अपने नीच कर्मोंके नीच फल भोगता है ।

बाल-विवाहकी प्रथा उड़ा देनेसे ही देशमें ब्रह्मचारी हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ बालक और बालिकाओंकी उत्पत्ति हो सकती है ।

अतएव प्रत्येक देशके हितकी कामना रखनेवाले पुरुषको इस विषैली कुप्रणालीका नाश करनेके लिये प्राण पणसे चेष्टा करनी चाहिये ।

—बलभद्र प्रसाद गुप्त "रसिक"

थौरोयड़ ग्रन्थि

यह ग्रन्थि गर्दनमें होती है । एक बार एक स्वस्थ और बलवान कुत्तेकी गर्दनमें चीरा लगा कर उसकी थौरोयड़ ग्रन्थि निकाल दी गयी । थोड़े ही दिनमें यह लक्षण दिखाई देने लगेः—वह मोटा होने लगा, पर उसके पट्ठे ढीले पड़ गये; वह बहुत सुस्त रहने लगा; उसके चेहरेसे सुस्ती और बीमारी टपकती थी; उसके बाल झड़ कर गिरने लगे, उसकी खाल सूखी और सख्त मालूम पड़ने लगी । गरदनमें से

छटांक भरसे भी कम भार वाली छोटी सी ग्रन्थिके निकालनेका कैसा परिणाम !

स्पष्ट है कि शरीर रक्षामें थौरोयडका कैसा महत्व पूर्ण प्रभाव है। आभ्यन्तर उद्गार पैदा करनेवाली ग्रन्थियोंमें यही मुख्य है। ग्रन्थियोंका काम है रुधिरमें से कुछ पदार्थोंको लेकर उनसे विशेष महत्वके पदार्थ बनाना। उदाहरणके लिए लाला ग्रन्थियोंको लीजिये। इनका काम है लाला रसका बनाना। इस प्रकार गैस्ट्रिक ग्रन्थियां गैस्ट्रिक रस बनाती हैं। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थियां नाली युक्त हैं अर्थात् इनमें बना हुआ रस नालियों द्वारा विशेष स्थानों पर आ निकलता है, किन्तु कुछ ऐसी भी ग्रन्थियां हैं जो अपना रस रुधिरमें ही मिला देती हैं। रुधिरमें से कुछ पदार्थ लेकर रस बनाती हैं और फिर रसको रुधिरमें ही छोड़ देती हैं। इन ग्रन्थियोंको नाली विहीन ग्रन्थि कहते हैं। थौरोयड भी नाली विहीन ग्रन्थि है।

उपर्युक्त कुत्तेकी थौरोयड ग्रन्थि डाक्टरने निकाल ली थी, परन्तु यदि किसी घटना वश वह ग्रन्थि बिगड़ जाय तो भी वही परिणाम होगा जो ऊपर दिखा आये हैं। जिन बालकोंकी शरीर वृद्धि सन्तोष जनक नहीं होती, जिनकी आकृति बिगड़ी होती है, जिनके चेहरेसे मूर्खता टपकती है उनके शरीरमें भी यह ग्रन्थि बिगड़ जाती है। यदि उन्हें थौरोयड ग्रन्थिका रसका सेवन कराया जाय तो बड़ा लाभ होता है। प्रौढ मनुष्योंमें भी जब यह ग्रन्थि बिगड़ जाती है तो तन्तुओंके नीचे म्यूकस इकट्ठा होने लगता है, जिसके कारण शरीरके अनेक स्थानों पर सूजन हो आती है। ऐसे मनुष्य भी सुस्त, बुद्धिहीन दिखाई पड़ने लगते हैं। उनकी चाल धीमी और डांवाडोल होती है, उनकी आकृति भी विचित्र हो जाती है। ऐसे मनुष्यको भी थौरोयड ग्रन्थिका रस देनेसे लाभ होता है।

कभी कभी देखनेमें आता है कि आदमीका गला सूजकर बढ़ने लगता है और गुल्म निकल आता है। इसीको घेंघा रोग कहते हैं; यह रोग भी प्रायः थौरोयड रसकी न्यूनतासे उत्पन्न होता है; यद्यपि इस रोगमें थौरोयड ग्रन्थि बढ़ जाती है और गले और स्वर्नाली पर दबाव पड़ने लगता है। इन लक्षणोंको देखकर यह समझा जाने लगता है कि थौरोयड रसका आधिक्य होगा, पर वस्तुतः बहुत कम आदमियोंको छोड़ न्यूनता ही पायी जाती है।

जिन रोगियोंमें इस रसका आधिक्य होता है उनमें भी गलेमें घेंघाके से लक्षण दिखाई पड़ते हैं, परन्तु और लक्षण बिल्कुल निराले होते हैं। चेहरे पर फिक्र और चुलबुलापन नज़र पड़ता है। चर्बी बढ़नेकी जगह तन्तु-क्षय आरम्भ हो जाता है। हृत्पिण्डकी गति बढ़ जाती है, थौरोयडके आकारके बढ़ जानेसे घेंघा सा दिखाई पड़ता है। आँखें बाहरको निकल पड़ती हैं। ऐसे रोगीको चुपचाप बैठना असम्भव हो जाता है। उसको थौरोयड रस देना मौतके मुंहमें ढकेलना है।

कुछ शल्यचिकित्सकोंने ऐसे रोगियोंको थौरोयड ग्रन्थिको काट कर आकार छोटा कर दिया है, ऐसा करनेसे रोगीको लाभ भी हुआ है। किन्तु सदैव यह सम्भव नहीं होता कि शस्त्रोपचार किया जाय, तब तो डाक्टर लोग आराम करनेकी ही सलाह देकर चुप हो जाते हैं।

—कृष्णस्वामी नायडू

अमर ज्वालाका प्रदेश

कास्पियन समुद्रके आस पासके प्रदेशसे अधिक आश्चर्य जनक शायद ही कोई अन्य भू भाग हो। प्राचीन कालमें वह समुद्रसे ढका हुआ था, जो उत्तरमें आर्कटिक महासागरसे सम्बद्ध था। उसी सुदूर भूतकालमें इस समुद्रका क्रमशः सूखना आरम्भ होगया था। हिम समान शीतल जल दक्षिण की ओर हटता हटता अन्तमें वर्तमान कास्पियन समुद्रकी सीमाके भीतर आ गया।

ज्यों ज्यों पानी हटता गया बंजड़ निकम्मी धरती निकलती गई जो अब भी वहां तक उसी प्रकार फैली हुई दीखती है जहां तक कि निगाह जा सकती है। निगाहको फरहत देनेवाले शस्य-समन्वित चरागाहोंका वहां सर्वथा अभाव है। सफेद रेत और लाल चिकनी मट्टीका असीम क्षेत्र चारों ओर फैला हुआ दृष्टिगोचर होता है, हां उसमें कहीं कहीं कुछ झाड़ झंकार अवश्य दिखाई दे जाते हैं। बीच बीचमें कहीं कहीं तो अनेक तूफानोंके पानीकी तेज़ धाराओं से कट कटकर गहरे खड्ड बन गये हैं और कहीं कहीं दल दली जगह हैं जिनमें नर्सल उग रहे हैं और चिकना मटैला पानी भरा हुआ है। वस्तुतः यह बंजड़ भूमि शाप दग्धा है।

हज़ारों वर्षों से यह भूभाग "अमर ज्वाला का प्रदेश" के नाम से विख्यात है। यह नाम सार्थक भी है। रात को यदि कोई इन मैदानोंमें चला जाय तो उसे धरतीकी दरारों और छिद्रों में जहां तहां चलती फिरती छोटी छोटी लौ दिखाई देंगी। इनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अग्निकी सहस्रों जिह्वाएं विनाशकी ओर आमंत्रित कर रही हैं। सच कहा है—

"A Savage place, as holy and enchanted.
As e'er beneath a waning moon was haunted.
By woman wailing for her demon-lover".

पुराने ज़मानेके लोग समझा करते थे कि यह ज्वालाएं भूत या प्रेत हैं; परन्तु वस्तुतः यह उस गैसके जलनेसे पैदा होती हैं जो पृथ्वीमेंसे निकलती है और अपने आप विशेष कारणों से जल उठती हैं। हज़ारों वर्षोंसे इस भूभागमें इसी भांति गैस निकलती रही है।

कास्पियन समुद्रके तट पर सुराखानी स्थान पर अग्निदेवके पुराने उपासकोंने एक मन्दिर भी बना रखा है, जिसकी गुम्बदोंसे जलती हुई गैसकी ज्वाला सदैव निकला करती है। यह स्थान उतना ही पवित्र माना जाता है जितना कि भारतवर्षमें ज्वालाजीका मन्दिर। दोनों जगह घटनाओंके कारण एक समान हैं। वहांके पुजारियोंका कहना है कि यह ज्वाला २८०० वर्षसे इसी प्रकार निरंतर जल रही है। यद्यपि यह कथन पूर्णतः ठीक नहीं प्रतीत होता, तथापि यह निस्सन्देह है कि इस घटनाका आरम्भ बहुत प्राचीन है। सम्भवतः जोरोआस्तरके समयसे, लगभग ३००० वर्षसे, यह सिलसिला चला आता है। वर्तमान मन्दिर भारतीयोंका बनाया हुआ है। यह वर्गाकार है। इसके आंगनके बीचों बीच एक चौकोर इमारत बनी है, जिसके चार स्तम्भ हैं। इसीके अन्दर एक गड्ढा सा बना है जिसमेंसे गैस निकल कर गुम्बद और उसकी चारों चिमनियों तक पहुँचती है। गैसका दबाव बहुत कम है; वह फूंककर बुझाई और दिया सलाई दिखानेसे जलाई जा सकती है। लौका रंग नीला है, उसमेंसे बहुत कम प्रकाश निकलता है; किन्तु रातको उसका रूप बहुत भयानक दीख पड़ता है।

इस मन्दिरकी दीवारोंमें अब भी बैठने या सोने के लिए अनेक स्थान बने हुए हैं; जानवरोंके बाँधनेके लिए भी स्थान और खनौटे बने हैं। इधर उधर बहुतसी छोटी छोटी कोठरियां बनी हैं। शायद यात्रियों और साधुओंके ठहरने, सोने और भजन करनेके लिए ही यह सब प्रबंध किया गया था।

इस मन्दिरके पास एक ५० फुट गहरा कुआं भी है। इसमें गैस धीरे धीरे जमा होती रहती है। एक जर्मन भ्रमणकर्ताने जिसका नाम कोच था यहां पर एक अजीब तमाशा देखा था। एक पुजारी और उसके कुछ शिष्योंने इस कुए पर एक गलीचा डाल दिया, ऐसा करनेसे गैसका बाहर निकलना बन्द होगया; कुछ मिनटोंके बाद, उसे उठा कर शीघ्रतासे एक झाऊका छोटासा गट्ठा लिया और उसमें जलता हुआ कागज़ बांधकर कुएमें डाल दिया और सब लोग वहांसे बेतहाशा भाग गये। एकाएक बड़े ज़ोरका धड़ाका हुआ और अग्निकी ज्वाला कुएमेंसे निकल आकाश तक पहुँच गई।

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १९ } कर्क, संवत् १९८१ । { संख्या ४

भोजन सम्बन्धी कुछ वैज्ञानिक बातें*

(लेखक—श्रीयुत डाक्टर मानकरण जी सारदा)

उपस्थित सभ्यो !

पूर्व वक्ताओंने आपको भजन गाकर और व्याख्यान सुनाकर भक्त मन-रंजन भगवान् कृष्णके चरित्रका अमृतरस पान करा तृप्तकर दिया होगा और उससे आपका मानसिक पेटभर गया होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु हम प्रत्यक्ष-वादी वैज्ञानिकोंकी दृष्टि तो आपके असली पेट पर ही है। वह उपवासके कारण कुलबुलाता हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। हमारे दृष्टि कोणसे वह खाली ही है, इसलिए हम आपको भोजनका विषय छेड़कर कुछ समयके लिए आशा रज्जुमें बांधकर ठहरा लेना चाहते हैं। भजनके बादका यही भोजन प्रसाद समझकर स्वीकार कीजिये। इस प्रसादसे न किसीका उपवास ही भंग होगा और न किसीकी प्रसाद खानेकी आशा लता पर तुषार ही पड़ेगा। कुछ सज्जन कहेंगे कि भूखे मस्त भारतवासियोंके लिए इसकी चर्चा ही वृथा है "क्या नंगी न्हायगी और क्या निचोड़ेगी" यहां पेट भर अन्न तो मिलता ही नहीं। वैज्ञानिक नफ़ासतको पैतरा बदलनेके लिए यहां स्थान कहांसे मिलेगा, परन्तु आज जिन नए पुराने वैज्ञानिक शोधोंकी

* श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन श्रीकल्याण औषधालय अजमेर के नवें वार्षिकोत्सव पर यह निबन्ध पढ़ा गया था जो लेजिसलेटिव असेम्बलीके मेम्बर रायसाहब श्रीयुत बाबू हर बिलासजी सारदा B. A., M. R. A. S. रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट जज अजमेर के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ था।

चर्चा आपके सामने करने चला हूं वह आपको आश्चर्य होगा कि उस ज़माने की है जब सारा यूरोप महाभारतकी लड़ाईमें चूर होकर फ़ाके मस्तीके खेल खेल रहा था।

भारतवर्षसे भी अधिक कठिनाइयोंका सामना यूरोपवालोंको पापी पेटके लिए करना पड़ा था। इस चमड़ेके झोपड़ेकी आग बुझानेके लिए कई वैज्ञानिकोंको प्रयत्न करने पड़े थे। उसका फल यह हुआ कि आज पश्चिमी वैज्ञानिक जगत्के विचार लेबोरेटरी और अस्पतालोंकी भट्टियोंमें पकपक कर हमको यही आदेश दे रहे हैं कि बाहरी आडम्बरोंके पीछे मत दौड़ो। कलोंका उपयोग भोजन सामग्रीके बनानेमें करके कालके गालमें मत जाओ। अपने कलकल करते हुए जीवनको कलमय बनाकर कलका कल मत करो, पुरानी सीधी सादी देहाती रीतिसे पकाई हुई रसोईका भोग करो इसीमें तुम्हारा कल्याण है। इस परिवर्तनकी प्रथा भी बड़ी मनोरंजक है। सुनियेः—

वैसे तो भोजन क्या होना चाहिये यह प्रश्न बाबा आदमके ज़मानेसे उठा हुआ है। स्वयं अल्लामियां अदनके बाग़में आदमको अन्नके वृक्षके पास बैठा कर यह आदेश करके चल दिये कि मेरे कहे बिना उसको खाना नहीं; आदमने बदक़िस्मती या खुशक़िस्मतीसे अन्न खा लिया; परिणाम स्वरूप 'मृत्युलोककी सैर' की सज़ा भुगतनी पड़ी। बाबा आदम तो चल बसे अब उनकी आल औलादका निस्तार भी उस मृत्युलोकसे नहीं होता; क्योंकि न तो अल्लामियाँ अन्नके एवज़की चीज़का एलान करते हैं न यह विवाद खत्म होता है। बड़े बड़े ऋषि मुनि वैज्ञानिक वैद्य हकीम डाक्टरोंने विचारसागर में गोते लगाये; डपोलशंखी आततायियोंने बे परकी छोड़ीं; परन्तु फल कुछ भी न हुआ; विवाद बना रहा 'खुदाकी हिकमत खुदा ही जाने'। पश्चिमी वैज्ञानिकोंकी यूरोपीय महायुद्धसे कुछ अर्से पहले यह धारणा होगई थी कि आहार विचार मुकम्मिल हो चुका है, इसकी थाह पा ली गई है; इससे आगे गति नहीं हो सकती। परन्तु हमारे इस ज़माने के महाभारतने जहाँ भूगोलके नक़शेमें काटछांटकी वहां वैज्ञानिक संसारमें भी लीपापोती करदी। यूरोपमें उस समय आवश्यक पदार्थोंकी यथा दूध, घी, पकवान, शकर इत्यादिकी कमीने आंखें खोल दीं। वैज्ञानिकोंने जांच करके मालूम किया कि लोग ज़रूरतसे ज़्यादा परिमाणमें खाना खाते हैं। यदि मुख्य तत्वोंका ख़्याल रखकर भोजन करें तो बहुत थोड़े से ही काम निकल सकता है। जर्मनीने इन बातोंको कार्य रूपमें परिणत करके दिखला दिया कि कम भोजन करते हुये भी जनताका स्वास्थ्य ऊंचे दर्जेका रह सकता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सबसे नीचा परिमाण ही हरेकके लिए यथेष्ट है। मैं उन गर्म दलवालोंमें नहीं हूं जो महात्मा गान्धीके वाक्यको प्रत्येक विभागमें ब्रह्म वाक्य मानकर केवल आठ दस रुपये भर खूराक मनुष्य को देकर उसके पेटको पाटी बांध देना चाहते हैं, गान्धी जीके स्वराज्यके भोजन मन्त्री इसी ब्रह्म वाक्यानुसार यदि क़ानून बनायें तो सचमुच कइयोंको भूखसे सत्याग्रह करनेकी नौबत आ जावे। हम लोगोंको याद रखना चाहिये कि हमारा शारीरिक यन्त्र कोई रसायन तोलनेकी टकसाली तराजूकी तरह नाज़ुक नहीं है; वह आख़िर शरीर है और मौक़ेके अनुसार चढ़ाव उतार करनेकी उसके लिए आवश्यकता हो सकती है। एक धूल का कण घड़ीकी हरकत रोक सकता है, परन्तु ऐसे कई कण मिलें तब जाकर कहीं हमारे दिलकी धड़कन बन्द कर सकते हैं। क़ालिबवाले दिलका शोर कुछ घड़ी की तकतक नहीं है; यह कहते हुए मुझको एक और शरीरको मशीन बतानेवालेकी बात याद आ जाती है।

आजकल मनुष्यको केवल मशीन माननेवाली तथा बनाने वाली यदि कोई संस्था है तो वह फ़ौजी विभाग है, क्योंकि आजकलकी लड़ाई कोई वीरताकी लड़ाई नहीं रही, मशीन और विज्ञानकी लड़ाई रह गई है, इस कारण फ़ौजी

आदमियोंका ध्येय अपने आपको मशीनके समान ही बना देनेका होता है; इस विभागके देहरादून-वाले फ़ौजी कालिजका निरीक्षण करके एक सज्जन को बड़ा विस्मय हुआ; क्योंकि उसमें उनको उनकी आशाके अनुसार वीर बाना देखनेको नहीं मिला। वहां जो कुछ भी शिक्षा रहन सहन देखनेको मिली वह राइट लैफ़्ट (Right left) के ढंगकी फ़ौजी क़वायदके समान जीवन शून्य मशीनकी जैसी मालूम हुई। लड़का छोटा हो या बड़ा एक सी लम्बी खाट एकसी आलमारी, एकसी पोशाकका प्रबन्ध था, आठसे लेकर इक्कीस वर्ष तकके छोटे बड़े सब विद्यार्थियोंके लिए वही बराबरकी तोलका खाना दिया जाता था, चाहे बड़े भूखों मरें और चाहे छोटे आवश्यकतासे अधिक पाकर भरे पेट यों ही मेज़ पर छोड़ दें। सबको एक ही लकड़ीसे हांकना। मार्शल ला ही जो ठैरा। बड़ोंको भूखों रहनेकी संभावना पर उक्त सज्जनने कमांडरसे अपने विचार प्रकट किये, कमांडरने कहा कि बड़ोंको भूखा तो नहीं रहना चाहिये क्योंकि यह टकसाली खूराक डाकृरोंकी अनुमतिसे बनाई गई है, हिसाबसे औसत ठीक पड़ जाता है। उसको सुनकर काज़ी जीकी वह मसल याद आ जाती है कि—

"लेखा जोखा ज्यों का त्यों, बच्चे बच्ची डूबे क्यों"

शरीरको मशीन समझनेवालोंका बोल बाला बहुत दिन रहा; वैज्ञानिक संसार अब उनकी अन्त्येष्टि कर चुका है।

विख्यात वैज्ञानिक वैलिस साहबका मत है कि हम शरीरके अवयवोंके नवसंगठनके और उनमें शक्ति पैदा करनेके हेतु भोजन करते हैं। मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकारका भोजन करके जीता भी है और फलता फूलता भी है। एक अंग्रेज़का भोजन बिस्कुट, रोटी, गरमा गरम चाय है तो दूसरी ओर हिन्दूका दाल बाटी चूरमा है। मुसलमानके कबाब कटलस शोरबेमें और हिन्दूके दालभात रोटीमें बहुत अन्तर है; परन्तु इतना होनेपर भी सब जातियाँ अपनी अपनी हस्ती क़ायम रखे हुए हैं। इससे सिद्ध होता है कि हमारी शारीरिक संचालन कला एकसी है, वस्तुतः इसके मूलाधार द्रव्य भी एकसे ही हैं।

बहुत दिनों तक लोग मांसका विश्लेषण करके यही समझते रहे कि शरीरकी खूराक भी इसी विश्लेषणके अनुसार छैना, बसा, शकर जातीय पदार्थों तक तथा लवण और पानी आदि मूल द्रव्यों तक ही मर्यादित है। जैसे अंजनमें कोयला पानी छोड़ देनेसे भाप द्वारा शक्तिका संचार हो जाता है वैसे ही शरीरमें प्राण वायुका होता होगा, परन्तु अब इस विचारकी इतिश्री हो गई है। नए शोधोंने बतलाया है कि हमारे शरीरके लिये कुछ और द्रव्योंकी आवश्यकता होती है जिनको कि शरीरके मसाले कह सकते हैं। भोजनमें इनके यथेष्ट परिमाणमें नहीं होनेसे शरीर तुरन्त रोगग्रसित हो जाता है।

सन् १९०६ में प्रोफ़ेसर हाफ़किन्सने "छैना जातीय पदार्थ ही सब कुछ है" इस सिद्धान्तके खिलाफ़ आवाज़ उठाई और यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि भोजन खमीरके बिना निकम्मा है। मांसाहार ही जीवनके लिये कोई आवश्यक वस्तु नहीं है। करोड़ों चीनी जापानी रोटी चावल शाक पर रहकर ज़िन्दगी बसर करते हैं। प्रोफ़ेसर हिन्दि दे ने कोपिनहेगनसे परीक्षण करके यह सिद्ध किया कि आलू रोटी घी पर आदमी अच्छी तरह रह सकता है। इन सब नूतन आविष्कारोंका मूल तत्व यह है कि :—

(१) भोजनकी उपयोगिता न उसके छाना बसा इत्यादि पर निर्भर है और न उसके ताप पर ही है अपिच—

(२) खाद्य-वस्तुओंकी भौतिक अवस्था पर,

(३) खास पदार्थोंमें मिले हुए जीवन मसालों पर,

(४) मनुष्यकी पाचन शक्ति और

(५) मनुष्यकी मानसिक अवस्थापर निर्भर है

ताज़ा टटके तोड़े हुए फल फूलोंमें विद्युत प्रवाहसा चलता रहता है। यह शक्ति शरीरके लिए बड़ी गुणकारी है। इस मतकी पुष्टि डाक्टर 'मूट्ठ' जैसे विख्यात राजयक्ष्मा-चिकित्सा-विशारदने की है। नवीन ढंगके बनाए हुए सेनिटोरियमका आजकल फल फूलोंका बगीचा एक आवश्यक अंग इसी कारण हो गया है। गाँववालोंको बड़े शहरवालोंकी बनिस्बत इस लिहाज़से बड़ा सुभीता; है क्योंकि उनको ताज़ा भोजन सामग्री आसानीसे मिल जाती है। इसी कारण उनका स्वास्थ्य भी हज़ार सभ्यताकी डींग हांकनेवाले नागरिकोंसे अच्छा रहता है। सच बात तो यों है कि नवीन सभ्यताने भोजन विभागमें हमारे जीवनको कृत्रिम रूप देकर व्याधियोंका शिकार बना दिया है और शायद (वैद्यराज और डाक्टर साहब क्षमा करें) नगरके वैद्य डाक्टरोंके धन्धोंको दिन दूना रात चौगुना कर देनेमें काफ़ी हाथ बंटाया है। इसी सभ्यताके भूतके वशीभूत होकर हम भोजनके सारोंको अथवा 'जीवनमसालों' को निकम्मा समझकर फेंक देते हैं और आख़िर अपने शरीरोंको भी निकम्मा बना डालते हैं।

उपर्युक्त सार या मसालोंमेंसे एक है 'घीघुलन' पदार्थ जिसका ए. A नाम है इस A के प्रताप से ही शरीरकी वृद्धि या बढ़ोतरी होती है और प्राणी मोटा ताज़ा हो जाता है। अतएव सूखे हुए बच्चों और अस्थि पञ्जर शेष तपेदिक़के रोगियोंके लिए परम आवश्यक वस्तु है। ताज़ा, दूध, घी अंडे तथा मछलीके तेलमें यह पदार्थ अच्छे परिमाणमें मिलता है।

इस कारण बालकों तथा क्षयी रोगियोंके लिए ताज़ा दूध और घी उत्कृष्ट पदार्थ माने गये हैं।

डिब्बेके दूध देनेकी प्रथा जो नवीन सभ्यताके साथ साथ हम लोगोंमें घर कर रही है इस ही कारण बड़ी हानिकारक है; क्योंकि उन डिब्बोंके दूधमें यह पदार्थ नहींके बराबर होता है और बच्चोंको कोरा फुफ्फ़स बनाकर निर्जीव सा बना देता है। ताज़ा दूधका प्रबन्ध करना बच्चोंको स्वस्थ रखनेके लिए अत्यन्त आवश्यक है। बाज़ारका दूध, इसमें सन्देह नहीं मोतीझिरे और हैज़ेके कीटाणुओंसे दूषित रहता है। साथ ही साथ बेचनेवालोंकी ईमानदारीके कारण बासी गन्दे पानी से मिला हुआ स्वास्थ्यको अधिक हानिकारक है; इन दोषोंसे बचनेके लिए यदि हो सके तो आप घरमें गाय रखिये। ऐसा करनेसे 'एक पंथ दो काज' होंगे; गौ सेवाका मौक़ा मिलेगा—गोभक्ति द्वारा जहां भगवान् कृष्णके अनुगामी होकर सच्चे आर्य कहलानेके लिए अपना मस्तक ऊंचा कर सकेंगे वहां आप अपनी सन्तानको हृष्ट पुष्ट बनाकर अपना कर्तव्य भी पालन कर सकेंगे। धर्म और अर्थ दोनोंकी प्राप्तिका सुगम मार्ग आपके लिये खुला है; आप चाहें लें चाहे छोड़दें। जो ऐसा नहीं कर सकते वे अपने बच्चोंकी ख़ातिर बकरी पालें और उससे अपने बच्चोंकी परवरिश करें। जो इसमें भी असमर्थ हैं उनके लिए बरबस होकर यही कहना पड़ता है कि आपत्तिकालमें धर्मका पालन करें और काड लीवर आयल आदि देकर जैसे तैसे बच्चोंके जीवनको बचावें।

सभ्यता द्वारा तिरस्कृत किये हुए दूसरे मसाले या सारका नाम है बी. B.। यह पानीमें आसानीसे घुल जाता है और बहुत से पदार्थोंमें विद्यमान् है। यहां विस्तार भय से हम दो मुख्य खाद्य पदार्थोंका उदाहरण देकर मूर्खताका रहस्य बतलाएंगे।

पहले आप गेहूंको ही लेलीजिये—हम जितना अमीरी और शाइस्तगीका दम भरते जाते हैं उतना ही हम अपनी रोटीको सुफ़ैद, मुलायम, ख़स्ता मैदाके समान महीन बनानेका प्रयत्न करते जाते हैं। इस धुनमें पड़ कर हम अपनी सेहतमें भी घुन लगा लेते हैं और शाइरको यह कहनेका मौक़ा देते हैं "न वह दांत रहे न वह आंत रही।" सचमुच हमने आटेको सुफ़ैद बुर्राक़ बनानेकी लौमे दांतोंके दांत निकाल दिये और आंतोंका अन्त कर डाला।

तभी तो आजकल सुफ़ैद, नर्म, ख़स्ता कल चक्की के पिसे हुए आटेकी रोटी खानेवाले शहरियोंकी यह दशा है कि अस्सी फ़ी सदीके दांत कमज़ोर होकर शीघ्र गिर जाते हैं। संग्रहणी और बदहज़मीकी शिकायतोंके दफ़्तर दिमाग़में खुलकर चैनसे बैठने नहीं देते। वास्तवमें बात यों है कि हम सभ्यताके पेचमें पड़कर गेहूंके कणोंको मशीनमें पिसवा पिसवा और महीन छनवा छनवाकर नाश कर देते हैं। इन कणोंमें ही सारा 'जीवनसार' जिनका ऊपर वर्णन किया गया है विद्यमान् रहता है हम उसको चापट बनाकर निकाल फेंकते हैं। मशीनसे साफ़ किये हुए गेहूं (जैसे कि यहां भी पारसाल आस्ट्रेलियासे आए थे) इन कणोंसे हीन हो जाते हैं अतएव उनका महत्व जाता रहता है। आजकल हम बड़ी खुशी खुशी अपनी थोड़ी सी वेगारके टालनेके हेतु अजमेरमें भी कलचक्कीसे आटा पिसानेके आदी होते जा रहे हैं। कलचक्कियाँ इन कणोंका नाश कर देती हैं और आटेको इस आवश्यक मसालेसे वंचित कर देती हैं। इसका आगे जाकर हमारे स्वास्थ्य पर बहुत भारी हानिकारक असर पड़ेगा। अब भी समय है कि हम चेत जाएं और अपनी हाथ चक्कीकी पुरानी दोस्ती निबाहें। सुफ़ेद डबल रोटीको काममें लाना इसी कारण हानिकारक है। दूसरी चीज़ जिसकी कि पूंजीवालोंकी मशीनोंने महिमा मेट दी है 'चावल' हैं। बंगाली बाबू बर्फ़के समान सुफ़ैद चावलको बहुत पसन्द करते हैं। इस ही गोरी सफ़ैदीके फेरमें पड़कर उन्होंने रंगूनी चावल खाना पसन्द किया, थोड़े दिनोंके बादही उन्हें फल भुगतना पड़ा। ऐसे फ़ैशनेबुल बाबुओंके गढ़ कलकत्तेमें बहुत ज़ोरसे जलमय शोथका रोग फूट पड़ा। रंगूनी चावल रोगका कारण ठैराये गये। चावलोंका तोन बटा चार सार या उपर्युक्त मसाला छिलकेमें रहता है, रंगूनी चावलोंका यह छिलका मिलमें उतार दिया जाता है। इसी कारण उपर्युक्त मसालेकी कमीने यह बीमारी फैलादी। चावलोंमें मसालेकी कमीका प्रत्यक्ष प्रमाण भी कलकत्तेमें वहींका वहीं मिल गया। जहां बंगालियोंके टोलके टोल इस बीमारीसे जकड़े जाकर खीरा ककड़ोके समान गिर गये वहां कलकत्तेके मारवाड़ी बच्चेका बाल भी बांका न हुआ। मारवाड़ी लोग चावलोंकी खिचड़ी खाते हैं, खिचड़ीकी दालमें यह पदार्थ काफ़ी परिमाणमें रहता है और इसी कारण चावलोंके सारकी कमीको खिचड़ीके सार ने पूरा कर दिया और उनमें बीमारी नहीं फैलने दी।

इस उपयोगी मारवाड़ी प्रथाकी चर्चा करके हम दूसरी मारवाड़ी प्रथाका भी ज़िक्र इसी सम्बन्धमें करना उचित समझते हैं, यह प्रथा खेलड़े खानेकी है। खेलड़े सूखे हुए शाक भाजीके टुकड़े होते हैं। जिनको कि मारवाड़में पकाकर लोग हरे शाककी ग़रज़ पूरी कर लेते हैं और इस तरह इसकरवी नामकी भयंकर बीमारीसे बच जाते हैं। यह बोमारी बहुत समयसे सेनाओंको और जहाज़ी लोगोंको तंग करती रही है; क्योंकि इन लोगोंको ताज़ा हरा शाक खानेको नहीं मिलता। इस बीमारीका मुख्य कारण भोजनमें एक और मसालेकी कमी है जिसको कि C सी कह सकते हैं। यह मसाला ताज़े हरे शाकोंमें पाया जाता है। निम्बूके रस और आलूमें इसकी मात्रा खूब है, अस्तु। मैसोपुटेमियाके युद्ध क्षेत्रमें बारबरदारीकी कमीके कारण फ्रांसकी ट्रैंचोंके समान गर्मागर्म पूरी आलू नहीं मिले, बहुत दिनों तक कोरी रोटी और चावल खानेसे ही उनमें यह वबा फैलगई। खूनकी नलियोंसे लोहू फूट फूट कर जिल्दके नीचे जमने लग गया। सैकड़ोंके प्राण इसी खूनी गुप्त गंगा ने हरण कर लिये। मैदानमें इन वीरोंके खूनकी नदियाँ बहनेका मौक़ा ही न आया इस रोगसे बचनेके कई प्रयत्न सोचे गये।

ताज़ा फल शाक यहां तक कि आलू भी हिन्दुस्तानसे मेसोपोटेमिया हज़ारों आदमियोंके लिए भेजना बहुत कठिन प्रतीत हुआ, समस्याको हल करनेके लिए परीक्षण हुए और उनका परिणाम यह

निकला कि धूपमें सुखाए हुए शाक भाजियोंका मसाला सूखने पर बर्बाद नहीं होता यथावत बना रहता है। इस कारण ऐसे सूखे हुए शाक यदि ताज़ा शाकोंकी जगह काममें लाये जावें तो स्कर्वी बीमारी नहीं फैल सकती। प्रथा वही वैज्ञानिक सिद्ध हुई जो कि राजपूतानेके लोग हज़ारों वर्षोंसे खेलड़ोंका शाक बनाकर स्वस्थ जीवनके लिए बरत रहे हैं। हां एक और बात भी उन परीक्षणोंसे ज्ञात हुई, वह यह है कि स्कर्वीके रोकनेवाला मसाला कुल्ला फूटे हुए द्विदल अन्न (दो दालवाले अन्न मूंग चना आदि) में काफ़ी पैदा हो जाता है। यदि यह अन्न ४८ घंटेतक भिगो दिये जावें तो उनमें अंकुर फूटने लगते हैं जैसा कि बछबारस (वत्सद्वादशी)के रोज़ हमारे कई मारवाड़ी भाइयोंने अनुभव किया होगा। कई मारवाड़ी घरोंमें २४ घण्टे तक मूंग मोठ आदि भिगो कर बनानेकी प्रथा है। यह प्रथा भी मारवाड़ जैसे देशके लिए सर्वथा उपादेय है, क्योंकि इससे तीसरे भोजन मसालेकी कमीकी पूर्ति हो जाती है।

ऊपर कहे हुये मसाले ऊंचे दर्जेकी गर्मी पाने पर उड़ जाते हैं, हां मन्द मन्द तापमें सुखाए जाने पर वे खाद्य पदार्थोंमें बराबर बने रहते हैं। १२० दर्जेसे ऊंची गर्मीको वे सह नहीं सकते। इस कारण टीनके डिब्बोंमें भरकर विदेशसे आए हुए खाद्य-पदार्थ इन मसालोंसे हीन हैं, क्योंकि उनके भरने में १२०° दर्जेसे ऊंची मात्राकी गर्मीका उपयोग किया जाता है। इन डिब्बोंके बढ़ाते हुए प्रचार को रोकना सर्वथा श्लाघनीय है। बस अब मैं आगे आपको रोकना भी नहीं चाहता; इतनेमें ही भोजन सम्बन्धी सब नए पुराने वैज्ञानिक शोध आ जाते हैं। मेरी इच्छा है कि आप इनसे लाभ उठावें और अपने जीवनको सुखमय बनाने का प्रयत्न करें। पुरानी प्रथाओंको जब तक कि वह हानिकारक न जचें न छोड़ें और प्रमाद या आलस्यमें पड़कर अपने जीवनके आनन्दको तिलांजलि न दें।

भोजन सर्वदा प्रसन्न होकर पावें क्योंकि मनो-वृत्तियोंका भूखपर बहुत असर पड़ता है। हंसी खेल खुशी राग रंगकी वृत्तियोंसे जितनी अधिक भूख चमक जाती है उतनी ही मुहर्रमी सूरत बनाये रहनेसे कुढ़नेसे चिन्ता करनेसे परती जाती है। नानी और दादियोंका यह कहना कि 'कुढ़कर रोटी खाने से रोटी अंग नहीं लगती' ठीक जानो। बिना भूखके खाया भोजन कभी नहीं पचता है। अन्तमें फिर मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि भोजनके मसालोंको भूलो नहीं। यह ताज़ा दूध घी मक्खन निम्बू शाक पात इत्यादिमें गेहूं और चावलोंके कणोंमें निवास करते हैं। भोजन को बहुत देर तक या अधिक आंचपर नहीं पकाना चाहिये। नए ढंगके कुकर (Cooker) इत्यादि में भोजन छोड़ कर घंटों पकाते रहनेकी प्रथा भी मसालोंको उड़ा देती है; इस कारण यह हानिकारक है। बस अब मैं यहीं हरि ओ३म् शान्ति कहता हूं। यदि किसी सज्जनकी भूखको चर्चा रूपी दाने बखेर कर मैंने तेज़ कर दिया हो तो क्षमा चाहता हूँ।

—मानकरण सारदा।

अमेरिकामें आधुनिक शिक्षा सम्बन्धी सुधार

[ले०—अध्यापक विश्वेश्वरप्रसाद, बी. ए.]

अमेरिकाके आधुनिक शिक्षा सम्बन्धी सुधारोंको तीन विभागोंमें बांट सकते हैं—(१) प्रारम्भिक शिक्षा, (२) उच्च शिक्षा, (३) अनपढ़ नागरिक।

(१) प्रारम्भिक शिक्षा

साधारणतया यूरोपके देशोंमें अमेरिकाकी अपेक्षा विश्वविद्यालयकी पढ़ाई तक दो बरस कम समय लगता है, यह बात अमेरिकनको भली नहीं जान पड़ती। अमेरिकन सर्वदा इस बातका गर्व करता है कि वह संसारके सब देशोंसे आगे है; फिर इसमें क्यों पीछे रहे; अतएव आजकल

वहां अनेक उपाय सोचे जा रहे हैं कि यह दो बरसका समय कैसे घटाया जाय।

विश्वविद्यालयमें जानेसे पहले वहां ८ बरस तो प्रारम्भिक पढ़ाईमें लगते थे और ४ बरस हाईस्कूलमें; अब इस काल क्रममें यह परिवर्तन हुआ है कि प्रारम्भिक शिक्षाका समय ८ के स्थान में ६ बरस कर दिया गया है और हाईस्कूलके दो हिस्से करके दोनों ३, ३ बरसके कर दिये गये हैं; थोड़े दिनमें आशा है कि प्रारम्भिक शिक्षाका समय ४ बरस कर दिया जायगा।

(२) उच्च शिक्षा

विश्वविद्यालयमें जानेसे पहले कालेजमें पढ़ना होता है; अभी तक कालेजमें डिग्री नहीं दी जाती थी; अब विचार है कि पहली डिग्री कालेजमें मिले और इस कालेजका विश्वविद्यालयसे वैसाही सम्बन्ध हो जैसा हाईस्कूलके पहले तीन बरसोंका पिछले तीन बरसोंसे है।

अभी तक अमेरिकामें भी विश्वविद्यालयोंका साम्राज्य रहा है अर्थात् विश्वविद्यालयोंके पाठ्यक्रमके अनुसार स्कूलोंके पाठ्यक्रम बनाये जाते हैं; अब आन्दोलन किया जा रहा है कि विद्यार्थियोंको जिन विषयोंके पढ़नेकी आवश्यकता पड़े वह पढ़ाये जावें। इसका फल यह होगा कि धीरेधीरे विश्वविद्यालयोंमें ऐसे जीविका प्राप्तिके विषयोंका प्रवेश हो जायगा जो साधारणतया अभी विश्वविद्यालयोंके योग्य नहीं समझे जाते।

(३) अनपढ़ नागरिक

जर्मनीमें	अनपढ़ संख्या	०.२	प्रति सैकड़ा	है
इंगलैण्डमें	"	१.८	"	है
फ्रान्समें	"	४.०	"	है
अमेरिकामें	"	६.०	"	है

आश्चर्य जान पड़ेगा कि अमेरिकामें यूरोप और इंगलैण्डकी अपेक्षा अधिक अनपढ़ हैं।

कारण इसका यह है कि अन्य देश निवासी अमेरिकामें बराबर आते रहते हैं; यह लोग विशेषतया यूरोपके दक्षिण-पूर्व भागसे आते हैं; इनको अमेरिका नागरिकके दर्जे तक पहुँचानेमें कठिनाइयां पड़ती हैं; तथापि अब प्रयत्न किया जा रहा है कि १९२७ ई० या १९३५ ई० तक अवश्य अनपढ़ बिलकुल न रहेंगे।

अपने देशकी तुलना और किसी सभ्य देशसे करनेमें लज्जाका ही सामना करना पड़ता है।

न जाने अभी कितना समय लगेगा जब हम भी गर्वसे अपना सिर ऊंचा कर सकेंगे और अन्य देशवासियोंके सामने लज्जित न होना पड़ेगा।

सरकार तो इस दुर्दशाके लिए उत्तरदायी है ही, हममेंसे वह शिक्षित लोग भी जो कुछ भी इन बातों पर विचार करते हैं उतने ही नहीं बल्कि और अधिक उत्तरदायी हैं। इस सम्बन्धमें शिक्षकोंका अधिक कर्तव्य है। सर्वसाधारणमें शिक्षाके महत्वको फैलाना, शिक्षाके लिए अधिक दान देनेकी चेष्टा उत्पन्न करना, इत्यादि अनेक आवश्यक कार्य शिक्षक वर्ग तभी कर सकता है जब स्वार्थके साथ साथ देश सेवा त्याग और अपने जीवन द्वारा आदर्शोंके प्रतिपादनका ध्यान इसे निरन्तर बना रहे।

प्रकाशकी उत्पत्ति

प्रकाश कई अवस्थाओंमें उत्पन्न होता है और जिन कारणोंसे इसकी उत्पत्ति होती है वह हम विस्तारपूर्वक सुगमतासे वर्णन नहीं कर सकते। कुछ प्रसिद्ध विद्वानोंका अनुमान है कि प्रकाश सब पदार्थोंमें प्रवेश कर सकता है और वह उन पदार्थोंका अंश भी है। कदाचित् इस लेख पर कई महाशयोंको शंका हो; परन्तु विचार करने पर सन्देह दूर हो जायगा। कई पदार्थ ऐसे होते हैं जो कुछ समय सूर्यकी किरणोंमें रखे जानेके पश्चात अन्धकारमें प्रकाशमान रहते हैं अथवा यों समझिये कि वह प्रकाश निकालते हैं। जैसे बैरियम गन्धेत अथवा बाल्डविनका फ़ास्फ़ोरस (Baldwin's

Phosphorus) और ऐसे किसी अन्य पदार्थको पहले धूपमें रखके पाछे ऐसे स्थानमें ले जायं जहां प्रकाश न हो तो फ़ास्फ़ोरस (Phosphorus)की भांति कुछ समय तक चमकते रहते हैं। कहते हैं कि धूपमें रखनेके थोड़ी देर पाछे ही हीरे पर काले रङ्गका मोम चढ़ा दिया जावे तो मोम छुटा देनेके कई वर्ष पश्चात् तक उसमें प्रकाश स्पष्ट प्रकट रहता है। परन्तु इन पदार्थोंमें उसी रङ्गका प्रकाश नहीं होता जिस रंगकी किरणें इनपर पड़ती हैं। इससे अनुभव होता है कि कई पदार्थ तथा वस्तुएं प्रकाशका कुछ भाग सोख लेनेका स्वभाव रखती हैं।

कई ऐसे कीट भी होते हैं जिनमें यह स्वभाव पाया जाता है। ऐसे जीव प्रकाशको अपने शरीरमें आकर्षित करके अपनी इच्छानुसार उसको निकालते हैं। ग्लो वर्म (Glow Worm) नामका चमकनेवाला जीव इङ्गलैण्ड देशके कई स्थानोंमें पाया जाता है और इसकी चमक गंधकके जलनेके प्रकाशसे मिलती जुलती है। लेकिन यह गुण मादा कीड़ेमें ही होता है, जिसके पर नहीं होते और आकारमें गुबरैलेकी इल्ली (Larva) से मिलता जुलता है। वैस्ट इन्डीज़ (West Indies) में एक और प्रकारका फुदकनेवाला कीड़ा होता है जिसे इलेटर (Eleter) कहते हैं। इसमें यह गुण ग्लो वर्म नामक कीड़ेसे भी अधिक होता हैं। यह कीड़ा लगभग एक इन्च लम्बा होता है। इस कीड़ेके शरीरके दोनों भागोंके मध्यमें दो नगीनेसे उभरे हुए होते हैं जिनके हम आर पार देख सकते हैं। यह जीवके नेत्रोंकी न्याईं प्रतीत होते हैं परन्तु यह नेत्र नहीं होते। इन नगीनोंमेंसे यह छोटा सा जीव ऐसी तेज़ रोशनी निकालता है कि यदि इस कीड़ेको उठा कर अंधेरेमें अत्यन्त ही छोटे टैपकी पुस्तक पर छोड़ दें तो जिस जिस स्थान पर यह रींग कर जावेगा वहांके अक्षर बड़े सुभीतेसे पढ़े जा सकते हैं। अनेक विद्वानोंका कथन है कि ऐसे गुण रखनेवाले जन्तुओंके शरीर में एक प्रकारका जल होता है और इनका प्रकाशमान होना उसी पर निर्भर है। यदि ऐसे कीड़ोंको किसी शीशी इत्यादिमें बन्दी करके प्राण हर लिए जावें तो यह चमत्कार क्रमशः लुप्त हो जाता है, इसलिये यह निर्णय नहीं होता कि उस कीड़ेमें प्रकाशकी शक्ति आपही अपनी पैदाकी हुई है या कोई अन्य वाह्य कारण है। इसका परिचय योंभी मिलता है कि जीवकी मृत्युके पश्चात् कुछ समय तक जब तक वह शुष्क नहीं हो जाता उसके शरीरमें से प्रकाश अवश्य निकलता रहता है।

पटबीजने (जुग्नू) के शरीरमें भी इसी भांति एक प्रकारका जल होता है; उसे जहां लगा दिया जाता है वहांसे हलका सा प्रकाश निकलता है; सूख जाने पर नहीं रहता।

जिन महाशयोंने शिमलेकी सैरकी है उन्होंने देखा होगा कि बर्सातके बाद रात्रिके समय पर्वतों की कन्दराओंमें कोई जीव ऐसा होता है जो अपने शरीरसे किट्सन (Kitson) गैसके लेम्पकी सी रोशनी निकालता है; यह रोशनी बराबर लगातार रहती है। यदि इस कीड़े पर बिजलीके जेबी लेम्पकी ज्योति डाली जाय तो यह सुकड़ जाता है और ज्योति बन्द कर लेता है।

अनेक प्रकारकी मछलियोंमें भी यह गुण होता है। फ़ोलास (Pholas) और लेम्पीरस (Lampyris) नामकी मछलियाँ चिरकालसे तारोंके समान झिलमिलाहट प्रकट करनेवाली विख्यात हैं। प्राचीन रोमन लोगोंमें वार्त्ता प्रसिद्ध थी कि जब वह लोग इन मछलियोंको रात्रिमें भक्षण करते थे तो अपने घरोंमें अंधेरा कर लेते थे। इससे उनके दो कार्य सिद्ध होते थे, एक तो उदरपूर्त्ति होती थी दूसरे इनके ही द्वारा घरमें चांदना रहता था।

इसी भांति एक और प्रकाशका स्वरूप है जो लालटेन वाले जैकके नामसे विख्यात है (Will o' the wisp or Jack with the lantern) इसे विलायतके किसान तथा ज़मींदार लोग भूत प्रेत या छलावा समझते हैं। इसके प्रकाशके सहारे चलनेवाले पथिक अपना पथ भूल कर

प्रायः कीचड़ और दलदलमें फँस जाते हैं। मिस्टर ब्राडले (Bradley) का अनुमान था कि यह प्रकाश चमकनेवाले सैकड़ों जीवोंके एक साथ मिलकर रहनेसे होता है। मिस्टर रे (Ray) का भी यही मत था। परन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि अनेक स्थानोंमें एक प्रकारकी गैस (Gas) होती है जिसमें फ़ास्फ़ोरस (Phosphorus) और हाइड्रोजन (Hydrogen)का अंश होता है; यह वायु मंडल की साधारण गर्मीसे जल उठती है।

यह प्राकृतिक क्रिया तीव्र शक्ति रखनेवाली भापसे उत्पन्न होती है जो सड़ने लगती है। जब ऐसे जीवांश और शाक पात आदिके कण जिनमें उज्जन और फास्फोरस होता है किसी गुप्त विधि से सड़ने आरम्भ होते हैं तो प्रकाश उत्पन्न होता है। यही दृश्य उन मछलियोंके सम्बन्धमें होता है जिनके विषयमें हमने लिखा है।

किसी वस्तुके जलनेसे भी प्रकाश उत्पन्न होता है। इसकी कई बनावटी विधियां हो सकती हैं। कूज़ेकी मिश्रीके दो खण्डोंको आपसमें रगड़ने से भी पीले रंगकी ज्योति निकलती है। न्यूज़ीलैण्ड (Newzealand) तथा और देशोंके लोग दो लकड़ीके टुकड़ोंको एक दूसरेसे बलात रगड़ कर अग्नि उत्पन्न कर लेते हैं। इसी भांति बनोंमें सूखे हुए वृक्षोंके शिखरोंके आंधीसे परस्पर रगड़े जाने से बनों के बन जल कर भस्म हो जाते हैं।

उपरोक्त सारी दशाओंमें प्रकाश उत्पन्न होता है और उसकी रङ्गत इत्यादिसे हम यह अनुमान किये बिना नहीं रह सकते कि प्रकाश उन्हीं पदार्थोंका अंश है। अनेक विद्वान इसे जलनेवाले पदार्थों का ही अंश मानते हैं। डीमन (Die-man) और पैकृस् (Pacts) की भी यही सम्मति थी। इन प्रसिद्ध साइन्सके विद्वानोंने गंधक और जस्ते को मिलाकर तेज़ गर्मी दी इस तरह कि किसी प्रकारसे आक्सीजन (Oxgyen) न पहुंच सके। यह दोनों पदार्थ मिल गये और सल्फ्यूरेट ओफ़ ज़िंक (Sulphuret of znc) बन गया। मिलते समय प्रकाशकी झलक देखनेमें आई।

यदि हम प्रकाशको जलनेवाले पदार्थोंका अंश न मानें तो यह असम्भव हो जायगा कि हम अनेक पदार्थोंमेंसे जो रङ्ग रङ्गकी ज्योति निकलती है उसका स्पष्ट कारण अनुभव कर सकें। इसलिए प्रकाश जलनेवाले पदार्थोंका अंश ही हो सकता है। प्रकाशको सोख लेनेका दृष्टान्त भी हमें इसी सिद्धान्त पर ले जायगा।

अब प्रश्न होता है कि अवश्य कोई उत्पत्ति स्थान ऐसा है जिससे यह सब पदार्थ और वस्तुएं जो हमें पृथ्वी पर मिलती हैं प्रकाश लेती हैं। सूर्य ही इसका उत्पत्ति स्थान होना चाहिये। इसी नियम पर चलनेवाली सब सृष्टि ज्ञात होती है। यद्यपि यह नियम इतना विस्तृत है कि सर्वस्व जीव और उद्भिद पदार्थ पर इसका प्रभाव पड़ता है फिर भी हम इसके मुख्य कारणका केवल अनुमान ही करने योग्य हैं; क्योंकि हमारे ज्ञान और निर्णयका आधार उन्हीं पदार्थों पर है जो हमें पृथ्वी पर प्राप्त होते हैं और वह भी कई हालतों में ईश्वरी नियमोंके प्रभावके अधीन हैं।

—राजनारायण भटनागर, दिल्ली निवासी

सूर्यसिद्धान्त

स्पष्टाधिकार

कुजार्कि गुरु पातानां ग्रहवच्छीघ्रजं फलम्।
वामं तृतीयकं मान्दं बुधभार्गवयोः फलम् ॥५६॥

स्वपातोनाद्ग्रहाज्जीवा शीघ्राद्भृगुजसौम्ययोः।
विक्षेपघ्न्यन्त्यकर्णाप्ता विक्षेपस्त्रिज्यया विधोः ॥५६॥

अनुवाद—(५६) मंगल, शनि और गुरुके पातों के स्थानोंमें प्रत्येकके दूसरे शीघ्रफलका संस्कार उसी प्रकार करो जिस प्रकार ग्रहके साथ किया जाता है अर्थात् यदि यह धनात्मक हो तो जोड़ दो और ऋणात्मक हो तो घटा दो। ऐसा करनेसे

इन तीन ग्रहोंके पातोंके स्पष्ट स्थान ज्ञात हो जायंगे। परन्तु बुध और शुक्रके पातोंके स्थानोंमें प्रत्येकके दूसरे मन्दफलका, जो ग्रहको स्पष्ट करने के लिए तीसरे संस्कारमें काम आता है उलटा संस्कार करो अर्थात् यदि धनात्मक हो तो घटा दो और ऋणात्मक हो तो जोड़ दो। ऐसा करनेसे बुध और शुक्रके स्पष्ट पात ज्ञात हो जायंगे। (५७) मंगल, शनि और गुरु प्रत्येकके स्पष्ट स्थानमेंसे अपने अपने पातके स्पष्ट स्थानको घटा दो जो शेष हो उसकी ज्या निकालो और इस ज्याको ग्रहके मध्यम विक्षेपसे गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्णसे भाग दे दो तो स्पष्ट विक्षेप या शर ज्ञात हो जायगा। परन्तु बुध और शुक्रके शीघ्रोच्चके स्थानोंमेंसे इनके स्पष्ट पात घटाकर शेष की ज्या निकालनी चाहिये और इस ज्या को बुध और शुक्रके मध्यम विक्षेपसे गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्णसे भाग देना चाहिये। चन्द्रमाका स्पष्ट शर (विक्षेप) जाननेके लिए स्पष्ट चन्द्रके स्थानमेंसे पात (राहु) का स्थान घटा कर शेषको चन्द्रमाके मध्यम विक्षेप से गुणा करके त्रिज्यासे भाग दे देनेसे ही काम हो जाता है।

विज्ञान भाष्य—उदाहरणके लिए गुरुका स्पष्ट शर जाननेकी रीति लिखी जाती है। १९७९ वि० की वसंत पंचमीकी अर्द्ध रात्रिको उज्जैनमें गुरुका स्पष्ट स्थान था गणनासे जो कुछ आया वह ६रा२७°५३′३७″ है (देखो विज्ञान भाग १८ पृष्ठ२५६)

इसलिए इसी समय का गुरुका स्पष्ट शर निकालना सम्भव होगा। एक कल्पमें बृहस्पतिका पात १७४ भगण करता है, इसलिए १९७९ वि० की वसंत पंचमी के दिन जब कि सृष्टि के आदि से १, ९५, ५८, ८५, ०२३ सौर वर्ष बीते हैं (देखो पृष्ठ ५६)† बृहस्पतिके पातका स्थान।

$$= \frac{१,९५,५८,८५,०२३ \times १७४}{४,३२,००,००,०००}$$

$$= \frac{१,९५,५८,८५,०२३ \times २९}{७२,००,००,०००}$$

= ७८भ ९रा १०° १९′ ५८·२″

या ९रा १०° १९′ ५८·२″ क्योंकि पूरे भगण लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु पातों की गति विलोम दिशा में अथवा पच्छिम दिशा में होती है। इसलिए ऊपर जो स्थान पात के लिए आया है वह ऋणात्मक है। इसको १२ राशि में से घटाने पर गुरुके पात का स्थान (भोगांश) साधारण रीति के अनुसार आजावेगा। इसलिए गुरुके पातका स्थान = २रा १९° ४०′ २″†

उपर्युक्त ५६वें श्लोकके अनुसार इसीमें दूसरे शीघ्रफलका अर्थात् दूसरे शीघ्रफलका संस्कार ग्रह की तरह करना चहिये। वसंत पंचमीके दिन बृहस्पतिका दूसरा शीघ्रफल + १०° ४७′ और अंतिम शीघ्र कर्ण ३९०८ है (देखो पृष्ठ २२७)।

इसलिये दूसरी शीघ्रफल संस्कृत पात

= २रा १९° ४०′ २″ + १०° ४७′

= ३रा०° २७′ २″

परंतु गुरुका स्पष्ट स्थान = ६रा २७° ५३′ ३७″

(देखो विज्ञान भाग १८ पृष्ठ २५६)

∴ ५७ वें श्लोक के अनुसार पातसे गुरुका अंतर = ६रा २७° ५३′ ३७″ – ३रा०° २७′ २″

= ३रा २७° २६′ ३५″

यही वसंत पंचमी के दिन गुरुका विक्षेप केन्द्र हुआ।

इसी विक्षेप केन्द्रकी ज्याको गुरुके मध्यम विक्षेपसे जो मध्यमाधिकारके ६९-७० श्लोकोंके अनुसार १° या ६०′ है गुणा करके अन्तिम शीघ्र कर्ण से भाग देने पर गुरु का स्पष्ट विक्षेप या शर आ जायगा।

† यह १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के समयका है परन्तु पातकी गति अत्यन्त मन्द होने से इसी को वसंत पचंमीके दिन का भी मान लेनेमें कोई हानि नहीं है।

† सूर्यसिद्धान्त-मध्यमाधिकार (विज्ञान परिषद्)

३रा २७° २६′ ३५″ दूसरे अर्थात् समपद में है इसलिए इसको ज्या दूसरे पादके गम्य भागकी ज्या के समान होती है।

∴ज्या ३रा २७° २६′ ३५″=ज्या २रा २° ३३′ २५″
=ज्या ६२° ३३′ २५″
=ज्या ३०५० कला

∴गुरुका स्पष्टशर = $\frac{३०५० \times ३०}{३६०८}$ कला
= ५०′ ४३″

विक्षेप केन्द्र १८०° से कम है, इसलिए गुरु क्रान्तिवृत्त से उत्तर है और ५०′ ४३″ गुरुका उत्तर शर हुआ।

इसी प्रकार मंगल और शनिके भी शर जाने जा सकते हैं। बुध और शुक्रके लिए कुछ भिन्नता करनी पड़ती है अर्थात् इनका विक्षेप केन्द्र जानने के लिए इनके पातों में दूसरे मंद फलका जो तीसरे कर्ममें काम आता है उलटा संस्कार करके शीघ्रोच्चों के स्थानों में से घटाना पड़ता है। इसके बाद जो कुछ करना पड़ता है वह उपर्युक्त रीति की तरह होता है।

चंद्रमाका स्पष्ट शर जानने के लिए यह सब झंझट करनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इसमें शीघ्र कर्म का संस्कार नहीं करना पड़ता। इसलिए इसके लिए वही नियम लागू है जो २८ वें श्लोक में सूर्यके लिए बतलाया गया है, अर्थात् चंद्रमाके विक्षेप केन्द्र (राहुसे स्पष्ट चंद्रका अंतर) की ज्या को चंद्रमाके परम विक्षेप अर्थात् ४° ३०′ से गुणा करके ३४३८ कलासे जो त्रिज्याका मान है भाग दे तो चंद्रमाका स्पष्ट शर ज्ञात हो जायगा। यदि विक्षेप केन्द्र १८०° से कम हो तो उत्तर शर होगा अन्यथा दक्षिण शर(देखो श्लोक ७ और उसका विज्ञानभाष्य तथा पृष्ठ ३५, ३६ मध्य० और उसके सामनेका चित्र)। भाग १८, पृष्ठ २२० पर जो चित्र दिया गया है उसमें ब को राहुका स्थान, ब प को क्रान्तिवृत्त और बस को चंद्रकक्षा मान लिया जाय तो स प चंद्रमाका उत्तर शर होगा।

विक्षेपापक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेप संयुता।
दिग्भेदे वियुता स्पष्टा भास्करस्य यथागता॥ ५८॥

अनुवाद—(५८) किसी ग्रहकी स्पष्ट क्रान्ति जाननेके लिए उस ग्रहके स्पष्ट शर (विक्षेप) को उसी ग्रहकी (मध्यम) क्रान्तिमें जोड़ दो यदि शर और क्रान्ति दोनों एक ही प्रकारकी हों, अर्थात् यदि शर और क्रान्ति दोनों उत्तर हों या दोनों दक्षिण हों। परन्तु यदि इनकी दिशाओंमें भिन्नता हो तो इन दोनोंका जो अन्तर होगा वही स्पष्ट क्रान्ति होगी। सूर्यकी स्पष्ट क्रान्ति जाननेके लिए जो नियम पहले (२८वें श्लोकमें) बतलाया गया है वही पर्याप्त है (क्योंकि सूर्य क्रान्ति वृत्तपर ही भ्रमण करता है)।

विज्ञान भाष्य—स्पष्ट ग्रहसे क्रान्तिवृत्तका जो अन्तर कदम्बप्रोत वृत्त पर होता है उसे उस ग्रहका स्पष्ट विक्षेप कहते हैं (देखो पृष्ठ ३५,३६ मध्य० तथा श्लोक ७,८) और स्पष्ट ग्रहसे विषुवद् वृत्तका जो अन्तर ध्रुवप्रोत वृत्त पर होता है उसे उस ग्रहकी स्पष्ट क्रान्ति कहते हैं (देखो भाग १८ पृष्ठ २२२)।

दिये हुए चित्रमें व द श उ क्रान्तिवृत्त, व दा श क विषुवद्वृत्त, क कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) और ध ध्रुव है। ग किसी ग्रहका स्थान अपने कक्षावृत्तमें है जो चित्रमें सरलताके विचारसे नहीं दिखाया गया है। ग्रह इस समय क्रान्तिवृत्तके उत्तर दिखलाया गया है। यदि ग्रह गा विन्दु पर हो तो क्रान्तिवृत्तके दक्षिण होगा। क ग प कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त पर समकोण बनाता है और ध ग च ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद् वृत्तपर समकोण बनाता है। प छ भी ध्रुव प्रोतवृत्तका खंड है और विषुवद्वृत्त पर समकोण बनाता है। ग प ग का उत्तर विक्षेप, प छ ग की उत्तर मध्य क्रान्ति और ग च गकी उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। इसी प्रकार गा पा गा ग्रहका दक्षिण विक्षेप, पा छा गा ग्रहकी उत्तर मध्य क्रान्ति और गा चा गा की उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। पहलो

दशामें मध्य क्रान्ति और विक्षेप दोनों उत्तर हैं, इसलिए इन दोनोंको जोड़नेसे नियमानुसार स्पष्ट उत्तर क्रान्ति आयेगी। परन्तु दूसरी स्थितिमें
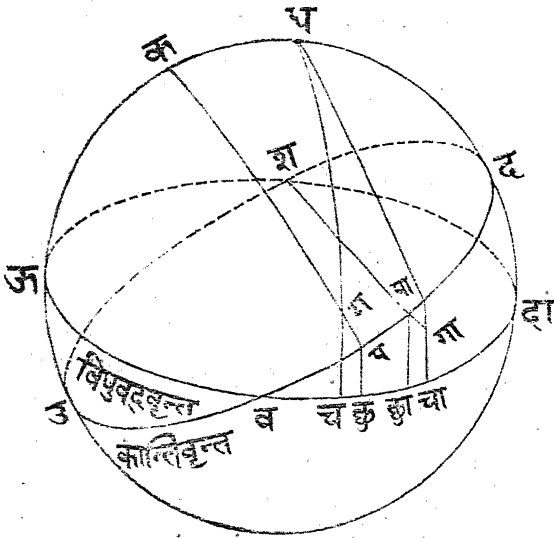
चित्र १६

विक्षेप दक्षिण और मध्य क्रान्ति उत्तर है, इसलिए इन दोनोंके अन्तरसे स्पष्ट उत्तर क्रान्ति ज्ञात होगी।

यहां एक बात विचारणीय है। ग प कदम्ब प्रोतवृत्तका खण्ड है और प छ ध्रुव प्रोतवृत्तका इसलिए इन दोनोंका योग ग च के समान नहीं होगा वरन कुछ भिन्न होगा। परन्तु आचार्य ने ऐसा ही लिखा है। इससे यह समझना चाहिये कि आचार्यके विचारमें यह भिन्नता इतनी कम समझी गयी है कि इससे जो स्थूलता हो जाती है वह नहींके समान समझ ली गयी है। भास्करचराचार्यजी ने इसीलिए इस रीतिको अयुक्त* कह कर अयन वलन संस्कार करनेका आदेश दिया है+ जो विस्तार भयसे यहां न लिख कर नेपियरके नियमोंके आधारपर इस संस्कारकी एक सरल रीति लिखी जाती है। सुविधाके लिए चित्र १६ का सरल रूप चित्र २० लिया जाता है—

इस चित्रमें ग ग्रहका स्पष्ट स्थान, ग प ग्रहका स्पष्ट विक्षेप, ग च ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति, व प ग्रहका सायन भोगांश, व च ग्रहका विषुवांश, और व ग परमवृत्त का धनु है। इसलिए स्पष्ट है कि △ ग प व और △ ग च व समकोण गोलीय त्रिभुज है और प व च कोण क्रान्ति वृत्त और विषुववृत्तके बीचका कोण है जिसे २८वें श्लोकमें परम अपक्रम कहा गया है।
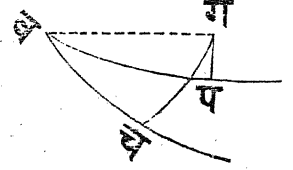
चित्र २०

यदि ग्रहका सायन भोगांश व प और स्पष्ट विक्षेप ग प ज्ञात हो तो नेपियर के नियम (२) के अनुसार समकोण △ ग व प में,

कोज्या (व ग) = कोज्या (ग प) × कोज्या (ग प)...(१)

और नियम (१) के अनुसार,

ज्या (व प) = स्पर्श रेखा (ग प) × कोटि स्पर्श रेखा (ग व प)

अथवा कोटि स्पर्श रेखा (ग व प) = ज्या (व प) × कोटि स्पर्श रेखा (ग प)......(२)

इन दोनों समीकरणोंसे व ग धनु और ग व प कोण जा सकते हैं। फिर समकोण △ ग व च में, नियम (२) के अनुसार ज्या (ग च) = ज्या (व ग) × ज्या (∠ग व प + ∠प व च)...(३)

और नियम (१)के अनुसार

स्पर्श रेखा (व च) = स्पर्श रेखा (व ग) × कोज्या (∠ग व प + ∠प व च)......(४)

समीकरण (१), (२) और (३) से किसी ग्रह या तारे का विक्षेप और सायन भोगांश ज्ञात हो

---

* विक्षेपः कदम्बाभिमुखो भवति। ध्रुवाभिमुख्या क्रान्त्या सह कथं तस्य भिन्न दिक्कस्य योग वियोगावुचितौ। तवोर्यद्भिन्नदिक्तवं तदायन वलन वशात्।.........

सिद्धान्तशिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ २१५

+ गणिताध्याय पृष्ठ ११७।

तो उसकी क्रान्ति जानी जा सकती है और समीकरण (४) की सहायता से उसका विषुवांश जाना जा सकता है।

इसी प्रकार यदि विषुवांश और क्रान्ति ज्ञात हों तो सायन भोगांश और विक्षेप भी जाने जा सकते हैं।

ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः।
चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवः स्मृताः ॥५६॥

अनुवाद—(५६) ग्रह जिस राशि में हो वह जितने प्राणोंमें उदय होती हो उसको ग्रहकी दैनिक गतिसे गुण करके १८०० से भाग देने पर जो कुछ आवे उसको पूरे चक्रके असुओं में जोड़ दिया जाय तो योगफल ग्रहके अहोरात्र का परिणाम होता है।

विज्ञान भाष्य—मध्यमाधिकारके ११-१३ श्लोकों में नाक्षत्र अहोरात्र, घड़ी, पल, प्राण, सावन दिन इत्यादिकी चर्चा विस्तारके साथ की गयी है। वहां यह बतलाया गया है कि एक नाक्षत्र अहोरात्र २१६०० असुओं या पलों का होता है और सावन दिन नाक्षत्र अहोरात्रसे प्रायः ४ मिनट या १० पल या ५६ प्राण अधिक होता है क्योंकि सूर्य प्रति दिन प्रायः १ अंश पूर्वकी ओर बढ़ता है जब कि नक्षत्र या तारा एक ही जगह स्थिर रहते हैं। जैसे एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तकके समयको सावन दिन कहते हैं उसी प्रकार किसी ग्रहके पूर्वमें उदय होनेके समयसे दूसरे दिन फिर उदय होने तकके समयको उस ग्रहका अहोरात्र कहते हैं। यदि ग्रह मार्गी हुआ तो उसका अहोरात्र नाक्षत्र अहोरात्रसे अधिक और वक्री हुआ तो कम होगा। नाक्षत्र अहोरात्रसे ग्रहका अहोरात्र कितना अधिक या कम होगा यही जाननेकी रीति इस श्लोकमें बतलायी गयी है। ग्रह दिन भर में जितना आगे चलेगा या पीछे हटेगा उसीके अनुसार ग्रहका अहोरात्र नाक्षत्र अहोरात्रसे अधिक या कम होगा। त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्यायमें ४१-४३ श्लोकोंमें यह विस्तारके साथ बतलाया जायगा कि कौन राशि किस जगह कितने समय में उदय होती है। जितने समय में जो राशि जहां क्षितिजके ऊपर आती है अर्थात् उदय होती है उसी समयको (नाक्षत्र कालके अनुसार) उस जगह उस राशिका उदय-प्राण या उदयासु कहते हैं। इसलिए यह त्रैराशिकसे सहज ही जाना जा सकता है कि जब राशिका उदय उदयप्राण के समान समयमें होता है तो उस राशिमें ग्रह जितना दिन भरमें हटता है उतनेका उदय कितने प्राणमें होगा। बस नाक्षत्र अहोरात्रकी अपेक्षा इतने ही प्राण अधिक बीतने पर ग्रह दूसरे दिन क्षितिजमें फिर आ जायगा। एक राशि ३० अंश या ३० × ६० या १८०० कलाके समान होती है। ग्रहकी दैनिक गति भी कलामें ही साधारणतः प्रकटकी जाती है, इसलिए यह अनुपात हुआ—

१८०० कलाः ग्रहकी दैनिक गति

: : राशिका उदय प्राणः इष्ट अन्तर

$$\text{अथवा इष्ट अंतर} = \frac{\text{राशिका उदयप्राण} \times \text{ग्रहकी गति}}{\text{१८०० कला}}$$

बस यही अंतर नाक्षत्र अहोरात्रमें जो २१६०० प्राणोंका होता है जोड़नेसे (यदि ग्रह मार्गी हुआ) और घटानेसे (यदि ग्रह वक्री हुआ) ग्रहका अहोरात्र ज्ञात होता।

इस नियममें थोड़ी सी स्थूलता है। यदि ग्रह क्रान्तिवृत्तमें हो जिसमें कि राशियां होती हैं भ्रमण करता होता तो यह नियम बिल्कुल ठीक होता परन्तु ग्रह तो अपने कक्षावृत्तमें घूमता है, जिसके कारण ग्रह या तो क्रान्तिवृत्तके उत्तर होता है या दक्षिण। यदि ग्रह उत्तर हुआ तो कुछ पहले ही उदय होगा और यदि दक्खिन हुआ तो कुछ पीछे। यदि ग्रहके प्रतिदिनके उदय कालके विषुवांश ५८ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यके समीकरण (४) के अनुसार जान लिए जांय और विषुवांशोंके अंतरको

प्राणोंमें बदल दिया जाय तो इसको २१६०० प्राणोंमें जोड़नेसे ग्रहके उदयप्राण ठीक ठीक निकलेंगे।

आगेके कई श्लोकोंमें यह जाननेकी रीति बतलायी गयी है कि अहोरात्र मानमेंसे कितने समय तक ग्रह क्षितिजके ऊपर रहेगा और कितने समय तक क्षितिजके नीचे अर्थात् ग्रहका दिन मान और रात्रिमान कितने कितने समयके होते हैं। इसके लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रहका चरप्राण कितना है जो नीचे लिखे श्लोकोंके अनुसार जाना जाता है:—

> क्रान्तेः क्रमोत्क्रमज्ये द्वे कृत्वा तत्रोत्क्रमज्यया।
> हीना त्रिज्या दिन व्यास दलं तद्दक्षिणोत्तरम् ॥६०॥
> क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोधृता।
> त्रिज्यागुणाहोरात्रार्धकर्णाप्ता चरजासवः ॥६१॥

अनुवाद—(६०) ग्रहकी स्पष्ट क्रान्तिकी ज्या और उत्क्रमज्या दोनों जानकर उत्क्रमज्याको त्रिज्या अर्थात् ३४३८कलामेंसे घटा दे तो अहोरात्र वृत्तका व्यासार्द्ध निकल आता है। इसको द्युज्या भी कहते हैं। यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध दक्षिण होता है और यदि क्रान्ति उत्तर होती है तो उत्तर होता है। (६१) क्रान्तिज्या को पलभा से गुणा करके १२ से भाग देने पर क्षितिज्या आती है जिसको त्रिज्यासे गुणा करके अहोरात्र वृत्तके व्यासार्धसे भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे चरज्या कहते हैं। चरज्याके धनुकी कलाको चरप्राण कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकोंमें त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्यायका सार भरा हुआ है इस लिए इनमें जो पारिभाषिक शब्द आये हैं उनका विस्तृत विवेचन उसी अध्याय में मिलेगा। परन्तु इन दो श्लोकोंका अर्थ समझानेके लिए यह आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्दों तथा कुछ अन्य बातोंकी संक्षेपमें चर्चा की जाय।

पलभा—जिस दिन सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है अर्थात् जिस दिन सूर्य सायन मेष या सायन तुला विन्दुओं पर आता है उस दिन समतल भूमि पर सीधे गड़े हुए १२ अंगुलके शंकुकी छाया जितनी बड़ी होती है उसीको पलभा कहते हैं।

चित्र २१

चित्र २१ में समतल भूमि के श विन्दु पर क श शंकु सीधा गड़ा है और क श की नाप १२ अंगुल है तो सायन मेष संक्रान्तिके दिन क श की छाया यदि श ग हो तो श ग की नापको ही श स्थानकी पलभा विषुवच्छा, अक्षभा इत्यादि कहेंगे। इस पलभाका मान सब जगह एक सा नहीं होता वरन् अक्षांशके अनुसार बढ़ता घटता है। विषुवत् रेखा पर जहां अक्षांश शून्य होता है सायन मेष संक्रान्तिके दिन ख ग का मान शून्य होता है। विषुवत् रेखासे ज्यों ज्यों उत्तर या दक्खिन जाइये त्यों त्यों पलभाका मान बढ़ता जायगा। उत्तर गोलमें पलभा शंकुसे उत्तर दिशामें होगी और दक्षिण गोलमें दक्षिण दिशामें इसलिए पलभासे किसी स्थानका अक्षांश सहज ही जाना जा सकता है। हमारे देशमें इसी लिए अक्षांश अंशोंमें प्रकट करनेकी जगह पलभाकी नापमें जो अंगुलोंमें ली जाती है प्रकट करनेकी परिपाटी है। श क ग कोण को श स्थानका अक्षांश* कहते हैं, इसलिए अक्षांशकी स्पर्श रेखा
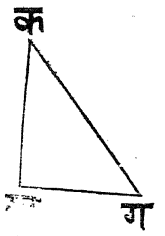
$$= \frac{\text{श ग}}{\text{श क}} = \frac{\text{पलभी}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{पलग}}{१२} \quad \ldots\ldots (१)$$

इससे स्पष्ट है कि पलभाके ज्ञानसे अक्षांशका मान कैसे जाना जा सकता है।

हमारे ग्रन्थोंमें ज्या, कोटिज्या और उत्क्रमज्याके सिवा अन्य त्रिणोणमितीय अनुपातोंकी चर्चा नहीं है; परन्तु अन्य अनुपातोंका काम और रीतिसे लिया जाता था जैसे अक्षांशकी स्पर्श रेखाका काम $\frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$ से लिया जाता था।

*ऐसा मान लेनेसे लम्बनके कारण तनिक सी अशुद्धि रह जाती है, जिसका विवेचन तीसरे अध्यायमें किया जायगा। परन्तु इस अशुद्धिसे कोई हर्ज नहीं हो सकता।

द्युज्या, कुज्या और चरज्याको समझनेके लिए नीचे लिखे चित्रको देखो—
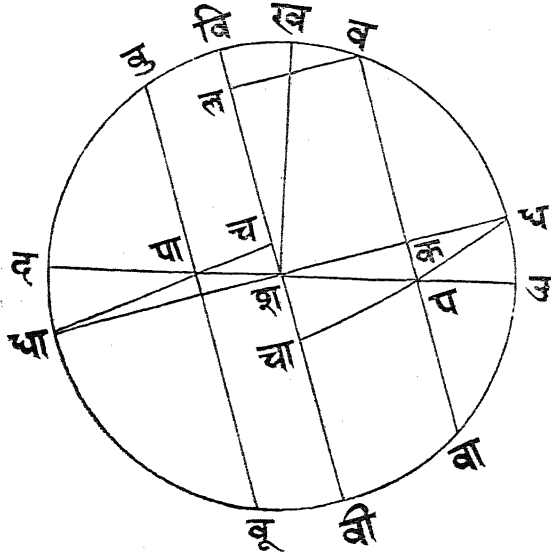
चित्र २२

श वह स्थान है जहांके लिए देखना है कि ग्रह कितने समय तक क्षितिजके ऊपर रहता है। उ श द रेखा श स्थानकी क्षितिज रेखा तथा ध श धा निरक्ष देशकी क्षितिज रेखा है। ध, आकाशीय उत्तरी ध्रुव और धा आकाशीय दक्षिणी ध्रुव है। उ ध ख द धा यामोत्तर वृत्त और ख श का स्वस्तिक है। पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण ग्रह, नक्षत्र, सूर्य इत्यादि जिस जिस वृत्त पर घूमते हुए दिन भरसे एक परिक्रमा कर लेते हैं उस उस वृत्तको उस ग्रह, नक्षत्र, या सूर्य का अहोरात्र वृत्त—(Diurnal cirle) कहते हैं। यह अहोरात्र वृत्त विषुवत् वृत्तके समानान्तर* होते हैं। तीन अहोरात्रवृत्तोंके व्यास चित्र २२ में व वा, वि वी और वु वू रेखाओंसे प्रकट किये गये हैं। वि वी अहोरात्र वृत्तका व्यास विषुवत् वृत्तसे मिल जाता है। इस पर वही तारे या ग्रह चलते देख पड़ते हैं जो ठीक विषुवत्वृत्त पर होते हैं। सायन विषुव संक्रान्तिके दिन सूर्य भी (यदि इसकी क्रान्तिकी गति थोड़ी देरके लिए स्थिर मान ली जाय) इसी अहोरात्रवृत्तपर चलता हुआ देख पड़ता है। यदि किसी ग्रहकी उत्तर क्रान्ति व वि धनुके समान हो तो उस ग्रहके अहोरात्रवृत्तका व्यास व वा होगा। इसी तरह यदि ग्रहकी दक्षिण क्रान्ति वि वु के समान हो तो उसके अहोरात्रवृत्तका व्यास वु वू होगा।

चित्रसे प्रकट है कि ध श धा रेखासे जो निरक्ष देशकी क्षितिज रेखा है सभी अहोरात्रवृत्तके व्यास दो समान भागोंमें कट जाते हैं। निरक्ष देशमें जब तक सूर्य, तारा या ग्रह ध श धा रेखासे ऊपर रहता है तब तक वह देख पड़ता है या उदय रहता है और जब तक वह इस रेखासे नीचे रहता है तब तक वह नहीं देख पड़ता अथवा अस्त रहता है। इसलिए निरक्ष देशमें जहां यह रेखा क्षितिज बनाती है सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सभी—क्रान्ति चाहे जो हो—१२ घंटे तक उदय और बारह घण्टे तक अस्त रहते हैं। इस बारह घण्टेके समयमें ६ घंटे तक तो यह पूर्व क्षितिजसे निकल कर ऊपर चढ़ते हुए यामोत्तर वृत्तपर पहुँचते हैं और ६ घंटे तक यामोत्तर वृत्तसे नीचे उतरते हुए पच्छिम क्षितिज· में जा लगते हैं। (प्रकाश वक्रीभवन के कारण जो थोड़ा सा अन्तर पड़ जाता है उसका विचार सुबिधाके लिए यहां नहीं दिया गया है)। निरक्ष देशसे उत्तर या दक्षिणके स्थानोंमें केवल वही ग्रह या तारा आधे दिन तक उदय और आधे दिन तक अस्त रहता है जो विषुवत्वृत्त पर रहता है अर्थात् जिसके अहोरात्रवृत्तका व्यास वि वी से मिलता जुलता है। परन्तु जिस ग्रह या तारेकी क्रान्ति उत्तर होती है वह उत्तर गोलमें आधे दिनसे अधिक समय तक क्षितिजके ऊपर रहता है और जिसकी क्रान्ति दक्षिण होती है वह आधे दिनसे कम समय तक क्षितिजके ऊपर रहता है। दक्षिण

* तारेका अहोरात्रवृत्त विषुवद्वृत्तके बिलकुल समानान्तर होता है। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके अहोरात्रवृत्तोंकी दिशामें तनिक सा, अन्तर इसलिये पड़ जाता है कि इनकी क्रान्ति सदैव कुछ बदलती रहती है।

गोलमें इसका ठीक उलटा होता है। आधे दिनसे कितना अधिक या कम समय तक ग्रह क्षितिजके ऊपर रहता है यह उसकी क्रान्तिके मानपर आश्रित है। यदि क्रान्ति अधिक हुई तो यह अन्तर अधिक होता है और कम हुई तो कम। चित्रमें जिस ग्रहकी उत्तर क्रान्ति व वि है वह श स्थान पर जिसका अक्षांश ध श उ कोणके समान है उस समय तक क्षितिजके ऊपर रहेगा जितने समय तक यह प से व तक ऊपर चढ़ेगा और फिर वहांसे उतना ही नीचे उतर कर पच्छिम क्षितिजके नीचे चला जायगा। ऊपर बतलाया गया है कि क से व तक जानेमें इसको ६ घण्टे लगेंगे; इसलिए प से क तक ऊपर चढ़नेमें जितना समय लगेगा ६ घण्टेसे उतना ही अधिक इसको प से व तक जानेमें लगेगा क्योंकि स क्रान्ति उत्तर होनेके कारण ग्रह क्षितिज पर उस समय आवेगा जिस समय वह प बिन्दु पर पहुँचेगा। उसके प्रतिकूल यदि दक्षिण क्रान्ति होनेसे ग्रहके अहोरात्रवृत्तका व्यास वु वू हुआ तो जितनी देर तक वह का से पा तक जायगा ६ घण्टेसे उतना ही पीछे वह क्षितिजके बिन्दु पा पर पहुँचेगा। अहोरात्रवृत्तके व्यासके प क या पा का खंडको कुज्या या क्षितिज्या और इतना चढ़नेमें जितना समय लगता है उसे चर-काल कहते हैं। काल प्रायः पलों या प्राणोंमें प्रकट किया जाता है इसलिये चर कालको चर पल, चरप्राण अथवा चर-असु कहते हैं। अहोरात्रवृत्तके व्यासार्ध क व, श वि या का वु को द्युज्या कहते हैं क्योंकि द्यु के अर्थ हैं दिन, अहोरात्र या प्रकाश। च श खंडको उत्तर क्रान्ति वाले ग्रहकी चरज्या और च शा खंडको दक्षिण क्रान्ति वाले ग्रहकी चरज्या कहते हैं। चरज्या के धनु को चरखंड और इस धनुकी कलाको चरप्राण कहते हैं क्योंकि एक चक्रमें ३६०×६० कलाएं अथवा २१६०० कलाएं और एक नाक्षत्र अहोरात्रमें इतने ही प्राण होते। यहां यह याद रखना चाहिए कि ध प च या धा पा चा वृत्त पाद विषुवद्वृत्तसे समकोण बनाता हुआ खींचा गया है।

अब देखना है कि चित्र २२ की सहायतासे ६०,६१ श्लोकोंका नियम कैसे सिद्ध होता है।

बि श त्रिज्या है, व क द्युज्या, व श वि कोण या व वि धनु ग्रहकी क्रान्ति;

इसलिये क्रान्तिज्या = व ल = क श

क्रान्तिकी उत्क्रमज्या = वि ल (देखो भाग १८ पृष्ठ २२० और चित्र १८)

द्युज्या = व क = ल श = श वि − वि ल

= त्रिज्या − क्रान्तिकी उत्क्रमज्या ·····(२)

यही ६०वें श्लोकका अर्थ है। दाहिने पक्षका मान क्रान्ति कोटिज्याके समान है,

∴ द्युज्या = क्रान्ति कोटिज्या

त्रिभुज क श प में,

क श = व ल = क्रान्तिज्या

< क श प = श स्थान का अक्षांश

$$\therefore \text{अक्षांश स्पर्श रेखा} = \frac{\text{क प}}{\text{क श}} = \frac{\text{क्षितिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}} \cdots (३)$$

परन्तु ऊपर समीकरण (१) में बतलाया गया है कि

$$\text{अक्षांश स्पर्श रेखा} = \frac{\text{प ल भा}}{१२}$$

$$\therefore \frac{\text{प ल भा}}{१२} = \frac{\text{क्षितिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$\text{अर्थात् क्षितिज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} \cdots\cdots (४)$$

परन्तु ध प च और ध क श दोनों व क और विश पर लम्ब हैं इसलिए कप और व क का परस्पर जो सम्बन्ध है वही च श और श वि का भी है, अर्थात्—

व क : कप :: विश : शच

$$\text{या श च} = \frac{\text{क प} \times \text{वि श}}{\text{व क}}$$

$$= \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

च श को चरज्या भी कहते हैं, इसलिए

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (५)$$

समीकरण (४) और (५) से ६१ वें श्लोक का नियम सिद्ध होता है।

चरज्याका कलात्मक धनु चरप्राण कहलाता है।

यदि समीकरण (५) में क्षितिज्या और द्युज्या की जगह समीकरण (२) और (४) के आधार पर इनके मान स्थापित किये जांय तो समीकरण (५) का सरल रूप यह होगा:—

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} \times \frac{१}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{पलभा}}{१२} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \text{क्रान्ति स्पर्श रेखा} \times \text{अक्षांश स्पर्श रेखा} \times \text{त्रिज्या} \cdots (६)$$

अर्थात् किसी स्थान की अक्षांश की स्पर्श रेखा को ग्रह की क्रान्ति की स्पर्श रेखा से गुणा करके त्रिज्या से गुणा कर दो तो चरज्या आ जायेगी। यदि चरज्या का मान दशमलव भिन्न में आजकल की रीति के अनुसार हो तो समीकरण (६) के दाहने पक्षमें त्रिज्या से गुणा करने की आवश्यकता न पड़ेगी और चरज्याका सरल रूप यह होगा—

$$\text{चरज्या} = \text{क्रान्ति स्पर्श रेखा} \times \text{अक्षांश स्पर्श रेखा} \cdots (७)$$

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि क्रान्ति और अक्षांश ज्ञात हो तो चरज्या सहज ही जानी जा सकती है और द्युज्या, कुज्या इत्यादि जाननेके झंझटकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

समीकरण (७) की उपपत्ति नेपियर के प्रथम नियमके आधार पर इस प्रकार है:—

चित्र २३ में श उत्तर गोलमें एक स्थान है जिसका अक्षांश < उ श ध या उध धनु है। उ पू द प श का क्षितिज वृत्त है जिसके उत्तर, पूर्व, दक्खिन और पच्छिम विन्दु क्रमसे उ, पू, द और प विन्दु है। ख खस्वस्तिक, पू विप विषुववृत्त और ग व गा उस ग्रह या तारेके अहोरात्र वृत्त का वह खंड है जो क्षितिज के ऊपर रहता है जब ग्रहकी क्रान्ति विव धनुके समान होती है।
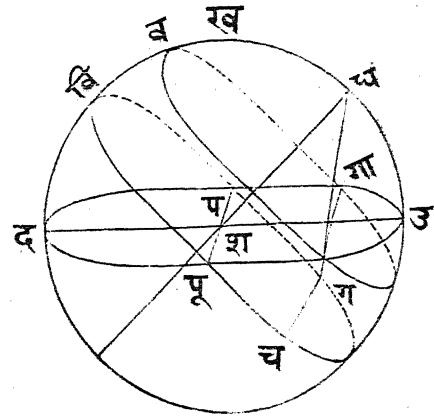
चित्र २३

ग्रहका उदय विन्दु ग उस बृहद् वृत्त (great circle) पर है जो आकाशीय ध्रुव ध से विषुववृत्त के च विन्दु पर लम्ब है। इसलिए जितने समयमें ग्रह ग विन्दुसे उदय होकर याम्योत्तर वृत्त के व विन्दुपर पहुँचेगा उतने ही समय में च विन्दु च से आगे बढ़ते वि तक पहुँचेगा। परंतु जब तक च पूर्व विन्दु पू पर नहीं पहुंच जायगा तब तक वह क्षितिज के नीचे रहेगा। जब वह पू विन्दु पर आवेगा तब से ६ घंटे पीछे वि पर पहुँचेगा उतना ही पहले ग्रह का उदय ग पर हो चुका रहेगा। इसलिए च पू धनु की ज्या ग्रह की चरज्या होगी। इसका परिमाण जाननेके लिए नेपियरका पहला नियम बहुत उपयुक्त है क्योंकि ग च प एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका ग च पू कोण समकोण है, ग च ग्रह की क्रान्ति ज्ञात है और ग पू च कोण द पू विकोण अथवा विद धनुके समान है जो विख धनु अथवा अक्षांश का पूरण कोण है। इसलिए—

ज्या (पूच) = स्पर्श रेखा (गच) × कोटि स्पर्श रेखा < गपूच

अथवा चरज्या = क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्श रेखा।

तत्कामुकमुदक्क्रान्तौ धनहानी पृथक्स्थिते।
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिन रात्रि दले स्मृते ॥६२॥

याम्य क्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणेतु दिनक्षपे।
विक्षेप युक्तो नितया क्रान्त्या भानामपि स्वके ॥६३॥

अनुवाद—(६२) उपर्युक्त रीति जो चरज्या निकले उसके कलात्म धनुको यदि क्रान्ति उत्तर हो तो ग्रहके अहोरात्रके चौथे भागमें अर्थात् ६ घंटे या १५ घड़ी में जोड़ने से दिन का आधा और घटानेसे रात्रिका आधा होगा। (६२) यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो इसके विपरीत होगा अर्थात् १५ घड़ीमें चर कला घटानेसे दिनका आधा और जोड़नेसे रात्रिका आधा होगा। दिन या रात्रिके आधेको दुगुना कर देनेसे दिन मान और रात्रि मान ज्ञात हो जायँगे। इसी प्रकार किसी नक्षत्र अर्थात् तारेका भी दिन मान या रात्रिमान जानने के लिए उसकी मध्य क्रान्तिमें विक्षेपको जोड़ या घटा कर जैसी उसकी दिशा हो स्पष्ट क्रान्ति निकालनी चाहिए और स्पष्ट क्रान्तिसे चर काल जान कर दिन मान या रात्रिमान जानना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंको विशेष समझाने- की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनके पहलेके श्लोकोंकी जो व्याख्या की गयी है और उसके लिए जो चित्र दिये गये हैं उनसे इस नियमकी उपपत्ति सहज ही सिद्ध हो सकती है। अंतिम पंक्तिमें नक्षत्रों की चरज्या और दिनमान तथा रात्रिमान जाननेके लिए भी यही नियम दिया गया है जो कि विज्ञान भाष्यमें पहले ही आ चुका है। हां स्पष्ट क्रान्ति जाननेके लिए विक्षेपको जोड़ने घटानेकी बातमें वही भूल होगी जो पहले बतलायी गयी है। इस लिए किसी तारेकी स्पष्ट क्रान्तिका ज्ञान भी चित्र २० के आधार पर बतलायी हुई रीतिसे करना चाहिए।

उदाहरण—मान लो किसी तारेकी उत्तर क्रान्ति २२°३०′ है तो प्रयागमें उसके दिनमान तथा रात्रि मान क्या होंगे?

(१) सूर्यसिद्धान्तकी रीतिसे—

प्रयाग की पलभा* = ५ अंगुल ४१ व्यंगुल
= ५·७ अंगुल (स्थूल रीतिसे)

तारेकी क्रान्ति = २२°३०′

∴ क्रान्ति ज्या = १३१५′ [विज्ञान भाष्य पृष्ठ १७८
और क्रान्तिकी उत्क्रमज्या = २६१′ ”

∴ द्युज्या = ३४३८′ − २६१′ = ३१७७′

$$\text{क्षितिज्या} = \frac{१३१५ \times ५·७}{१२}$$

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

$$= \frac{१३१५ \times ५·७}{१२} \times \frac{३४३८}{३१७७}$$

$$= \frac{२५७६६५२६}{३८१२४}$$

$$= ६७६'$$

∴ चर कला = ६८१′

∴ चर काल = ६८१ प्राण = ११३ पल ३ प्राण
= १ घड़ी ५३ पल ३ प्राण

इसको १५ नाक्षत्र घड़ीमें जोड़ा क्योंकि क्रान्ति उत्तर है तो

दिन मानका आधा = १६ घड़ी ५३ पल ३ प्राण
पूर्ण दिन मान = ३३ घड़ी ४७ पल
पूर्ण रात्रिमान = २६ घड़ी १३ पल

यदि सूर्यका दिनमान या रात्रिमान जानना हो तो सूर्यके अहोरात्रके असुओंके चौथे भागमें चर- प्राण जोड़कर दूना करनेसे दिनमानके असु और घटाकर दूना करनेसे रात्रिमानके असु ज्ञात होंगे। सूर्यके अहोरात्रके असु ५९वें श्लोकके अनुसार जानना चाहिये।

इसी प्रकार ग्रहके अहोरात्रिके असुओंके चौथे भागमें चरप्राण जोड़कर दूना करनेसे दिनमानके असु, और घटाकर दूना करनेसे रात्रिमानके असु निकलेंगे।

---

* प्रयागकी पलभा और अक्षांश ज्योतिर्गणित पृष्ठ ७६ के अनुसार लिये हैं।

यह याद रखना चाहिये कि इस प्रकार जो दिनमान या रात्रिमान निकलेंगे वह नाक्षत्रकालकी इकाइयोंमें होंगे। सावन दिनकी इकाइयोंमें बदलनेके लिए अलग क्रिया करनी पड़ेगी। एक नाक्षत्र अहोरात्र २१६०० प्राणोंका होता है जबकि एक मध्यम सावन दिन २१६५६·१४ प्राणोंका होता है।

(२) नवीन रीति से—

प्रयागका अक्षांश २५° २५′

तारेकी क्रान्ति २२°३०′

∴ चरज्या = अक्षांश स्पर्श रेखा × क्रान्ति स्पर्श रेखा

= स्पर्श रेखा २५°२५′ × स्पर्श रेखा २२°३०′

= ·४७५२ × ·४१४२

= ·१९६८

∴ चर = ११°२१′

= ११३ पल ३ प्राण

पृथ्वीकी १° गति ४ मिनट, १० पल या ६० प्राणोंमें होती है। इस लिए ११°२१′ चर ११३ पल और ३ प्राणोंके समान रखा गया है।

स्पष्ट है कि नवीन रीतिके अनुसार काम लेनेमें द्युज्या, क्षितिज्या इत्यादिकी आवश्यकता नहीं पड़ती। हां स्पर्श रेखाकी सारिणीकी आवश्यकता अवश्य पड़ती है जो ज्या और कोटिज्याकी सारिणियोंकी तरह बनायी जा सकती है।

नक्षत्र जाननेकी रीति

भभोगोऽष्टशती लिप्ताः खाश्वि शैलास्तथा तिथेः ।
ग्रह लिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम् ॥६४॥

अनुवाद—(६४) एक नक्षत्रका भोग ८०० कलाओंका और एक तिथिका भोग ७२० कलाओंका होता है। ग्रहके भोगकी कला बनाकर एक नक्षत्र भोग अर्थात् ८०० कलासे भाग देने पर लब्धि गत नक्षत्रोंकी संख्या होती है और शेष आगेके नक्षत्रकी गत कला होता है। यदि यह जानना हो कि ग्रह वर्तमान नक्षत्रमें कब आया है तो गत कलाको ग्रहकी दैनिक गतिसे भाग दे देनेसे दिन घड़ी आदिकी संख्या निकल आवेगी। ८०० कलामेंसे गत कलाको घटाकर शेषको दैनिक गतिसे भाग देने पर यह ज्ञात होगा कि ग्रह वर्तमान नक्षत्रमें कब तक रहेगा।

विज्ञान भाष्य—११वें पृष्ठमें बतलाया गया है कि नक्षत्र क्रान्ति वृतके २७वें भागको भी कहते हैं। क्रान्तिवृत्तका चक्र ३६० अंशों या ३६० × ६० अर्थात् २१६०० कलाओंके समान होता है इसलिए एक नक्षत्र २१६०० ÷ २७ = ८०० कलाके समान होता है। सुविधाके लिए प्रत्येक नक्षत्रका नाम रखा गया है—

१	अश्विनी	१५	स्वाती
२	भरणी	१६	विशाखा
३	कृत्तिका	१७	अनुराधा
४	रोहिणी	१८	ज्येष्ठा
५	मृगशिरा	१९	मूल
६	आर्द्रा	२०	पूर्वाषाढ़
७	पुनर्वसु	२१	उत्तराषाढ़
८	पुष्य	२२	श्रवण
९	आश्लेषा	२३	धनिष्ठा
१०	मघा	२४	शतभिषा
११	पूर्वाफाल्गुनी	२५	पूर्वाभाद्रपद
१२	उत्तराफाल्गुनी	२६	उत्तराभाद्रपद
१३	हस्त	२७	रेवती
१४	चित्रा		

इन २७ नक्षत्रोंके अतिरिक्त अभिजित नक्षत्रकी भी किसी किसी जगह आवश्यकता पड़ती है। यह उत्तराषाढ़का चौथा भाग और श्रवणके बीचमें पड़ता है। उत्तराषाढ़का अंतिम चौथा भाग और श्रवणका पहला पन्द्रहवां भाग अभिजितका भोग समझा जाता है। इस प्रकार अभिजितका भोग* २५३⅓ कलाका हुआ।

प्राचीन कालमें २७ नक्षत्रोंकी जगह अभिजितको लेकर २८ नक्षत्रोंके मान भिन्न भिन्न थे। भास्कराचार्यजी† कहते हैं कि पुलिश, वशिष्ठ, गर्ग

---

* वैश्व प्रांत्यांघ्रिः श्रुति तिथि भागतो ऽभिजित्स्यात्। मुहूर्त चिंतामणि विवाह प्रकरण श्लोक ५५

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिता ध्याय पृष्ठ १००-१०१

आदि ज्योतिषी विवाह यात्रा आदिके फलकी सिद्धिके लिए नक्षत्रोंके सूक्ष्म मान यह बतलगाये हैः—

चन्द्रमाकी मध्यम दैनिक गति ७९०'३५" मानी गयी है। इसका ड्योढ़ा ११८५'५२"·५ और आधा ३९५'१७"·५ होते हैं।

विशाखा
पुनर्वसु
रोहिणी
तीनों उत्तरा
} प्रत्येकका भोग ११८५'५२"·५

आश्लेषा
आर्द्रा
स्वाती
भरणी
ज्येष्ठा
शतभिज
} प्रत्येकका भोग ३९५'१७"·५

शेष १५ नक्षत्रोंमें प्रत्येकका भोग ७९०'३५" है। इन सबके भोगोंको जोड़ कर २१ ६०० कलामें से घटाने पर जो आता है वही अभिजितका भोग है। इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रोंके भोग मिलकर ६ × $\frac{3}{2}$ + ६ × $\frac{1}{2}$ + १५ × १ अथवा २७ मध्यम दैनिक गतियोंके समान है जो = २७ × ७९०'३५"

= २७ × (८०० – ९'२५")

= २१६००" – २५४'१५"

इस तरह सिद्ध है कि अभिजितका भोग २५४" १५" है जो मुहूर्त चिंतामणिके मानसे ४५" अधिक है।

इन सब बातोंसे समझ पड़ता है कि नक्षत्रोंके मान प्राचीन कालमें चंद्रमाकी मध्यम गतिके अनुसार तथा नक्षत्र सूचक चमकीले ताराओंको देख कर निश्चित किये गये थे। परन्तु पीछेसे जैसे जैसे ज्योतिषका विकास हुआ तैसे जान पड़ा होगा कि वह विभाग मेल नहीं खाते; इसलिए सुविधाके लिये केवल २७ नक्षत्रोंमें क्रान्तिवृत्तका विभाग किया गया और प्रत्येक भाग ८०० कला का माना गया।

६४वें श्लोकके नियमका उदाहरण

मान लो यह जानना है कि वसंत पंचमी (१९-७९ वि०) के दिन गुरु किस नक्षत्रमें थे।

गुरू का स्पष्ट भोग=०" ६ रा २७°५३"३७'

[पृष्ट २२७]

=१००°२४' स्थूल रूप से

=१२४७४'

इसको ८०० से भाग देने पर लब्धि १५ और शेष ४७४' होते हैं।

इसलिए गुरू १५वें नक्षत्र को पार करके १६वें नक्षत्र विशाखा में है और विशाखा का ४७४' भोग चुका है तथा ३२६ कला शेष है। यह जानने के लिए कि बृहस्पति विशाखा में कब तक रहेगा। नियम के अनुसार ३२६ कला को गुरू की दैनिक गति से भाग देना चाहिये। परन्तु बृहस्पति तथा अन्य मंदगामी ग्रहोंके लिए यह नियम शुद्ध नहीं है क्योंकि ३२६ कला चलने के लिए बृहस्पति को बहुत दिन चाहियें जिसमें उसकी गति एक सी नहीं रहेगी। इसलिए अधिक सूक्ष्म विचारकी आवश्यकता है।

तिथि के विषय में पृष्ठ १२ मध्यमा० में जो कुछ लिखा है वही पर्याप्त है। आगे के ६६वें श्लोकमें विशेष चर्चाकी जायगी।

योग जाननेकी रीति

रवीन्द्र योग लिप्ताभ्गो योगा भभोग भाजिताः।
गता गम्याश्च षष्टिघ्ना भुक्ति योगाप्त नाडिकाः ॥६५॥

अनुवाद—(६५) सूर्य और चन्द्रमाके स्पष्ट स्थानों (निरयन भोगांशों) को जोड़कर उनकी कला बनाकर ८०० से भाग देनेपर गत योगोंकी संख्या निकल आती है। शेष से यह जाना जाता है कि वर्तमान योग की कितनी कला बीत गई है। यदि इस शेष को ८०० कला में घटा दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग की कितनी कला रह गयी है। इस गत वा गम्य कलाको ६०से गुणा

करके सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट दैनिक गतियोंके योग से भाग दे दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग कितनी घड़ी पहले आरंभ हुआ और कितनी घड़ी पीछे समाप्त होगा।

विज्ञान भाष्य—अश्विनीके आरंभसे जब सूर्य और चंद्रमा दोनों मिलकर ८०० कला आगे चल चुकते हैं तब १ योग बीतता है, जब १६०० कला आगे चल चुकते हैं तब दूसरा योग बीतता है, इत्यादि। इसी तरह जब दोनों मिलकर ३६०° या २१६०० कला अश्विनीसे आगे चल चुकते हैं तब २७वां योग बीतता है। फिर पहले योगका आरंभ होता है। २७ योगोंके नाम यह हैं:—

१ विष्कम्भ	१० गंड	१९ परिघ
२ प्रीति	११ वृद्धि	२० शिव
३ आयुष्मान्	१२ ध्रुव	२१ सिद्ध
४ सौभाग्य	१३ व्याघात	२२ साध्य
५ शोभन	१४ हर्षण	२३ शुभ
६ अतिगंड	१५ वज्र	२४ शुक्र
७ सुकर्मा	१६ सिद्धि	२५ ब्रह्मा
८ धृति	१७ व्यतीपात	२६ इन्द्र या ऐन्द्र
९ शूल	१८ वरीयान्	२७ वैधृति

नियम समझनेके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। मान लो यह जानना है कि सम्वत् १९८१ वि० की मेष संक्रान्तिके दिन कौन योग वर्तमान था, उसका किस समय आरंभ और किस समय अंत हुआ।

पहले मेष संक्रान्तिके दिनके सूर्य और चंद्रमा के स्थान तथा दैनिक गतियां स्पष्ट करनी पड़ेगी।

कलियुगके आरंभसे १९८१ वि० की स्पष्ट मेष संक्रान्तिके समय तक ५०२५ सौर वर्ष तथा १८, ३५,४२३·०८०६२५ मध्यम सावनदिन होते हैं। कलियुगका आरंभ उज्जैनमें गुरुका मध्यरात्रिसे हुआ, इस लिए उज्जैन में शनिवारकी मध्यरात्रिके ·०८०६२५ दिन उपरान्त १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति हुई। सुविधाके लिए मध्यरात्रिके समयके सूर्य और चंद्रमा स्पष्ट करना अच्छा होगा।

जिस रीतिसे वि० भाग १८ पृष्ठ २५२–२५४ पर सूर्यका स्पष्ट स्थान निकाला गया है उसी तरह सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको स्पष्ट करना चाहिये। गणनाका सार यह है:—

	सूर्यका स्थान	चंद्रमाका स्थान	दोनोंका योगफल
शनिवार(मध्यरात्रि)	३५६°५५'२६'	६५°३८'४३	६५°३४'९''
रविवार(मध्यरात्रि)	०°५३'५३''	१०८°१६'५३''	१०९°१०'५५''
दैनिक गति	५८'४१''	१२°३८'५''	१३°३६'४६''

पहला योगफल ३६०° से अधिक हो जाता है इसलिए ३६०° छोड़ दिया गया और ६५°३४'९'' ले लिया गया।

अब ६५°३४'९'' = ५७३४'९''

इसको ८०० से भाग देने पर ७ लब्धि और १३४'९'' शेष होते हैं। इसलिए मेष संक्रान्तिकी अर्द्ध रात्रिको आठवां योग धृति वर्तमान है और इसका १३४'९'' बीत चुका है और ६६५'५१'' शेष है।

६० घड़ीमें सूर्य और चन्द्रमाकी गति मिलकर १३°३६'४६'' या १३°·६१२८ होती है।

१३४'९'' = २°१४'९'' = २°·२३५८

६६५'५१'' = ११°५'५१'' = ११°·०९७४

१३·६१२८ : २·२३५८ :: ६० घड़ी : इष्ट काल

$\therefore$ इष्ट काल = $\frac{२\cdot२३५८ \times ६०}{१३\cdot६१२८} = \frac{२२३५८ \times ६०}{१३६१२८}$
= ६ घड़ी ५१ पल

इसलिए शनीचर की मध्य रात्रिसे ६ घड़ी ५१ पल पहले उज्जैनमें धृति योगका आरंभ हुआ।

१३·६१२८ : ११·०६७५ :: ६० : इष्ट काल

$\therefore$ इष्ट काल = $\frac{११०६७५ \times ६०}{१३६१२८}$ = ४८ घड़ी ५५′

इस लिए शनिचरकी मध्यरात्रिसे ४८ घड़ी ५५′ उपरान्त रविवारको धृति योगका अंत और शूल योगका आरंभ होगा।

यह गणना मध्यम कालके अनुसार किया गया है। स्पष्ट कालके अनुसार करनेके लिए काल समीकरण संस्कार तथा अन्य स्थानके लिए उज्जैन से उस स्थानका देशान्तर संस्कार भी करना होगा। काल समीकरण संस्कारकी चर्चा तीसरे अधिकारमें विशेष रूपसेकी जायगी। सूर्योदयसे काल गणना करना हो तो चर संस्कार भी करना होगा।

अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोग भाजिताः।
गतागम्याश्च षष्टिघ्ना नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृताः ॥ ६६॥

अनुवाद—(६६) चन्द्रमाके स्पष्ट स्थानमेंसे सूर्यका स्पष्ट स्थान घटानेसे जो आवे उसकी कला बना कर एक तिथिके भोग अर्थात् ७२० कलासे भाग दे दो, लब्धि गत तिथि होगी, शेष जो बचेगा वह वर्तमान तिथिकी गत कला होगी। इसको ७२० कलामेंसे घटाने पर तिथिकी गम्य वर्तमान कला आवेगी। वर्तमान तिथिकी गत और गम्य कलाओंको ६०से गुणा करके सूर्य और चंद्रमाकी दैनिक स्पष्ट गतियोंके अंतर से भाग देने पर यह ज्ञात हो जायगाकि वर्तमान तिथिका आरंभ और अंत कब हुआ।

विज्ञान भाष्य—इस कामके लिए भी सूर्य और चंद्रमाको स्पष्ट करना पड़ता है। देखना है कि १६८१ की मेष संक्रान्तिके निकट शनिचरकी मध्य रात्रिका कौन तिथि वर्तमान थी।

शनिवारकी मध्यरात्रिको चंद्रमाके स्पष्ट स्थानमेंसे सूर्यका स्पष्ट स्थान घटानेसे वहीं घटता है इसलिए चंद्रमा के स्थानमें ३६०° जोड़कर योगफलमें से सूर्यका स्थान घटाया तो ६५°४३′३७″ आया। इसी तरह इतवारकी मध्यरात्रिके स्थानों का अंतर १०७° २१′ ५७″ है। दोनोंकी दैनिक गतियोंका अंतर ११° ३६′ २०″ है।

७२० कला या १२° की एक तिथि होती है इसलिए ६५° ४३′ ३७″ को १२० से भा दिया तो लब्धि ७ और शेष ११° ४३′ ३७′ होते हैं। इससे प्रकट होता है कि मध्यरात्रिके समय आठवीं तिथि अर्थात् अष्टमी वर्तमान है जिसका ११° ४३′ ३७″ बीत चुका हैऔर १६′ २३″ शेष है। इस १६′ २३″ को ६० से गुणा करके ११° ३६′ २०″ से भाग दिया तो १ घड़ी २४ विपल आया। इस लिए शनीचरकी मध्य रात्रिसे १ घड़ी २४ पल उपरांत अष्टमीका अंत हुआ।

किसी अन्य स्थानमें सूर्योदयसे तिथिका अंतकाल जाननेके लिए वही संस्कार करने पड़ते हैं जो योगके सम्बन्धमें कहा गया है।

तिथि योग इत्यादि जानने के लिए जो नियम बतलाये गये हैं वह बड़े कठिन है इसलिए व्यवके लिए सारणियोंका उपयोग किया जाता है जिनसे तिथि योग इत्यादिका आरंभ या अंतकाल जानना बड़ा सुगम हो जाता है। विस्तार भयसे सारणी बनानेका सिद्धान्त यहां नहीं बतलाया जा सकता। यदि आवश्यकता समझ पड़ेगी तो अंत में परिशिष्ट में बतला दिया जायग।

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीयं तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः ॥ ६७॥
ववादीनि ततः सप्त चराख्य करणानि च।
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणानां प्रवर्त्तते ॥ ६८॥
तिथ्यर्धं भोग सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत्।
एषा स्फुटगतिः प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥ ६९ ॥

अनुवाद—(६७) शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न चार स्थिर कारण प्रत्येक कृष्ण पक्षकी

चतुर्दशीके उत्तरार्द्धसे आरम्भ होकर आधी आधी तिथि तक क्रमानुसार रहते हैं। (६८) उसके बाद बवादि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गरज, वणिज, विष्टि) सात चर करण क्रमानुसार आठ मासमें फेरा करते हैं। (६६) प्रत्येक करणका भोग आधी तिथिके समान समझना चाहिये। यहां तक सूर्यादि ग्रहोंको स्पष्ट करनेकी रीति कही गयी।

विज्ञान भाष्य—स्थिर करणोंका जो क्रम यहां बतलाया गया है प्रचलित पंचांगोंमें उससे कुछ विपरीत रहता है। इनमें शकुनिके बाद चतुष्पद तब नाग और किंस्तुघ्न लिखे मिलते हैं। इसका कारण क्या है और कबसे इस क्रमका आरम्भ हुआ यह विचारणीय है। विष्टिका दूसरा नाम भद्रा है जो शुभ कामोंमें अशुभ समझी जाती है। प्रत्येक चांद्रमासमें किस तिथिका कौन करण भोग करता है यह नीचेकी तालिकासे प्रकट होगाः—

प्रत्येक चांद्र मासके करणोंका क्रम (सूर्य सिद्धान्तके अनुसार)

	शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
तिथि	तिथिका पूर्वार्द्ध	तिथिका उत्तरार्द्ध	तिथिका पूर्वार्द्ध	तिथिका उत्तरार्द्ध
१	किंस्तुघ्न	बव	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	तैतिल	गरज
३	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	बव	बालव
५	बव	बालव	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
७	गरज	वणिज	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	तैतिल	गरज
१०	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	बव	बालव
१२	बव	बालव	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
१४	गरज	वणिज	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	बव	नाग	चतुष्पद

शुक्लपक्षकी १५वीं तिथिको पूर्णिमा और कृष्ण पक्षकी १५वीं तिथिको अमावस्या कहते हैं। पूर्णिमाको १५ और अमावास्याको ३० से सूचित करते हैं।

सूर्य सिद्धान्तके स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

नमक

भोजन हमारा कितना भी अच्छा और सुस्वादु क्यों न बना हो, पर यदि वह लवण विहीन है तो सब मज़ा किरकिरा हो जाता है। उसके सुन्दर सब स्वाद विलीन हो जाते हैं। कविवर गोसाईं तुलसीदासजी ने भी एक जगह "लवण बिना बहु व्यंजन जैसे" लिख कर नमक की आवश्यकता और उत्कृष्टताका परिचय दिया है।

नमक हमारे खाद्य पदार्थोंमें एक अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। यह केवल हमारे भोजनको सुस्वादु और रुचिकर ही नहीं बनाता, बल्कि हमारे शरीरकी रक्षाके लिए भी यह नितान्त आवश्यक है। प्रसिद्ध शरीर-विज्ञानविद् डाकृर हावेल (Dr. Howell) लिखते हैंः—

"Men have been fed upon a diet composed of salt-free fats and carbo-hydrates. They were in a morbid condition at the end of 26 to 36 days." अर्थात्—मनुष्यों को लवण-विहीन अन्य खाद्य पदार्थ (fats & carbohydrates) खानेके लिए दिये गये, पर (इस भोजन पर) उनकी हालत २६ दिनों से ३६ दिनों के भीतर ख़राब हो गई। उक्त डाकृर साहब आगे चलकर फिर लिखते हैंः—"It is probable that they would have lived longer if deprived of food entirely with the exception of water." अर्थात यदि उन मनुष्योंको जलके अति-

रिक अन्य खाद्य पदार्थ बिल्कुल ही नहीं दिये जाते, तोभी सम्भव था कि वह और अधिक समय तक जीते रहते।

उपरोक्त बातों से यह सिद्ध हो जाता है कि जलको छोड़ कर अन्य सब खाद्य पदार्थोंकी अपेक्षा नमक अधिक आवश्यक है। यह हमारी जीवनी-शक्तिकी रक्षा करता है; इसके बिना हमारा जीवन असम्भव है। नमककी इसी उपयोगिता का ख्याल कर जर्म्मन शरीर-विज्ञान विशारद बंगे (Bunge) ने कहा था:—"The Government which imposes tax upon salt is indeed a barbarous Government" अर्थात् जो सरकार नमकपर कर लगाती है वह निःसंदेह जंगली और असभ्य सरकार है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम लोग नमक कितनी मात्रामें खाया करें, जिससे हमारा स्वास्थ्य ठीक बना रहे। परीक्षा करके देखा गया है कि प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन प्रायः १० ग्राम (Gram) से २० ग्राम (Gram) तक नमक खाता है। परन्तु वैज्ञानिकोंने इस परिमाणको शरीर-रक्षाके लिए आवश्यकतासे अधिक समझा है। उन लोगोंने प्रयोग करके सिद्ध किया है कि प्रत्येक मनुष्य यदि एक ग्राम (Gram) अथवा दो ग्राम (Gram) नमक प्रतिदिन खाया करे तो उस का स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। परन्तु यह परिमाण हमारी प्रत्येक हालतमें लागू नहीं हो सकता, यह अन्य खाद्य पदार्थोंके व्यवहार पर बहुत कुछ निर्भर होता है। बंगे साहब कहते हैं:—

"When a purely animal diet is used, there is no desire for salt; but on a vegetable diet, there is a craving for it which may become very intense aud unpleasant when circumstances prevent its being obtained." अर्थात् केवल मांस भोजन करनेसे नमक खानेकी इच्छा नहीं होती; परन्तु शाक जातीय पदार्थ भोजन करनेसे नमक खानेकी इच्छा होती है, और यह इच्छा विशेषतः ऐसी दशामें और भी प्रबल और दुःखकर हो जाती है जब इसका (नमकका) मिलना मुश्किल होजाता है।

उपरोक्त बातोंका यह मतलब नहीं है कि मांसाहारियोंको नमक खाने की इच्छा एक दम होती ही नहीं। इच्छा दोनोंको होती है—मांसाहारी को भी और शाकाहारी को भी। भेद केवल यही है कि शाकाहारीकी इच्छा मांसाहारीकी अपेक्षा अधिक बलवती होती है। शाकाहारीको नमक खानेकी अधिक इच्छा क्यों होती है, इसका कारण बंगे (Bunge) साहब यों देते हैं:—
"Most vegetables contain a large amount of Potassium salts and in the blood, these salts re-act with sodium-chloride (the ordinary salt which we take), thus if Potassium Sulphate were added to the blood it would re-act with sodium chloride-giving some potassium chloride and some sodium sulphate. Both of these salts will be removed by kidneys, since they are foreign to the blood. this latter liquid will lose some of its supply of sodium salts-hence the craving for more salts in the food." अर्थात् बहुत से शाक जातीय पदार्थोंमें पोटासियम यौगिक प्रचुर परिमाण में विद्यमान रहते हैं। यह नमक रक्तस्थित सोडियम क्लोराइड (साधारण नमक जिसको हम खाते हैं) के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करते हैं। अतएव, यदि पोटासियम सलफेट (एक प्रकारका पोटासियम नमक) रक्तमें मिश्रित हो जावे, तो यह सोडियम क्लोराइडके साथ प्रतिक्रिया कर सोडियम सलफेट और पोटासियम क्लोराइड नमकोंकी उत्पत्ति करेगा। यह दोनों नमक वृक्कों (Kidneys) द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं, कारण कि यह रक्त से भिन्न जातीय हैं। इस प्रकार सोडियम लवणोंकी आमदनी कम हो जाती है, और

इस कमीकी पूर्त्तिके लिए ही नमक खानेकी प्रबल इच्छा होती है।

ऊपरके अवतरणसे यह बात ज़ाहिर हो गई कि शाकाहारीको एक अथवा दो ग्राम (Gram) से अधिक नमक खाना उचित है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम लोग अधिक मात्रामें नमक खाने लगें। प्रत्येक वस्तुकी एक सीमा होती है, जिसका उल्लंघन करने से अवश्य हानि पहुंचती है।

संसारकी प्रत्येक वस्तुमें अच्छे और बुरे गुण विद्यमान हैं। तुलसीदासजीने भी कहा है "जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार" नमक भी इस नियम से नहीं बच सकता। इसमें भी अच्छे और बुरे गुण हैं। उचित मात्रामें व्यवहार करने से जैसे यह हमारी जीवनी शक्ति की रक्षा करता है, अनुचित मात्रामें व्यवहार करने से वैसे ही यह हमारे शरीरको हानि भी पहुँचाता है।

शरीरमें हम एक निर्धारित परिमाणसे अधिक नमक नहीं रख सकते। इस निर्धारित परिमाण से अधिक होनेसे हमारे वृक (Kidneys) इसको अवश्य शरीरसे बाहर निकाल देंगे। परन्तु यदि हम प्राकृतिक नियम का उल्लंघ करते ही चले जायँगे, तो एक न एक दिन प्रकृति हमें अवश्य दण्ड देगी। यदि हम बराबर प्रचुर परिमाणमें नमक खाते ही चले जायँगे, तो आखिर हमारे वृक (Kidneys) एक दिन अवश्य ही क्लान्त हो इसका बाहर निकालना बंद कर देंगे। नतीजा यह होगा कि नमक प्रचुर परिमाणमें हमारे शरीरमें जमा हो जायगा। फिर यह हमारे सेल और टिसू (cells and issues) के आसमाटिक प्रेशर (osmotic pressure) की वृद्धि कर शरीरमें शोथ उत्पन्न करेगा और इस प्रकार हमारे शरीरको हानि पहुँचायगा। अतएव नमकका व्यवहार उचित परिमाणमें करना नितान्त आवश्यक है। एक अथवा दो ग्राम (Grams) से कुछ अधिक नमक व्यवहार करनेसे शाकाहारियोंका स्वास्थ्य सुन्दर बना रह सकता है।

—सूर्यदेवनारायण सिंह।

शोरा (Saltpetre)

सवा तोलेके लगभग शोरा खानेसे बहुत से मनुष्य मर चुके हैं। केवल एक रोगीकी कथा मालूम है जो १५ तोले शोरा खाने पर भी बच गया था। इसके विषमें दाहक लक्षणोंके अतिरिक्त अत्यन्त शारीरिक दुर्बलता, हाथ पैरोंमें ऐंठन, और अर्धांगवात आदि लक्षण भी दृष्टि पड़ते हैं; और कभी कभी इसके विषमें पेशाबका रुकना भी देखा गया है।

खौलता हुआ पानी (Boiling water)

इसका भी विषातमक प्रभाव होता है बहुत से अंग्रेज बच्चे गरम गरम पानी अथवा गरम चाय पी लेनेसे मरते हुए सुने गये हैं। खोज करने पर मरनेका यह कारण विदित हुआ कि बहुत तेज़ गरम पानी या चाय पीनेके कारण उनका गला सूज गया और श्वास क्रिया बन्द हो कर मृत्यु हो गई।

मैनफल (Randia dumetorum)

डाकृर जार्ज ने अपने अनुभवसे लिखा है कि इसका फल दाह और वमन उत्पादक होता है। मैसोरके ग़रीब आदमी इस कार्यके लिए इसका बहुतायतसे प्रयोग करते हैं; इसकी एक मात्रामें एक पका हुआ फल कूटकर देते हैं। डाकृर ऐंसली (Ainslie) का अनुभव है कि इसका काढ़ा भी वमन कारक होता है। डाकृर डीमोकने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि इसको पीसकर लोग धानके साथ मिला देते हैं, जिससे उनमें कीड़े नहीं

लगते और मक्खियोंको मारनेके लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

जालन्धरके आस पासके लोग स्त्रियोंका गर्भ-पात करानेके लिए भी इसको खिलाते हैं।

बाल (Chopped hair)

भारतवर्षमें बहुत से प्रान्तोंके मनुष्योंका विश्वास है कि बालोंमें भी विषात्मक प्रभाव होता है; और शेरकी मूंछके दो बालोंमें विशेषकर विषात्मक प्रभाव होता है। किन्तु इसके विष रोगी देखनेमें नहीं आते।

गला हुआ सीसा (Molten lead)

एक बार एक डाक्टरने देखा कि एक मनुष्य उनके अस्पतालमें बिना किसी विशेष प्रकारके विष लक्षण हुए ही मर गया। शवपरीक्षा करनेपर उसके पेटमेंसे २० तोलेके लगभग सीसेका डला निकला।

खोज करने पर पता लगा कि समुद्रके अन्दर जो लाइट हाउस (Light House) होते हैं उनमेंसे एडिस्टोन (Eddystone) नामक लाइट हाउसमें आग लगते समय यह मनुष्य ऊपरकी ओर मुख करके मुख खोले हुए देख रहा था कि ऊपरसे पिघला हुआ सीसा इसके मुखमें गिर पड़ा और अन्दर जाकर उसने पेट आदिको झुलसा दिया, जिसके कारण आमाशय बहुत ज्यादा जल गया और उसमें घाव उत्पन्न हो गये।

—प्रतापसिंह

तुलसीकृत रामायणका विज्ञान

बादल

संगतिका प्रभाव दिखाते हुये स्वामीजी बादल की उत्पति नीचे लिखी हुई चौपाइयोंके अनुसार बताते हैं:—

धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिय पुरान मञ्ज मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता।
होइ जलद जग जीवन दाता॥६॥

[बालकाण्ड ७वें दोहे के ऊपर]

कुसङ्ग में पड़ कर धुआँ करिखा होता है, वही पुराण लिखनेपर सुन्दर स्याही कहलाता है। वही धूम[1] पानी, अग्नि और वायु के संसर्ग से संसारको जीवन (जल) देनेवाला बादल होता है। और भी

जेहि ते नीच बड़ाई पावा।
सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा॥
धूम अनल सम्भव सुनु भाई।
तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥५॥

[उत्तरकाण्ड १०६ ठें दोहेके ऊपर]

नीच जिससे बड़ाई पाता है वह हठ करके पहले उसीको नष्ट करता है। हे भाई! देखो धुआं आगसे उत्पन्न होता है; पर मेघकी पदवी पाकर उसको भी बुझा देता है।

पाला और ओला

नीचेकी चौपाईमें निर्गुण और सगुण रूपकी एकताका विवेचन करते हुए स्वामीजीने दिखाया है कि हिम तथा उपल पानीके ही रूपान्तर हैं।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे।
जल-हिम-उपल बिलग नहिं जैसे॥२॥

[बालकाण्ड ११५वें दोहेके नीचे]

जो निर्गुण है वह कैसे सगुण होता है जैसे पानी, पाला और ओला भिन्न नहीं हैं—कारण विशेषसे रूपान्तर हो जाते हैं।

हीरा सब पदार्थोंसे कड़ा होता है

नीचेकी अर्द्धालीमें धनुषकी कठोरता और रामचन्द्रजी की कोमलताका वर्णन करनेमें तुलसीदासजी ने हीरेको सबसे कड़ा ठहराया है।

१—धुआंसे भापका अर्थ लिया गया है, इसी आशय को लेकर कोष लेखकों ने बादल की संज्ञा 'धूम योनि' रखा है।

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा।
सिरस सुमन कन बेधिये हीरा ॥३॥
[बालकाण्ड २५६ वें दोहेके नीचे]

सीताजी कहती हैं हे विधाता! किस तरह मनमें धीरज धरूं, कहीं सिरसके फूलसे हीरे[1] की कनी छेदी जा सकती है।

लघु ज्वार-भाटा

कौसिक रूप पयोनिधि पावन।
प्रेम वारि अवगाह सुहावन ॥१॥
राम रूप राकेस निहारी।
बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ॥२॥
[बालकाण्ड २६१ वें दोहेके नीचे]

विश्वामित्र रूपी पवित्र समुद्रमें प्रेम रूपी अथाह सुहावना जल है। रामचन्द्र रूपी पूर्ण चन्द्रको देखकर रोमांचित रूपी लहरोंकी तरङ्गें बढ़ रही हैं।

और भी—

एहि अवसर मंगल परम, सुनि रहसेउ रनिवास।
सोभत लखि विधु[2] बढ़त जनु, वारिधि बीचि विलास ॥
[अयोध्याकाण्ड ७वाँ दोहा]

इसी समय अतिशय मंगल सुनकर रनिवास प्रसन्न हुआ, ऐसा जान पड़ता है मानों चन्द्रमा को देखकर उसमें लहरोंका आनन्द बढ़ता हुआ शोभित हो।

वृहत् ज्वार-भाटा

बहुतक चढ़ीं अँटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥
राका[3] ससि रघुपतिपुरी, सिन्धु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान ॥
[उत्तरकाण्ड ४थे दोहे से आगे]

बहुतेरी नव बधुएँ अटारियों पर चढ़ कर विमान आकाशमें निरख रही हैं। देखकर प्रसन्नता से मधुर स्वरसे सुन्दर मंगल गान करती हैं। विमानमें बैठे हुये आकाशमें रघुनाथजी पूर्णिमाके चन्द्रमा के समान हैं और अवधपुरी समुद्र रूप है, वह चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न हुई है। ऐसा मालूम होता है; मानों कोलाहल करते हुये बढ़ रहा है, अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियां ऊंची लहरके समान हैं।

जल वृष्टि

१—पहाड़ों पर वृष्टि अधिक होती है।
२—समुद्रतलमें रत्न मिलते हैं।

"विज्ञान यह बतलाता है कि पहाड़ वर्षा होने में सहायता देते हैं। इसके प्रमाण स्वरूप महावालेश्वर और चेरा पूँजीमें ५००-७०० इंच तक वृष्टि होती है"

अयोध्या काण्डकी आदिमें ही स्वामीजी इसी भावको इस प्रकार दर्शाते हैं:—

भुवन चारि दस भूधर भारी।
सुकृत मेघ वरषहिं सुख वारी ॥
रिधि सिधि सम्पति नदी सुहाई।
उमगि अवध अम्बुधि कहं आई ॥

चौदहों लोक रूपी भारी पर्वतों पर पुण्य रूपी बादल सुख रूपी जलकी वर्षा करते हैं। ऋद्धि, सिद्धि और सम्पति सुहावनी नदियां हैं, वे उमड़ कर अयोध्या रूपी समुद्रमें आकर मिली हैं।

१—"हीरा सब पदार्थोंसे कड़ा होता है, तभी तो कांच तथा अन्य कड़ी चीज़ोंके काटनेके औज़ारोंकी नोक वा धार हीरेकी बनाई जाती है। जिन कलमोंकी नोक पर हीरा लगा होता है वह प्रायः कभी नहीं घिसती हैं।"
[“विज्ञान” जून सन् १६२३ ई०]

२—बढ़त विधु, अपूर्ण चन्द्र, परिवा दुइज तक भी समुद्रकी लहरें ऊंची उठती हैं। यथा:—

"वेला समीपं स्फुट फेन राजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः" कुमार सम्भव अर्थात् जिस प्रकार प्रतिपद चन्द्रके कारण समुद्रकी फेन युक्त ऊंची लहरें किनारेकी ओर आकर्षित होती हैं।

३—राका ससि—पूर्णमासीको चन्द्र और सूर्य्य पृथ्वीके आमने सामने होकर विशेष आकर्षण शक्ति द्वारा समुद्रमें वृहत ज्वार भाटा उत्पन्न करते हैं।

चन्द्रमामें जो काला धब्बा है वह पृथ्वीकी छाया है

पूरबकी ओर चन्द्रोदय होता देख भगवान राम-चन्द्रजी प्रश्न करते हैं:—

"चन्द्रमामें श्यामता कैसी है ? अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार कहो।" सुग्रीव झट उत्तर देते हैं।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
ससि मंह प्रकट भूमि कै झाँई ॥३॥

[लंकाकाण्ड ११वें दोहेके नीचे]

सुग्रीवने कहा—हे रघुनाथ जी ! सुनिये चंद्रमा में पृथ्वीकी छाया प्रकट हो रही है।

सोने, लोहेकी उत्पत्ति

नीचे लिखे हुये अनुसार तुलसीदासजी सोने और लोहेकी उत्पत्ति पत्थरसे होना बताते हैं:—

कनकउ पुनि पषान ते होई।
जारेहु सहज न परिहर सोई ॥३॥

[बा० का० ७६वें दोहेके नीचे]

सोना भी तो पत्थरसे पैदा होता है वह जलाने पर भी अपना स्वभाव नहीं त्यागता।

कारण ते कारज कठिन, होइ दोस नहिं मोर।
कुलिस अस्थि ते उपलते, लोह कराल कठोर ॥

[अयोध्याकाण्ड १७६वाँ दोहा]

कारणसे कार्य्य कठोर होता है, इसमें मेरा दोष नहीं; वज्र हड्डीसे और लोहा पत्थरसे कठोर होता है—हड्डीसे वज्र और पत्थर से लोहा पैदा होता है पर उससे भीषण कठोर होता है।

१—आधुनिक विज्ञान चन्द्रमाको पृथ्वीका एक भाग मानता है। वैज्ञानिकोंका कथन है कि चन्द्रमा पृथ्वीके उस स्थानसे पृथक् हुआ है जहां प्रशान्त महासागर लहरें मारता है। स्वामीजी पहिले ही से इस बातके कायल हैं।

जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक ॥

मुझे ज्ञात नहीं कि वैज्ञानिकोंने पत्थरसे सोने और लोहेकी उत्पत्तिको प्रयोग द्वारा सिद्ध किया है वा नहीं। कोई वैज्ञानिक महाशय इस पर प्रकाश डालनेकी कृपा करें।*

—भवानीभीख त्रिपाठी

आयुर्वेदका त्रिदोष-विज्ञान

(ले०—स्वामी हरिशरणानन्द)

हम पिछले लेखमें बतला चुके हैं कि आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार प्रत्येक व्याधिके मूल कारण दोष, धातु और मल हैं। इनमें भी वात, पित्त, कफ नामक दोष सर्व प्रधान माने जाते हैं। चाहे मल कोपके कारणसे हुई हो, चाहे धातुओंकी असात्म्यावस्थाके कारण, सबमें वात, पित्त और कफका न्यूनाधिक होना अनिवार्य है। बिना दोषोंके घटे बढ़े व्याधि नहीं हो सकती; ऐसा विश्वास बँधा चला आता है।

यह वात, पित्त और कफ क्या पदार्थ हैं, शरीरमें इनकी स्थिति कैसी है, यह व्याधियोंके उत्पादक किस तरह हैं, इत्यादि बातोंका शास्त्र सम्मत वर्णन करूंगा।

वात पित्त और कफ तीन भिन्न पदार्थ हैं; शरीरमें इनके निवासका स्थान तथा कार्य भी भिन्न हैं। उनमें प्रथम वायु दोषको देखिये।

वायु दोष

शरीरमें जो वायु दोष नाम करके माना जाता है, वह रूक्ष (खुश्क), हलका, विशद (उज्ज्वल) शीतल, गमन क्रियावाला और अमूर्त्त पदार्थ है।

* सोनेके कण चट्टानोंमें बिखरे हुए मिलते हैं। उन्हींका चूर्ण कर विविध प्रयोगों से सोना अर्जन कर लेते हैं। इसी प्रकार लोहा भी लाल पत्थर आदिसे निकलता है अतएव सोना और लोहा दोनोंकी उत्पत्ति पत्थरसे मान सकते हैं। सं०

वायुके भेद

यह कार्य भेदसे प्राण, उदान, समान, व्यान अपान नामसे पांच प्रकारका है। इन पांचोंके भिन्न स्थान और कार्य हैं।

इनका निवास और कार्य

(१) प्राण-वायु शरीरके शिर, छाती (वक्षस्थल), दोनों कानोंके भीतरके खोखले मार्ग, जिह्वा, नेत्र और नासिकामें सदा विद्यमान रहता है। थूकना, छींकना, डकार लेना, श्वास लेना और भोजन ग्रहण करना इसके कार्य हैं।

(२) उदान-वायुका शरीरके नाभि, हृदय और कण्ठमें सदा निवास है; वाणीको शक्ति प्रदान करना, शरीरके अङ्गोंका संचालन, बल वर्ण आभा और प्रभाका उत्पन्न करना इसका कार्य है।

(३) समान-वायुका शरीरके स्वेद वाही, दोष वाही, जल वाही स्रोतोंमें तथा जठराग्निके पक्व भागमें निवास है।

उदरस्थ ग्रहणी-कला (भोजन पचानेकी शक्ति) के बलको बढ़ाना इसका कार्य है।

(४) व्यान वायुका शरीरके प्रत्येक विभागमें सदा निवास रहता है। यह बड़ी तीव्र गतिवाली है। चलना, फिरना, अंगोंका पसारना, सिकोड़ना, नेत्रोंका खोलना बन्द करना यह सब इसीकी शक्तिसे होते हैं।

(५) अपान वायुका अण्ड कोष, वस्ति, (मसाना) मेढ़ू (इन्द्री) श्रोणि, गुदा और अन्त्रमें सदा निवास है।

वीर्यका स्थानसे च्युत करना, रोकना, मल-मूत्रका अभिसरण करना, स्त्रियोंमें ऋतुका जारी करना, समय पर गर्भसे बालकका बाहर निकाल फेंकना आदि इसके कार्य हैं।

सारांश—उपरोक्त विवेचनासे स्पष्ट होता है कि एक वायु भिन्न भिन्न रूपोंमें विभक्त होकर शरीरकी समस्त क्रियाका सम्पादन कराता रहता है। यदि इसकी उपस्थिति न हो तो शरीरकी क्रिया ही बन्द हो जायं।

पित्त-दोष

पित्त स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव खट्टा, सर (बहनेवाला), कड़वा पदार्थ है। यह भी पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक और भ्राजक नामसे पांच प्रकारका है। इन पांचोंके निवास तथा कार्य भी भिन्न भिन्न हैं।

निवास और कार्य

(१) पाचक-पित्त अग्निके तेजसे उत्पन्न होता है और तद्वत् गुणोंसे युक्त है। यह द्रवता रहित अग्नि रूप होकर अग्न्याशयमें निवास करता है। अन्नको पचाना, सार और मलका पृथक्करण करना, अवशेष पित्तोंको शक्ति प्रदान करना इसका कार्य है।

(२) रञ्जक-पित्तका पाकाशयमें निवास है। किसी किसीने यकृतमें इसका स्थान माना है। रस नामक धातुको रञ्जित करना अर्थात् उसको रक्तमें परिणत करना इसका कार्य है।

(३) साधक पित्तका हृदयमें निवास है। बुद्धि, मेधा और अभिमानादिको उत्पन्न करना इसका कार्य है।

(४) आलोचक पित्तका दृष्टिमें निवास है। रूपको ग्रहण करना और दृष्टि-शक्ति प्रदान करना इसका कार्य है।

(५) भ्राजक-पित्तका त्वचामें निवास है। लगाये गये लेप उबटन आदिका परिपाचन करना इसका कार्य है। चरकजी ने पित्तके निवासका स्थान स्वेद, रस, लसिका, रक्त और आमाशयमें माना है।

सारांश—उपरोक्त पित्त यद्यपि एक जैसे गुण स्वभाव वाले एक पित्तके ही रूपान्तर मात्र है, तथापि अग्न्याशयका पित्त द्रवता रहित है और उसको तिल-प्रमाण रुपवाला, अग्निके रूपवाला भोजनको पचानेवाला माना है। यथा: "अग्न्याशये भवेत्पित्तमग्नि रूपे तिलोन्मितम्" शार्ङ्गधर।

श्लेष्म-दोष

श्लेष्म—भारी, ठण्डा, मुलायम, चिकना, स्वादमें मीठा, स्थिर प्रकृति, गाढा, लहेसदार पदार्थ है। इसीको बलगम और कफ भी कहते हैं। यह भी अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक, और श्लेषक नामसे पांच प्रकारका है।

निवास और कार्य

(१) अवलम्बक-श्लेष्मका निवास छातीमें है। त्रिक (कमरके तीन मोहरों) को स्थिर रखना अर्थात् हिम्मत टूटने न देना, अन्नके द्वारा शरीरमें शक्ति उत्पन्न कर हृदयकी सहायता करना इसका कार्य है। यह सब श्लेष्मोंमें प्रधान है और अपनी शक्तिसे औरोंकी सहायता करता रहता है, ऐसा माना जाता है।

(२) क्लेदक श्लेष्मका आमाशयमें निवास है। उदरदरीमें आये हुये अन्नको गीला करना, और उसको मन्थन कर पचनेके योग्य बनाना इसका कार्य है।

(३) बोधक-श्लेष्मका जिह्वामें निवास है। रसना द्वारा प्रत्येक रसका बोध कराना इसका कार्य है।

(४) तर्पक-श्लेष्मका सिरमें निवास है। कान, नाक नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियोंको तृप्त करना इसका कार्य है।

(५) श्लेषक-श्लेष्मका सन्धियोंमें निवास है। सन्धियोंका स्निग्ध रखना गतिके समय संघर्ष से बचाना इसका कार्य है।

उक्त तीनों दोष शरीरमें रहते हुए, शरीरके आवश्यक कार्योंका सम्पादन करते हैं। यही जब किसी कारणसे कुपित हो उठते हैं तो अनेक व्याधियोंका आविर्भाव होता है। यह किस तरह होता है आगे वर्णन करते हैं।

वायु कोपका कारण

अधिक कड़वी, चरपरी, कसैली, सूखी चीजों के खानेसे, आधा पेट भोजन करनेसे या भूखा रहनेसे, भूखके समय भोजन न करनेसे, आये हुये मल मूत्रके वेगको रोकने से, रात्रिमें अधिक जागरण करने से, विशेष सम्भाषणसे, अधिक वमन, विरेचन, स्थापन वस्ति आदिके लेनेसे, वायु कुपित होता है। इससे भिन्न वर्षा ऋतुके आगमन से तथा दिन रात्रिके अन्तिम समयमें यह स्वाभावतः कुपित होता है।

शरीरमें वायुकोपके चिन्ह

शरीरमें वायुका कोप एकाङ्ग व्यापी और सर्वाङ्ग व्यापी भेदसे दो प्रकारका होता है; इनके लक्षण भिन्न भिन्न हैं।

सर्वाङ्गमें कुपित वायुके लक्षण

वायुके सर्व शरीरमें कुपित होने पर सारे शरीरमें शिथिलता होती है, अङ्गोंमें प्रसार होता है, और सूई वेधनवत् पीड़ा होती है। त्वचा स्पर्शादि ज्ञानसे शून्य होने लगती है, सर्वाङ्ग टूटता रहता है अर्थात् अंगड़ाई आती रहती है। मांस पेशियोंमें संकोच होने लगता है, शरीर अपने अधीन नहीं रहता, बारम्बार रोमाञ्च व कम्प होता है, तृषा बढ़ जाती है, मुखका स्वाद कसैला हो जाता है, त्वचाका वर्ण विवर्ण हो जाता है।

उपरोक्त चिन्होंमेंसे कोई चिन्ह उद्धत होने पर वायुके कोपका लक्षण समझा जाता है। और इनमें जितने उपद्रव अधिक बढ़े होंगे, उतना ही वायुका विशेष कोप ज्ञात होगा।

एकाङ्गमें कुपित वायुके चिन्ह

(१) आमाशयमें निवास करनेवाला वायु जब कोपको प्राप्त होता है, तो आमाशय खाये पिये पदार्थोंको पचाने और अपने भीतर रखनेके असमर्थ हो जाता है, इसीसे जबतक आमाशयगत वायु कुपित रहता है। खाया पिया वमनके द्वारा निकल जाता है; और शरीरमें इस विकारके साथ अनेक उपद्रव खड़ा कर देता है यथा :—मोह, मूर्छा, प्यास, छातीमें अकड़ाव, पसलियोंमें दर्द, आदि।

(२) पाकाशयमें रहनेवाला वायु जब कुपित होता है तो आंतें बोलने लगती हैं, नाभि स्थानमें पीड़ा उठती है, मल मूत्र रुक जाता है, पेटमें अफरा हो जाता है; कटिमें शूल होने लगता है।

(३) सिरमें रहने वाला वायु जब कुपित होता है तो यह पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्तिको नष्ट कर मनुष्यको कुरूप करने लगता है। तथा अपनी शक्तिसे सिरमें खुश्की, इन्द्रियोंमें अचेतनता और सिरमें पीड़ा उत्पन्न करता है।

(४) समग्र शरीरमें रहनेवाला वायु जब कुपित होता है तो शरीरमें छेदन भेदनवत् पीड़ा उत्पन्न करता है।

(५) श्रोतोंमें रहनेवाला वायु जब कुपित होता है रक्तको दूषित कर फोड़ा फुंसी उत्पन्न करता है।

(६) जब श्रोतमें रहनेवाला वायु कुपित हो कर मेदमें पहुँच जाता है, तो मन्द पीड़ावाली गाँठें उत्पन्न करता है।

(७) और जब यही वायु विशेष कोपको प्राप्त होकर शिराओंमें पहुँच जाता है तो अङ्गोंमें शूल, संकोच, वर्द्धन तथा एक प्रकारकी शिरा ग्रन्थि उत्पन्न करता है।

(८) जब यह वायु कुपित होकर श्रोतवाही स्नायुओंमें प्रवेश करता है तो स्नायु-स्तम्भ, आक्षेप, और कम्पको उत्पन्न करता है।

(९) जब समग्र शरीरमें रहनेवाला वायु कुपित होकर सन्धि स्थलोंमें प्रवेश करता है तो सन्धियोंमें शोथ और सन्धियोंमें शूल उत्पन्न कर उसकी गतिका नाश कर देता है।

(१०) और जब यह अस्थिमें जा कर कुपित होता है तो अस्थि शूल, अस्थिशोष हडफूटनको उत्पन्न करता है।

(११) जब यह कुपित होकर मज्जामें प्रवेश करता है तो एक प्रकारका ऐसा स्थाई शूल उत्पन्न करता है जो एक क्षणके लिए भी बन्द नहींहोता।

(१२) वीर्य श्रोतोंमें रहनेवाले वायुके कुपित होने पर, वह वीर्यको या तो अति प्रवृत्त करता है या सुखा देता है।

इसी प्रकार शरीरके अन्य अङ्गोंके विकारी होने पर वायुके होनेका निश्चय करे।

किस किस वायुके कुपित होने पर मनुष्यके शरीरमें कौन कौन सी व्याधियाँ उत्पन्न होंगी, यह बात प्रत्येकके आदि रूपको देख कर ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता; तथापि किसी किसी-का ज्ञान हो भी जाता है। चाहे किसी भी वायु सम्बन्धी विकारसे कोई व्याधि उत्पन्न हुई हो सब वायु जन्म व्याधियां कहलायेंगी। पूर्वाचार्य्यों ने उनकी संख्या अस्सी निर्द्धारित की है।

अस्सी प्रकारकी वात व्याधियोंके नाम

आक्षेप (तशन्नुज), हनुस्तम्भ (जबड़ेका चढ़ जाना), ऊरुस्तम्भ (जांघकी पेशियोंका जकड़ जाना), शिरोग्रह (सिरका जकड़ जाना), बाह्या-याम(शरीरका धनुषवत् बाहरकी ओर झुक जाना), अन्तरायाम (इसी तरह भीतरकी ओर धनुषा-कार होना), पार्श्वशूल (पसलीका दर्द), कटि-ग्रह (कमरका जकड़ जाना), दण्ड पतानक (शरीरका लकड़ी वत् हो जाना), खल्ली (मांस पेशियोंका एक दूसरे पर चढ़ना), जिह्वास्तम्भ (जिह्वाका बाहर या भीतर होकर रह जाना), अर्दित (लकवा), पक्षाघात (अर्द्धाङ्ग), क्रोष्टशीर्ष (घुटनोंका शोथ), मन्यास्तम्भ (गर्दनकी मांस पेशी का एक दूसरे पर चढ़ जाना), पङ्गुता (लङ्गड़ाना), कलापखञ्ज(लड़खड़ा कर चलना), तूनी (गुदावस्ति स्थानसे दर्द उठकर नीचेकी ओर जाना), प्रतितूनी (गुदावस्ति स्थान से दर्द उठकर ऊपरकी ओर चढ़ना , खञ्जता (एक पैरसे लड़खड़ाना), पादहर्ष (पैरोंमें झनझनाहट), गृध्रसी (रींगन वाय), विश्वाची (भुजाका दर्द), अपबाहुक (बांहके रगोंका दर्द), अपतानक (किसी ऐसी दिमाग़ी व्याधिका दौरा होना जिसमें नेत्र खुले रह जांय), व्रणायाम (उदरादि किसी स्थलमें वायुकी चल

ग्रन्थी उत्पन्न होकर तीव्र पीड़ा और मूर्छा आदिको उत्पन्न करना), वातकण्टक (टखनेका दर्द), अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), अङ्गभेद (शरीरमें सुई चुभने कीसी पीड़ाका होना), अङ्ग शोष (शरीरका सूख जाना), मिम्मण (मिनमिना कर बोलना), कल्लता (हकलाना), प्रत्यष्ठीला (कोखमें लम्बी वायुकी गांठका उत्पन्न होना), अष्ठीला (पेटमें दर्द वाली वायु ग्रन्थीका उत्पन्न होना), वामनत्व (शरीरका बौना रह जाना), कुब्जत्व (कुबड़ापना), अङ्ग-पीड़ा (शरीरका दर्द), अङ्गशूल (शरीरमें चमचमाहट वाला दर्द होना), अङ्ग सङ्कोच (किसी अङ्गका सिकुड़ जाना), स्तम्भ (शरीरका जकड़ जाना), रूक्षता (शरीरमें खुश्की बढ़ जाना), अङ्ग भङ्ग (अङ्गोंका टूटना), अङ्ग विभ्रंश (शरीरका विशेष पीड़ा युक्त टूटते रहना), विड्ग्रह (मलका रुक जाना), बद्ध विट्कता (मलका ग्रन्थि रूपमें बांध जाना-सुद्दे पड़जाना), मूकत्व(गूँगा होजाना), अतिजृम्भ (बहुत जमुहाई आना), अत्युद्गार (बहुत डकार आना), अन्त्र कूजन (आंतोंका बोलना), वात प्रवृत्ति (अधिक वायु सरन होना), स्फुरण (अङ्गोंका फड़कना), शिरापूरण (रगोंका विकारसे भर जाना), कम्प (कांपना), कार्श्य (शरीरका सूख जाना), श्यामता (शरीरका काला पड़ जाना), प्रलाप (वृथा बकवास), क्षिप्रमूत्रता (थोड़ा २ मूत्र आना), निद्रानाश (नींद न आना), स्वेदनाश (पसीना न आना), दुर्बलत्व (दुबलापना), बलक्षय (कमजोरी), अतिप्रवृत्ति (विषयेच्छा अधिक रहना), वीर्य नाश (वीर्यका न बनना), शुक्र कार्श्य (वीर्यका निर्बल होना), अनवस्थित चित्त (चित्तका थिर न रहना), काठिन्य (शरीरका कठिन हो जाना), विरसास्यता (मुखका स्वाद बिगड़ जाना), कषायवक्ता (मुँहका कसैला रहना), आध्मान (पीड़ा सहित पेटका फूलना), प्रत्याध्मान (बिना पीड़ाके अफारा होना), शीतता (सर्दी लगना), रोमहर्ष (रोमाञ्च होना), भीरुत्व (डरते रहना), तोद (शरीरमें सूई चुभोनेकी पीड़ा), कण्डू (खाज), रसाज्ञता (स्वादका न प्रतीत होना), शब्दाज्ञता (शब्दबोध न होना), प्रसुप्ति (शरीरका शून्य हो जाना), गन्धाज्ञत्व (गन्धका ज्ञान न होना), दृशः क्षयः (नजर न आना) । यह वात सम्बन्धी ८० व्याधियां हैं । इससे भिन्न किसी भी वात जन्य चिन्होंसे युक्त कोई व्याधि हो सब इन्हींके अन्तर्गत मानी जाती हैं ।

पित्त कोपका कारण

मनुष्यके शरीरमें कड़वे, खट्टे, तीक्ष्ण, गरम, विशेष नमकीन और विशेष विदाही पदार्थोंके सेवन से, इच्छा से अधिक भोजन करने से और क्रोध करनेसे पित्त कोपको प्राप्त होता है । इससे भिन्न शरद् ऋतुके आगमनसे तथा दो प्रहर दिन चढ़े और आधी रात्रिके समय पित्त विशेष कोप करता है ।

पित्त कोपके चिन्ह

शरीरमें पित्तका कोप एकाङ्ग और सर्वाङ्ग भेद से दो प्रकारका होता है और उसके भिन्न भिन्न लक्षण हैं ।

सर्वाङ्गमें कुपित पित्तके लक्षण

पित्त जब सारे शरीरमें फैल कर कोपको प्राप्त होता है तो निम्न चिन्ह देखे जाते हैं । यथाः—शरीरमें दाह, वर्णका बदल जाना, शरीरके उत्तापका बढ़ा रहना, रक्तका विकारी हो जाना, रक्तमें पाक पड़ जाना, प्रस्वेद अधिक आना, चित्तका दुखी और व्याकुल रहना, आंखोंसे जल स्राव होना, त्वचामें स्वेत वर्णकी पिटिकायें निकलना, शरीरका शिथिल रहना, मूर्छा आना, मनका स्थिर न रहना, मुखका स्वाद कड़वा रहना, उदरमें भोजनका अच्छी तरह परिपाक न होकर खट्टा हो जाना, त्वचाका वर्ण पीला हो जाना । आदि ।

एकाङ्गमें कुपित पित्तके लक्षण

(१) पाकाशयमें रहनेवाले पित्तके कुपित होने पर बवासीर, अग्निमांद्य, नेत्रोंके आगे अँधेरा होना, अजीर्ण, कुक्षिशूल, उत्साह भङ्ग, भोजनमें अरुचि,

त्वचामें पीताधिक्य, मूत्रमें रक्तवर्णता, अतिसार आदि होते हैं।

(२) आमाशयमें रहनेवाले पित्तके कुपित होने पर निम्न विकार देखे जाते हैंः—खाये हुये भोजनसे रस नामक धातु अच्छी तरह नहीं बनता, रक्तकी मात्रा न्यून होती जाती है, तृषा बनी ही रहती है, शरीर वा मन व्याकुल रहता है; यकृत, प्लीहा बढ़ जाते हैं; इत्यादि

(३) हृदयमें रहनेवाले पित्तके कुपित होने पर यह विकार देखे जाते हैं—बुद्धि स्थिर नहीं रहती धैर्य जाता रहता है, हर समय भय प्रतीत होता रहता है, किसी पर विश्वास नहीं रहता, इत्यादि।

(४) नेत्रमें रहनेवाले पित्तके कुपित होने पर यह विकार देखे जाते हैं—सब कुछ पीला दिखाई देता है, दिखाई कम देने लगता है, नेत्रोंमें दाहादि तथा अन्य पित्त सम्बन्धी उपद्रव देखे जाते हैं।

(५) त्वचामें रहनेवाले पित्तके कुपित होने पर निम्न विकार देखे जाते हैं—शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाती है, वर्ण विवर्ण हो जाता है, शरीरमें दाह बना रहता है, कई तरह की श्वेत फुँसियां आदि निकलती रहती हैं। इस तरह जो पित्त विकार से व्याधि उत्पन्न होंगी वह सब पैतिक व्याधि कहलावेंगी। पूर्वाचार्योंने पित्तसे उत्पन्न व्याधियोंकी संख्या ४० नियत की है।

४० प्रकारकी पित्त व्याधियोंके नाम

धूमोद्गार (डकारमें धुँवां निकलना),विदाह (शरीरमें आगसी लगी रहना), उष्णाङ्गत्व, (अङ्गों-का गरम बना रहना), मतिभ्रम (अकलका ठिकाने न रहना), कान्तिहानि (शरीरकी आब जाती रहना), कण्ठ शोष (गलेका सूखा रहना), मुख शोष (मुखका सूखते रहना), अल्पशुक्रता (वीर्य-का कम होना), तिक्तास्यता (मुंहका कड़वा रहना), अम्लवक्त्रत्व (मुँहका खट्टा रहना), स्वेद स्राव (पसीनेका अधिक आना), अङ्गपाक (अङ्गोंमें पाक पड़ना), क्लम (बिना परिश्रम थकावट या ग्लानि), हरित वर्णत्व (शरीरका हरावर्ण हो जाना), अर्थात (भोजन करनेके पश्चात् भोजनकी इच्छा बनी रहनी), पीतकायता (शरीरका पीला पड़ जाना), रक्त-स्राव (नाक मुंहसे रक्त जाना), अङ्गदरण (त्वचाका फटना), लोह गन्धास्यता (लोहकी गन्ध मुख से आना), दौर्गन्ध्य (शरीर-से दुर्गन्धि आना), पतिमूत्रता (पीलामूत्र आना), अरति (चित्तका न लगना), पीत विट्कता, (पीला मल उतरना), पीतावलोकन, (पीला दिखाई देना), पीतनेत्रता (नेत्रोंका पीला हो जाना), पीतदन्तता (दांतोंका पीला हो जाना), शीतेच्छा (ठण्डककी चाह बनी रहना), पीत नखता (नाखूनोंका पीला हो जाना), तेजोद्वेष, (प्रकाशसे घबराना) अल्पनिद्रता (कम नींद आना), कोप (क्रोधी हो जाना), गात्र साद (शरीर का ढीला रहना), भिन्न विट्कता (मल का थोड़ा थोड़ा आना), अन्धता, (दिखाई न देना), उष्णोच्छ्वास (गरम श्वांस आना),उष्ण मूत्रत्व (मूत्र गरम उतरना), उष्ण मलत्व (गरम मलका उतरना), तमोदर्शन (सब कुछ अन्धकार मय प्रतीत होना), पीत मण्डलता (पीत मण्डल का दिखाई देना) निःसरत्व, (पतले दस्तोंका आना)। यह चालीस व्याधियां हैं।

श्लेष्मके कोपका कारण

मनुष्यके शरीरमें विशेष स्वादिष्ट, खट्टे, निम-कीन, चिकनाईवाले, शीतल, कफ वर्द्धक, अधिक जलीय अंशवाले पदार्थों के सेवनसे, विशेष शीतल सुख वर्द्धन स्थानोंमें रहनेसे भोजनके परिपाचन होने से, दिनमें अधिक सोनेसे, वमन, विरेचनके समय कोई गलती कर देनेसे कफ कोपको प्राप्त होता है। इससे भिन्न वसन्तके आगमनसे और दिन रात्रिके प्रथम प्रहरमें स्वभावतः कफ कुपित होता है।

श्लेष्म कोप के चिन्ह

शरीरमें श्लेष्मका कोप एकाङ्ग और सर्वाङ्ग भेदसे दो प्रकारका देखा जाता है और इसके भिन्न भिन्न लक्षण हैं।

सर्वाङ्गमें कुपित श्लेष्म के चिन्ह

श्लेष्म जब सारे शरीरमें कुपित होकर फैलता है तो निम्नलिखित चिन्ह देखे जाते हैं—क्षुधा मन्द हो जाती है, मुखसे लालाका स्राव होता रहता है, शरीर भारी रहता है, शरीरका वर्ण श्वेत हो जाता है, शरीरमें शिथिलता आ जाती है, सन्धियोंमें शोथ उत्पन्न हो जाता है, कास, श्वास हो जाता है। निद्रा अधिक आती है, आदि।

भिन्न भिन्न अङ्गोंमें कुपित श्लेष्मके चिन्ह

(१) जब हृदयमें रहनेवाला श्लेष्म कोपको प्राप्त होता है तो वह अपनी शक्तिसे और सब श्लेष्मोंकी पोषक शक्तिको रोक देता है।

(२) जब आमाशयमें रहनेवाला श्लेष्म कोपको प्राप्त होता है, तो वह उदरके अन्नको न द्रव होने देता है, न पचने देता है।

(३) जब रसनामें रहने वाला श्लेष्म कोपको प्राप्त होता है तो वह जिह्वाका स्वाद बिगाड़ देता है, और मुखमें लालाको अधिक उत्पन्न कर वृथा चुआता है।

(४) जब सिरमें रहनेवाला श्लेष्म कोपको प्राप्त होता है तो वह कुपित होकर सिरमें खुश्की, चक्कर, सिरमें गर्मी, शिरोग्रह, आदि व्याधियां उत्पन्न करता है। इससे भिन्न नेत्रोंको बहुत हानि पहुँचाता है। मोतिया आदि उतरने लगते हैं।

(५) सन्धिमें रहनेवाला श्लेष्म जब कोपको प्राप्त होता है तो उसके कुपित होने पर सन्धियोंमें शोथ, सन्धियोंमें पीड़ा, सन्धियोंमें पाक आदि उत्पन्न कर गतिका नाश कर देता है।

श्लेष्मके कुपित होने पर जो व्याधियां उत्पन्न होती है पूर्व पुरुषोंने उनकी संख्या २० बीस निर्द्धारित की है। कोई भी श्लेष्म सम्बन्धी नई व्याधि हो सब इन्हींके अन्तर्गत मानी जाती है।

श्लेष्म जन्य व्याधियोंके नाम

तन्द्रा (उनींदापन), अतिनिद्रा (बहुत नींद आना), गौरव (शरीरका भारी रहना), मुखमाधुर्य (मुहका मीठा रहना), मुखलेप (मुखका बलग़म से लिहसा रहना), प्रसेकता (मुखसे लार बहना), श्वेतावलोकन (सब कुछ सफेद दिखाई देना), श्वेत विट्कत्व (सफेद मल उतरना), श्वेत मूत्रता (सफेद मूत्र उतरना), श्वेताङ्गवर्णता (शरीरका वर्ण श्वेत हो जाना), शीतेच्छा, उष्णेच्छा (छायामें सरदी छायामें गर्मीकी इच्छा), तिक्तकायिता (मिर्चके मिश्रित पदार्थ खानेकी इच्छा होना), मलाधिक्य (पुरीषका अधिक उतरना), शुक्रबाहुल्यता (वीर्यका अधिक होना), बहुमूत्रता (मूत्रका अधिक आना), तृप्ति (भूखकी इच्छा न होना), आलस्यता (सुस्ती रहना), मन्द बुद्धिता (कम अक़ल होना), घरघर वाक्य (श्लेष्माधिक्यता से शब्द का घरघरा कर निकलना)। यह २० श्लेष्म सम्बन्धी व्याधि हैं; यह है आयुर्वेदका त्रिदोष विज्ञान जिसके कोप और शान्तिसे समस्त प्रकारकी व्याधियोंका प्रादुर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। आयुर्वेद शास्त्रमें इन दोषोंसे भिन्न और कोई व्याधियोंका कारण नहीं माना जाता, जो व्याधियां देश, काल, परिस्थितिके प्रभावसे उत्पन्न होती हैं, उनमें भी उक्त त्रिदोष ही कारण माने जाते हैं। देश काल परिस्थिति बिना त्रिदोषाश्रय मनुष्यका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, जब तक यह कुपित न हों। इसीलिए आयुर्वेद शास्त्रमें इनका विचार करना मुख्य माना गया है।

आयुर्वेदने जिस त्रिदोषको शरीर और व्याधियोंका मुख्य कारण माना है; यह किस आधार पर माना है, और क्यों माना है, इस मतका जन्म कब हुआ, आयुर्वेदिक चिकित्साके साथ साथ हुआ कि पीछे हुआ—इस पर अब तक विचार नहीं किया गया है। यह विषय आयुर्वेदमें बड़ा महत्व रखता है; इसलिए इसका विचार अगले लेखमें करूँगा।

पृथ्वीकी गति

[ले०—पं० ठाकुर दत्त मिश्र]

वर्तमान वैज्ञानिक संसारके पण्डितोंने यह भली भाँति प्रमाणित कर दिया है कि पृथिवी चलती है और सूर्य स्थिर है। पृथिवी अपने अक्षके चारों ओर चौबीस घण्टेमें एक बार परिक्रमा किया करती है—यही इसकी दैनिक गति है और सूर्यकी प्रदक्षिण करके ३६५ दिन पाँच घण्टे ४७ मिनट तथा ४८ सेकण्ड में एक दीर्घवृत्ताकार मार्गमें भ्रमण करती है-यह इसकी वार्षिक गति है। यूरोप में जब ज्योतिष की कहीं गन्ध भी न थी तभी—गैलिलिओ तथा कोपरनिकस इत्यादि पाश्चात्य विद्वानोंके अभ्युदय कालसे बहुत पहले ही—आर्य भट्टने पृथिवीकी गतिके सम्बन्धमें बहुत से प्रमाण उपस्थित किये थे। भारतवर्ष तथा यूरोपमें इसके अनुकूल तथा प्रतिकूल कितनी ही युक्तियाँ निकाली गईं कितने ही विवाद हुये, कितने ही पण्डितोंने अनेक प्रकारसे इसकी सत्यता तथा असत्यता प्रमाणित करनेमें अपनी अपनी प्रतिभाका परिचय दिया। ज्योतिषके क्रम विकाशके इतिहासमें यह एक मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद कहानी है। वास्तवमें आर्यभट्टके समयसे ही भारतवर्षमें ज्योतिष शास्त्रका यथार्थ आदर होने लगा है। उन्होंने गीतिका पाद नामक ग्रन्थके अन्तमें लिखा है—इस नक्षत्र पञ्जरके मध्यमें जो लोग भू-ग्रह-चरितका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, वे ग्रह-भगणके परिभ्रमणका भेद जान कर परब्रह्मको प्राप्त होंगे।" अस्तु, कुछ भी हो, पहले पहल उन्होंने ही रात्रि-दिनके भेदका कारण-स्वरूप पृथिवीकी गति स्वीकार किया था। अपने बनाये हुये गीतिका पाद नामक ग्रन्थके प्रथम श्लोकमें उन्होंने लिखा है—"एक चतुर्युग अर्थात् ४३२०००० सौर वर्षमें पृथिवीके पूर्वकी ओर गमनके भगण १५८२२७५०० बार होते हैं।" सारांश यह है कि इतने सौर वर्षमें पृथिवीके इतने दिन होते हैं, सूर्यके नहीं। कुछ आगे चल कर वे पृथिवीके भ्रमणका निर्देश कर रहे हैं—

"अनुलोमगतिनैर्स्थः पश्यत्यचलं विलोमसंयद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥"

अर्थात् अनुलोम गति युक्त (पूर्वकी ओर जाती हुई) नौकामें बैठा हुआ व्यक्ति नदीके दोनों तटके समीपवर्ती पर्वत तथा वृक्षोंको देखनेसे इन्हें समझता है कि यह पश्चिमकी ओर चले जा रहे हैं; ठीक उसी प्रकार लंकामें देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह पर्वत तथा तारागण समान वेगसे पश्चिमकी ओर चले जा रहे हैं।

आश्चर्यका विषय है कि आर्य भट्टके टीकाकार परमेश्वर ने इस स्थानपर एक विचित्र व्याख्या की है—"परमार्थतस्तु स्थिरेव भूमिः। भूमेः प्रागमन नक्षत्राणां गत्यभावञ्चेच्छन्ति केचित्तान्मिथ्या ज्ञानवशादित्याह"। अर्थात् पृथ्वी वास्तवमें स्थिर है; कुछ लोगोंका कथन है कि पृथिवी पूर्वकी ओर गमन करती है और नक्षत्र गण अचल हैं, उपरोक्त दृष्टान्तके ही समान यह युक्ति भी निःसार है।" परमेश्वर बहुत परवर्ती कालमें हुये थे। अनुमानसे ज्ञात होता है कि उन दिनोंमें पृथिवीके भ्रमणके सम्बन्धमें अपना मत प्रकाशित करनेका किसीको भी साहस न था; अन्यथा उक्त टीकाकार महोदय आर्य भट्टके अर्थका कदापि उलट फेर न कर सकते।

इतना ही क्या, लल्ले ने तो आर्य भट्टके शिष्य होकर भी अपने गुरुके "भू भ्रमण वाद" का खंडन किया था। उनका कथन है—यदि पृथिवी भ्रमण करती है तो पक्षि उड़ जाने पर फिरसे किस प्रकार अपने अपने घोंसलेमें लौट कर आ सकते हैं; आकाशकी ओर छोड़ा हुआ बाण पश्चिम दिशामें गिरता हुआ क्यों नहीं दिखाई पड़ता। मेघोंको केवल पश्चिम ही की ओर गति क्यों दिखाई पड़ती है। यदि यह कहा जाय कि बसुन्धरा देवीकी गति मन्द होनेके ही कारण यह सब व्यापार सम्भव नहीं हैं तो ऐसी दशामें दिन भरमें ही फेरा कैसे पूरा

हो सकता है ? बराह मिहिर तथा ब्रह्म गुप्त इत्यादि विद्वानोंने भी इसी प्रकारकी युक्तियोंके द्वारा पृथिवीके भ्रमणके सम्बन्धमें आपत्तिकी है। आश्चर्य तो इस बातका है कि यह बात किसीके भी ध्यानमें नहीं आई कि पृथिवीके साथ साथ वायुका भी फेरा हो सकता है।

आर्यभट्टके भू-भ्रमण-वादका खण्डन करते हुये ब्रह्म गुप्त ने कहा है—"आवर्तन मुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रायाः कस्मात्" अर्थात् यदि सचमुच पृथिवीका फेरा हुआ करता है तो ऊँचेकी चीजें क्यों नहीं गिर जातीं ? उन दिनोंमें पृथिवीकी गति असम्भव सी प्रतीत होती थी। यही नहीं किन्तु दशवीं शताब्दीमें आलबारुणी भी इससे विस्मित नहीं हुये। उन्होंने लिखा है चाहे सचला हो या अचला, दोनों प्रकारसे भी ज्योतिषकी गणनामें बाधा नहीं पड़ती; परन्तु ब्रह्म गुप्तके टीकाकार पृथूदक स्वामी ने आर्य भट्टका ही मत स्वीकार किया है—

भू पञ्जरः स्थिरो भू रेवा वृत्या वृत्य प्रति दैवसिकौ उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्राणाम् ॥ अर्थात् नक्षत्र गण सदा एक स्थान पर स्थित रहा करते हैं, केवल पृथिवी ही परिक्रमाके द्वारा उनके उदय तथा अस्तका सम्पादन किया करती है।

उक्त स्वामी जीने इसी टीकामें कुछ आगे चलकर कहा है—"पृथिवीके घूमनेका ही मत ठीक है, क्योंकि एक ही समयमें ग्रहोंकी गति दो प्रकारकी अर्थात् पश्चिमकी ओर दैनिक गति तथा पूर्वकी ओर अपनी गति नहीं हो सकती। इधर पृथिवी के घूमनेसे ऊँचेकी चीजें कैसे गिर सकती हैं या गिरेंगी ही तो कहाँ ? क्योंकि जो भूमि ऊपर है वही नीचे भी है, वास्तवमें तो दर्शककी स्थितिके ही अनुसार ऊँचाई तथा निचाईका भेद हुआ करता है।

इसी सम्बन्धमें कोलब्रुक साहबने भी लिखा है कि पृथिवीके गतिके विषयमें आर्यभट्टने पहले पहल जिस मतको प्रवर्तित किया था, सात सौ वर्ष पहले भी इस देशमें कुछ लोग स्वीकार करते थे। पाश्चात्य देशोंमें भी बहुत दिन पहले ही से हीराक्लिदिज, पिथागोरस तथा दो एक अन्य विद्वानोंकी भी यही आस्था थी। किन्तु अन्तमें जिस प्रकार पाश्चात्य देशमें, उसी प्रकार भारतवर्षमें भी यह मत एक दमसे परित्यक्त हो गया।

यूरोपमें जब फिरसे ज्ञानकी उन्नतिके अङ्कुर दिखाई पड़ने लगे, और साथ ही साथ पाश्चात्य भूमि विज्ञानकी देदीप्यमान किरणोंसे फिरसे प्रकाशमान होने लगी, उसी समय प्रशिया देशके एक सुप्रसिद्ध विद्वानने जिसका नाम कोपरनिकस् था; टालेमीके इस भ्रान्ति पूर्ण तथा अस्वाभाविक मतवादका खण्डन करके इस नवीन तत्वका प्रचार किया कि सूर्य स्थिर है एवं राशि चक्रके मध्यमें विराजमान है और पृथिवी तथा अन्यान्य ग्रह इनके चारों ओर भ्रमण करते हैं। पाश्चात्य देशमें सबसे पहले कोपरनिकस ने यह स्पष्ट रूपसे लिखा है कि पृथिवी भ्रमण करती है। परन्तु इसके बाद ही प्रसिद्ध ज्योतिषी टाइकोब्राइने कोपरनिकसके भू भ्रमण वादका विरोध किया। उनका कथन है, कि यदि पृथिवी पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूमती है तो ऊपरसे गिरे हुये ईंट पत्थर पश्चिमकी ओर गिरते हुये क्यों नहीं दिखाई पड़ते? उक्त ज्योतिषी महोदयने जिन दिनोंमें कोपरनिकसके भू भ्रमण वादका विरोध किया था, तब—ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें भी—यूरोपके कोई कोई ज्योतिषी इस तर्ककी मीमाँसा असम्भव समझते थे; ऐसी दशामें यदि भारतवर्षके प्राचीन ज्योतिषी इसके विषयमें सन्देह करते तथा बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाणके पृथिवीकी गति अस्वीकार किया करते थे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? आश्चर्य तो केवल इस बातका है कि उनके हृदयमें यह विचार ज़रा भी न उपस्थित हुआ कि पृथिवीके साथ ही साथ भू वायु भी भ्रमण किया करता है। टाइकोब्राइकी आपत्तिका खण्डन करनेके लिए कहा

गया था—"मृन्मयी पृथिवीके साथ ही साथ भू-वायु तथा ईंटें भी घूमा करती हैं अतएव ईंटें ठीक नीचे ही गिरी करती है। इस युक्तिके द्वारा इस आपत्तिका खण्डन तो हो जाता है, किन्तु पृथिवीके भ्रमणके सम्बन्धमें कोई भी प्रमाण नहीं मिलता।"

पृथ्वीकी निश्चलताके सम्बन्धमें टालेमीके मत ने—चाहे वह पश्चिमीय भूमि खण्डमें स्वाभाविक ही हो या पर्यवेक्षणके अभावके ही कारण हो—सर्व साधारणके कल्पना राज्यमें ऐसे दृढ़ रूपसे अपना अधिकार जमा लिया था कि इसके विरुद्ध किसी भी मतका केवल अनादर ही नहीं होता था वरन वह कर्म विरुद्ध समझ कर घृणाका पात्र माना जाता था। यही कारण है कि जिस समय गैलिलिओने अपने नवाविष्कृत दूरवीक्षण यन्त्रके द्वारा यह निश्चित रूप से प्रमाणित किया था कि पृथ्वी ही चला करती है, सूर्य तथा नक्षत्र गण अचल हैं—तो उन्हें अपने मतका प्रचार करते समय प्राण तक देने पड़े थे। उन्होंने मृत्युके समय पृथ्वी पर पैर पटक कर बड़े अभिमानके साथ कहा था—इस समय भी पृथ्वी चल रही है यह शब्द विज्ञानके इतिहासमें आज तक स्वर्णाक्षरोंसे लिखे हुए हैं।

इसके पश्चात् हिन्दुओंका सर्वश्रेष्ठ ज्योतिष ग्रन्थ निर्माण हुआ। जिसकी उत्पत्ति भास्कराचार्य इत्यादि बहुत से विद्वानोंकी प्रतिभासे हुई है। इसी सूर्यसिद्धान्तमें भी पृथ्वीकी गतिके विरुद्ध अनेक युक्तियों तथा तर्कोंकी अवतारणा की गई है। मोटे तौरसे उनका सार यह है। (१) यदि पृथ्वी चलती होती एवं एक कल्पित व्यासके ऊपर स्थिर रहकर चौबीस घण्टेमें अपने किनारोंको घुमाया करती तो इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि ऐसी प्रबलगति से भूतलकी सारी अटारियाँ तथा मठ मन्दिर इत्यादि चूर चूर होकर गिर पड़ते। (२) यदि पृथ्वी निरन्तर कम्पायमान हुआ करती तो मनुष्य तथा पशु पक्षी एक स्थानसे दूसरे स्थानपर आना जाना तो दूर रहा, स्थिर रूपसे खड़े तक नहीं हो सकते। (३) भू-भ्रमण होने से जल भी प्रबल रूपसे कम्पायमान न होता, फलतः नदियों की धारा तथा ज्वारभाटा इत्यादि एकदम बन्द हो जाते। (४) पर्वतकी सबसे ऊँची चोटी परसे यदि कोई बड़ी चीज़ गिरती है तो ठीक उसके नीचे ही पड़ती है, इस नियमके प्रतिकूल प्रायः कहीं भी देखनेमें नहीं आया, परन्तु यदि पृथ्वी चलती होती तो क्या यह सम्भव था? पाश्चात्य विज्ञानके मतानुसार पृथ्वीकी परिधि पच्चीस हज़ार मील तथा उसकी दैनिक गति अर्थात् चौबीस घण्टेमें एकबार परिक्रमा करनेके लिए

एक घण्टेमें $\frac{२५०००}{२४}$ मील तथा एक मिनटमें

सोलह मीलसे भी कुछ अधिक है। अतः पर्वतकी चोटी से गिरी हुई वस्तु यदि ३० सेकण्ड में भी पृथ्वी पर गिरे तो इतनी देरीमें तो पृथिवी की गतिके कारण पहाड़ आठ मीलकी दूरी पर खिसक जायगा। (५) इसी प्रकार पश्चिमसे पूर्वकी ओर किसी स्थूल पदार्थका लक्ष्य करके ईंटा फेंकनेसे भी पृथ्वीके चलते रहने पर निशाना चूक जानेकी सम्भावना थी। इसी प्रकार और भी अनेक युक्तियाँ सूर्यसिद्धान्तमें लिखी हुई हैं। यथा—(६) पृथ्वी पर प्रायः सर्वदा ही कहीं कहीं वर्षा हुआ करती है। किसी किसी स्थानपर लगातार दो दो तीन तीन घंटे मूसलाधार वर्षा देखनेमें आती है। यदि पृथिवी सचला होती तो ऐसा सम्भव नहीं था, इसका कारण यह है एक मिनटमें पृथ्वी सोलह मीलसे भी अधिक चलती है। ऐसी दशामें भला दो तीन घण्टे एक प्रकारसे एक ही स्थान पर वर्षा होना कैसे सम्भव है? सारांश यह कि ऐसी बात कल्पना से परे है। इसके उपरान्त ग्रन्थकारने एक अन्तिम युक्ति देकर इस विषयकी आलोचना समाप्त की है। (७) यदि पृथ्वी गति शील होती तो पक्षिगण, जो कि अपने घोंसले छोड़कर समस्त दिन आकाश मण्डलमें विचरण किया करते हैं, सन्ध्या समय अपने

अपने स्थान पर नहीं पहुँच सकते थे, क्योंकि उतनी देरीमें तो वह वृक्ष, जिनमें उनके घोंसले थे न जाने कितनी दूर चले जाते होंगे। परन्तु यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि ठीक चौबीस घण्टेमें वह वृक्ष फिर उसी स्थानपर आ पहुँचेंगे और पक्षिगण बड़ी आसानीके अपने अपने स्थान खोज सकेंगे।

सूर्यसिद्धान्त कारने इसी प्रकार अनेक शङ्काओं के द्वारा आर्यभट्टके भूभ्रमण वादका खण्डन करने का प्रयत्न किया है। वास्तवमें इन तर्कोंके द्वारा निस्सन्देह ग्रन्थकारकी कुशाग्र बुद्धिका परिचय प्राप्त होता है और इनका भली भाँति उत्तर देने के लिए भी गणितके विशेष ज्ञानकी आवश्यकता है। चिड़ियोंके घोंसलेके पानेके सम्बन्धमें विचार करनेके निमित्त टीकाकारने एक दृष्टान्तकी अवतारणा की है। बहते हुये जलमें यदि कोई चींटी तैरना आरम्भ करे तो प्रवाहके साथ ही साथ उसकी गति भी निश्चित है। ठीक इसी प्रकार आकाश मण्डलमें विचरण करते हुये पक्षी जिस ओर पृथ्वी चलती है उधर ही दौड़ा करते हैं। जल प्रवाहके वेगकी अपेक्षा चींटीका वेग जितना कम है पृथिवीके वेगकी अपेक्षा चिड़ियोंकी गमन शक्ति उससे भी कई गुना कम है। अतएव यदि चींटी प्रवाहके प्रतिकूल नहीं गमन कर सकती तो भला पृथ्वीके प्रवल वेगको दबाकर बेचारी छोटी छोटी चिड़िया ही कैसे उसके विपरीत गमन कर सकती हैं?

सच बात तो यह है कि इतनी भूलोंका एक मात्र कारण सूर्य-सिद्धान्तमें आपेक्षिक गतितत्व-का अभाव है। ज्ञात होता है कि उन दिनोंमें गणितमें आपेक्षिक गति तत्व (Law of relative velocity) विषयका आविष्कार ही नहीं हुआ था; अन्यथा यह झगड़ा बड़ी आसानी से शान्त हो सकता था; क्योंकि हम यह भली भाँति जानते हैं कि पृथ्वीके साथ ही साथ अनन्त वायु मण्डल भी समान वेगसे ही पश्चिमकी ओरसे पूर्वकी ओर सदा चक्कर लगाया करता है। अतएव पक्षी जिस समय अपना घोंसला छोड़ता है तो उसका गति वेग पृथ्वी तथा उसकी गमन-शक्तिका समष्टि होता है। अतएव पृथ्वीके साथ साथ आपेक्षिक भावसे अर्थात् वायु मण्डलको निश्चल अवस्था में करनेसे, पक्षीकी गतिके वेगसे वायुके गतिका वेग निकल जायगा, अतएव केवल पक्षीकी ही शक्ति गतिका परिचालक रह जायगी। क्योंकि संसारके सभी कार्य पृथिवीके साथ साथ आपेक्षिक भावसे हो रहे हैं और यह घोंसलेकी प्राप्ति भी वैसी ही है; जो आपेक्षिक भावसे पृथिवीमें लिपटा हुआ है।

पृथिवीकी गतिकी समस्याओंने पश्चात्य देशों में बड़ा जटिल रूप धारण कर रखा है। टाइको ब्राईकी मृत्युके पश्चात् उनके प्रधान शिष्य केपलर ने उनकी बड़ी छानबीनके साथ की गई जो गवेषणाओं का ज्ञान भली भाँति प्राप्त किया था और उसीके सहारेसे प्राचीन नीचोच्च वृत्ति-पद्धतिका अवलम्बन करके ग्रहोंकी गतिके सम्बन्धमें नवीन सिद्धान्तका आविष्कार करनेके लिये वह अग्रसर हुए। उस समय उनके विशेष सफलता न प्राप्त कर सकनेका कारण यही था कि उन्होंने मान लिया था कि पृथिवी गति विहीन हैं। अन्तमें उन्होंने भी इस मतको त्यागकर, पृथिवी सूर्यकी परिक्रमा करती है इसी सिद्धान्तको स्वीकार किया।

वर्तमान ज्योतिष शास्त्रमें पृथिवीकी गतिके सम्बन्धमें अनेक प्रमाणों तथा परीक्षाओंके द्वारा अन्तिम सीमा तक मीमांसा की गई है; इनमेंसे फूको (Foucault) की Pendulum परीक्षा तथा न्यूटनका प्रत्यक्ष रूपसे पर्यवेक्षण करके प्रमाणित करना विशेष उल्लेखके योग्य हैं। परन्तु फूकोकी परीक्षामें बहुत से ऐसी धारणायेंकी गई है कि वह प्रत्यक्ष दर्शनसे परे हैं; अतएव न्यूटन साहबका ही प्रमाण बड़ी आसानीके साथ समझमें आजाता है। अतएव और सबोंकी अपेक्षा उसे ही मानना उचित है। उक्त महोदयका कथन है कि यदि अटारी

परसे कोई चीज़ ज़मीन पर फेंकी जाय तो जहाँ तक देखनेमें आता है वह अटारीकी ठीक नींवके पास न गिर कर कुछ पूर्वकी ओर हटकर गिरती है, इसका एक मात्र कारण यह है कि पृथिवी पूर्वकी ओर चला करती हैं।

अस्तु पृथिवीकी गतिके सम्बन्धमें पूर्वीय तथा पश्चिमी विद्वानोंको न जाने कितनी चिन्ता करनी पड़ी; एवं कितने क्रूर-तर्क तथा परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध युक्तियाँ निकाली और अन्तमें कितनी कठिनतासे इसकी मीमांसा की; इस बातकी आलोचना करनेपर वास्तवमें मनुष्यके विचार किस प्रकार एक मार्गसे दूसरे मार्गपर जाते हैं यह देखकर आश्चर्य सागरमें गोते लगाने पड़ते हैं।

धूम्रपान

गत कुंभके विज्ञानमें पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकारका "धूम्रपान" शीर्षक लेख छपा है। लेखसे ज्ञात होता है कि इसके लिखनेमें विद्यालङ्कारजी ने पूरी अनधिकार चेष्टा की है। इसमें संस्कृत ज्ञान और चरक ज्ञान दोनोंकी ही भूल हैं।

शर्माजी ने साधारण धूम्रपानको जो आज-कल बीड़ी, सिगरेट, सिगार, चिलम, हुक्के द्वारा किया जाता है निषिद्ध बताकर विधि प्रमाणमें चरक संहिताके उद्धरण दिये हैं। पर वह आज-कलके धूम्रपानके न तो समर्थक हैं न विरोधक। उनका आजकलके धूम्रपानसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। वह धूम्र पान रोगानुसार और विशिष्ट विधिका है, पर आजकलका धूम्रपान निरर्थक, नशेबाजी और रोगोत्पत्तिका परिचायक है।

चरकका धूम्र पान जत्रु (हँसुलीकी हड्डी) से ऊपर सिर तक होनेवाले वात और कफके रोगोंके लिए है और उसका विधान यह है—

"धूम्रयोग्यः पिवेद्दोषे शिरो घ्राणाक्षिसंश्रये।
घ्राणेनास्येन कण्ठस्थे, मुखेन घ्राणगो वमेत्॥
आस्येन धूम्रकवलान् पिवन् घ्राणेन नोद्वमेत्।
प्रतिलोमं गतो ह्याशु धूमो हिंस्याद्विचक्षुषी॥"

इसका अर्थ है—शिर, नासा, नेत्रके दोषमें (वात कफ जनित रोगोंमें) धूम्र योग्य (धूम्र पीनेके उपयुक्त) रोगी नासिकासे धूम्र पान करे। इसी प्रकार कण्ठके दोषमें मुखसे धूम्र पान करे। पर नासिकासे धूम्र पान करने वाला रोगी मुखसे धुआँको छोड़े। धूम्र ग्रासोंको मुखसे पीकर कभी नासिकासे धुवाँ न छोड़े, क्योंकि यह ठीक रास्ता नहीं है, इस प्रतिलोम मार्गसे गया धुआं नेत्रोंको नुकसान पहुंचाता है।

इन्हीं ऊपरके श्लोकोंका अर्थ शर्मा जी इस प्रकार करते हैं—"जब वात पित्त (?) या कफका कोई विकार सिर नाक, और आंखोंमें आ जाय (?) तब वह (कौन ?) उसको दूर करनेके लिये धूम्र पान करे, अन्यथा नहीं।"

चरक ने पित्त लिया नहीं, पर शर्मा जीकी कृपासे वात कफके बीचमें 'पित्त' ने भी जबर्दस्ती स्थान पा लिया। शर्मा जीकी कृपासे विकार आंखोंमें आ गया पैदा नहीं हुआ, मौजूद नहीं। शर्माजी का 'वह' कौन है पता नहीं "अन्यथा नहीं" तो शर्मा जीका भाष्य समझिये, चरक ने इसका उल्लेख नहीं किया।

शर्मा जी लिखते हैं—"दूसरा मन्तव्य यह है कि नाक से पिये तो गले तक ही धूएं को जाने दे। धुआं को फेफड़े में न जाने दे कर मुखसे उगल दे। याद रखे कि मुखसे धूएँ की घूंट भरकर नाक से कभी न छोड़े क्योंकि मुखके द्वारा धुआं पिया जाकर जब नाकमें जाता है उसकी प्रतिलोम गति हो जाती है। ऐसा करने से धुआं आँखोंका शीघ्र ही सत्यानाश कर देता है।"

ऊपर के अर्थ में नासिका से धूम्रपान करना चरक का दूसरा मन्तव्य नहीं, शर्मा जी का है। चरक का मन्तव्य तो एक ही है, केवल स्थिति भेदसे दो प्रकार हैं। मूल के पाठमें रेखांकित वाक्यों-का पता भी नहीं है पर शर्माजी ने अधिक लिख

दिया है। नाकसे धुआं पीना चरक ने सिर्फ इसीलिए कहा है कि सिर नासिका और नेत्रके स्रोतो में धुआं पहुंच कर यहां के रोगोंको निवृत्त कर सके। इसी प्रकार कण्ठसे पीनेका तात्पर्य कण्ठ रोगोंके दूर करनेका है। यदि कण्ठमें रोग है और शिर आँखोंमें नहीं तो वहाँ पर धूमका जाना व्यर्थ और हानिकारक है; इसीसे चरक ने मुखके पिये धुयेंको नाकसे न छोड़ने की इजाजत स्पष्ट दे दी। पर शर्माजी ने फेफड़े की मन गढन्त बात अच्छी निकाली। क्या शर्मा जी इस बातका प्रतिपादन कर सकते हैं कि मुँहसे धुआं पीकर फेफड़ेमें पहुँचाया जा सकता है या कुछ आदमी ऐसा करते हैं? इसी प्रकार नाकमें पहुँचते ही धुआंकी प्रतिलोम गति कैसे हो जाती है, समझमें नहीं आती। चरकने तो मार्गको ही प्रतिलोम बताया है।

धूम्रपानके ८ कालोंमें 'समुल्लिख्य' 'नावनान्ते' दो समय लिखे हैं। यद्यपि किसी भूलसे 'नावन' के स्थानमें 'नयन' छप गया है, पर शर्मा जी ने क्रमशः उनका अर्थ किया है—'वमन करनेके बाद और 'नक छिकनी लेनेके बाद' यह शर्माजी भूलते हैं। समुल्लेखन वमन नहीं है, जिस क्रियासे कफको सुखा कर निकाला जा सके उसका नाम समुल्लेखन है, उस क्रियाके बाद धूम्रपान करना चाहिये। इसी प्रकार नस्य क्रिया (रेचन नस्य प्रयोगके बाद) धूम्रपान करना चाहिये। चरकका अभिप्राय साधारण 'नक छिंकनी लेनेके बाद' धूम्रपानका नहीं है।

आगे चल कर-"न कृते वस्ति कर्मणि" का अर्थ आप करते हैं, 'जिस पुरुष ने गुदा द्वारा जल पेटके भीतर ले कर मलाशयको शुद्ध किया है वह भी धूम्रपान न करे' वास्तवमें चरकका अभिप्राय इस जलवस्तिसे नहीं है, ओषधि वस्तिसे है और विशेषकर शिरोवस्तिसे; जो गुदा द्वारसे नहीं ली जाती है। इसी प्रकार—'न रक्ती' का अर्थ करते हुये बवासीरके रोगका उल्लेख आप करते हैं वह अर्थ यहाँ नहीं है। इसका अर्थ यहाँ पर ऊर्ध्वांग रक्त पित्तसे है।

आगे चल कर—'नामे' का अर्थ किया है 'आँव-का रोग' पर यह बात नहीं है। चरकाचार्य यहाँ पर अपक्व दोषसे सम्बन्ध रख कर नामे लिखते हैं।

११—"न अजागरे" का अर्थ लिखा है रात भरका जागरण, पर वास्तवमें अर्थ है किसी समय भी नींद न आना।

१९—"तिमिरे" का अर्थ लिखा है "तिमिर रोग (रतौंधा)" पर तिमिर रतौंधा नहीं होता वह खास प्रकारका नेत्र रोग है।

२१—"न शंखके" का अर्थ किया है—"पट पड़ी पर चोट लगने पर"; ऐसा अर्थ नहीं है। शंखक कनपटीका एक रोग होता है और बात प्रधान होता है उसमें धूम्रपान न करे।

२२—"न रोहिण्यां" का अर्थ किया है—"रोहिणी (मेरु दण्ड) पर आघात लगने पर" पर यह अर्थ नहीं है।

२४—"न मदात्यये" का अर्थ किया है—"जब नशेकी प्रबलता हो" पर अर्थ है मदात्यय रोग।

इस प्रकार शर्माजी ने विद्यालङ्कार होने पर भी मोटी भूलेंकी हैं। वास्तवमें एक नशेबाजीके आधार पर किये हुए तमाखू कूड़ा करकटके धूम्रपान पर जो किसी रोगका नाशक नहीं शास्त्रीय व्यवस्था की बात सुनाना जो किसी प्रकार भी मौजूँन हो व्यर्थकी बात है। हाँ प्राचीन विज्ञानकी कुछ बातें बताकर शास्त्रीय पद्धतिका प्रचार किया जाय तो अच्छी ही बात है, पर ऊधोका कलंक माधोके सिर देना ठीक नहीं।

—किशोरीदत्त शास्त्री

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १६ } सिंह, संवत् १९८१ । { संख्या ५

सुगन्धि उत्पन्न करनेवाले जीव

परम पिता परमेश्वरने मनुष्य मात्रकी आत्मा प्रसन्न रखनेके निमित्त जो नाना पदार्थ उत्पन्न किये हैं उनमें से सुगन्धि भी एक है। इसीलिए उद्यानके हरे हरे पत्तोंसे घिरे हुये, मनको मोहित करनेवाले अगणित पुष्पों, अनेक प्रकारके पत्तों, जड़ों तथा सैकड़ों प्रकारके तरुगुल्म आदिको भीनी भीनी सुगन्धिसे समन्वित किया है और इस प्रकार उन्हें इस अमूल्य रत्नसे शोभित करके अपनी अपनी जातिमें उच्च स्थान दिया है।

मद मृग (Musk deer)

इस कस्तूरी पैदा करनेवाले जीवका नाम सबने सुना होगा। यह यूरोपके (Roe-deer) हिरणसे छोटा होता है। इसके अंग विशेष करके पिछली टांगें लम्बी होती हैं जो इस जीवको पर्वतोंमें रहने और दौड़नेके योग्य बनाती हैं। कान लम्बे, पूँछ छोटी, ऊपरके कीले बहुत नुकीले और सूअरकी भांति नीचेको मुड़े हुए होते हैं। इसके सींग नहीं होते। बाल जो शरीर पर होते हैं लम्बे मोटे और कोमल होते हैं जो सहजमें टूट जाते हैं और रङ्गमें लाली लिये हुए हलके भूरे होते हैं; कहीं कहीं हलके लाल रंगके होते हैं, जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर सफ़ेद धब्बे पड़े होते हैं। निचला भाग अर्थात् पेट सफ़ेद बालोंसे ढका होता है। यह एशियाके मध्य भागके पहाड़ी देशोंके पास बनोंमें रहते हैं और हिमालय, नैपाल और पूर्वमें गिलगित तक पाये जाते हैं। यह मृग प्रायः ऊंचे स्थानों पर ही मिलते हैं। गर्मीके मौसममें समुद्र-

से ८००० फुटसे कम ऊंचाई पर कभी विरला ही मृग देखनेमें आता है। कंधों परसे यह प्रायः बीस इंच ऊंचा होता है, परन्तु ज्यों ज्यों आगे चलकर ऐसे स्थानोंकी झाड़ियां जहां यह वास करता है वायु और ऋतुके प्रभावसे छोटी बड़ी होती जाती हैं इसके क़दकी छोटाई बड़ाईमें भी अन्तर होता जाता है। यह झाड़ियां तिब्बत (Tibet) साइबेरिया (Siberia) और चीनके पश्चिमोत्तर भाग तक मिलती हैं, वहां तक यह मृग बराबर मिलता है; परन्तु कंसाज़ (Kansas) का हिरण दूसरी जातिका होता है। यह प्रायः एकान्तवास करता है और विशेषतः रात्रिके समय निकलता है। प्रायः यह अकेला ही मिलता है; कभी कभी जोड़े भी देखे गये हैं; परन्तु कई मृग इकट्ठे नहीं देखे गये। सर्व शक्तिमान प्रभु प्रत्येक जीवको वैसी ही शक्तियां देता है जैसा जीवन उसको बिताना होता है; इसलिये यह बहुत फुर्तीला और शीघ्रगामी होता है। चौकड़ी भरनेमें यह ऐसा पक्का होता है कि गहरे खड्डों और पर्वतोंकी कष्टप्रद घाटियोंको फलांगनेमें अद्वितीय है। पहाड़की घास, काई और पत्ते इत्यादि इसका भोजन हैं।

कस्तूरीका पोटा जो केवल नरमें होता है और जिसके कारण यह जीव प्रसिद्ध है, छोटी नारङ्गीके तुल्य होता है और पेटके नीचेकी खाल पर नाभिस्थान पर होता है। कस्तूरी जिससे यह भरा होता है श्याम वर्ण, भूरी वा कत्थेके रङ्गकी होती है, पड़ी रहनेसे कुछ समय पीछे सूख जाती है और दाने दार हो जाती है।

कस्तूरीवाले मृगसे कस्तूरी प्राप्त करनेके लिये इसकी हिंसा की जाती है। पोटा काट लिया जाता है और उसे धूपमें या गर्म शिला पर रख कर या गरम तेलमें कई बार डुबा कर सुखा लिया जाता है। सबसे उत्तम श्रेणीका मुश्क वह होता है जो चीन या तिब्बतसे आता है; दूसरे दर्जेका आसाम और नेपालका गिना जाता है। साइबेरियाका मुश्क जो रूसी मुश्कके नामसे विख्यात है और जो एशियाके मध्यमें मिलता है घटिया मेलका होता है। प्रायः उत्तम कस्तूरी अर्ग़वानी रंगकी होती है जो सूखी हुई, साफ़, छूनेमें चिकनी और चखनेमें कड़वी होती है। खौलते हुए पानीमें आधीके लगभग मिल जाती है, अल्कोहल (Alcohol) में तीसरा भाग और ईथर (Ether) और क्लोराफ़ार्म (Chloroform) में इससे भी कम हल होती है। एक सर्षप मात्र दाना कस्तूरीका कई लक्ष घन फुट (Cubic feet) वायुको सुगन्धित कर देता है और आश्चर्य यह है कि उसकी तोलमें किञ्चित मात्र भी अन्तर नहीं होता। सुगन्धि केवल तेज़ ही नहीं होती बल्कि उन सब पदार्थोंसे जिनका मनुष्यको ज्ञान है दीर्घ स्थायी होती है। इसमें सुगन्धि पैदा करनेवाले अंशके साथ अमोनिया (Ammonia) कोलेस्ट्रिन (Cholastrin) और कई चिकने बिरोज़ेके समान पदार्थोंका अंश होता है।

मुश्क अर्थात् कस्तूरी प्रायः औषधियोंमें काम आती है और आयुर्वेद तथा यूनानी वैद्य विद्यामें बड़ी अमूल्य औषधि है।

मुश्की बैल या मुश्की भेड़

इसे मुश्की भैंसा भी कहते हैं और मुश्की भेड़ के नामसे भी प्रसिद्ध है। यह मेढ़ोंसे बहुत मिलता जुलता है। इस जातिके जीव प्रायः एशियामें ही पाये जाते हैं।

ऊंचाईमें नर जीव कन्धे तक पांच फुट होता है, सिर बड़ा और चौड़ा होता है। बूढ़े जीवोंमें सींग भौंसे ऊपर होते हैं जो जड़की जगह पर और सींगवाले जीवोंसे अधिक चौड़े होते हैं। इनसे इसकी खोपड़ी ढकी और रक्षित रहती है। यह सींग पहले तो थुथनी की ओर मुड़े होते हैं; फिर आगे पीछे होकर नेत्रोंके पास तक नुकीले हो जाते हैं। सींगका निचला भाग खुर्दरा और रेशेदार होता है। बीचका भाग साफ़ चमकदार और गोल होता है। सींगकी नोक काली होती है। मादा और बच्चोंके सींग छोटे

होते हैं। कान नन्हे नन्हे नोकदार और सीधे होते हैं, मगर घने बालोंमें छिपे रहते हैं। नथने बैलोंकी तरह नहीं होते। नाक और होठोंके बीचमें भेड़ बकरियोंके समान मोटे मोटे और छोटे छोटे बाल होते हैं। शरीरपर भी घने लम्बे लम्बे भूरे रङ्गके बाल होते हैं, परन्तु कंधों पर घूँघरवाले हो जाते हैं, जिनसे यह जीव भेड़का प्रति रूप प्रतीत होता है। शेष सब स्थानोंमें सीधे लटकवां बाल होते हैं, जो घुटनों तक जाते हैं। इनमें छोटी सी पूंछ बिल्कुल छिप जाती है। ग्रीष्म ऋतुमें शरीरपर मोटा ऊनी नमदा हो जाता है जो पीछे कम्बलकी भांति होकर झड़ जाता है। बाल ठोड़ी गर्दन और छातीके पास लम्बे होते हैं; जिनसे ऐसा ज्ञात होता है कि यह डाढ़ीदार जानवर है। अंग पुष्ट और छोटे होते हैं। सुम विचित्र होते हैं—बाहरसे गोल और अन्दरसे नुकीले। तलवे पर भी रुएँ होते हैं।

यह जीव उत्तर अमेरिकाके ऊपरके देशोंमें भी आज तक मिलते हैं; जहां यह पहाड़ी बंजर मैदानोंमें उत्तर अक्षांशः ६४° (Nat. 69°) पर और आर्कटिक महा सागरके किनारे बहुत होते हैं। नीचेके देशोंमें शनैः शनैः कम होते जाते हैं। सुना गया है कि यह जीव अब मेकेनज़ो नदीके तीरपर जहां यह पहले अशोलज खाड़ी तक बहुत मिलता था अब नहीं पाया जाता। उत्तर और पूर्वकी तरफ़ पेरी (Perry) द्वीप और ग्रीनलैंड (Greenland) के उत्तर में ग्रेनल लैंड और पश्चिम तीर पर खाड़ी मेल्विल और सेबाइन द्वीप तक अब भी मिलता है। तिब्बतमें भी प्रायः देखा गया है।

ग्रीनलैंडका जीव तीसरी नसलका है; इसके शरीर और माथेपर सफेद बाल होते हैं। कहते हैं कि ग्रेनल लैंडके जीवमें और भी अन्तर है। यह अमेरिकामें टोरिड ज़ोन (Torrid zone) के खण्डमें भी कहीं कहीं मिलता है।

मुश्की बैलकी हड्डियोंका ढांचा अनेक बार साइबेरिया जर्मनी फ्रान्स इत्यादिके मैदानोंमें नदियोंकी तहमें और जीवों जैसे रेन्डीयर और बाल वाले गेंडेकी हड्डियोंके साथ प्राप्त हुआ है। इङ्गलैंडमें भी इसकी हड्डियां मेडन हेड (Maiden Head); बोमले (Bomley), फ्रेश फ़ील्ड (Fresh field) (बाथ (Bath) के पास) और टेम्स (Thames) नदीकी घाटीकी कठोर मिट्टीमें क्रेफ़र्ड (Craford) और केन्ट (Kent) इत्यादि में भी मिली हैं।

यह जीव स्वभावमें मिलनसार है और अनेक वार बीस बीस तीसके गोलोंमें मिलता है। प्रायः अस्सीसे सौ तकके गोलोंमें भी जिनमें दो या तीन से अधिक ऊंचे क़द्के नर (mob) नहीं होते पाया गया है। यद्यपि इनकी टांगें छोटी होती हैं फिर भी यह बड़ी शीघ्रतासे भाग सकते हैं। यह घास काई अनन्नासकी कोपलें खाकर जीवन व्यतीत करते हैं। मादा (Female) मई (May) के अन्तमें या जून (June) के आरम्भमें एक झोलमें एक बच्चा पूरे नौ मास पीछे देती है।

स्वीडनकी खोज मंडलीको जो सं० १८९९ ई० में ग्रीन लैंड गई थी यह जानवर अनेक क़द्के मिले थे। कई गोलोंमें केवल पाँच सात जीव देखे गये परन्तु कहीं कहीं ६७ तक भी मिले। इस जीवकी अनोखी सुगन्धि सौ गज तक पहुँचती थी। प्रोफेसर नार्थवेस्ट लिखते हैं कि उन्होंने कई जीवोंको मारा और उनकी खालको तत्काल धोया; परन्तु न तो उसमें न उनके मांसमें मुश्ककी सुगन्धि अथवा स्वादका पता चला।

कुछ कालसे जीवित मुश्की बैल यूरोपके अद्भुतालयोंमें रखे जाते हैं। दो बैल इङ्गिलस्तानमें लाये गये थे जिसमेंसे एक केवल सं० १८९९ से १९०३ ई० तक जीवित रहा; दूसरा अभी तक जीता है। इस जीवमें हिरणकी तरह पोटा या नाफ़ा नहीं होता।

सिवट या मुश्की बिलाव (Civet or Musk-cat)

यह स्तनपायी है। इसका नाम इस कारण विख्यात है कि इस जीवके एक नाफ़ा होता है जिसमेंसे गाढ़ा सा रस निकलता है जिसे

सिवट-मुश्क कहते हैं। यह मुश्क भूरे रंगकी चर्बीसे मिलता जुलता है। पहले पहल इसका रंग गाढ़े शर्बतके समान होता है; जैसे माखन और मधु मिला हुआ हो। पीछे पोमेड (Pomade) की भांति गहरे रंगका हो जाता है। इसमेंसे मुश्क की बहुत तेज़ सुगन्धि निकलती है। यह सुगन्धि उनके लिए जिन्हें इसका अभ्यास नहीं बहुत अरुचि कर प्रतीत होती है, परन्तु जब विधि पूर्वक हलकी करके अन्य सुगन्धित ओषधियोंसे मिश्रित की जाती है तो इसका प्रभाव अत्यन्त ही रुचिकर हो जाता है और पुष्पोंकी सुगन्धिकी भांति मनको प्रसन्न करनेवाला होता है। कस्तूरी-में यह बात नहीं होती। सिवट मुश्ककी किसी पुष्पकी सुगन्धिसे उपमा देना बहुत कठिन है।

यह जीव बहुधा अफ्रीकाके उत्तर भागमें और एशियामें मिलता है। अफ्रीकाका सिवट पूँछको छोड़कर दो से तीन फुट तक लम्बा होता है। पूंछ शरीरके आधेके लगभग होती है जो यह नित्य लंगूरकी तरह खड़ी रखता है। पूंछ पर लम्बे लम्बे बाल होते हैं। शरीर पर भस्मके रंगके गुम्फेदार बाल होते हैं जिनमें अनगिनत तिर्छी धारियां होती हैं। बालोंको यह अपनी इच्छा अनुसार खड़ा भी कर लेता है। स्वभावमें यह बिलावके सदृश है और रात्रिके समय बाहर निकलने वाले जीवोंमें से है। यह मांसाहारी है; पक्षी खर्गोश मूषक आदि छोटे जीवोंका भोजन करता है और इनके मारनेके लिए पेड़ोंपर भी चढ़ जाता है; परन्तु कहते हैं कि यह फल और शाक आदि भी खाता है। बन्दीकी दशामें यह सम्पूर्ण रूपसे कभी नहीं पाला जाता; केवल सुगन्धिके निमित्त रखा जाता है जो नर जीवमें अधिक मात्रासे प्राप्त होती है, विशेष करके जब यह स्वस्थ और क्रुद्ध हो। यह मुश्क सप्ताहमें दो बार छोटे चमचेसे खुर्चा जाता है।

यदि खुला छोड़ा जाय तो यह पालतू जीवों मुर्गी आदिकी बहुत हानि करता है और सुअर तथा भेड़के बच्चों तकको ले भागता है। जब इसका शिकार किया जाता है तो यह खूब सामना करता है और क्रोधमें ऐसी तेज सुगन्ध निकालता है कि उससे शिकारी कुत्ते बहुधा रोगी हो जाते हैं और यह सुगन्ध उनके मस्तिष्कमें ऐसी बस जाती है कि वह चिरकाल तक किसी और शिकारके योग्य नहीं रहते। हिन्दुस्थानमें यह प्रायः नाटे कदका होता है और मेडेगास्कर (Madagascar) से लेकर हिन्दुस्थान, चीन, इन्डियन आर्कीपेलेगो (Indian Archipelago) और मलाया तक मिलता है; यह पूंछ समेत तीन फुटके लगभग होता है जिस पर सुन्दर लम्बी धारियां होती हैं।

इस जीवके विषयमें यद्यपि यह विख्यात है कि यह पेड़ों पर चढ़ सकता है परन्तु यह भूमि पर ही बिल बनाकर वास करता है। पूर्वीय देशोंमें यह बन्दी ही रखा जाता है और हिल जाता है। मादा जब गर्भसे होती है तो हिलानेसे सहजमें हिल जाती है और मुश्क अधिक मात्रामें निकालती है। बाज़ारमें बेचनेके लिए मुश्क इस प्रकार बनाते हैं कि उसे काली मिर्चके पत्तों पर बिछा देते हैं इससे वह बाल जो नाभिसे निकलते हैं सहजमें झड़ जाते हैं। इस सुगन्धिको जावावासी (Java) बहुत काममें लाते हैं।

सिवटके पिञ्जर यूरोपके कई देशोंमें भी भूमिमें दबे हुए मिलते हैं।

ज़िबथ (Zibeth)

सिवटकी एक और जाति जिसे ज़िबथ कहते हैं अरब देशसे मालाबार तक, इन्डियन आर्कीपेलेगोके कई भागोंमें फैली हुई है। यह सामान्य मुश्की बिडालसे छोटा होता है परन्तु इसके सिर पर बालोंका मुकट सा जो सिवटमें होता है नहीं होता।

जेनेट (Genet)

यह यूरोपके दक्षिण भागका मांसाहारी जीव है जो सिवट (मुश्क बिलाव) के सदृश है असली जेनट यूरोपके दक्षिणमें पेलेस्टाइन (Palestine)

और अफ्रीकाके उत्तरमें पाया जाता है। इसका समूर गहरे मटियाले रंगका होता है; जिसपर काले काले धब्बे होते हैं। पीठपर गहरे रंगकी धारी होती है। पूँछपर जो सारे शरीरके बराबर लम्बी होती है काली और धौली धारियां ऐसी सुन्दर होती हैं मानों ईश्वरने दोनों रंगके छल्ले इसे पहनाये हैं। यह जीव फ्रान्सके दक्षिणमें कम मिलता है; परन्तु स्पेन (Spain) में नदियोंके तीरोंपर बहुत होता है और पक्षियों और दूध पिलानेवाले छोटे जीवोंका भक्षण कर निर्वाह करता है। इसमें और मुश्क बिलावमें यह भेद होता है कि इसके नाभि स्थानमें एक गढ़ा सा होता है; इसमें नाम मात्रको कस्तूरी के समान सुगन्धित मैलका लेप होता है। दक्षिणी यूरोपके पश्चिम भागमें और उत्तरी अफ्रीकामें इसे नरम बालोंवाली और सुन्दर रंगकी खालके निमित्त खोजा जाता है। यूरोपके अनेक स्थानोंमें यह सहजमें हिल जाता है और बिल्लीकी भांति चूहोंसे छुटकारा पानेके हेतु पाला जाता है।

मुश्की चूहा (Musk-rat)

यह भी दूध पिलानेवाले जीवोंमेंसे है। बहुधा जलके तीर पर रहता है; इसलिए अङ्गरेज़ी आबी चूहेके कुटम्बियोंमेंसे है। परन्तु यह सामान्य चूहे (Water rat) और घूंससे बड़ा होता है। इसकी लम्बाई एक फुटके लगभग होती है। पूंछ एक फुटसे कम होती है। यह जीव भारी होता है, इसका सिर चौड़ा, और गर्दन हीन होता है क्योंकि सिर ही शरीरके साथ मिला होता है। सब अंग छोटे छोटे और नेत्र भी नन्हे नन्हे होते हैं। कान प्रायः सारे ही घने मुलायम बालोंमें छुपे रहते हैं। आगेकी टांगोंमें चार उङ्गलियां होती हैं; पीछेकीमें पांच पांच। सब उङ्गलियोंमें नख होते हैं और नीचेकी ओर झिल्ली मढ़ी हुई होती है। पूंछपर और चूहोंकी भांति रुएँ होते हैं; परन्तु वह छिलकेदार और किनारों परसे दबी हुई होती है। बाल ऊद-बिलावसे बहुत मिलते जुलते पर छोटे होते हैं। सारे शरीर पर विशेष कर पीठपर कोमल बालोंका समूर fur होता है; जिसमें कहीं कहीं इक्के दुक्के लम्बे कड़े और चमकीले बाल भी होते हैं। बालोंका रङ्ग भूरा होता है। पीठके बाल काले परन्तु पेटके मटियाले रंगके होते हैं। पूंछ और टांगोंके नग्न भाग काले होते हैं।

कस्तूरीकी सुगन्धि जिसके कारण यह जीव विख्यात है निचले भागमें पाई जाती है, जहां यह नर तथा मादा दोनोंकी नाभिमें होती है। यह जीव अमेरिकामें ही नदियों और झीलोंके तीरपर मिलता है। पानीमें भली भांति तैरता है और बड़ी सफाई से डुबकी लगाता है। जड़ें जलके भीतर पैदा होनेवाले पेड़ तथा फल मेवे इसका आहार हैं।

मुश्की चूहे रात्रिको बहुधा निकलते हैं; दिनके समय बिलोंमें छिपे रहते हैं। इनका बिल एक छोटा सा घर होता है जिसमेंसे बाहर आनेके लिए बी-सियों मार्ग होते हैं। इनमेंसे अधिक तो ऐसे होते हैं जो जलके भीतर निकलते हैं। जाड़ोंमें यह तिकोने या गोल घर घास तिनकों और पत्तोंसे बनाते हैं और ऊपरसे कीचड़ और मिट्टीसे लीप देते हैं।

इसकी सुगन्धि और कोमल बालोंवाली खाल दोनोंका बहुत व्यापार होता है; इसलिए सहस्रों जीवोंकी प्रति वर्ष हिंसा की जाती है। इन्हें या तो चूहेदानी और जालसे पकड़ते हैं या बिलोंके मुंह पर बर्छियों भालोंसे आघात करते हैं।

ह्वेल मछली (Whale)

इस जीव शिरोमणिको कौन नहीं जानता। यह अम्बर सुगन्धिकी उत्पन्न करनेवाली है। अम्बर मोमके सदृश एक सुगन्धित पदार्थ होता है और इंडियन ओशन (Indian ocean) और टारिड ज़ोन (Torrid zone) के अन्य भागोंमें समुद्र पर तैरता हुआ मिलता है। यह स्पर्म ह्वेल (Sperm Whale) की आंतोंमें भी पाया जाता है; इस कारण यह विश्वास है कि अम्बर ह्वेल मछलीकी विष्टा है। रंगमें यह सफ़ेद मटियाला सा पीलाइट लिए हुए काला और संग मरमरकी भांति धब्बेदार रूपवाला होता है। समुद्रपर तैरते

हुए डले ६० से २२५ पौंड तक भारी मिले हैं।

अम्बर २१२° फा० दर्जेकी गर्मीपर वाष्प बनकर साराका सारा उड़ जाता है। यह सुगन्धि और आयुर्वेदमें बड़े कामकी वस्तु है।

हिन्दुस्थानकी मुश्की छछूंदर

पूरे क़दकी छछूंदरका सिर और शरीर लगभग छः इन्चके होता है। पूँछ तीन इन्चसे कुछ अधिक होती है। समूर (Fur) कोमल, बाल नीलाहट लिए हुए मटियाले रंगके होते हैं; परन्तु पेटके बालोंकी रंगत हलकी होती है।

डाकूर ब्लेनवर्ड (Blenword) कहते हैं कि "हिन्दुस्थानमें यह बात मशहूर है कि यदि छछूंदर मदिरा या बीयर (Beer) के पीपे या बोतल पर होकर निकल जावे तो उसमें भी मुश्ककी सुगन्धि हो जाती है, परन्तु यह बात ठीक नहीं। इसकी परीक्षा की गई है। विलायतसे बोतलोंमें मदिरा भर कर मंगवाई और छछूंदर उनपर छोड़ दी गयी, परन्तु न तो स्वादमें ही कुछ अन्तर हुआ न सुगन्धि ही बदली।"

गन्धी गुबरैला (Musk-Beetle)

यह यूरोपका लम्बे सींगोंवाला गुबरैला है। इसके शरीरमें से गुलाबके इत्रकी सी सुगन्ध आती है।

मुश्की कछुआ (Musk Turtle)

यह अमेरिकाके ताज़ा पानीमें रहनेवाला छोटा कछुआ है जिसके शरीरमेंसे कस्तूरीकी सुगन्ध आती है।

सुगन्धवाली बतख (Musk-duck)

आस्ट्रेलियाके पश्चिममें एक प्रकारकी बतख होती है जो सुगन्धिके हेतु प्रसिद्ध है।

मगर मच्छ

मध्य अमेरिकाका एक प्रकारका मगर मच्छ भी सुगन्धिके लिए विख्यात है।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक जीव हैं जो सुगन्धि उत्पन्न करते हैं।

राज नारायणभटनागर दिल्ली निवासी

आधुनिक स्फोटक

बारूदका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे अनेक देशोंमें होता रहा है। यद्यपि उसे बेचने और खरीदनेका अधिकार आजकल सिर्फ लाइसेन्सदार लोगोंको ही रहता है तथापि उसके बनानेकी विधि अतीव सरल है।

बारूद तीन चीज़ोंका—कोयला, गंधक, और शोरा—घनिष्ठ सम्मिश्रण है। इस मिश्रणको पानी में भिगोकर और टिकियोंके रूपमें ढाल कर सुखा लिया जाता है। इसके उपरान्त उसे छोटे छोटे टुकड़ोंमें कूट डालते हैं। जिस परिमाणमें उपर्लिखित रासायनिक द्रव्य मिलाये जाते हैं वह निश्चित नहीं है; आवश्यकतानुसार वह बदलता रहता है परन्तु साधारणतः

शोरा ७५ % प्रतिशत, कोयला १५ % प्रतिशत और गंधक १० % प्रतिशत के प्रमाणमें उपस्थित रहते हैं।

इस तरह बारूदमें दाह्यशील पदार्थोंका समावेश रहता है। उसमें आग लगाते ही कोयलेका कर्बन जलकर कर्बन-द्विओषिद (यह वही वायु है जो हमारे उच्छ्वासमें पाई जाती है) में परिणत हो जाता है और गंधक जलकर गंधक द्विओषिदमें। कर्बनसे कर्बन द्विओषिद गंधकसे गंधक द्विओषिद * बननेके लिए गर्मी और ओषजन (Orygen) की आवश्यकता होती है। यह कहांसे आते हैं? शोरेमें तीन मौलिक उपस्थित रहते हैं—पोटासियम, नत्रजन, और ओषजन। यही ओषजन कर्बन और गंधकसे मिलकर नये पदार्थ (Products) पैदा करती है; साथ ही इस रासा-

* कुछ रासायनिकोंका मत है कि गंधक और कर्बन जल कर पोटासियम गंधिद, तथा नत्रजन और कर्बन द्विओषिद वायुओंमें परिणत हो जाते हैं। सम्भवतः बारूदके जलनेमें दोनों तरहकी रासायनिक क्रियायें (जैसा कि यहां दो भिन्न मतोंसे स्पष्ट है) अंशतः होती हैं।

यनिक मेलसे आपेक्षित तापकी उत्पत्ति होती है।

अच्छी बारूद बनानेके लिए यह आवश्यक है कि मिश्रणके अवयव बहुत महीन पीसे जायँ। जिन लोगोंने लुहारकी दूकानमें बैठकर उसे भट्ठे में कोयला फेंकते हुए देखा है उन्हें यह बात ज्ञात होगी कि कोयलेके बारीक कण जलती हुई आगसे कुछ ऊपर ही प्रज्वलित हो उठते हैं। खदानोंमें कभी कभी भीषण स्फोटन हो जाता है। इसका कारण यह है कि वहांकी वायुमें कोयलेके बारीक कण मिले रहते हैं। ज़रा भी आग लगी कि समस्त कण समूह भयानक रूपसे जल उठते हैं।

हम पहले ही कह आये हैं कि शोरेमें नत्रजन मिला रहता है। यद्यपि बारूदके जलनेसे नत्रजन का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहता तथापि नत्रजन जिस पदार्थमें ओषजनके साथ मिला रहता है उपर्युक्त परिस्थिति पाकर ओषजनको उस पदार्थसे (रासायनिक द्रव्यसे) बहुत शीघ्र अलग कर देता है।

बारूदमें आग लगनेके पहले तीनों पदार्थ चूर्णके रूपमें उपस्थित रहते हैं। आग लगनेके उपरान्त कर्बन और गंधक द्विओषिद वायुओं (CO_2 और SO_2) की उत्पत्ति होती है, जिनका आयतन अपने ही बराबर भारवाले ठोस पदार्थोंसे बहुत अधिक होता है। बस जगह न पाकर यह नये पदार्थ भयानक स्फोटन करते हुए अति तीव्र गति से बाहर निकल आते हैं और सामने आयी हुई वस्तुका संहार कर डालते हैं।

पर बाजारमें बिकनेवाली सामान्य बारूदसे बहुत धुआँ उत्पन्न होता है। युद्धकालमें ऐसे स्फोटकों की आवश्यकता होती है जो बिना धुआं पैदा किये ही अपना काम कर सकें। इन स्फोटकोंके अवयव बहुत घनिष्ठ रूपसे मिले रहते हैं तथा आग लगानेसे जलनेकी क्रिया सम्पूर्ण रूपसे होती है।

नये स्फोटकोंमें नाइट्रोग्लिसरीन बहुत प्रसिद्ध है। नाइट्रोग्लिसरीनमें मुख्य पदार्थ ग्लिसरीन है। यह पीले रंगका द्रव तिल्लीके तेलकी अपेक्षा अधिक भारी होता है। लाइम-जूसके शौकीनोंने देखा होगा कि अधिक समय तक रखे जाने पर जूससे एक पीले रंगका द्रव पदार्थ अलग हो जाता है यही पूर्वोक्त ग्लिसरीन है। छूनेसे यह चेंपदार मालूम होता है। इसमें कर्बन, ओषजन और उज्जन मिले रहते हैं। नाइट्रोग्लिसरीन बनानेके लिए पहिले १२ भाग नत्रिकाम्ल में २० भाग गंधकाम्ल मिलाकर ठंडा कर लेते हैं और फिर इस मिश्रणमें पंप द्वारा ग्लिसरीन मिलाया जाता है। रासायनिक दृष्टिसे—

ग्लिसरीन + नत्रिकाम्ल=नाइट्रोग्लिसरीन + पानी

गंधकाम्ल पानीके साथ मिलकर उसे नाइट्रोग्लिसरीनसे पृथक् कर देता है।

पर नाइट्रोग्लिसरीनका उपयोग निरापद नहीं था। नाइट्रोग्लिसरीन बहुत जल्दी भड़क उठता है। अतएव सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक नोबेलने एक नयी युक्ति ढूँढ़ निकाली। इटली देशके अंतर्गत सिसली प्रदेशमें कीसलगुरके नामसे प्रसिद्ध एक प्रकारकी मिट्टी मिलती है। नोबेलने नाइट्रोग्लिसरीन जैसे अत्यल्प उत्तेजनसे भड़क उठनेवाले स्फोटकको इस मिट्टीके साथ मिलाकर एक नये स्फोटक 'डाइनेमाइट' का आविष्कार किया। नाइट्रोग्लिसरीन की अपेक्षा यह अधिक सुविधा जनक है।

एक अन्य स्फोटक 'गनकाटन' के नामसे प्रसिद्ध है। 'गनकाटन' वस्तुतः कपाससे ही बना हुआ पदार्थ है। जिस तरह गेहूँ और आलूका मुख्य अवयव 'स्टार्च' है उसी तरह कपासका मुख्य अवयव 'सेल्यूलोज' है। सेल्यूलोजमें कर्बन, उज्जन और ओषजन मिले रहते हैं।

'गनकाटन' बनानेके लिये शुद्ध और साफ परित्यक्त* कपासको गंधकाम्ल और नत्रिकाम्लके मिश्रणमें डुबोते हैं; जिससे सेल्यूलोज नाइट्रो-

* पुतलीघरोंमें कपासके रेशे उड़कर ज़मीन पर बिखर जाते हैं। गनकाटन बनानेमें इनका उपयोग होता है।

सेल्यूलोज़में परिणत हो जाता है। पश्चात् आवश्यकतासे अधिक मिले हुए अम्लको अलग कर लेते हैं; और नाइट्रोसेल्यूलोजकी लुगदी बनाकर उसे सांचोंमें ढाल लेते हैं। आकस्मिक स्फोटनकी सम्भावना दूर करनेके लिए 'गनकाटन' गीला भी रखा जा सकता है। सच तो यह है कि, 'गनकाटन' से अधिक निरापद स्फोटक कोई है ही नहीं। हथौड़ेके द्वारा चोट करनेसे आघात् स्थल पर थोड़ी देरके लिए ज्वलन क्रिया होती है और यदि हम उसे एक तप्त दंडसे छूदें तो भी यह भड़क नहीं उठता, सिर्फ जलता रहता है। परन्तु मरक्यूरी फलिमनेत नामक रसायनिक द्रव्यके साथ इसे मिलाकर आग लगानेसे बड़े जोरका धड़ाका होता है।

यदि 'गनकाटन' में किसी तरहसे ओषजनका परिमाण अधिक किया जा सकता तो वह और भी अधिक शक्तिवान स्फोटक होता।

स्फोटक पदार्थोंमें ओषजनकी मात्रा पर्याप्त होनेसे दो लाभ होते हैं। एक तो स्फोटक अधूम्रोत्पादक हो जाता है और दूसरे उससे कई गुनी अधिक ताप उत्पन्न हो कर प्रचण्ड शक्ति प्रादुर्भूत होती है। फिर भी एक वैज्ञानिकके कथनानुसार 'गन काटन' प्रतिवर्ग इंच पर १६० टनका दबाव पैदा करता है और यह शक्ति साधारण बारूदकी अपेक्षा चौगुनी ज्यादा है। नाइट्रोग्लिसरीनमें अत्यधिक ओषजन उपस्थित होनेके कारण वह और भी अधिक भयंकर स्फोटक है।

बड़े बड़े शहरोंमें जहां गैसकी रोशनी काममें लाई जाती है गैस पैदा करनेके कारखाने रहते हैं। गैस कोयलेको वायुदुर्गम भपकोंमें गरम करनेसे निकलता है। साथ ही अन्य वायवीय पदार्थ भी प्रस्तुत होते हैं। इन वायवीय पदार्थोंका कुछ अंश ठंडी नलिकाओंसे जाते वक्त जमकर एक काले रंगके द्रवमें परिणत हो जाता है। जो तारकोलके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

तारकोल बड़ा मायावी पदार्थ है। इसे एक बंद भभकेमें रख कर गरम करने और उड़नेवाली भापको ठंडी नलिकाओं द्वारा निकालनेसे सबसे प्रथम तारकोल नफथा नामका द्रव मिलता है। तारकोल नफथाको फिर गरम करनेसे बेंज़ीन और उसके बाद टूलीन नामक द्रव प्रस्तुत होते हैं। नाइट्रोग्लिसरीन और गनकाटनकी तरह बेंज़ीन भी नत्रिकाम्लके संयोगसे नाइट्रोबेंज़ीनमें बदल जाता है। नाइट्रोबेंज़ीनमें अधिक नत्रिकाम्ल डालनेसे डाइनाइट्रो और पश्चात् ट्राइनाइट्रो बेंज़ीन बनते हैं। यही हाल टूलीनका भी है। गतमहायुद्धमें T. N. T. नामक स्फोटकका बहुत प्रयोग किया जाता था। यह T. N. T. वस्तुतः ट्राइनाइट्रो टूलीन ही था।

तारकोलको अधिक गरम करनेसे फिनोल नामक द्रव निकलता है। फिनोलको हम लोग कारबोलिक एसिडके नामसे पुकारते हैं। फिनोलमें नत्रिकाम्ल मिलानेसे ट्राइनाइट्रो फिनोल बनता है, जिससे लिड्डाइट (Lyddite) नामक प्रख्यात स्फोटक बनाया जाता है।

अधिकांश स्फोटक ऊपर कहे गये स्फोटकोंको एक दूसरेके साथ उचित परिमाणमें मिलाकर बनाये जाते हैं। उदाहरणार्थ १८ भाग नाइट्रोग्लिसरीन और ७३ भाग गनकाटनको एसीटोन नामक द्रवमें घुला कर ऊपरसे वेसलीन डालकर एक चिपचिपे स्फोटककी सृष्टि करते हैं। यह कार्डाइटके नामसे मशहूर है; क्योंकि यह उपरोक्त लसदार पदार्थको एक बारीक सूराखमें डालकर रस्सीकी तरह बना लिया जाता है। उसी तरह ७ भाग नाइट्रोसेल्यूलोज और ७३ भाग नाइट्रोग्लिसरीन मिलानेसे ब्लास्टिंग जिलाटीन (Blasting gelatine) नामक एक द्रव स्फोटक तैयार होता है।

नाइट्रोग्लिसरीन वस्तुतः अनेक स्फोटकोंका जन्म दाता है। उसके साथ लकड़ीका बुरादा, कोयला, पोटासियम अथवा अमोनियम नत्रेत

मिलानेसे क्रमशः फोर्साइट (Forcite) वल्कन (Vulcan Powder) और लिथोफ्रेक्च्यर नामक विस्फोटक बनते हैं।

व्यवहारमें स्फोटक दो प्रकारके बनाये जाते हैं। एक प्रकारके स्फोटक (High Explosive) कहलाते हैं जो बन्दूकके मुंहसे निकलकर बड़े धड़ाकेसे फूटते हैं। किसी विशेष रासायनिक पदार्थके मेलसे इनकी शक्ति मंद कर दी जाती है और तब यह बिना किसी तरहकी हानि पहुँचाये एक जगहसे दूसरी जगह लाये या लेजाये जा सकते हैं। इनमें आग लगानेके लिए एक दूसरे प्रकारके स्फोटकोंकी जरूरत पड़ती है। ऐसे स्फोटक-दाहक (detonator) कहलाते हैं। दाहकोंकी शक्ति बड़ी भयंकर होती है और इसीलिए इनका प्रयोग बहुत अल्प परिमाणमें किया जाता है। मरक्यूरी फल्मिनेत सबसे अधिक व्यवहृत दाहक है।

सामान्य बारूदको छोड़कर और जितने स्फोटकोंका वर्णन हुआ है वह सब यौगिक हैं। उनमें मिले हुए अवयवोंकी मात्रा निश्चित रहती है; यदि ऐसा न हो तो एक गोला दूसरेसे अधिक शक्तिशाली होगा तथा अधिक दूर तक वार कर सकेगा। इस विषमता तथा अनिश्चितताको मिटानेके लिए विस्फोटकोंके बनानेमें असाधारण ध्यान दिया जाता है। यदि एक विस्फोटकमें किसी अवयवकी अत्यधिक मात्रा वर्त्तमान रहती है तो वह दूसरे विस्फोटकके साथ जिसमें उसी अवयवकी मात्रा अत्यल्प रहती है, मिला दिया जाता है। फलतः एक ही स्फोटकसे बने हुए सभी गोलोंकी शक्ति समान और वार करनेकी दूरी (Firing range) निश्चित रहती है।

आधुनिक स्फोटकोंका यह संक्षिप्त वर्णन है। कहावत है कि आंख और कानमें बहुत अन्तर है। स्फोटकोंकी अद्भुत कार्य्यक्षमताकी कल्पना ही नहीं हो सकती। इसके लिए युद्धक्षेत्रके प्रत्यक्ष अनुभवकी आवश्यकता है। हिन्दू लोग दुर्गाको शक्तिका अवतार मानते हैं परंतु वैज्ञानिकोंकी दुर्गा देवी स्फोटक ही हैं।

—दुकालूप्रसाद मिश्र, बी. एस. सी.

त्रिदोषका इतिहास

(ले०—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

यह प्रत्येकके अनुभवकी बात है कि कोई बालक जन्म लेते ही ज्ञानवान्, विचारवान्, विद्वान, विज्ञ और सभ्य नहीं बन जाता; प्रत्युत संसर्गसे काल पाकर ही ऐसा बनता है। इसी तरह कोई पद्धति, कोई आविष्कार, जन्म लेते ही सुव्यवस्थित और पूर्णसुधरी दशामें नहीं पहुँच जाता, प्रत्युत काल पाकर ही सुधरते सुधरते सुधरता है और परिष्कृत होता है।

किसी समय त्रिदोष पद्धतिका भी आविष्कार हुआ और वह काल पाकर सुश्रृङ्खलित व समुन्नत हुई, यह एक निश्चित बात है। इसका कब जन्म हुआ और कब सुधरी; इस विषय को हम चरक संहिताके १२ अध्यायसे लेकर उद्धृत करते हैं।

त्रिदोषका आविष्कार

हम इससे पहिले "आयुर्वेदका प्राचीन इतिहास" नामक लेखमें बतला चुके हैं कि आयुर्वेद चिकित्सा भारद्वाज ऋषि द्वारा स्वर्गसे लायी गयी और उन्हींके द्वारा इसका आर्यावर्त्तमें प्रचार हुआ।

पता लगता है कि जिस समय इसका जनतामें प्रचार हो रहा था कोई एक निश्चित पद्धति न थी। और न लोग भारद्वाज ऋषि द्वारा सम्पादित चिकित्सा पद्धतिको ही पूर्ण रीतिसे मानते थे। इस बातका हमारे पास सबसे सबल प्रमाण यह है कि भारद्वाजजीके प्रमुख शिष्य आत्रेय जी के समय तक बड़ी बड़ी व्याधियोंके कारण पर ही विवाद रहा था। फिर चिकित्साकी पद्धति में बना रहना तो स्वाभाविक बात है।

हमको चरक संहिताके १२वें अध्यायके देखने से पता लगता है कि महर्षि, आत्रेयके समय—जब कि आयुर्वेद पद्धति जोरों पर थी—व्याधियोंके मूल कारण भिन्न भिन्न मानते थे। उस समय-के चिकित्सकोंकी यह दशा थी कि व्याधियों-के होनेमें कोई तो देश कोई काल, कोई मलकोप, कोई कर्म्म, कोई वात, कोई पित्त, कोई श्लेष्म, कोई दैवको कारण मानते थे। इसका कारण यह था कि उस समय इन बातोंके देखनेका कोई प्रायो-गिक साधन न था। प्रत्युत वह दर्शन वादका समय था, प्रत्येक विषय तकसे सिद्ध किया जाता था, और हर एक व्यक्ति इन्हीं दार्शनिक युक्तियोंसे अपने अपने पक्षका समर्थन करता था। उस समय उनकी प्रगल्भ दार्शनिक युक्तियां इतनी युक्ति युक्त होती थीं कि उनका खण्डन करना सहसा कठिन था। दूसरे उस समय इन युक्ति वादियोंका इतना मान था कि उनकेकथन पर जनता पूर्ण विश्वास रखती थी; क्योंकि, जनता उनको सत्यवक्ता, धर्मात्मा जानती थी; और वह थे भी ऐसे। उनके ग्रन्थोंसे पाया जाता है कि उन्होंने हर तरहसे सत्यको जानने और पानेकी चेष्टा की। उस समयका समुदाय, आधुनिक समयकी गिरी हुई अवस्था जैसा न था। उस समय वह परस्पर सच्चाईकी इच्छासे हर एकके विचारको बड़े धैर्य्य और शान्तिसे सुनते थे। यद्यपि उस समय आयु-र्वेदिक चिकित्साकी नींव दृढ नहीं हुई थी, नित नई खोजें होती रहती थीं, प्रत्येक विषयपर विवाद जारी था, व्याधियोंके कारण पर विशेष ध्यान था, किन्तु, कोई निश्चित फैसला न होने पर भी उनमें द्वेष न था। उस समय वैद्य समूह जब इस तरह व्याधिके कारण का निश्चय न कर सका तो अन्तमें यह निश्चय हुआ कि इस तरह विवाद होते रहने से हम सबके कार्यमें बड़ी बाधा पड़ती है, नित्य ही विवाद बना रहता है; सबसे अच्छी बात यह है कि इस विषयका निर्णय किसी बड़ी परिषद्में कर लिया जाय। यह बात सबको स्वीकार हुई। उन्होंने आत्रेय जीके स्थान पर इसका निर्णय करना उचित ठहराया, क्योंकि वह उस समयके चिकित्सकोंमें सर्व श्रेष्ठ समझे जाते थे। निश्चित तिथि पर वैद्योंके समूह उनके आश्रम पर एकत्र होने लगे। जो व्यक्ति उस परिषद्में सम्मिलित हुये, उनमें प्रमुख निम्नलिखित थे।

काङ्कायन, शांकुतायन, मौद्गल, शरलोम, हिर-ण्याक्ष, शौनक, भद्रकाप्य द्वितीय भरद्वाज, वाल्हीक, बड़िशधामार्ग, वार्योविद, मरीचि, आत्रेय, भिक्षु आत्रेय, कश्यप, काश्यप, निमि, शाकुन्तेय, वामक, भृगु, भार्गव, च्यवन, वामदेव, अङ्गिरा, हरीत और अग्निवेश इत्यादि।

महर्षि आत्रेयजीने इन महानुभावोंको अपने आश्रम पर आया देख यथा योग्य सत्कार किया। तत्पश्चात् नियम युक्त सभाका कार्यारम्भ हुआ। महर्षि आत्रेयजी प्रधान पद पर सुशोभित किये गये और यह विषय उपस्थित हुआ—हम सब चिरकालसे परस्पर मिलती जुलती चिकित्सा करते हैं, किन्तु निदानमें हम सबको भिन्न भिन्न सम्मति होती है और हम एक दूसरेके विचारोंसे लाभ उठानेमें वंचित रहते हैं। हम सबका इतना विरोध है कि परस्पर व्याधियोंके आदि कारणको भिन्न भिन्न मानते हैं; जिसको देखो अपने अपने सम्प्रदाय और विचार द्वारा व्याधियोंके कारणको भिन्न भिन्न सिद्ध करता है। व्याधिको देखकर कोई देश काल, कोई खान पान, कोई कर्म और कोई वातादि दोषोंको कारण ठहराता है। और वह अपने पक्षको सिद्ध करनेके लिए इतनी बलवान् अकाट्य युक्तियां देता है कि जिससे माननेसे मुकरा नहीं जाता। यदि प्रत्येककी युक्ति-को ठीक मान लें, तो हर एकके माने हुए देश, काल, वातादि प्रत्येक कारण पूर्ण सत्य हो नहीं सकते, एक व्याधिके इतने करण मुख्य कहे जा सकते हैं। इसलिए, इसका निर्णय होना चाहिये। महर्षि आत्रेय जीसे इस पर विचार करनेकी अनुमति मांगी गई। आत्रेयजीने उनके विचारोंको

सुनकर सहर्ष धन्यवाद दिया और इस पर विचार करनेको अनुमति दी। सबसे पूर्व त्रिदोष पर विचार होना स्वीकार हुआ।

शास्त्रानुसार त्रिदोष-विवेचना

वायु पर प्रश्न—दर्शन शास्त्रोंके आधार पर उस समय वायुके सम्बन्धमें यह निर्णय हो चुका था कि वायु पाँच तत्वोंमें से एक तत्व है, शरीरमें और तत्वों की नाईं इसकी उपस्थिति आंशिक रूपसे सबको मान्य थी; इसीलिए उक्त विषय पर किसी को संशय न था। संशय था इसके कोप, और व्याधियोंके उत्पादन पर। इसीसे, प्रश्न उठाया गया कि (१) इसमें कौन कौनसे गुण हैं? (२) इसके प्रकोपका कारण क्या है? (३) इसके प्रकोपसे व्याधियां किस तरह होती हैं? (४) और यदि यह प्रकोपको प्राप्त हो तो इसकी शान्तिके उपाय क्या हैं? (५) दर्शन शास्त्रोंके सिद्धान्तानुसार जब इसका किसीके साथ सम्पर्क नहीं, और न यह स्थिर है तो ऐसी दशामें इसके साथ प्रकोप कर्त्ता और शमन कर्त्ता द्रव्योंका संयोग किस तरह होता है? (६) जब इसका सम्पर्क ही किसीके साथ नहीं तो प्रकोप कराने-वाले द्रव्य इसको किस तरह प्रकुपित करते हैं और शमन कर्त्ता द्रव्य इसका किस तरह शमन करते हैं?

उक्त प्रश्नोंको सुनकर शांकतायनजीके पुत्र कुशजी कहने लगे कि वायुको कुपित कराने वाले द्रव्य, रूक्ष, लघु, शीत, दाह्य, खर, विशद और शुष्कताकारक होते हैं। इन्हींका वायु आश्रय लेकर विवर्द्धित और कुपित होता है। और स्निग्ध, गुरु, उष्ण, श्लक्ष्ण, मृदु, पिच्छिल और घन-कारी द्रव्योंके द्वारा शमन होता है। जब कुपित हुई वायु पर ऐसे द्रव्योंका प्रयोग होता है तो शरी-रमें ठहरी हुई तथा विचरती वायु शान्त हो जाती है। इसका वायोर्विदजी ने प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्त वाक्यों द्वारा निम्नलिखित भाषण देकर अनु-मोदन किया।

शरीरमें वायुके कर्म।

वायोर्विदजी कहने लगे—यथार्थमें वायु ही शरीर तन्त्र और यन्त्रका धारण करने वाला है; और यह कार्य भेदसे प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान नामक पांच रूपोंमें विभक्त होकर शरीरमें रहता हुआ प्रत्येक प्रकारकी शारीरिक चेष्टाओंका प्रवर्त्तक है, उत्कर्ष शक्तिका नियन्ता है, मानसिक शक्तियोंका प्रणेता है, सारी इन्द्रि-योंका द्योतक है, इन्द्रिय जन्य विषयका मनसे सम्बन्ध करानेवाला है, शरीरस्थ धातुओंको क्रममें रखनेवाला है, शरीरको सन्धियोंका सन्धान करानेवाला है, और वाणीका भी प्रवर्त्तक है। शब्द और स्पर्श यह दोनों इसकी प्रकृति हैं; श्रोत्र और स्पर्श (त्वचा) इसके मूल हैं, हर्ष और उत्साह इसकी योनि हैं। यह अग्निको बढ़ानेवाला और दोषोंको सुखानेवाला है; मलको बाहर निकालना इसका कार्य है। अपनी शक्तिसे सूक्ष्म और स्थूल स्रोतोंको स्वच्छ रखनेवाला है, गर्भमें आकृतिको बनानेवाला है, आयुको स्थिर रखनेवाला है; जब यह कुपित होता है तो शरीरको अनेक प्रकारकी व्याधियोंसे प्रपीड़ित करता हुआ, बल, वर्ण और आयुको नष्ट कर देता है; कुपित हुआ वायु मनको उन्मादित करता है, इन्द्रियोंको नष्ट करता है, गर्भको गिरा देता है, तथा उसकी बनती हुई आकृतिको बिगाड़ देता है, और प्रसव-कालमें अति विलम्ब करता है। ऐसी दशामें भय, शक्ति, मोह, दीनता और प्रलापको उत्पन्न करता है, तथा प्राणोंको रोक देता है। यह शरीरमें कुपित और अकुपित वायुके गुण दोष कहे। अब शरीरसे बाहर वायुके कर्म सुनो।

जगत्में वायुके कर्म

इस जगत्में वायुके बड़े भारी कर्म देखे जाते हैं; यथा—पृथ्वीको धारण करना, अग्निको प्रज्व-लित करना, सूर्य, चन्द्र और तारागणोंके समूहको अपनी अपनी गतिमें स्थिर रखना, बादलोंको पैदा कर जलकी वर्षा करना, जल स्रोतोंका प्रवर्त्तन करना,

वृक्षोंमें पुष्प फलोंको उत्पन्न करना, वनस्पतियोंको उगाना, ऋतुओंका परिवर्तन करना, सोना, चांदी आदि धातुओंको पृथ्वीमें बनाना और भिन्न भिन्न धातुओंका घनत्व, आकृति सम्पादन करना, बीजोंमें अङ्कुरोत्पत्ति, खेतीका बढ़ना क्लेद शोषण, विकार हरण करना आदि अकुपित वायुके कर्म्म हैं।

प्रकुपित वायुके कर्म

भू मण्डलका वायु जब कोपको प्राप्त होता है तो पर्व्वतके शिखरोंका खण्डन करता है, वृक्षोंका उत्पादन करता है, समुद्रोंमें ज्वारभाटा, और नदियों, झील, सरोवरोंमें बड़ी बड़ी तरङ्गें उत्पन्न करता है। भूमिमें भूकम्प, मेघोंमें गर्जन, आकाशमें कोहरा, धूल, बालू, मछली, मेंढ़क, सर्प, क्षार, रुधिर, पत्थर, और ओला आदि एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँचा कर पृथ्वी पर बरसाता है, और बिजलीको गिराता है, षटऋतुओंमें विकार या विपरीतता उत्पन्न करता है, फसलको बिगाड़ देता है, प्राणियोंका व्याधियोंसे संहार करता है, वर्त्तमान वस्तुओंका नाश कर देता है, प्रलयकारी मेघोंको उत्पन्न कर सूर्य और अग्निका विसर्जन करता है। कहां तक गिनावें, यह वायु ईश्वरवत् शक्तिमान् है।

यह सुनकर मरीचिके पुत्र कहने लगे कि यदि आपका कथन सत्य है तो आयुर्वेदकी क्या सामर्थ जो वायुके स्वरूपको समझे या वर्णन करे। दूसरे इतनी लम्बी चौड़ी जो कथा आपने सुनाई है उससे आयुर्वेद शास्त्रका क्या प्रयोजन? क्योंकि इन विषयोंका सम्बन्ध तो भौतिक वादसे है, न कि चिकित्सासे।

वायोर्विदजी ने उत्तर दिया कि यदि वैश्व वायुको अत्यन्त बलवान, पौरुषवान् शीघ्र गतिकारी, और अत्यन्त विकारी न समझेगा तो सहसा कुपित हुई वायुको—जिसके शीघ्र ही वेगके बढ़ जानेका भय है, और उसके कोपसे अनिष्ट होनेका हर समय भय बना रहता है—प्रथमही रोकनेका किस प्रकार यत्न करेगा? इस प्रकारके प्रश्नने सबको निरुत्तर कर संतुष्ट कर दिया; जिसको सुनकर स्वयम् आत्रेयजी भी वायोर्विदजीके पक्षका अनुमोदन करने लगे।

पित्त सम्बन्धी प्रश्न

इसके पश्चात् पित्त सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित हुआ, जिसपर मरीचिजी कहने लगे कि अग्नि ही शरीरके अन्तर्गत हुई? पित्तके रूपमें रहती है, और यही कुपित होने पर अशुभ और शान्त रहने पर शुभ फल देती है; तथा स्वास्थ्यको बनाये रखतीहै। यही उष्मा (अग्नि) सात्म्यरूपमें रहने पर पाक, दर्शन, निश्चित-ताप, प्रकृति, वर्ण, शौर्य, अभय, अक्रोध, हर्ष, अमोह, प्यार, और मित्रता आदिको उत्पन्न करती है। इसके विपरीत कुपित होने पर विपरीत गुणोंको उत्पन्न करती है। इसका भी अनुमोदन आत्रेयजीने किया।

श्लेष्म सम्बन्धी प्रश्न—इसके पश्चात् श्लेष्म सम्बन्धी प्रश्न उठा; कश्यपजी कहने लगे कि सोम (जल) ही शरीरान्तर्गत हुआ श्लेष्मके रूप में रहता है, और इसीके कुपित होने पर अशुभ, शान्त रहने पर शुभ फल होता है। जब यह कुपित होता है तो शरीरमें शिथिलता, कृशता, आलस्य, क्लीवत्व, अज्ञान और मोहको उत्पन्न करता है। शान्त रहने पर स्फूर्त्ति, स्थूलता आदि गुणोंको उत्पन्न करता है। इतना कह कर कश्यप जी बैठ गये, किन्तु पुनः कोई प्रश्नोत्तरके लिए न उठा। उक्त महानुभावोंके विचारको सुनकर महर्षि पुनर्वसु (आत्रेय) जी कहने लगे कि जो कुछ आप सब महात्माओंने मनुष्योंके शुभाशुभ करनेवाली बातों के सम्बन्धमें विचार उपस्थित किये हैं, ठीक हैं निस्सन्देह वायु (वात) उष्मा (पित्त) सोम (श्लेष्म) यही तीनों प्रकृति भूत (शरीरमें सात्म्यरूप) होते हैं तो निर्विकार होते हैं और शरीरको स्वस्थ रखते हैं, इनके ही ठीक रहने पर मनुष्य इस लोकमें चतुष्प दार्थको प्राप्त होता है और जब यह बिकारी होते हैं तो मनुष्यको अनेक प्रकारकी दुर्घटनाओंमें ऐसे घेर

लेते हैं, जैसे तीनों ऋतु—सर्दी, गर्मी, वर्षा—विकारी होकर उपघात काल—सृष्टि संहारणी शक्ति—को उत्पन्न कर संसारमें अनिष्ट करने लगते हैं।

जब उक्त विषयका प्रधानजीके द्वारा अनुमोदन हुआ सब ने जयध्वनिके साथ स्वीकार किया, और सब ने महर्षि आत्रेयजीकी भूरि भूरि प्रशंसा की। उक्त विषयके विचारके पश्चात् सभाका विसर्जन हुआ। लोग अपने अपने स्थानको वापस गये। तभीसे उक्त आयुर्वेद-पद्धतिमें त्रिदोषको प्रत्येक व्याधियका कारण मानने लगे।

उस समय इसको कितने बलवान प्रमाणोंसे माना गया, कितनी प्रायोगिक युक्तियां दी गईं, कितनी विस्तृत व्याख्या हुई, यह सब उपरोक्त चरक जीके द्वारा वर्णित ग्रन्थसे स्पष्ट है। इससे आगे चलकर वाग्भट जीके समय तक जो त्रिदोषका विस्तार बढ़ा वह हम 'आयुर्वेदका त्रिदोष विज्ञान' नामक लेखमें बतला चुके हैं।

उपरोक्त त्रिदोषके इतिहाससे स्पष्ट है कि आयुर्वैदिक चिकित्साका विकास क्रमसे होता चला आया है। और समयके अनुसार इसमें अनेक परिवर्त्तन वा परिवर्द्धन हुये हैं। उन सिद्धान्तोंमें आयुर्वैदिक चिकित्साका त्रिदोष-सिद्धान्त इतना माननीय और आदरणीय हुआ कि यह आजतक अटल रूपसे व्यवहृत होता चला आ रहा है। किन्तु यह सिद्धान्त कहां तक व्यापक और सत्य है, कहां तक इनका व्याधियोंसे सम्बन्ध है, इस पर आजतक किसीने खुलकर विचार न किया। मैं अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार अगले लेखमें इस पर विचार करूंगा।

इन्द्र धनुष

My heart leaps up when I behold,
A rainbow in the sky.
—Wordsworth.

प्राचीन कालमें अधिकाँश शिक्षित व्यक्तियोंकी धारणा थी कि वैज्ञानिक परीक्षा करना सभ्य पुरुषका लक्षण नहीं है; अतएव तद्वत् प्राप्त अनुभव वा व्यवहारिक ज्ञान गहन विचारका विषय नहीं समझा जाता था। अतः अग्रगण्य तत्ववेत्ता तथा विद्वान् दार्शनिक केवल अन्ध विश्वासों तथा भूत-प्रेतादिकोंकी चर्चामें ही अपना कालयापन किया करते थे। झूठ और सत्यका निराकरण करनेके लिए कोई प्रयत्न न किया जाता था। फलतः उनके विचार इतने पक्षपाती बन गये थे कि सत्यका या तो वह तिरस्कार कर देते थे या अद्भुत परम्परागत अंध विश्वासों द्वारा किसी घटना विशेषका कारण बताकर वह अपना समाधान कर लिया करते थे।

जड़ पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान केवल पञ्चज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही हो सकता है; अन्य किसी साधनसे नहीं। अनुभव ही विशाल ज्ञान स्रोत अथवा शुभ्र झरना है। इसीके शुचि-प्रवाहका अनुसरण करते हुए हम अगाध सत्य सागर तक पहुँच सकते हैं। हमारे सब निरीक्षण तथा उनसे प्राप्त शिक्षा ही हमारे अनुभवमें समाविष्ट हैं। इन्हीं लब्ध अनुभवोंके आधार पर विज्ञानकी भीति खड़ी है। इन्हीं अनुसन्धानोंकी दृढता पर विज्ञानकी दृढता निर्भर है। इन्हींकी यथार्थता पर उसका ठीक होना विश्वसनीय है।

पर उपर्युक्त व्यक्तियोंके अपवाद-स्वरूप ही कुछ महात्मा पुरुष भी इस सृष्टिमें जन्म लेते हैं। इन्हीं महानुभावोंके कठिन परिश्रमके फलस्वरूप हम विज्ञानमें थोड़े ही समयमें इतनी उन्नति कर सके हैं। 'असभ्य' कार्योंको

अपना कर वह महात्मा ही संसारको सुख पहुँचानेमें समर्थ होते हैं तथा उन्हींके परिश्रमसे भविष्यमें जगत्‌को चिर शान्ति मिलनेकी आशा की जा सकती है।

प्राचीन कालसे ही ऐसे सज्जन सत्यान्वेषणके लिए सतत प्रयत्न करते आये हैं; किसी घटना-विशेषके घटने पर तथा किसी भी निरीक्षणके पश्चात् वह सदा इनका कारण ढूँढ़ निकालनेके लिए अपनी तर्कना शक्तिसे काम लेते आये हैं। आधुनिक विज्ञानके बड़े बड़े तत्व इसी कल्पना शक्तिके फल हैं। इसी शक्तिने मनुष्यके मस्तिष्कमें ज्ञानका विकास किया है और उसे सत्यके मार्ग पर चलाया है। उसके भ्रम तथा अन्ध विश्वासों को दूर करने यही शक्ति प्रधान कारण है।

इन्द्र धनुष प्रायः सभीने देखा है। यह विशेष कर वर्षा ऋतुमें सूर्योदयके समय पश्चिममें तथा सूर्यास्तके समय पूर्वमें दृग्गोचर होता है। कभी कभी दोपहरके समय यह गोलाकार हो सूर्यके इर्द गिर्द भी दीख पड़ता है।

पुराणोंके अनुसार हमारे यहां यह जल दाता इन्द्रका धनुष माना गया है। कहते हैं इसी धनुषके सहारे इन्द्र बादलोंको भेद कर मेंह बरसाता है। पर इसका यथेष्ट कारण हमें बहुत काल तक वैज्ञानिक-ज्ञानके अभावके कारण न मालूम हो सका। इस वैज्ञानिक कारणका ही कतिपय शब्दोंमें उल्लेख करना इस लेखका एक मात्र प्रयोजन है।

इसे सिद्ध करनेके पूर्व प्रकाशकी किरणोंके विशेष गुणोंका जानना बहुत ज़रूरी है। विदित हो कि प्रकाश सदा सीधी रेखामें ही यात्रा करता है; अर्थात् प्रकाशकी किरणें हमेशा सीधी ही रहती हैं। ध्वनिकी लहरोंके समान प्रकाशकी लहरें किसी साधारणतया छोटे पदार्थके बीचमें आ जानेसे मुड़ कर नहीं जा सकतीं परन्तु रुक जाती हैं। इनकी अनुपस्थिति ही छाया है। इस न मुकनेका कारण प्रकाशकी लहरोंकी अति सूक्ष्मता ही है।

जब प्रकाशका एक किरण-समूह या कर-निकर (beam of bight) कांच या किसी अन्य पारदर्शक पदार्थको पार करता है तब उसकी दिशा बदल जाती है; यदि वह विरल पदार्थसे घनेमें प्रवेश करता है तो लम्बकी ओर झुक जाता है, अन्यथा उससे परे हट जाता है। इसे प्रकाश का वर्तन (Refraction) कहते हैं।

श्वेत प्रकाश सप्त रंगोंके मेलसे बना है। इन सप्त रंगोंकी किरणोंके वर्तन कोण भी भिन्न भिन्न हैं। वर्तनकोण (Angle of refraction) उस कोणका नाम है जो किरणें वक्री भूत होनेके पश्चात् लम्बसे बनाती हैं अर्थात् एक ही पतनकोण Angle of incidence के लिए भिन्न भिन्न रंगकी किरणोंके भिन्न भिन्न दिक् परिवर्तन कोण (Angle of deviation) हैं। अतएव श्वेतप्रकाश जब किसी पारदर्शक पदार्थको भेदकर निकलता है तब सप्त-रंगोंमें विभक्त हो जाता है। इसी सिद्धान्त पर सूर्यकी उपस्थितिमें इन्द्र धनुषका दिखाई देना निर्भर है। अब हमें देखना है कि सूर्यकी किरणें कहां वा कैसे वक्रता धारण कर एक अर्ध वर्तुलाकार स्वरूप में सप्तरंगोंमें विभाजित हो जाती हैं। सूर्यकी किरणें जब जल बिन्दुओंको पार करती हैं तब वह वर्तित होकर इन्द्र धनुषके बननेमें सहायक होती हैं। यह निम्न चित्र द्वारा भली भाँति हृदयंगम हो जायगा। (चित्र २४)

$म_१ र_२ \ldots\ldots म_२$ एक जलबिन्दु हैं। उस पर दाहिनी ओरसे एक समानान्तर किरणोंका प्रकाश पुञ्ज पड़ रहा है जलबिन्दुकी सतह पर यह किरणें भिन्न भिन्न स्थान पर भिन्न भिन्न पतन कोण बनाती हैं। (पतन कोण वह कोण है जो किरण अपने स्पर्श बिन्दुसे खींचे हुए लम्बसे बनाती है।) चित्र २४ में जलबिन्दुकी सतह परका लम्ब उस विन्दुसे निकलनेवाला व्यासार्ध (radius) ही है। इन पतन कोणोंके भिन्न होनेके कारण वर्तनके पश्चात् उनकी दिशा भी भिन्न भिन्न हो जाती हैं। फलतः उनका दिक्-परिवर्तन-कोण

(angle of deviation) भी भिन्न भिन्न हो जाता है। (दिक्-परिवर्तनको कोण है वह कोण है जो पतित-किरण वर्तित किरण अथवा परावर्तित किरणसे बनाती है।)

चित्र २४

उदाहरणार्थ स१ म१ किरण जलविन्दु पर म१ स्थान पर पतित होती है। वह म१ र१ दिशामें वर्तित हो जाती है। यह किरण विन्दुके अन्तरीय भाग र१ पर पड़ती है। कुछ प्रकाश तो पारदर्शक विन्दुको भेद कर बाहर निकल जाता है और शेष र१ न१ दिशामें परावर्तित हो जाता है। विन्दुके अन्तः पृष्ठ न१ पर यह फिर वर्तित हो न१ प१ दिशा में विन्दुसे बाहर निकलता है।

चित्र २४ में ठीक समझनेके लिए कुछ ही किरणोंकी दिशा बनाई गई है। यदि सभी किरणों की दिशा निर्धारित की जाय तो मालूम होगा कि केवल वह ही किरणें जो कि विन्दु पर म२ स्थान पर पड़ती हैं (इनका पतन कोण ५७ के लगभग है) दोबार वर्तित और एकबार परवर्तित हो बाहर निकलने पर सबसे कम दिक्परिवर्तित होती हैं। उसी चित्रसे यह भी विदित होगा कि म२ स्थानके आसपासकी किरणें न२ प२ दिशामें बाहर निकलने पर लगभग समानान्तर रहती हैं। अन्य किरणें जैसे न३ प३ वा न१ प१ दूर दूर
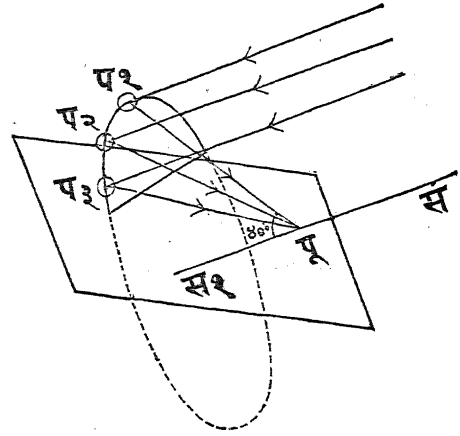
चित्र २५

फैल जाती हैं। समानान्तर किरण-पुञ्जोंकी काट (cross section) सदा एक सी ही रहती है। क्योंकि वह सदा समानान्तर पर ही रहती हैं। अतएव उसका प्रकाश दूर तक यात्रा करने पर भी क़रीब क़रीब इतना ही तीव्र रहता है; यद्यपि कुछ प्रकाश अवश्य माध्यम द्वारा सोख लिया जाता है। असमानान्तर किरणें उद्गम केन्द्रसे निकलने पर एक दूसरेसे दूर होती जाती हैं, अतएव कुछ ही दूरी पर उनका प्रकाश धीमा पड़ जाता है। चित्रमें शक्तिशाली किरणें न२ प२ से इंगित की गई हैं। अब यदि प२ स्थान पर एक दर्शक खड़ा हो तो उसे प२ न२ दिशा में एक प्रकाशवान फीता दीख पड़ेगा। अन्य दिशाओंमें उसे केवल धीमा प्रकाश ही दीखेगा। यदि ध ध१ पतन-किरणोंकी दिशासे समानान्तर पर खींची जावे तो $\angle$ न२ प२ ध ४२° होगा।

अब यदि (चित्र २५) 'क' आँखको शिखा (apex) मान कर, तथा किरणोंकी दिशा स क स₁ को अक्ष (axis) मान हम एक सूची (cone) खींचें

इस सूचीकी तलीकी कोर पर स्थित हैं हमें प्रकाशवान दीखेंगे क्योंकि वहाँसे जो प्रकाश हम तक आता है वह न्यूनतम परिवर्तनके बाद आता है।
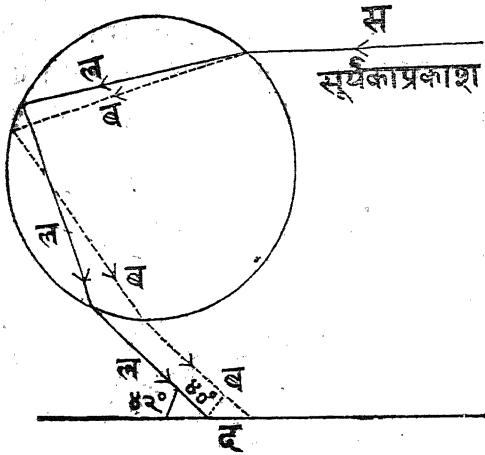
चित्र २६
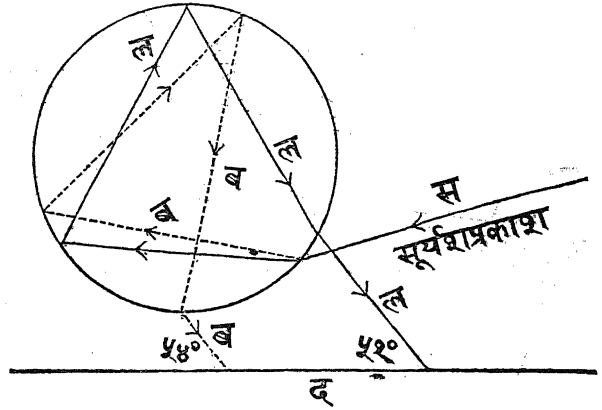
चित्र २८
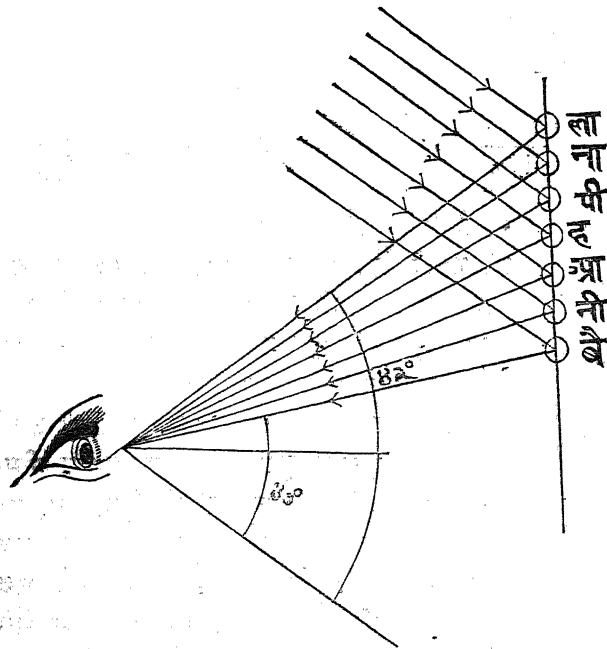
चित्र २७

और जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है यह लगभग समानान्तर ही रहता है। इसीलिए तीव्र भी होता है। अतः हमें अब एक प्रकाशित विन्दुके अतिरिक्त एक अर्धवर्तुलाकार धनुष दिखाई देगा।

पर ध्यान रहे कि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है श्वेत प्रकाश सप्तरंगोंके मेलसे बना हुआ है। अतएव विन्दुमें प्रवेश करते ही वह भिन्न भिन्न रंगोंमें विश्लिष्ट हो जावेगा और हमें एक सफ़ेद कमानके अतिरिक्त एक रंगीन कमान दीख पड़ेगी। यह चित्र ३ से भली भाँति समझमें आ जायगा। स एक सफ़ेद किरण है, वह विन्दुमें प्रवेश करते ही विश्लिष्ट हो जाती है। लाल किरण सबसे कम परिवर्तित होती है तथा बैंजनी सबसे अधिक। इसीलिए रंगीन कमानका अन्तरीय भाग बैंजनी होगा और बाहरी भाग लाल होगा। लाल किरणें ४२° की दूरी पर तथा बैंजनी किरणें ४०° की दूरी पर

जिसकी अक्ष और जन्य रेखाके बीचका कोण ४०° हो तो सभी जलबिन्दु प₁, प₂ प₃ इत्यादि जो कि

होंगी। चित्र ३ व ४ से यह भली भाँति समझमें आ जायगा। स्पेक्ट्रमके अन्य रंग अर्थात् नीला, आसमानी हरा पीला नारंगी इन्हीं दो रंगोंके बीचमें रहेंगे। (चित्र ५) इन्द्र धनुष है।

इन्द्र धनुष प्रायः दो वा तीन भी दृग्गोचर होते हैं। बाहरी कमान Secondary bow का दीखना, किरणके विन्दुके भीतर दो बार परावर्तित होकर बाहर निकलने पर निर्भर है। जैसा कि चित्र ४ से स्पष्ट है। इस धनुषके रंग भीतरी कमानके रंगोंके क्रमशः उलटे होंगे। इसका ऊपरी सिरा बैंजनी रहेगा और नीचेका लाल। इसी प्रकार तीन या अधिक बार प्रतिफलित किरणें भी धनुष बनाती हैं; पर उनका प्रकाश धीमा होनेके कारण वह दीख नहीं पड़तीं।

बाहरी कमानके बाहर व भीतरी कमानके भीतर भी अनेक रंगोंके कई धनुष दिखाई देते हैं। इनका कारण एअरी साहबने प्रकाशका (diffraction) तितर-वितर हो जाना बताया है। उसका सविस्तर वर्णन यहाँ स्थानाभावके कारण नहीं दिया जा सकता।

—श्रीकामताप्रसाद, बी. एस सी.

सूर्यसिद्धान्त

त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरा अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[१-४ श्लोक—समतल भूमिमें खड़ा शंकु गाड़कर दिशा सूचित करने वाली रेखाएं खींचना। ५ श्लोक-शंकुकी छाया और उसकी नोकसे पूर्व-पश्चिम रेखाका अंतर जान कर छायाकी दिशा जानना। ६ श्लोक-सम मंडल, उन्मंडल और विषुवन्मण्डलकी परिभाषा। ७ श्लोक—अग्राकी परिभाषा। ८ श्लोक-शंकु और उसकी छायाका परिमाण जान कर छाया कर्ण जानना। ९-१० श्लोक—अयनांश जानकर ग्रहों की क्रांति, छाया, चर इत्यादि जानना। ११ श्लोक—अयनान्त या विषुवत् दिनः को सूर्यका वेध करके अयनांश जांचना १२ श्लोक—पलभा परिभाषा। १३ श्लोक—पलभा से लम्बांश और अक्षांश जानना। १४-१५ श्लोक—मध्यान्हकालिक सूर्यका नतांश और क्रान्ति जानकर अक्षांश जानना। १६ श्लोक—अक्षांशसे पलभा जानना। १७-१९ श्लोक—अक्षांश और मध्यान्हकालिक सूर्यके नतांश से सूर्यकी क्रान्ति जानना और सूर्यकी क्रान्तिसे सूर्यका स्पष्ट सायन भोग जानना और मंदफलका संस्कार देकर मध्य-सायन भोग जानना। २०-२१—अक्षांश और सूर्यकी क्रांति से नतांश जानकर मध्यान्ह कालिक छाया और छायाकारी जानना। २२ श्लोक—सूर्यकी उदय कालिक अग्रा जानकर इष्टकालकी अग्रा जानना। २३-२४ श्लोक—अग्रा और पलभासे छायाका भुज जानना। २५ श्लोक—जब सूर्य सममंडलमें हो तब छाया कर्ण जाननेकी रीति। २६ श्लोक—जब सूर्यकी उत्तर क्रान्ति अक्षांशसे कम हो तब सममंडल सूर्यका छाया कर्ण जानना। २७ अग्रा जाननेकी दूसरी रीति। २८-३१ श्लोक—करणी और फल के ज्ञानसे सूर्यका उन्नतांश जानना जब सूर्य अग्नि कोण या नैऋत्य कोणमें हो। ३२ श्लोक—उन्नतांश जानकर नतांश जानना। ३३ श्लोक—उन्नतांश और नतांश से छाया और छाया कर्ण जानना। ३४-३५ श्लोक—चरज्या और ततकाल से छेद जानकर दृगज्या अर्थात नतांशज्या जानना और उससे पहलेकी तरह छाया और छाया कर्ण जानना। ३६-३८ श्लोक—छाया और छाया कर्णसे नतकाल जानना। ३९ और ४० वा पूर्वार्द्ध—अग्रासे क्रान्ति जानकर सूर्यका भोगांश जाननेकी दूसरी रीति। ४० का उत्तरार्द्ध और ४१ का पूर्वार्द्ध—भ्रम रेखा खींचना। ४१ का उत्तरार्द्ध और ४२ श्लोक-लंकामें सायन राशियोंके उदयकाल जाननेकी रीति ४३-४४ श्लोक-लंकामें सायन मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु और अन्य स्थानोंमें सायन राशियोंके उदयासु जाननेकी रीति। ४५-४७ श्लोक-किस समय कौन राशि पूर्व क्षितिजमें लग्न होती है यह जानना। ४८ श्लोक-मध्य लग्न जानना। ४९-५० श्लोक-लग्न जानकर समय जानना।]

इस अध्यायमें किसीके मतसे श्लोकोंकी संख्या ५० और किसीके मत से ५१ है। जो लोग श्लोकों की संख्या ५० मानते हैं वह कहते हैं कि ११ वें

और २० वें श्लोकोंमें * प्रत्येक में ४ चरण की जगह ६ चरण हैं। जो लोग ५१ मानते हैं वह प्रत्येक श्लोक चार चार चरणके मानते हैं। इसलिए दोनों मत मेरी समझ में अभिन्न हैं। इस समय मेरे पास सूर्य-सिद्धान्तके चार संस्करण हैं परन्तु खेद है कि किसी दो में श्लोकोंके अंकोंका क्रम एक सा नहीं है पं० इन्द्रनारायण द्विवेदीकी सम्पादित पुस्तक में भी अंकोंका क्रम गड़बड़ है। इसलिए मैंने सुविधाके लिए ११ वें और ३५ वें श्लोकको तीन तीन पंक्तियों अथवा छ छ चरणोंका माना है। २० श्लोकको ६ चरणोंका माननेसे यह गड़बड़ पड़ती है कि आगेके किसी श्लोकमें नियम पूर्ण नहीं होते वरन एक श्लोकका उत्तरार्द्ध और दूसरे श्लोकका पूर्वार्द्ध मिलाना पड़ता है। ३५ वें श्लोकको ६ चरणोंका मान लेनेसे ३६-४२ श्लोकों तक ही यह असुविधा रहती है।

इस अध्यायमें सूर्यके बेधसे दिशा, देश (स्थान) और कालकी जानकारी करनेकी अनेक रीतियाँ वर्णित है। बेधके लिए केवल एक यंत्र काममें लाया गया है जिसे शंकु कहते हैं। किसी कठिन धातु या हाथी दांतकी एक सीधी नोकदार छड़ समतल भूमिमें खड़ी गाड़कर उसीकी छायासे सब काम लिया गया है। इसीको शंकु कहा गया है। यंत्राध्यायमें और भी यंत्रोंका वर्णन है परन्तु इस जगह केवल शंकुकी चर्चा है। यह स्पष्ट है कि सूर्यका बिम्ब बहुत बड़ा देख पड़ता है और शंकुकी छायाकी नोक बहुत सूक्ष्मता पूर्वक नहीं निश्चित की जा सकती है इसलिए शंकु से जो जो बातें जानी जा सकती हैं वह कुछ स्थूल हैं। आज कल दूरदर्शक यंत्रसे बेध करनेसे अधिक सूक्ष्मता हो सकती है। परन्तु प्राचीनकालमें शंकु बड़ा उपयोगी था। इससे बेध करके जितनी सूक्ष्मता हो सकती थी उसे प्राप्त करनेमें हमरे ज्योतिषियों ने बहुत कुशलता दिखलायी है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

दूरदर्शक यंत्रकी सहायतासे कुछ ऐसी बातों का भी अविष्कार हुआ है जिनके संस्कारके बिना दिशा, देश और कालका ज्ञान स्थूल रहता है इसलिए आवश्यकता है कि उनकी भी चर्चा की जाय इसलिए विज्ञान भाष्यमें लम्बन (parallax) किरणवक्री भवन (refraction of light), अयन चलनका कारण, अक्ष विचलन (nutation), भूचलन संस्कार (aberration of light) और काल समीकरण (equation of time) का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा।

दिशाओंके निश्चय करनेकी रीति

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपिवासमे ।
तत्र शंक्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥१॥
तन्मध्येस्थापयेच्छङ्कु कल्पनाद्वादशाङ्गुलम् ।
तच्छायाग्रंस्पृशेयत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः ॥२॥
तत्र बिन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥३॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्व पश्चिमा ।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥४॥

अनुवाद—(१) जलके द्वारा शोधकर समतल किये हुए पत्थरके तलपर अथवा वज्रलेप (सुर्खी चूने इत्यादि) से बने हुए समतल चबूतरे पर शंकुके अनुसार इष्ट अंगुलके व्यासार्धका एक वृत्त खींचो। (२) इस वृत्तके केन्द्रमें बारह अंगुल का एक शंकु लम्ब रूपमें स्थापित करो। इसकी छायाकी नोक मध्यान्हके पहले और पीछे वृत्तको जहां स्पर्श करे, (३) वहां वृत्तपर दो बिन्दु बना दो इनको पूर्वान्ह और अपरान्ह बिन्दु कहते हैं। इन दो बिन्दुओंके बीचमें तिमि द्वारा उत्तर-दक्षिण रेखा खींचो। (४) उत्तर दक्षिण दिशाओंके बीच में तिमि द्वारा पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचो। इसी प्रकार दो दिशाओंके बीचमें तिमि द्वारा ईशान आदि विदिशाओंकी रेखाएं खींचो।

* पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी सम्पादित सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ १८०

विज्ञानभाष्य—यह जाननेके लिए कि कोई तल सम है या नहीं सबसे सुगम रीति यह है कि तलके किनारे चारो ओर गली मिट्टीकी आड़ करके उसमें एक या डेढ़ अंगुल गहरा पानी भर दो और किसी सीधी सींकसे देखो कि सब जगह पानीकी गहराई एक ही है या भिन्न भिन्न। यदि सब जगह पानीकी गहराई एक ही हो तो समझना

चित्र २६

चाहिये कि तल सम है। आजकल यह काम स्पिरिट लेवेल (Spirit level) से होता है।

वज्रलेप—पहले सुर्खी चूनेमें कई प्रकारका मसाला छोड़कर ऐसा गारा बनाया जाता था जिसकी गच वज्रकी तरह कठिन हो जाती थी। ऐसे गारेको वज्रलेप कहते हैं। बराही * संहितामें वज्रलेप बनानेकी एक विधि यों हैः—

तेंदूके कच्चे फल, कैथाके कच्चे फल, सेमलके फूल, सल्लकीके बीज, बंधनकी छाल और बच इन सबको जलमें पकाकर काढ़ा बनावे, जब आठवां भाग पानी रह जाय तब उतार कर इसमें श्रीवास (सरल वृक्षका गोंद), रस, गूगल, भिलावा कुंदरू, राल, अलसी और बेलकी गिरी पीसकर मिलावे तो वज्रलेप तैयार होता है।

तिमि—यदि दो वृत्त एक दूसरे को काट

* सत्तावनवां अध्याय श्लोक १-३

हुए खींचे जायँ तो इनके बीचका भाग मछलीके आकारका हो जाता है। इसीको तिमि कहते हैं।

चित्र २६ में वृत्तके मध्यमें श शंकुका स्थान है। मध्यान्हके पहले शंकुकी छाया जब शकके समान होती है तब इसकी नोक परिधिके ख विन्दु पर पहुँचती है। मध्यान्हके पीछे जब छाया श ख के समान फिर होती है तब इसकी नोक परिधिके ख विन्दुपर पहुँचता है। बस इन्हीं क, ख विन्दुओं को केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्धके दो वृत्त ऐसे खींचे जिनसे गद्य क्षेत्र तिमिके आकारका बनता है। इसके समान्य विन्दुओंको मिलाने वाली रेखा ही उत्तर-दक्षिण रेखा है। यह रेखा पहले वृत्तको जिन विन्दुओंपर काटती है उनपर उत्तर दिशा सूचित करनेके लिए उ और दक्षिण दिशा सूचित करनेके लिए द लिख देना चाहिये। फिर उ और द को केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्धके दो और धनु खींचकर इनके सामान्य विन्दुओंको एक सीधी रेखासे मिला दो। इसीको पूर्व-पश्चिम-रेखा कहेंगे। पच्छिम दिशा सूचित करनेके लिए प और पूर्व दिशाके लिए पू लिखना चाहिये। फिर उ और प विन्दुओंको केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्धके दो धनु खींचकर उनके सामान्य विन्दुओंको मिलानेवाली रेखा उ और प के बीचमें जिस विन्दु पर परिधिको काटेगी वह वायव्य कोणकी दिशा और पू द के बीचमें जिस विन्दुपर काटेगी वह अग्निकोणकी दिशा होगी इसी प्रकार ईशान और नैऋत्य कोणकी दिशा भी जानी जासकती है।

उपपत्ति—उदयके समय सूर्य पूर्व क्षितिजके जिस विन्दु पर देख पड़ता है उससे दक्षिणकी ओर खसकता हुआ ऊंचा उठता जाता है और किसी खड़ी लकड़ी या शंकुकी छाया छोटी होती हुई उत्तरकी ओर खसकती जाती है। मध्याह्न कालमें सूर्य यामोत्तर वृत्त पर आ जाता है। उस समय छाया सबसे छोटी और ठीक उत्तर दिशामें होती है। इसके बाद सूर्य कुछ कुछ उत्तरकी ओर खसकता हुआ नीचे उतरने लगता है और छाया उत्तर दिशासे पूर्वकी ओर खसकती हुई बड़ी होती जाती है। मध्याह्न कालसे जितना समय पहले शंकुकी छाया उत्तर दिशासे जितना बड़ा कोण बनाती हुई पच्छिमकी ओर रहती है, मध्याह्नसे उतना ही समय पीछे छाया उत्तर दिशासे उतना ही बड़ा कोण बनाती हुई पूर्वकी ओर रहती है। मध्याह्नसे समान काल आगे और पीछे, छायाकी लम्बाई भी समान* होती है। इसलिए जब छायाकी लम्बाई खिंचे हुए वृत्तके व्यासार्द्धके समान हो तब इनके बीचमें जो कोण बनता है उसको दो समान भागोंमें विभाजित करने वाली रेखा ही उत्तर दक्षिण रेखा होगी। इसी समविभाजक रेखाके खींचनेके लिए समान व्यासार्द्धके धनु खींचकर तिमि बनानेका आदेश दिया गया है जो रेखा गणितकी विधिके अनुसार है। इसी नियमके अनुसार अन्य दिशाओंको सूचित करने वाली रेखाएं खींची जा सकती है। वृत्त पर जो पूर्वाह्न और अपराह्न विन्दु छायाकी नोकके द्वारा स्थिर किये जाते हैं उनको मिलाने वाली रेखा भी पूर्व-पच्छिम-रेखा है परन्तु भविष्यमें गड़े हुए शंकु से काम लेनेके लिए आवश्यक है कि दिशा सूचक जितनी रेखाएं खींची जायँ वह सब शंकुके मध्यसे होकर जायँ। इसलिए वृत्तके उत्तर दक्षिण विन्दुओंसे तिमि बनाकर पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचनेका आदेश है।

---

* सूर्यकी क्रान्ति सदैव बदलती रहती है इसलिए मध्याह्न के पहले और पीछेकी क्रान्तियोंमें कुछ अंतर पड़ जाता है जिससे उपर्युक्त रीतिसे कुछ स्थूलता आ जाती है परन्तु यह नहींके समान समझना चाहिए। जिस समय क्रान्तिकी गति बहुत मन्द होती है अर्थात् जिस समय सूर्य उत्तरायन या दाक्षिणायन विन्दुओं के पास रहता है उस समय यह काम अधिक शुद्ध होगा।

†तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्वाकर्णमित्याहता-
त्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता ॥८॥
गणिताध्याय, त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ १०४-१०५

क्रान्तिके सदैव बदलते रहनेके कारण जो तनिक सी स्थूलता आ जाती है उसके संशोधनके लिए भास्कराचार्य जी तथा अन्य ज्योतिषियों ने नियम बनाये हैं परन्तु उनके वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इन संशोधनोंसे उपर्युक्त रीतिकी सरलता जाती रहती है। यदि शुद्धताके लिए कठिन नियमकी आवश्यकता हो तो दिगंश जाननेकी रीतिसे ही क्यों न काम लिया जाय जिसकी चर्चा इसी अध्यायमें की जायगी ?

चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिर्गतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभास्मृता ॥५॥

अनुवाद—(५) केन्द्रसे उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पच्छिम रेखाएं छायाके समान व्यासार्द्धसे खींची गयी परिधिके जिन विन्दुओं पर पहुँचती हैं उनको स्पर्श करती हुई रेखाएं खींच कर समचतुर्भुज क्षेत्र बनाओ। पूर्वापर रेखासे समकोण बनाती हुई
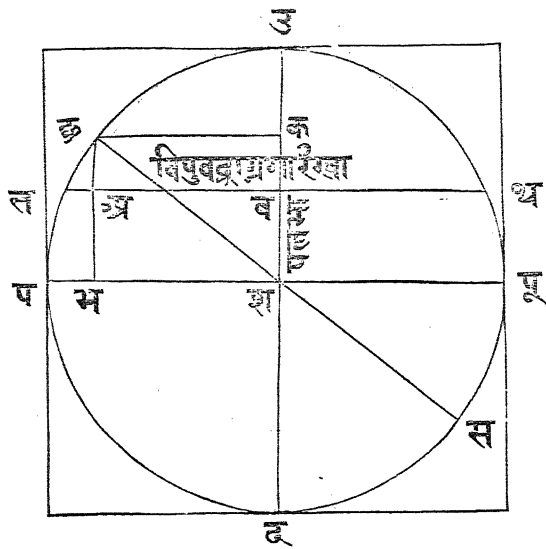
चित्र ३०

इष्ट भुजके समान सीधी रेखा खींचो जो परिधि तक पहुँचे। परिधिके जिस विन्दु तक भुजकी नोक पहुँचे उसको शंकुके मध्यसे मिला दो तो छायाकी दिशा ज्ञात होगी।

विज्ञान भाष्य—चित्र ३० में श शंकुका केन्द्र है और शछ किसी समयकी छाया है। श को केन्द्र मानकर शछ के व्यासार्द्धसे परिधि खींची गयी है। पपू पूर्वापरा रेखा अथवा पूर्व-पच्छिम रेखा है और उद उत्तर-दक्खिन रेखा है। पूर्वापरा रेखा से छायाकी नोक छ का अन्तर छभ के समान और उत्तर-दक्खिन रेखासे छ का अंतर छक के समान है। छभ को छायाका भुज और छक को छायाकी कोटि कहते हैं। इस श्लोकका अर्थ यह है कि यदि छाया और भुजकी नाप ज्ञात हो तो छायाकी दिशा कैसे जानी जा सकती है। आज-कलकी प्रथाके अनुसार इसको यों कह सकते हैं कि यदि छायाकी नोकके भुजयुग्म (coordinates) ज्ञात हों तो छाया कैसे खींची जा सकती है। पूर्वापरा रेखासे छायाकी नोकके अंतरको छायाका भुज और उत्तर-दक्खिन रेखासे छायाकी नोकके अंतरको छायाकी कोटि कहते हैं। किसी समयकी छाया और इसके भुजमें जो सम्बन्ध होता है वह २३-२४ श्लोकोंमें बतलाया गया है।

यदि छश रेखा बढ़ायी जाय तो वह परिधि-को स विन्दु पर काटेगी। इसी शस दिशामें सूर्य होगा जब कि शंकुकी छाया शछ होगी। इस समय सूर्य पूर्व विन्दु पू से जितना दक्षिण है वह पूशस कोणसे जाना जा सकता है। यही कोण इस समय सूर्यकी अग्रा है। उत्तर विन्दु उ से सूर्य उशस कोण के अंतर पर है। यही कोण इस समय सूर्यका दिगंश (azimuth) है। इस चित्रमें सूर्य पूर्वापर रेखासे दक्खिन है। यदि सूर्य पूर्वापर रेखासे उत्तर हो तो छाया, अग्रा, भुज, इत्यादि ३१ चित्रके अनुसार होंगी।

जिसदिन सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है उस दिन अर्थात् सायन मेष या सायन तुला संक्रान्तिके दिन मध्याह्नमें शंकुकी छाया जितनी बड़ी होती है उसको विषुवद्भा, पलभा या अक्षभा कहते हैं। यदि श स्थानकी पलभा शव के समान हो तो व से पूर्वापर रेखाके समानान्तर खींची गयी तथ

रेखाको विषुवद्भाग्रगा रेखाका जो अन्तर होता है वही अग्राज्या कहलाता है। ३०—३१ चित्रोंमें छ अ अग्राज्या है।
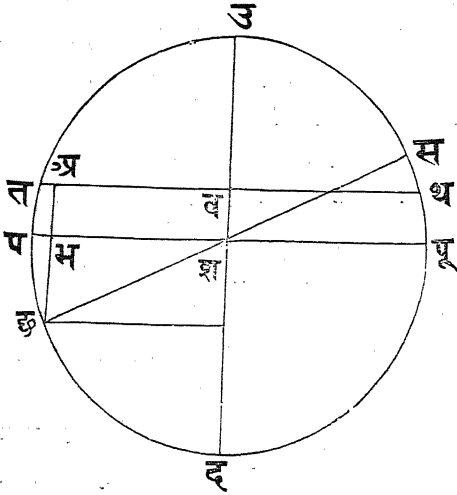
चित्र ३१

समममण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल

प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्।
उन्मण्डलं च विषुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अनुवाद—(६) सममण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल पूर्व और पश्चिम विन्दुओं पर होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकका शब्दार्थ यह है—पूर्व पश्चिम विन्दुओंसे जानेवाली रेखाको सममण्डल कहते हैं और उसीको उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल भी कहते हैं। परन्तु यथार्थमें यह तीनों शब्द भिन्न भिन्न अर्थ रखते हैं इसलिये अनुवादमें मैंने अन्य कई टीका कारोंके विरुद्ध वही अर्थ लिखा है जो उचित है। जान पड़ता है कि इस श्लोकका शुद्ध रूप यह नहीं है वरन् भ्रमके कारण ऐसा कर दिया गया है। रंगनाथजी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीकामें इसीको शुद्ध मान कर इन तीनों शब्दोंकी एक रूपता सिद्ध करनेकी चेष्टाका है परन्तु वह युक्ति युक्त नहीं जान पड़ती क्योंकि यह तीनों शब्द बहुत प्राचीन कालसे भिन्न भिन्न अर्थ रखते आये हैं और इनमें समानता केवल इतनी है कि यह तीनों मण्डल पूर्व पश्चिम विन्दुओंसे होकर जाते हैं।

सममण्डल (primevertical) उस ऊर्ध्वाधर (vertical) मंडलको कहते हैं जो ख स्वस्तिक और पूर्व पश्चिम विन्दुओंसे होकर जाता है।

उन्मण्डल (six o'clock line) उस मण्डलको कहते हैं जो पूर्व पच्छिम विन्दुओं और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवोंसे होकर जाता है। यही निरक्षदेश पर क्षितिज होता है।

विषुवन्मण्डल (celestial equator) उस मण्डलको कहते हैं जो पूर्व पच्छिम विन्दुओंसे होकर जाता है और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवोंसे समान अन्तर पर है।
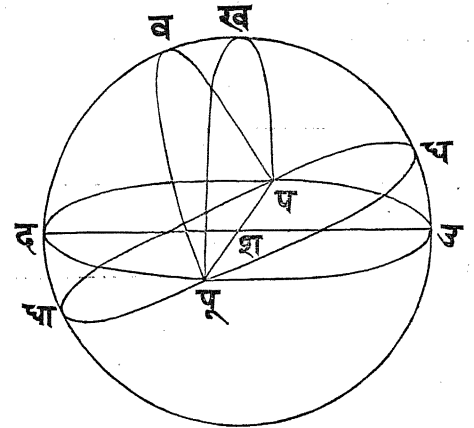
चित्र ३२

श...दर्शक का स्थान
उ...उत्तर विन्दु
पू...पूर्व विन्दु
द...दक्षिण विन्दु
प...पच्छिम विन्दु
ध...उत्तरी अकाशीय ध्रुव

धा... दक्षिणी आकाशीय ध्रुव

ख... ख स्वस्तिक

उ पू द प... क्षितिज वृत्त

ध पू धा प... उन्मण्डल

प ख पू... सममण्डल

प व पू... विषुवन्मण्डल वा विषुवद्वृत्त

व... याम्योत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्तका सामान्य विन्दु

उ ध ख व द धा... याम्योत्तर वृत्त

चित्र २२ में एक एक वृत्त या मंडलके लिये केवल एक एक सीधी रेखा खींची गयी है। हां, याम्योत्तरवृत्त दोनोंमें एक ही तरह खींचा गया है।

अग्राज्या

रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छाया विषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥ ७ ॥

अनुवाद—(७) पलभाके अग्रसे जानेवाली पूर्व पश्चिम रेखाके समानान्तर रेखाको विषुभाग्रगा रेखा कहते हैं। इष्ट छायाकी नोकसे विषुवद्भाग्रगा रेखाका जो अन्तर होता है वह अग्रा कहलाती है।

विज्ञान भाष्य—चित्र ४५-४६ में जिसको अग्राज्या बतलाया गया है वही यहां अग्रा कही गयी है। आचार्य ने कोण और उसके सामनेके भुज दोनोंको अनेक स्थानों पर अग्रा शब्दसे सूचित किया है परन्तु मैं कोणको अग्रा और अग्राके सामनेके भुजको अग्राज्या लिखूंगा जिससे भ्रम न हो।

छायाकर्ण

शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः।
प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छाया शङ्कुर्विपर्ययात् ॥ ८ ॥

अनुवाद—(८) शङ्कु और छाया प्रत्येकके वर्गको जोड़कर वर्गमूल निकलनेसे छाया कर्ण आता है। छायाकर्णके वर्गमें से शङ्कुके वर्गको घटाकर वर्ग मूल निकालनेसे छाया और छायाके वर्गको घटाकर वर्ग मूल निकालने शङ्कु निकल आता है।

विज्ञान भाष्य—समकोण त्रिभुजके दो भुज ज्ञात हों तो तीसरा भुज जाननेकी जो रीति है वही यहां शंकु छाया और छाया कर्णके सम्बन्धमें भी लागू है। इस श्लोकका सार यह है:—
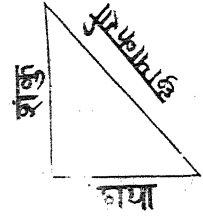
चित्र ३३

छाया कर्ण$=\sqrt{\text{शंकु}^2+\text{छाया}^2}$; छाया$=\sqrt{\text{कर्ण}^2-\text{शंकु}^2}$;
शंकु$=\sqrt{\text{कर्ण}^2-\text{छाया}^2}$

अयनांश जाननेकी रीति—

त्रिंशत्कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते ॥ ९ ॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधा।
तत्संस्कृताद् ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥१०॥

अनुवाद—(९) एक युगमें नक्षत्र चक्र ६०० वार पूर्वकी ओर लोलककी तरह आन्दोलन (oscillation) करता है। इस ६०० को इष्ट अहर्गणसे गुणा करके महायुगीय सावन दिनोंका संख्यासे भाग देनेपर जो आवे (१०) उसका भुज बनाकर भुजको ३ से गुणा करके १० से भाग दे दो। ऐसा करनेसे जो कुछ आवे वही अयनांश कहलाता है। ग्रहोंके स्थानोंमें इसका संस्कार देकर तब ग्रहोंकी क्रान्ति, छाया, चरदल इत्यादि जानना चाहिये।

विज्ञानभाष्य—क्रान्तिवृत और विषुवद्वृत्त जिस विन्दु पर मिलते हैं उसको वसंत सम्पात(vernal equinox)कहते हैं। वसंत सम्पातसे आगे ९० अंश पर जब सूर्य पहुँच जाता है तब उसकी उत्तरकी ओर बढ़ने की गति रुक जाती है और दक्षिणकी ओर लौटने लगता है। इसी समय दक्षिणायन (दक्षिणकी ओरकी चाल) का आरंभ होता है। इसलिए जिस विन्दु पर सूर्य पहुँच कर दक्षिणकी ओर मुड़ता है उसे दक्षिणायन विन्दु (summer solstice) कहते हैं। दक्षिणायनके आरंभसे जब तक सूर्य दक्षिणकी ओर चलता रहता है तबतकके

समयको भी जो ६ मासके समान होता है दक्षिणायन कहते हैं। दक्षिणायनके आरंभसे ३ मास बाद सूर्य विषुवद्वृत्तपर फिर आता है। इस विन्दुको शरद सम्पात कहते हैं क्योंकि इसी समय शरद ऋतुका आरंभ होता है। शरद सम्पातसे ९०° आगे तक सूर्य दक्षिणकी ओर चलता रहता है फिर उत्तरकी ओर लौट पड़ता है। जिस विन्दुपर पहुँचकर सूर्य उत्तरकी ओर लौटने लगता है उस विन्दुको उत्तरायन विन्दु (winter solstice) कहते हैं। इसी समयसे उत्तरायनका आरंभ होता है। उत्तरायन और दक्षिणायन विन्दुओंको अयन विन्दु कहते हैं। चित्र १९ में व, द, श और उ क्रमसे वसंत सम्पात, दक्षिणायन विन्दु, शरद सम्पात और उत्तरायन विन्दु हैं। जो वृत्त अयन विन्दुओं, आकाशीय ध्रुवों और कदम्बों पर होके जाता है उसे अयनान्त वृत्त (solstitial colure) कहते हैं। चित्र १९ में दा द ध क ऊ ऊ वृत्त अयनान्त वृत्त है।

यह अयन विन्दु आकाशमें सदा एकही जगह नहीं रहते वरन् पश्चिमकी ओर खसक रहे हैं इसलिए जिस नक्षत्र या तारा समूहके पास आजकल उत्तरायण या दक्षिणायन होता है उसी तारेके पास प्राचीन कालमें नहीं होता था। वेदांग[1] ज्योतिषमें लिखा है कि जब सूर्य श्रविष्ठा या धनिष्ठा नामक नक्षत्रके आदिमें होता था तब उत्तरायणका आरंभ होता था और जब सूर्य अश्लेषा नक्षत्रके आधे भाग पर पहुँचता था तब दक्षिणायनका आरंभ होता था।

बराहमिहिर बाराही[2] संहितामें इसकी चर्चा करते हुए लिखते हैं कि प्राचीन कालमें आश्लेषाके आधे पर दक्षिणायन और श्रविष्ठाके आदि पर उत्तरायण होता था परन्तु अब कर्क राशिमें प्रवेश होते ही सूर्य दक्षिणायन और मकर राशिमें प्रवेश करते ही उत्तरायन होता है। यदि ऐसा न हो तो बेध करके निश्चय करना चाहिए।

आजकल दक्षिणायनका आरंभ आर्द्रा नक्षत्रके आरंभमें उत्तरायणका आरंभ मूलके आधे भाग पर होता है।

इस तरह सिद्ध है कि उत्तरायन विन्दु वेदांग ज्योतिष कालमें धनिष्ठाके आदिमें था और मूलके आधे पर। इसलिए स्पष्ट है कि अयन पच्छिमकी ओर खसक रहा है। इसके कारण वसंत सम्पात विन्दु या शरद सम्पात विन्दु भी पच्छिमकी ओर खसक रहा है। वसंत सम्पात विन्दुके खसकनेको युरोपीय ज्योतिषी (precession of equinoxes) कहते हैं इसलिए हमारे ज्योतिषियोंने जिस घटनाको अयन चलनके नामसे लिखा है इसीको पाश्चात्य ज्योतिषी (precession of equinoxes) कहते हैं। राचार्यजी[3] ने अयनचलन और विषुवत्क्रान्तिवलयपातचलन दोनोंका समान अर्थ किया है।

अयनचलनके सम्बन्धमें हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंके मतोंमें बड़ी भिन्नता है। सूर्यसिद्धान्त का मत है कि नक्षत्र चक्रका आदि विन्दु अ लोलक (pendulum) की तरह वसंत सम्पात व के दोनों ओर २७ अंश तक परिलम्बन या आंदोलन करता है (चित्र ३४)। अ को अश्विनीका आदि विन्दु भी कहते हैं। इस आंदोलनका अर्थ यह हुआ कि युगके आरंभमें वसंत सम्पात और अश्विनीका

१—प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ श्रावणयोः सदा॥
याजुष ज्योतिष श्लोक ७ और आर्च ज्योतिष श्लोक ६

२—आश्लेषार्धा दक्षिणमुत्तरमयनं रेवर्धनिष्ठाद्यम्। नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥१॥ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्। उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्ष परीक्षणैर्व्यक्तिः॥२॥

बाराही संहिता, आदित्यचार पृष्ठ १६, १७।

३—तस्य (विषुवत्क्रान्तिवलयपातस्य) अपि चलनमस्ति। येऽयनचलन भागाः प्रसिद्धास्तएव विलोमगस्य क्रान्तिपातस्य भागाः। —गोलाध्याय पृष्ठ ४५

आदि विन्दु एक साथ थे। इसके पश्चात् अश्विनीका आदि विन्दु पूर्वकी ओर खसकने लगा और जब वसंत सम्पातसे २७ अंश तक आगे बढ़ गया तब यह फिर वसंत सम्पातकी ओर लौटने लगा और धीरे धीरे वसंत सम्पातके साथ हो गया। इसके पश्चात् वसंत सम्पातसे पच्छिमकी ओर जाने लगा और २७ अंश जाकर फिर वसंत सम्पातकी ओर लौटा और धीरे धीरे वसंत सम्पातके पास फिर पहुंच गया। इस क्रमको एक पूर्ण आंदोलन (oscillation) कहते हैं। ऐसे ऐसे ६०० आंदोलन एक महायुगमें अर्थात् ४३,२०,००० सौर वर्षोंमें होते हैं इसलिए एक आंदोलन ७२०० सौर वर्षोंमें तथा चौथाई आंदोलन अथवा २७° की गति १८०० सौर वर्षोंमें होती है।
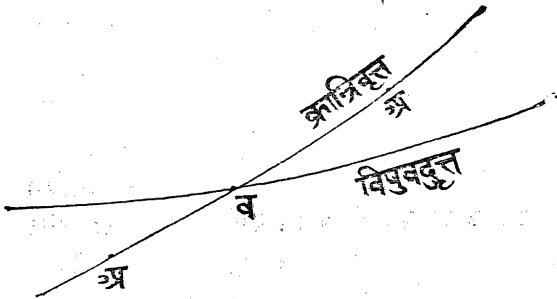
चित्र ३४

यह जाननेके लिए कि अश्विनीका आदि विन्दु वसंत सम्पातसे किस समय कितनी दूर है अर्थात् अयनांश क्या है, ९-१० श्लोकोंमें कहे गये नियमको काममें लाना चाहिए जो एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा।

मान लो १९८२ वि० का अयनांश जानना है।

सृष्टिके आरंभसे वर्तमान कलियुगके आरंभतक १,९५,५८,८०,८०० सौरवर्ष बीते* जिसमें ७२०० वर्षोंमें एक आंदोलनके हिसाबसे २,७१,६५० अंदोलन पूरे हो गये इसलिए कलियुगके आरंभमें नये अंदोलनका आरंभ हुआ। इसलिए अयनांश जाननेके लिए कलियुगादि अहर्गणसे ही काम लेनेमें सुविधा होगी। नियममें अहर्गणसे काम लेनेको कहा गया है परन्तु शेष संक्रान्तिकालका अयनांश जाननेके लिए सौर वर्षोंसे ही काम लेनेमें कोई अशुद्धि नहीं हो सकती। कलियुगके आरंभसे १९८२ वि०की मेष संक्रान्ति तक ५०२६ सौर वर्ष होते हैं। इसलिए,

७२०० : ५०२६ : : १ आंदोलन : इष्ट आंदोलन

$$\text{अर्थात्, इष्ट आन्दोलन} = \frac{५०२६}{७२००}$$

$$= \frac{५०२६ \times ३६०}{७२००} \text{ अंश}$$

$$= २५१^\circ १८'$$

यह तीसरे पादमें है। इसलिए स्पष्टाधिकारके ३०वें श्लोकके अनुसार ७१°१८′ तीसरे पादका गत भाग ही भुज हुआ। इसको ३ से गुणा करके १० से भाग देने पर २१°२३′२४″ अयनांश होता है। मेष संक्रान्तिसे जितने दिन पीछेका अयनांश जानना हो उतने दिनकी गति वर्षमें ५४″ के हिसाबसे निकाल कर मेष संक्रान्ति कालके अयनांशमें जोड़ देनेसे इष्टकालका अयनांश ज्ञात हो जायगा।

यह स्पष्ट है कि भुजका परम मान ९०° होता है इसलिए यदि इसको ३ से गुणा करके १० से भाग दिया जाय तो २७° आता है जो सूर्य सिद्धान्तके मतसे अयनांशका परम मान है।

यहां एक बात ध्यान देनेकी है। ९वें श्लोकमें कहा गया है कि नक्षत्र चक्र पूर्वकी ओर परिलम्बन करता है अर्थात् आन्दोलन आरंभ करने पर पहले वह पूर्वकी ओर चलता है। इसलिए जब तक वह बसंत सम्पातसे २७ अंश पूर्वकी ओर बढ़ता रहता है तब तक वह प्रथम पादमें होता है, जब वह पूर्वसे बसंत सम्पातकी ओर लौटता रहता है तब तक दूसरे पादमें रहता है, जब तक बसंत सम्पातसे २७ अंश पच्छिमकी ओर बढ़ता रहता है तब तक वह तीसरे पादमें रहता है और जब वह पच्छिमसे बसंत सम्पातकी ओर लौटता रहता

* देखो मध्यमाधिकार विज्ञान भाष्य पृष्ठ ५६

है तब तक चौथे पादमें रहता है। इसलिए ऊपर की गणनासे सिद्ध है कि अश्विनीका आदि विन्दु बसंत सम्पातसे २१°२३'२४" पच्छिम है। परन्तु यथार्थमें अश्विनीका आदि विन्दु इस समय बसंत सम्पातसे पूर्व है जैसा कि अगले ११वें श्लोकसे भी स्पष्ट होता है इसलिए यह मानना पड़ेगा कि अश्विनीका आदि विन्दु आन्दोलन आरंभ करने पर पहले पच्छिमकी ओर बढ़ता है जो श्लोकके विरुद्ध है। इसलिए जान पड़ता है कि आचार्य ने बसंत सम्पातको ही अश्विनीके आदि विन्दुके दोनों ओर २७ पूर्व और पच्छिम आंदोलन करता हुआ माना है और पाठमें किसी कारण गड़बड़ हो गया है। क्योंकि अन्य आचार्यों ने अयनान्त वृत्त या क्रान्तिपातको ही चलता हुआ माना है। जब १८०० वर्षमें अयन २७ अंश चलता है तब १ वषमें ५४ विकला गति होती है। इसलिए सूर्य सिद्धान्तके मतसे दो बातें सिद्ध होती हैं अर्थात् बसंत सम्पात अश्विनीके आदिसे २७ अंश हो आगे पीछे हो सकता है तथा इसकी वार्षिक गति ५४ विकला है।

अयन चलनका कारण क्या है यह भारतीय ज्योतिषमें कहीं नहीं मिलता। रंगनाथजीने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीकामें ईश्वरकी इच्छा ही इसका कारण माना है।

जो मत सूर्य सिद्धान्तका है वही सोम सिद्धान्त,* रोमश सिद्धान्त,* शाकल्य ब्रह्म सिद्धान्त,* लघु वशिष्ठ सिद्धान्त*का है। द्वितीय आर्यभट* और पराशर* जी ने भी अयनका पूर्ण भगण नहीं माना है परन्तु इनके मतसे वसंत सम्पात २४ अंश ही मूल विन्दुसे पूर्व पश्चिम जाता है न कि २७°। द्वितीय आर्यभट ने अयनांश जाननेकी जो रीति बतलायी है उससे जान पड़ता है कि अयन चलनकी वार्षिक गति सदा समान नहीं होती। हां मध्यम वार्षिक गति ४६·३† विकला मानी गयी है। पराशर† जी ने वार्षिक गति ४६·५† विकला मानी है।

इसके प्रतिकूल मुंजाल[1] का मत है कि अयन या वसंत सम्पात विलोमदिशामें भ्रमण करता हुआ पूरा चक्कर लगाता है और एक कल्पमें १,९९,६६९ भगण करता है। इसीको भास्कराचार्य[2] जी ने भी माना है। इस हिसाबसे अयनकी वार्षिक गति ५९°९००७ विकला होती है जो प्रायः १ कलाके लगभग है। इसलिए व्यवहारमें मुंजाल, भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादि ने १ कला अयनकी वार्षिक गति मानी है।

वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त इत्यादि ने अयनांशका संस्कार करनेकी बात नहीं लिखी है। जान पड़ता है कि इनके समयमें अयनांशका परिमाण बहुत कम था तथा अयन चलनका ज्ञान भी इनको नहीं हुआ था। वराहमिहिरने तो केवल इतना लिख दिया है कि पहले धनिष्ठाके आदिमें उत्तरायन होता था और इनके समयमें मकर आदिमें अर्थात् उत्तराषाढ़के प्रथम पाद पर। इतना और भी कहा है कि यदि विकार हो तो प्रत्यक्ष बेधसे कम लेना चाहिए। इसके सिवा अयन जाननेका कोई नियम नहीं लिखा है। ब्रह्मगुप्त ने तो कोई संकेत भी नहीं किया है। इसका कारण भास्कराचार्य[3] जी यह लिखते हैं कि ब्रह्मगुप्तके[4] समयमें अयनांश बहुत कम था इसलिए उनको इसका पता नहीं लग सका।

---

* भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३२८ तथा जोगेशचंद्रराय सम्पादित सिद्धान्तदर्पणका Introduction pp.39-40

† भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३३०–३३१ तथा महासिद्धान्त पृष्ठ ४५, ४७

१—गोलाध्याय पृष्ठ ५४

२—मुंजालका लघुमानस ८५९ वि० के लगभग बना है (देखो भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ३११)

३—गोलाध्याय पृष्ठ ५५।

४—जन्म संवत ६५५ वि, ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तका रचनाकाल सम्वत ६८५ वि०।

वसंत संपातके चलनेका ज्ञान यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस (Hipparchus) को विक्रम संवतसे कोई ७० वर्ष पहले हो चुका था। तारोंकी सूची बनाने पर इसको ज्ञात हुआ कि इनसे कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले जो सूची बनी थी उसकी अपेक्षा इस सूचीमें वसंत सम्पातसे प्रत्येक तारेका अंतर कोई कोई अंश अधिक हो गया था। जिससे इन्होंने यह परिणाम निकाला कि वसंत सम्पात पीछे खसक रहा है। इन्होंने वसंत सम्पातकी जो वार्षिक गति निकाली थी वह कमसे[1] कम ३६ विकला थी। वसंत सम्पातकी यही गति टालमी[2] (Ptolemy) ने विक्रमकी तीसरी शताब्दीके आरंभमें निश्चय की। इसके बाद यूनानी ज्योतिष में वसंत सम्पातके चलनेके सम्बन्धमें तथा अन्य बातोंमें भी कोई उन्नति[3] नहीं हुई।

अलबटानी नामक अरबके एक राजकुमार ने जो एक निपुण ज्योतिषी था ९३७ वि०के लगभग वसंत सम्पातकी वार्षिक गति कुछ शुद्धता पूर्वक निश्चय किया। शंकर बाल कृष्ण दीक्षित[4] लिखते हैं कि अलबटानी ने सम्पात चलनकी वार्षिक गति ५५.५ विकला निश्चित्की थी। इसके बाद नसीर-उद्दीनने[5] वर्तमान ईरानके उत्तरी पश्चिमी सीमाके पास वेधालय स्थापित करके वसंत संपातकी वार्षिक गति ५१ विकला विक्रमकी १४वीं शताब्दी के आरंभमें निश्चय की।

आजकल बहुत सूक्ष्म यंत्रोंके द्वारा वसंत संपातकी वार्षिक गतिका सूत्र निउकंब[1] (Newcomb) के अनुसार यह है।

५०″.२४५३ + ०″.०००२२२५ व

जहाँ व, १८५० ई० अथवा १९०७ वि०के बादके बीते हुए वर्षोंकी संख्या है। इस हिसाबसे १९८२ वि० के आरंभमें वसंत सम्पातकी वार्षिक गति

५०.″२४ ५३ + ०.″ ०००२२२५ × ७५

= ५०″.२६२

भारतीय, यूनानी, अरबी तथा युरोपीय विद्वानोंके अयनचलन संबंधी विचारोंकी चर्चा संक्षेप में इसलिए की गयी जिससे प्रकट हो जाय कि इस संबंधमें हमारे ज्योतिषियोंके विचार कितने स्वतंत्र हैं। अब यह प्रश्न होता है कि हमारे ज्योतिषियोंने अयनकी वार्षिक गति १ कला क्यों मानी है जब कि शुद्ध गति ५०.२६२ विकला के लगभग है। इसका कारण यह है कि हमारे ज्योतिषी अयनांश उस अंतरको कहते हैं जो विषुव सम्पातसे मेषके आदि विन्दुका होता है। और मेषका आदि विन्दु वह बेधसे नहीं निश्चय करते वरन् गणनासे करते हैं। गणनाके लिए हमारे यहां सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल ३१.४ विपलका वर्ष माना जाता है जब कि आधुनिक खोजके अनुसार शुद्ध वर्षका मान ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल ५६.८७ विपल होता है (देखो मध्माधिकार पृष्ट ३१ की सारिणी)। इस तरह हमारे वर्षका मान शुद्ध वर्ष से ८ पल ३४.५३ विपल अधिक है। इतने समयमें सूर्य ५८′४२″.४९ * प्रति दिनके हिसाबसे ८.३६१ विकला चलता है। इसलिए शुद्ध वर्षके अनुसार यदि वसंत सम्पातकी गति ५०″.२६२* होती है तो हमारे वर्षके अनुसार स्पष्ट मेष संक्रान्तिके विन्दु से वसंत सम्पात ५०.″२६२ + ८″.३६१ = ५८.″६५३

१—Berry's Short History of Astronomy pp 51-52 Encyclopaedia Brittanica Eleventh edition pp.810.

२—Berry's Short History of Astronomy pp. 68—69.

३—उपरोक्त पृष्ठ ७३।

४—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३३५।

५—Berry's History of Astronomy pp.81—82

१ Ball's Spherical Astronomy pp.187.

*यह मेष संक्रान्तिके दिन सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति है और सूर्य सिद्धान्तके अनुसार निकाली गयी है।

विकला पच्छिम हो जाता है। अर्थात् यदि सौर वर्षका मान वह रखा जाय जो सूर्य सिद्धान्तका है तो प्रतिवर्ष ५८''·६५३ वसंत संपातकी गति माननेसे शुद्धता होती है इससे शुद्ध होता है कि मंजाल, भास्कराचार्य गणेश इत्यादिने अयनकी गति जो १ कला या ६० विकला मानी है वह इस समय सत्यसे केवल १·३४७ विकला अधिक है। जिस समय मुंजालने प्रत्यक्ष वेधसे अयन गति ५९·९००७ विकला निश्चय किया था उस समय अशुद्धि तनिक सी आर रही होगी क्योंकि ९=९ विक्रमीयमें शुद्ध अयन गति

५०''·२४५३ — ०·००० २२२५ × (१९०७ — ९८९)

=५०''·२४५३ — ·२०४३

=५०''·४१ रही होगी।

इससे प्रकट है कि हमारे आचार्यौंने अपने स्वतंत्र आर निराले वेधसे अयनकी गति इतन सूक्ष्म निकाली थी कि वह सत्यसे केवल १·५९८ विकला अधिक थी जो उस समयके स्थूल यंत्रोंके विचारसे बहुत ही सराहनीय है।

अब संक्षेपमें इस बातपर विचार किया जायगा कि अयनकी गति लोलककी गतिकी तरह होती है जैसा कि सूर्यसिद्धान्त सोमसिद्धान्त पराशर सिद्धान्त और महासिद्धान्तका मत है अथवा पूर्ण भ्रमण होता है जैसा कि मुंजाल या भास्कराचार्य इत्यादिका मत है।

सूर्य्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों में यह नहीं लिखा मिलता कि अयनी गति लोलककी गतिकी तरह क्यों होती है। ब्रेनंड[१] ने और शायद इन्हींके आधारपर विज्ञानानन्द[२] स्वामी ने इसको समझानेका प्रयत्न इस प्रकार किया है:—

मानलो उवदश और क क्रान्तिवृत्त इसके ध्रुव अर्थात् कदम्बका छेद्यक (projection) है ध विषुवद्वृत्तका उत्तरी ध्रुव (pole) और कधद अयानन्त
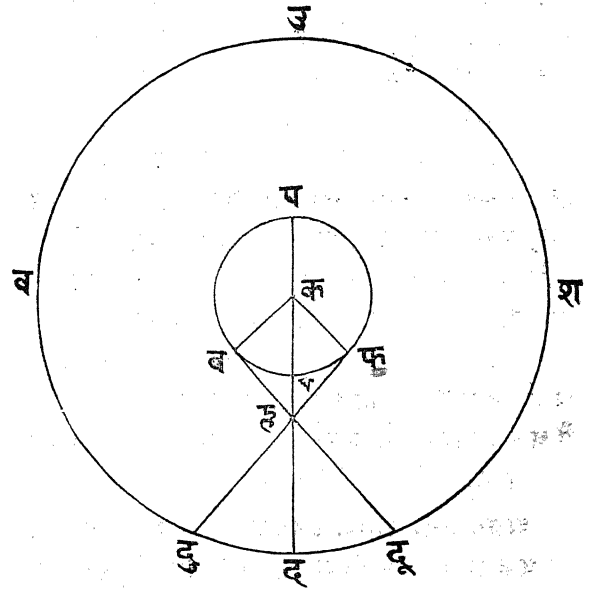
चित्र ३५

वृत्त (solstitial colure) का छेद्यक है। पफधब उस मार्गका छेद्यक समझो जिस मार्गसे उत्तरी ध्रुव कदम्बकी परिक्रमा अयनचलनके कारण विलोम गतिसे कर रहा है। दु दू क्रान्ति वृत्तके वह विन्दु हैं जहां तक दक्षिणायन विन्दु द, अयनचलनके कारण परिलंबन करता है इसलिए द से दु या दू २७° के अंतपर है। सिद्धान्तके मतसे क ध अर्थात् उत्तरी ध्रुवसे कदम्बकी दूरी २४° है। दु और दू विन्दुओंसे फ और ब विन्दुओंपर स्पर्श रेखाएं दु फ और दू ब खींचो जो एक दूसरेको ह विन्दुपर काटती हैं। जितनी देरमें ध ब प फ वृत्त पर ध ३६० अंश चलता है उतनी देरमें द विन्दु द से दू तक जाता है, फिर दू से द तक लौटकर दु तक पहुंचता है और दु से द तक फिर आ जाता है। इसलिए जबतक ध्रुव कदंबकी परिक्रमा करता है तबतक नक्षत्र चक्र ह विन्दुके दोनों ओर लोलककी तरह आंदोलन करता हुआ देख पड़ता है।

(क्रमशः)

१—Brennands History of Hindu Astronomy, London 1896.

२—श्री सूर्य सिद्धान्ते बङ्गानुवाद तथा टीका, कलकत्ता १९०९ ई०

सर आशुतोष मुकर्जी

[ले०—पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल']

जन्म और वंश

सर आशुतोष मुकर्जी का नाम भला ऐसा कौन है जिसने न सुना होगा। आज हम उनका आदर्श जीवन चरित्र 'विज्ञान' के पाठकोंके सामने उपस्थित करते हैं।

आशुतोष मुकर्जीने एक कुलीन ब्राह्मणके घर सन् १८६५ ई० में जन्म लिया। आपके पिता डाक्टर दुर्गाप्रसाद मुकर्जी कलकत्तेके भवानीपुर नामक स्थानके प्रधान पुरुषोंमें गिने जाते थे और आदरके पात्र थे। पिताने अपने प्यारे पुत्रकी शिक्षा-दीक्षा तथा चरित्र संघटनकी ओर पूर्ण ध्यान रख कर अपने कर्तव्यका पालन किया। आरम्भसे ही शिशु आशुतोषका चित्त विद्याभ्यास में खूब लगता था। वह प्रत्येक परीक्षामें सफलता पूर्वक उत्तीर्ण होते थे। १८ वर्षकी अवस्थामें बी. ए. और २० वर्षकी अवस्थामें गणितमें एम. ए. पास करके आपने अपनी प्रखर बुद्धिका परिचय दिया। ऐसी छोटी अवस्थामें विश्वविद्यालयकी सबसे उच्च परीक्षा सो भी गणित सदृश कठिन विषयमें पास कर लेना सहज नहीं है। आश्चर्य्य की बात तो यह है कि एम. ए. पास करनेके पूर्व ही आपकी गणना अच्छे अच्छे विद्वानोंमें होने लगी थी और आप इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध गणित समाजके सदस्य बन चुके थे।

एम. ए. पास करनेके बाद सन् १८८६ ई० में आपने प्रेमचंद रायचन्द नामक ८०००) की छात्र वृत्ति भी प्राप्त कर ली। सन् १८८८ ई० में आप वकील हो गये। सन् १८८६ ई० में आप कलकत्ता विश्व विद्यालयके फेलो (Fellow) मनोनीत हुए और सन् १८६४ ई० में आपने डी० एल० की उपाधि भी प्राप्त कर ली। इस प्रकार ३० वर्षकी अवस्थाके पहुँचनेके पूर्व ही आपने अपनी अगाध विद्वत्ता प्रमाणित कर दी। जिस समय आपको रायचंद-प्रेमचंद छात्रवृत्ति मिली उस समय केवल २१ वर्षकी अवस्थामें आप विश्वविद्यालयकी उच्चतम शिक्षा समाप्त कर चुके थे। ऐसे विद्वान उपाधिधारी युवकके लिए कालिजकी अध्यापकी पा लेना सहज था। और विद्याव्यसनके कारण यह कार्य्य आपको रुचिकर भी होता पर एतद्देशीय अध्यापकोंकी दशा देख आपने अध्यापकीका विचार त्याग वकालतको जीविकाका साधन बनाया। शिक्षा विभागमें प्रवेश कर आप अपनी योग्यताके बल उच्च शिक्षा-प्रचारमें भाग लेकर देशकी जो सेवा कर सकते थे वह वकालतके द्वारा करना असम्भव था, पर ऐसे योग्य पुरुषोंको भी उस विभागमें उन्नति करनेकी कोई आशा न थी। प्राविन्शल सर्विसमें ही पड़े पड़े बहुत थोड़े वेतनसे सन्तुष्ट, और योग्यतामें बहुत नीचे यूरोपीय कर्मचारियोंकी मातहतीमें रहना पड़ता था। भला सर आशुतोष बाबूको यह स्थिति कब पसन्द हो सकती थी। बस आशुतोष बाबू अपनी जीविका का उपार्जन वकालतसे करने लगे। कानून पढ़कर आपने बी. एल. और डी. एल. की परीक्षा दी। इस परीक्षामें आवेदन पत्रके साथ आपको एक निबन्ध भी किसी कानूनी विषय पर लिख कर परीक्षकोंको देना पड़ा था। जिससे इनकी प्रतिभा की और भी प्रशंसा हुई।

वकालत

वकालत आरम्भ करनेके बाद थोड़े ही दिनमें आपकी गणना हाईकोर्टके अच्छे अच्छे वकीलोंमें होने लगी। आपकी आमदनी भी दिनों दिन बढ़ती गई। सन् १८६४ ई० में एल. एल. डी होनेके बाद सरकारने आपका बड़ा सम्मान किया। हाईकोर्टमें एक जजीका स्थान खाली होनेपर आप हाईकोर्टके जज नियुक्त किये गये। इस उच्च पदको स्वीकार करने पर आपकी आमदनी तो बहुत घट गई क्योंकि हाईकोर्टके जजोंकी तनख्वाह ४०००) मासिक होती है। किन्तु आपने उसे स्वीकार कर

लिया। जजके कार्य्यमें भी आपने पूर्ण सफलता पाई। आपके फैसले पक्षपात पूर्ण कदापि न होते थे। आप बड़े स्वतन्त्र रूपके जज थे। जो न्याय होता वही करना उचित समझते थे। ऐसे ऐसे मामलोंका निर्णय तो आप निर्भीक भावसे करते थे जिनका कि सम्बन्ध सरकारसे होता था।

कलकत्ता विश्व विद्यालय

हम ऊपर कह आये हैं कि सन् १८८६ में जब आपकी अवस्था २४ वर्षकी थी, आप अपने विश्व विद्यालयके फेलो (Fellow) मनोनीत किये गये थे। तभीसे आप उच्च शिक्षा प्रचार द्वारा अपने देशकी सेवा बड़े भावसे करने लग गये थे। सच बात तो यह है कि आपका जीवन चरित्र सन् १८-८६ ई० से मानो विश्व विद्यालयका जीवन चरित्र है। वास्तवमें आपको शिक्षा प्रचार जितना प्रिय था उतना और कोई काम प्रिय नहीं था। आप उन देश भक्तोंमेंसे थे जो शिक्षा प्रचार द्वारा अपने देशकी सेवा करना चाहते थे और जिनको विश्वास था कि शिक्षाकी उन्नतिसे देशकी उन्नति होगी। इसलिये आपने विश्व विद्यालयकी प्रबन्धकारिणी समितिमें प्रवेश किया और वहां शिक्षा सम्बन्धी आपको अनेको अनुभव प्राप्त हुये। ऐसे विरले ही मनुष्य मिलेंगे जो जजका कठिन एवं परिश्रम पूर्ण कार्य्य करते हुये एक दूसरा कार्य्य उसी प्रकार क्षमता एवं अध्यवसायके साथ कर सकें जैसा कि आशुतोष बाबूने किया था। विश्व विद्यालयके फेलो होनेसे उस छोटी अवस्थामें ही शिक्षा विषयक प्रश्नोंका अध्ययन और विचार करनेका अच्छा अवसर आपको मिला। शिक्षा विषयक अनेक विषयों पर आपको जो सम्मति समय समय देनी पड़ी वह लोगों को बहुत उपयोगी समझ पड़ी। उस छोटी अवस्थामें भी विश्वविद्यालय—सीनेट सभाके अनुभवी विद्वान आपके प्रगाढ़ परिश्रम और अद्भुत निर्णय शक्तिकी भूरि भूरि प्रशंसा किया करते थे। सीनेटके सदस्योंको आपकी योग्यतामें इतना विश्वास था कि बंगाल कौंसिल में बैठनेके लिए विश्वविद्यालयको ओरसे आप ही दो बार मेम्बर चुने गये। कौंसिलके मेम्बरोंने भी बड़े लाटकी व्यवस्थापिका सभामें अपने प्रतिनिधि स्वरूप सन् १९०३ में आपको निर्वाचित किया। वहाँ जाकर आपने बड़ी योग्यताके साथ विश्वविद्यालयके स्वत्वोंकी रक्षा की।

इस प्रकार काम करनेसे आप सीनेट और बाहर वाली शिक्षित जनताके विश्वास भाजन बन गये। इतनेमें बंगालके परम प्रसिद्ध सर गुरुदास बनर्जीके पद त्यागने पर सन् १९०६ ई० में सर आशुतोष मुकर्जी विश्वविद्यालयके वैस चैंसलर (Vice chancellor) नियुक्त किये गये। जब सर गुरुदासके पद त्यागका समय समीप आया और सरकार एक ऐसे व्यक्तिकी तलाश करने लगी जो उन्हींके सदृश योग्य हो, तो उसका ध्यान डाक्टर आशुतोषकी ओर गया; क्योंकि उसे उनकी समता का कोई दूसरा पुरुष न देख पड़ा। निदान बड़े लाट साहबने विश्वविद्यालयकी बाग डोर आपके हाथोंमें थमा दी, जो बीचमें कुछ वर्षोंको छोड़कर सदा आपके हाथ रही। आपके प्रबन्धसे विश्वविद्यालयकी काया पलट सी हो गयी।

इस देशके सभी पुराने विश्व विद्यालय निरी परीक्षायें लिया करते थे और उनमें शिक्षा देनेका प्रबन्ध कुछ भी नहीं था। वर्तमान कालमें सच्चा विश्व विद्यालय वही समझा जाता है जो शिक्षा देनेका प्रबन्ध करे। इसमें खर्च तो बहुत होता है पर कार्य्य बहुत उच्च कोटिका होता है। वह भिन्न भिन्न विषयोंके भिन्न भिन्न विशेषज्ञ नियुक्त करता है जो अपने विषयमें पारंगत होते हैं और एम. ए. आदि कक्षाओंको शिक्षा देते तथा विद्यार्थियोंसे खोजका काम कराते हैं। सर आशुतोषकी बड़ी इच्छा थी कि कलकत्ता विश्व विद्यालय निरी परीक्षा लेने वाला न रह कर शिक्षा देने वाला विश्वविद्यालय बनाया जाय। कई एक शिक्षा प्रेमी उदार धनाढ्य सज्जनोंकी सहायतासे आपने विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा देनेका कार्य्य आरम्भ

कर दिया। भिन्न भिन्न विषयोंकी शिक्षा देनेके लिये देशी तथा विदेशी विद्वानोंको बुलवाया। इसके खर्चेका भी प्रबन्ध कर दिया गया। अध्यापक सिलबेन लेवाई सदृश इतिहास एवं पुरातत्वके धुरन्धर अन्वेषण कर्ता विद्वानोंके लगातार लेक्चर सुननेसे विद्यार्थियोंमें खोज पूर्वक अध्ययन करने की रुचि बढ़ी। कई अध्यापकोंकी नियुक्ति की गई, जो भिन्न भिन्न विषयोंमें लेक्चर देते तथा खोजका काम करते और विद्यार्थियोंसे कराते। इन विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति भी मिलती है। भौतिक विज्ञान और रसायन आदि शास्त्रोंकी शिक्षा देनेके लिए एक सायन्स कालेज अलग खोला गया; जिसके चलानेके लिए वैरिस्टर टी० पालिट तथा सर रास बिहारी घोष मिलकर २५ लाखके लगभग रुपया दे गये हैं। ये बड़े बड़े दान केवल आशुतोष बाबूके प्रबल प्रभाव तथा विश्वासके कारण विश्व विद्यालयको मिले हैं। सायन्स कालेजके प्रथम प्रिंसिपल सर प्रफुल्ल चन्द्र राय नियुक्त किये गये थे। महाराज पंचम जार्जके शुभागमनके उपलक्षमें भारतीय इतिहासके अध्यापककी नियुक्ति हुई थी जिस पद पर आजकल अध्यापक डी० आर० भंडार कर बड़ा उपयोगी काम कर रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जहाँ तक बनता था आशुतोष बाबू इसी देशके विद्वानोंको अध्यापक बना कर देश भाइयोंको उत्साहित किया करते थे। बी. ए. के बाद एम. ए. की कक्षाओंके सब विषयोंके अध्यापनके लिये विश्व विद्यालयने प्रबन्ध किया है। यह उन्नति आप ही के कारण हुई है।

मातृभाषा प्रेम

सर आशुतोष बाबू अपनी मातृभाषाके बड़े पक्षपाती और सच्चे-प्रेमी थे। आपको इतना समय नहीं मिलता था कि मातृ भाषामें पुस्तकें आदि लिख उसकी सेवा कर सकते। पर बंगला साहित्य सेवियोंको आप उत्साहित करनेमें ज़रा भी कमी न करते थे। आपने अपने देश भाइयोंको मातृ भाषाका उचित आदर करनेकी शिक्षा दी। बंगाल प्रांतमें शिक्षाका प्रचार सन् १८५८ से होना शुरू हुआ। पहले कई कारणोंसे बंगलाको ऊंचा स्थान नहीं मिल सका। किन्तु जैसे तैसे शिक्षा प्रेम बढ़ चला। गाँव गाँवमें पाठशालायें खोली गईं। धीरे धीरे जनतामें यह भाव ज़ोर पकड़ता गया कि स्कूलों और कालिजोंमें अंग्रेजीके साथ साथ मातृभाषाकी शिक्षा भी अनिवार्य्य कर दी जानी चाहिये। फिर इसका आन्दोलन और बढ़ा। कालेजके विद्यार्थियोंने सन् १८८७ में अपनी एक सभामें यह प्रस्ताव पास किया। किन्तु फल कुछ न निकला। निदान विश्व विद्यालयकी सीनेट सभामें इस आन्दोलनका बीज आशुतोष बाबूने बोया। आपका कहना था कि विश्व विद्यालयकी उपाधि पानेवालेको मातृ भाषाकी शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय। उन्होंने अपने प्रस्तावके समर्थनमें जो भाषण दिया उसे सुनकर बड़े बड़े पुराने सदस्य दंग हो गये। किन्तु प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। १५ वर्ष बाद फिर वही प्रस्ताव सीनेटकी सभामें उपस्थित किया गया। आशुतोष बाबू उस समय भी बड़ी प्रभावशालिनी वक्तृता दी थी किन्तु प्रस्ताव फिर भी पास न हो सका। आखिर कार आपने लार्ड मिन्टोकी गवर्नमेन्टको इस विषय में अपने मतके अनुकूल किया; निदान आपको सफलता प्राप्त हुई। आपकी मातृभाषाको विश्व विद्यालयकी परीक्षाओंमें स्थान मिल गया, जिसका परिणाम उस भाषा तथा साहित्यके लिए बहुत ही सन्तोषजनक हुआ।

मातृभाषाकी इतनी ही सेवासे आपको संतोष न हुआ। आप स्वयं उसका अध्ययन और परिशीलन करने लगे। कुछ दिनों बाद आपने बंगला में पहली बार जो भाषण दिया उसे लोगोंने बहुत पसन्द किया। सन् १९१६ में आप बंगला साहित्य परिषद्के सभापति निर्वाचित हुये। उस समय आपने जो भाषण दिया था वह देश भक्तिके रंगसे सुसज्जित था। उसके प्रत्येक शब्दसे मातृभाषा प्रेम, देशभक्ति आदिका रस टपकता था।

कुछ ही मास बाद १९१६ ई० में बांकीपुरकी साहित्य परिषद्में भी आपको सभापतिका उच्च आसन ग्रहण करना पड़ा। इस बार आपने बंगला साहित्यके भविष्यका बहुत सुन्दर खाका खींचा और कहा कि—"हमें बंगला साहित्यकी योजना प्रस्तुत करके ही सन्तुष्ट न हो जाना चाहिये। बल्कि इस बातका प्रयत्न करना चाहिये कि विदेशों के विद्वान उसे पढ़ कर भूरि भूरि प्रशंसा करें। एक तो हमारा साहित्य सर्वाङ्ग पूर्ण हो दूसरे वह सभ्य जगत के प्रधान प्रधान अग्रगण्य साहित्योंमें बराबरीका स्थान पावे। यदि साहित्य उच्च कोटि का है तो विदेशी लोग भी उसे अवश्य पढ़ेंगे; चाहे वह किसी भी विदेशी भाषामें क्यों न हो। अंग्रेजी साहित्यको ही देखो सर्वाङ्ग सुन्दर होनेके कारण कई स्वतन्त्र देशोंमें उसका परिशीलन किया जाता है। यही हाल रशियन साहित्यका भी है। ऐसा कौन सभ्य देश है जिसमें सत्साहित्य प्रेमी लैटिन-ग्रीक-रसियन और संस्कृत भाषाओंका अध्ययन न करते हों। कारण यही है कि इनके साहित्यमें इतने मौलिक विचार भरे पड़े हैं कि उनका अनुवाद मात्र पढ़नेमें सरसता नहीं टपकती जैसे कि मूल भाषा पढ़नेसे मालूम होता है। किसी भी भाषा को अजर अमर करने तथा उसका प्रचार बढ़ानेके लिए इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि उसका कोष सब प्रकारके शब्दोंसे परिपूर्ण हो। इन शब्दोंमें भाव व्यञ्जकताकी कमी न होनी चाहिये। यदि हम अपनी मातृभाषाको उन्नतिके शिखर पर आरूढ़ कर दें तो अवश्य ही उसका मान सभी सभ्य देशों में एक सा होने लगे।"

मार्च सन् १९१९ में बंगला साहित्य परिषदके हावड़ाके अधिवेशनमें आशुतोष बाबू फिर सभापति चुने गये। इस बारके भाषणमें सर आशुतोष ने इस बात पर ज़ोर दिया कि इस देशकी प्रधान प्रधान भाषाओंका तुलनात्मक अध्ययन बहुत ही आवश्यक और उपयोगी होनेके कारण प्रत्येक प्रान्तीय विश्व विद्यालयको उसका प्रबन्ध करना चाहिये। आपने कहा कि जो भारतीय इस देशकी प्रधान प्रधान भाषाओंका अध्ययन किये बिना ही शिक्षित होनेका दावा कर ले वह कदापि माननीय नहीं समझा जायगा। राष्ट्रीय विचारोंकी एकताका सम्पादन करनेके लिए विश्व विद्यालय एक उत्तम साधन है। इस उच्च उद्देशकी पूर्तिके लिए सर आशुतोषने जी खपा कर परिश्रम किया है। बंगला प्रेमी विश्व विद्यालयके सीनेट इस बातका प्रयत्न कर रहे थे कि एम. ए. परीक्षाका एक विषय बंगला भाषा और साहित्य स्वीकार किया जाय। सर आशुतोषको इतने सेही संतोष न हुआ। उन्होंने सिण्डिकेट नामक विश्व विद्यालयकी कार्य्य कारिणी समितिमें प्रस्ताव किया कि बंगलाके साथ साथ इस देशकी अन्य मुख्य मुख्य भाषाओंको भी यह गौरव प्राप्त हो। प्रस्ताव पास हो गया और सर आशुतोषने उसे कार्य्य रूपमें परिणत करनेमें विलम्ब न किया। इस प्रकार हिन्दी, उर्दू, उड़िया, आसामी, पंजाबी, गुजराती मरहठी आदि देशकी अनेक भाषाओंके अध्ययनके लिये प्रबन्ध कर दिया गया।

वैज्ञानिक शिक्षा

सन् १९१२ ई० में जब महाराजाधिराज पंचम जार्जको कलकत्ता विश्व विद्यालयने मान पत्र दिया तो श्रीमानने अपने उत्तरमें इस बात पर जोर दिया था कि जब तक कोई विश्व विद्यालय प्राची (ज्ञान और अर्वाचीन विज्ञानके प्रचारमें एक सा यत्न न करेगा तब तक उसके कार्य्यमें प्रधानता नहीं आ सकती। उन्होंने देखा कि अर्थकारी वैज्ञानिक शिक्षाकी बड़ी आवश्यकता है। सर आशुतोषने भी अपने अनुभवसे उसी बातको देखा और जनताको भी शिक्षाकी वर्तमान त्रुटियाँ दिखाई पड़ने लगीं। जगह जगह इस प्रकारकी शिक्षा देनेके लिये सभायें होने लगीं। इस प्रकारकी शिक्षा प्राप्तिके लिये धनी लोग छात्र वृत्तियाँ देकर ग्रेजुएटोंको जापान, अमेरिका इङ्गलैण्ड और जर्मनी भेजने लगे। कलकत्तेमें इसी कार्य्यकी पूर्तिके लिये

कौंसिल आव् नेशनल एजूकेशन नामक एक समाज का संगठन हुआ। यह बात देख कर सर आशुतोषने अपने विश्व विद्यालय द्वारा इस कार्य्यको उत्तम रूपसे चलानेका बीड़ा उठाया। धनकी इसमें अधिक आवश्यकता थी। सरकारने मदद बहुत ही कम दी। किन्तु सर आशुतोषके उद्योगसे वकील और वैरिस्टरोंने आवश्यक धन देकर उसे चला दिया। कलकत्तेमें यूनिवर्सिटीमें कालेज आव सायन्स स्थापित हो गया। धन देनेवालोंने यह वादा करा लिया था कि वैज्ञानिक अध्यापक इसी देशके विद्वान नियुक्त किये जायँ।

शिक्षाका आदर्श

सर आशुतोष मुकर्जीने अपने भाषणोंमें कई बार शिक्षा सम्बन्धी आदर्शोंका उल्लेख किया है। आपका कहना था कि प्रान्त भरमें जगह जगह ऐसे स्कूल होने चाहियें जिनमें विद्यार्थी अधिकतर मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करके योग्य बनाये जावें। स्कूलकी शिक्षा १७ वर्ष तक समाप्त हो जानी चाहिये। साधारण योग्यताका बालक मातृ भाषा द्वारा शिक्षा पाकर १७ वर्षकी अवस्थामें विश्वविद्यालयकी शिक्षा पानेके योग्य हो जाया करता है। यह शिक्षा ३ वर्षमें समाप्त कर विद्यार्थी को उपाधिधारी हो जाना चाहिये। कालेजोंमें कोर्सोंकी संख्या जितनी अधिक रखी जाय उतना ही अच्छा जिसमें विद्यार्थी अपनी अपनी रुचिके विषयोंका अध्ययन कर सकें। साहित्यिक विषयोंके साथ उसे व्यवहारिक शिल्प वाणिज्य दस्तकारी आदि विषयोंके पढ़नेका अवसर बराबर दिया जाय। शिक्षक बहुत अच्छे अच्छे चुने जाने चाहियें। केवल भारतीय विषयोंपर शिक्षा देना मैं ठीक नहीं समझता। तात्पर्य्य यह है कि इस देशके साहित्य, दर्शन इतिहास, पुरातत्व आदि विषयोंके अध्ययन के साथ साथ पाश्चात्य विज्ञान शिल्प आदिके भी कोर्स अवश्य रखे जायं और उनमें शिक्षा दी जाय। जन समाजमें मस्तिष्कके काम करनेवाले विद्वानोंकी जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता यंत्रोंसे काम करने वालोंकी है।

वाइस चाँसलर

सन् १९१४ ई० में डा० देवीप्रसाद सर्वाधिकारी कलकत्ता विश्वविद्यालयके वाइस चाँसलर नियुक्त हुये। इससे सर आशुतोषको कुछ कालके लिये अवकाश मिला। फिर आप कलकत्ता विश्वविद्यालयके एक सदस्यके समान दो वर्षों तक काम करते रहे। मैसूर विश्वविद्यालय ने एक बार अपने वार्षिक उत्सव पर आपको आमंत्रित किया आपने वहाँ बड़ा सार गर्भित भाषण दिया। एशियाटिक सोसाइटी, सायन्स कांग्रेस, संस्कृत परीक्षा एसोसियेशन आदि सभाओंके आप सभापति चुने गये। अख़िरकार आप फिर कलकत्ता विश्वविद्यालयके वाइस चांसलर नियुक्त हुये। इस बार आप के तथा बंगाल गवर्नमेन्टके बीच बड़ा मतभेद हो गया। गवर्नमेन्टका कहना है कि जब हम रुपया देते हैं तो विश्वविद्यालय पर हमारा अधिकार अवश्य रहना चाहिये। इसलिए बंगाल सरकार कुछ कानून पास करना चाहती है। सर आशुतोष इसके विरुद्ध थे। आपका कहना है कि विश्व विद्यालयकी स्वतन्त्रतामें हम वाधा कदापि न पड़ने देंगे। इसी झगड़ेका यह परिणाम हुआ कि सर आशुतोषको अपने पदसे स्तीफा दे देना पड़ा।

आपका देहान्त २६ मई सन् १९२४ को हुआ।

उपसंहार

सर आशुतोष वास्तवमें एक विलक्षण पुरुष थे। आप निरे उपाधिधारी नहीं थे वल्कि अगाध ज्ञान वाले थे। आप सब प्रकार योग्य थे किन्तु आपको अपनी योग्यताके अनुरूप पद नहीं मिला था। इसका एक मात्र कारण आपकी सत्यवादिता निर्भीक व्यवहार और स्वातन्त्र्य प्रियता थी। आपने न जाने कितनी बार सीनेट तथा सिन्डिकेटमें विश्व विद्यालयके विरुद्ध आवाज़ उठाने वालोंको मुँह तोड़ जवाब दिये। आप भारतके ऊंचे दर्जे के नेता तथा नर रत्न थे।

चार्वाक-दर्शन

चार्वाक-दर्शन बड़ा अजीब दर्शन है। चार्वाकने बड़ी विचित्र विचित्र बातें इस दर्शनमें कही हैं। कई कोषकारोंने चार्वाकका नाम वेद-निन्दक, नास्तिक विशेष आदि बताया है। परन्तु यदि चार्वाकके बचनोंपर गहरा विचार किया जाय तो वह इतना निकृष्ट और हेय साबित नहीं होगा। अस्तु, आज हम "विज्ञान" के प्रेमी पाठकों को चार्वाक-दर्शनके सम्बन्धमें कुछ सुनाते हैं।

देव-गुरू बृहस्पतिका अनुसरण करके चार्वाकने अपने दर्शनकी प्रतिष्ठा की थी। यही अब चार्वाक-दर्शनके नामसे पुकारा जाता है। इस दर्शन के मूल सूत्र अब खोजने से भी पूरे पूरे नहीं मिलते। माध्वाचार्य्यके 'सर्व दर्शन-संग्रह'में उनका जितना उल्लेख है, वही इस समय चार्वाक-दर्शन की दीवार मानी जाती है। इस दर्शनका एक और नाम "लोकायत" है। लोकायत-दर्शनको एक शाखा कहना असंगत न होगा। इस लोकायतका उल्लेख पाणिनीमें भी देखनेको मिलता है, जो प्राचीनताकी सूचना देता है। इसलिये चार्वाक-दर्शनकी प्राचीनताके सम्बन्धमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है।

चार्वाक-दर्शनके मूल सूत्रोंमें, ईश्वरमें अविश्वास, पुनर्जन्ममें अविश्वास और स्वर्ग इत्यादिमें अविश्वास करना बताया है। चार्वाकके मतसे मृत्यु के साथ ही साथ मनुष्यका सब कुछ लोप हो जाता है। इसलिये स्वर्ग-नर्क इत्यादि केवल कविकी कल्पना है। और इसी कारण वह उपनिषद्का विरुद्धपन्थी। है उपनिषद्के मतसे देहका नाश हो जाने पर भी आत्मा बची रहती है। और चार्वाक कहते हैं कि मनुष्य नश्वर है। मृत्युके साथ ही साथ उसका सब कुछ लोप हो जाता है। यह मृत्युलोक अर्थात् जीवनकाल ही सत्य है। इसीलिए चार्वाक कहते हैं कि—जितने दिन जीवित रहो, उतने ही दिन यथाशक्ति सुख और आनन्द का उपभोग करलो।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश, इन पांचोको चार्वाकने आदि सत्ता माना है। इन पांचोंसे ही जितने पदार्थ और जीव हैं, वह सब बने हैं। मनुष्यका शरीर और उसीके साथ उसकी बुद्धि भी इन्हीं पाँचों पदार्थोंसे उत्पन्न हुई है। जैसे चीनीके साथ किण्व मिलाकर सुरा तैयारकी जाती है वैसे ही इन पाँचों पदार्थोंके मिश्रणसे बुद्धि तैयार होती है, इसमें आश्चर्य ही क्या है? सुरा जैसे चीनी और किण्वसे भिन्न-धर्म विशिष्ट है, वैसे ही पृथ्वी आदि पंच पदार्थोंसे मानवदेह और मानव बुद्धि भिन्न धर्म विशिष्ट है।

पान सुपारी कत्था चूनाके मिश्रणसे जैसे अपूर्व स्वाद और आनन्दकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही पृथ्वी आदिके मिश्रणसे अपूर्व देह और बुद्धिकी सृष्टि होती है। जब इन पांचों वस्तुओंका विनाश हो जाता है। बृहदारण्यकमें भी लिखा है कि ज्ञान, पंचभूतसे ही उत्पन्न होता है; इसलिए उन पंचभूतोंके विनष्ट हो जाने पर ज्ञान भी विनष्ट हो जावेगा। मृत्युके बाद कोई भी ज्ञान बाक़ी नहीं रहता। चार्वाकके मतसे शरीर और बुद्धिके पीछे कोई भी आत्मा नहीं है। उनके मतसे यह शरीर ही आत्मा है और इस शरीरका एक गुण हो है—बुद्धि। चार्वाक कहते हैं कि इस आत्माका कोई प्रमाण नहीं है। आत्मा यदि रहती तो वह प्रत्यक्ष की जा सकती, परन्तु ऐसा नहीं है। चार्वाकके मतसे प्रत्यक्षके सिवा कोई ज्ञान होना संभव नहीं है। अनुमान या न्याय, चार्वाक के मतसे ज्ञानदाता नहीं है। एक प्रत्यक्ष ज्ञान ही ज्ञान है!

इस मतसे इन्द्रिय सुख ही मनुष्य जीवनका मुख्य उद्देश्य है। जो लोग कहते हैं कि इन्द्रिय-सुखके साथ दुःख, व्यथा और आशंका आदि सदा जकड़े रहते हैं, उन लोगोंके लिए चार्वाक कह गये हैं—"केवल मूर्ख ही काँटा देखकर कमल-

को छोड़ता है। विवेचक व्यक्ति काँटोंको बचाकर कमल को तोड़ लेता है। बुद्धिमान व्यक्ति काँटेके भयसे मछलीको कभी नहीं छोड़ते। इसी प्रकार तुष और भुसके भयसे अन्न नहीं छोड़ा जाता। काँटेको छोड़कर मछलीका जितना अंश लेनेका होता है, उसे बुद्धिमान लोग लेते ही हैं। इसी तरह दुःखके भय से सुखको छोड़ देना बुद्धिमानी का काम नहीं है और इसी सुखको मानकर चलना हमारा स्वभाव है।" चार्वाक कहते हैं कि जंगली जन्तुओं पौधोंको खालेंगे, इस ख्यालसे कोई अन्न बोना नहीं छोड़ देता और इसी प्रकार भिक्षुक आकर तंग करेंगे, इस ख्याल से भी कोई रसोई बनाना नहीं छोड़ता; अतएव जो लोग दुःखके भयसे सुखको छोड़ देते हैं उन्हें चार्वाकने जंगली पशुओंकी कक्षामें गिना है।

वैदिक क्रिया कलापकी समालोचना करके भी चार्वाकने सुखवादकी प्रतिष्ठा की है। जो लोग सुखको मूल मंत्र समझकर स्वीकार नहीं करते, वह भविष्य जीवनके सुखको मानकर चलते हैं और इसीलिये वह अग्निहोत्र इत्यादि यज्ञ किया करते हैं। यह समस्त यज्ञ बहुत से अर्थ व्यय, कठोर शारीरिक परिश्रम और नाना प्रकारकी यंत्रणा सहकर होते हैं। इसलिए देखा जाता है कि यह लोग दुःखके भयसे कभी इस भविष्य जीवनके सुखको नहीं छोड़ते।

वेदको चार्वाकने नहीं माना है। उसे अमान्य करते हुए वह कहते हैं कि वेदमें असत्य विवरण है, परस्पर-विरोधी वाक्य हैं और वह भ्रान्त मत इत्यादिसे भरा हुआ है। जो लोग ज्ञानकाण्ड मानते हैं, वह कर्मकांडको नहीं मानते और जो लोग कर्मकांड मानकर चलते हैं वह ज्ञानकांडकी युक्तियोंको स्वीकार नहीं करते। इन्हीं सब बातोंसे चार्वाकके मतमें, दुर्बल चित्त ब्राह्मणोंने अपनी जीविकाके लिए ही ऐसे भ्रमपूर्ण वेदकी सृष्टि की है। इसलिए वेदको अपौरुषेयका पोथा कहा जाय तो कोई बुराई नहीं है।

चार्वाकके मतसे मृत्युके साथ ही साथ मनुष्यका समस्त इतिहास समाप्त हो जाता है। पहले कहा जा चुका है कि चार्वाक शरीरके सिवा किसी भी आत्मा या मनको नहीं मानते और इसीलिए वह यह भी स्वीकार करते हैं कि मनुष्य इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग नर्क जीवित अवस्थामें ही भोग लेता है। आपके मतसे सुख ही स्वर्ग है और दुःख ही नर्क है। मृत्युके सिवाय और कोई मोक्ष या मुक्ति आप स्वीकार नहीं करते। सर्व श्रेष्ठ या सबकी अपेक्षा शक्तिमान व्यक्ति, चार्वाकके मतसे, एक राजाके सिवा और कोई भी नहीं है। राजा सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है या नहीं; यह बात हम सभी अपनी आंखों से देखते हैं। चार्वाक कहते हैं कि जो प्रत्यक्ष किया जा सके, वही असली सत्य है। ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नर्क इत्यादि प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते। इसलिये, ये सब असत्य हैं—केवल कविकी कल्पना मात्र हैं।

चार्वाक कहते हैं कि हम जिसको आत्मा कहते हैं वह हमारे शरीरके सिवा और कुछ नहीं है। यदि इसको सत्य न माना जाय, तो 'मैं मोटा हूँ" "वह काल है" इत्यादि वाक्य बोधगम्य नहीं होते। किन्तु "मेरा शरीर" इस वाक्यमें "मेरा" शब्दका अर्थ "आत्माका" नहीं है। यहाँ पर "मेरा" शब्द रूपक रूपसे व्यवहारमें लाया गया है। जैसे राहुका मस्तक। मस्तकके सिवा राहु का और कुछ नहीं है। इसलिये जो राहु है, उसका मस्तक भी वही है। अतएव राहु शब्द रूपक रूपसे व्यवहृत होता है।

पहले ही कहा जा चुका है कि चार्वाक केवल प्रत्यक्ष सत्य को ही स्वीकार करते हैं। आनुमानिक सत्य को वे नहीं मानते। जो लोग आनुमानिक सत्यको मानकर चलते हैं, उनका मत खंडन करते हुए चार्वाकने कहा है कि यह सब व्यक्ति एक हेतु या middle term मानते और इस हेतुके साथ साध्य का (major term) एक अविच्छेद्य संयोग मानते हैं। इस अविच्छेद्य संयोगके

ऊपर निर्भर करके ही वे सदा अनुमान किया करते हैं। जैसे—

धुएँके साथ अग्निका अविच्छेद्य सम्बन्ध मौजूद है।

इस पर्वतमें धुआँ मौजूद है। इसलिये इस पर्वतमें अग्नि भी वर्त्तमान है।

यहाँ धुआँ हेतु होता है। इस धुएँके साथ अग्निका अविच्छेद्य सम्पर्क मौजूद रहनेके कारणही हम धुआँ देखकर अग्निका अनुमान कर सकते हैं। इसलिये यह बात देखी जाती है कि इस प्रकारका एक अविच्छेद्य सम्बन्ध यदि न रहे, तो अनुमान करना कठिन हो जाता है।

चार्वाक कहते हैं कि इस तरहका अविच्छेद्य सम्बन्ध हम प्राप्त ही नहीं कर सकते। चार्वाकने दिखाया है कि इस प्रकारका सम्बन्ध भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों कालोंमें व्याप्त है, और इसीलिये यह प्रत्यक्ष अनुमान, शब्द या उपमानके द्वारा पाया नहीं जाता।

प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा इस प्रकारका त्रिकाल व्यापी अविच्छेद्य सम्बन्ध प्राप्त किया जा सकता है वा नहीं, इसका विचार करते हुए चार्वाकने दिखाया है कि प्रत्यक्ष दो प्रकार का है जैसे—मानसिक प्रत्यक्ष वा आभ्यन्तरिक प्रत्यक्ष, और वाह्य प्रत्यक्ष वा externat perception आभ्यन्तरिक प्रत्यक्षका कर्त्ता है—मन, और वाह्य प्रत्यक्षके कर्त्ता हैं—आँख, कान इत्यादि पंचेन्द्रिय। इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान पाया जाता है वह केवल वर्तमान विशेष विशेष विषयोंके सम्पर्कसे सम्भव हो सकता है। किन्तु इन्द्रियोंके द्वारा सर्वव्यापी अविच्छेद्य सम्बन्ध किसीसे भी प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। हज़ार वर्ष पहले अग्निके साथ धुएँका कोई सम्बन्ध था या नहीं, हज़ार वर्ष बाद भी धुएँके साथ अग्निका कोई सम्बन्ध रहेगा या नहीं, और वर्त्तमान समयमें दूर दूरके स्थानोंमें यह सम्पर्क है या नहीं, ये बातें इन्द्रियोंकी सहायतासे कभी निर्णय नहीं की जा सकतीं।

चार्वाक कहते हैं कि मानसिक प्रत्यक्षके द्वारा भी यह अविच्छेद्य सम्बन्ध नहीं पाया जाता। कारण यह है कि मानसिक ज्ञान इन्द्रियोंकी सहायताके बिना होनेका कोई उपाय नहीं है। बहिर्जगत्की तरंगें इन्द्रियोंके भीतर जा कर अन्तर्जगत्में प्रवेश करती हैं और वहाँ ज्ञान तरंगकी सृष्टि करती हैं। इसलिए चार्वाक कहते हैं कि जिस चीज़को इन्द्रियाँ नहीं दे सकतीं उसे देनेके लिए मन भी असमर्थ है।

चार्वाकके मतसे, अनुमानके द्वारा भी हम इस प्रकारका अविच्छेद्य सम्पर्क पा नहीं सकते। कारण, अनुमान मात्रमें अन्ततः एक अविच्छेद्य सम्पर्क मौजूद रहता है। इसलिए एक अविच्छेद्य सम्पर्कसे हमको दूसरे इसी प्रकारके सम्बन्धमें आ पड़ना पड़ता है। और उसको प्रमाणित करनेके लिए दूसरेकी सहायता लेनी पड़ती है। एवम् उसको प्रमाणित करनेमें दूसरे एककी ज़रूरत हो जाती है। इस प्रकार एक एक करते अनन्त अविच्छेद्यके सम्बन्धमें चला जाना पड़ता है। इसलिए अँगरेज़ी न्यायसे (Logic) जिसको (Argument in circle) कहते हैं, हम वही करके बैठे हुए हैं। इसलिए देखा जाता है कि अनुमानके द्वारा हम अविच्छेद्य सम्बन्ध नहीं पा सकते।

शब्दके द्वारा भी हम इस प्रकारका सम्बन्ध नहीं पाते। चार्वाकके मतसे शब्द एक प्रकारका अनुमान होनेके सिवाय और कुछ नहीं है। यह बात कणादने अपने वैशेषिक दर्शनमें साबित की है। इसलिए अनुमानके द्वारा जो चीज़ नहीं पाई जाती, उसे शब्दके द्वारा पाना भी सम्भव नहीं है। इसके सिवाय यह भी कहा जा सकता है कि अन्धेके समान एक मनुष्यकी बातमें विश्वास कर लेना कोई बुद्धिमानीका काम नहीं है।

उपमान वा Analogy (एनालोजी) के द्वारा भी यह अविच्छेद्य सम्बन्ध हम नहीं पा सकते। कारण यह है कि उपमानके द्वारा केवल विशिष्ट (Particular) सत्य पाया जाता है। चार्वाक

कहते हैं कि उपमानके द्वारा एक नामका उसी नामधारी दूसरी एक वस्तुके साथ जो सम्पर्क है, वही सिद्धान्त किया जा सकता है। जैसे मुख भी सुन्दर है और चाँद भी सुन्दर है। मुखके सौंदर्यके साथ चाँदके सौंदर्यका जो सम्पर्क है, उसे उपमान बता देता है।

इसलिए साबित होता है कि प्रत्यक्ष, अनुमान शब्द किम्बा उपमान द्वारा अविच्छेद्य सम्बन्ध निरूपण नहीं किया जाता। किन्तु हम देखते हैं कि ऐसा एक अविच्छेद्य सम्बन्ध न रहने पर आनुमानिक सिद्धान्त सम्भव नहीं है। इसलिए चार्वाक कहते हैं कि अनुमानके द्वारा कोई भी सत्य साबित नहीं की जा सकती; अतएव जो आनुमानिक सिद्धान्तके द्वारा चार्वाकके मतका खंडन करना चाहें उनको विफल मनोरथ होकर पीछे लौटना पड़ेगा।

लेकिन सवाल उठता है कि धुएँको देख कर हमारे मनमें अग्निकी याद क्यों आती है? इसके उत्तरमें चार्वाक कहते हैं कि पहले हमने धुएँको प्रत्यक्ष किया है और उसीके साथ साथ या उसके कुछ बाद अग्निको भी प्रत्यक्ष किया है। इसीलिए धुएँको देख कर हम अग्निकी याद कर बैठते हैं। कई बार फिर एकको देख कर बिलकुल भिन्न एक दूसरेको सोचने लगते हैं। समय समय पर ऐसी भावना प्रत्यक्ष द्वारा समर्थित होती है। फिर कभी कभी वह भ्रान्तिपूर्ण साबित होती है। लोग जब ताबीज़ धारण करते हैं तब वह सोचते हैं कि हमारा मंगल होगा। इसी प्रकार रोगी जब औषध खाता है तब वह सोचता है कि मैं आरोग्य लाभ करूँगा। समय समय पर रोगीको आरोग्य-लाभ करते देखा भी गया है और ताबीज़ ग्रहण करने वाले का भी मंगल होते देखा गया है। लेकिन कई जगह इससे विपरीत घटना भी देखी जाती है। इसलिए साबित होता है कि ताबीज़के साथ मंगलका, औषधके साथ आरोग्यका और धुएँके साथ अग्निका कोई भी सम्बन्ध वा योग नहीं है। इन बातोंसे सहजमें ही समझा जा सकता है कि एक वस्तुको देख कर दूसरी वस्तुका ख़याल क्यों हो आता है। इसका कोई कारण नहीं है।

किन्तु यही कह कर चार्वाक अदृष्ट वा दैवको नहीं मानते—यह बात नहीं है। कोई यदि कहे कि दैवको भी नहीं माने और कारणको भी नहीं माने, लेकिन यह भौतिक व्यापार फिर घटता किस तरह है? इसके उत्तरमें चार्वाक कहते हैं कि भौतिक व्यापार अपनी अपनी प्रकृतिसे घटा करते हैं। अपने आप ही, इस विश्वभंडारकी जितनी घटनाएँ हैं, सब संभव होती हैं। अपनी अपनी प्रकृतिके गुणसे ही अग्निका उत्ताप, जलकी शीतलता, प्रभात-समीरकी तृप्ति-दायक स्निग्धता और पृथ्वीकी विचित्रता हुआ करती है।

यज्ञादिके सम्बन्धमें चार्वाकने कठोर-मन्तव्य प्रकाशित किया है। ब्राह्मण लोग कहते हैं कि ज्योतिष्ठोम यज्ञमें जीवकी बलि देनेसे उस जीवको अवश्य ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है। इसके उत्तरमें चार्वाक कहते हैं कि ब्राह्मण लोग यदि ऐसी बातों में विश्वास करते हैं, तो वह क्यों नहीं अपने अपने पिताकी बलि दे डालते हैं? पिताको स्वर्ग भेजना इससे बढ़कर और क्या पुण्यका काम हो सकता है। तथापि इस प्रकारके कार्यसे ब्राह्मण लोग दूर ही रहते हैं, यह क्यों?

श्राद्धादिके सम्बन्धमें भी चार्वाकका एक मत देखनेमें आता है। वह कहते हैं कि श्राद्ध करने से यदि मृत व्यक्ति की आत्मा तृप्त होती है, तो जो व्यक्ति जीवित दशामें, प्रवासमें रहता है उनके उद्देशसे यदि घरमें बैठकर श्राद्ध किया जाय तो उनकी तृप्ति क्यों नहीं होती है? इसी प्रकार श्राद्ध के पिण्डसे यदि मृतव्यक्तिकी भूख बुझ जाती है तो जो लोग घरके ऊपर जा बैठें और उनके लिए नीचे भोजन रख दिया जाय, उनका पेट क्यों नहीं भर जाता? अस्तु श्राद्ध का ढोंग व्यर्थ है।

पहले ही कहा जा चुका है कि चार्वाक स्वर्ग नर्क नहीं मानते क्योंकि ये सब प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते। चार्वाकने और भी कहा है। वह कहते हैं कि मृत्युके बाद यदि मनुष्य स्वर्गमें चला जाता है और उसकी आत्मा अमर रहती है तो वह एक बार भूलकरभी, अपने प्रेमास्पद लोगोंके पास क्यों नहीं लौट आता? परन्तु ऐसा होता नहीं। यदि मृत्युके बाद आत्मा अमर रहती तो वह आत्मीय स्वजनोंके पास आ सकती और आत्मीय स्वजन उसको देख सकते।

चार्वाककी जाति-वर्णमें भी आस्था नहीं थी। जाति वर्णके अनुसार कर्तव्य पालन करनेसे कोई सुफल मिलेगा, इस बातमें भी चार्वाकका विश्वास नहीं था।

अश्वमेध यज्ञके सम्बन्धमें चार्वाकने तीव्र मन्तव्य प्रकाशित किया है। अश्वमेध यज्ञमें रानी-के लिए अनुष्ठेय जितने अश्लील और जघन्य कार्य्य निर्दिष्ट हैं, उन सबका उल्लेख करते हुए चार्वाक कहते हैं कि वेदके रचयिता दुनिया भरके हीन चरित्र और लोभी थे। इसके सिवाय वह और कोई नहीं हो सकते।

चार्वाककी इन बातोंको लिखते हुए हमें ग्वाल-कविका एक कवित्त याद आगया है, जिसे हम नीचे लिखकर लेखको समाप्त किये देते हैं।

"दिया है खुदाने खूब खुसी करो ग्वाल कवि,
खाव पिओ देव लेव यही रहजाना है।
राजा राव उमराव केते बादशाह भये,
कहाँ ते कहाँ को गये लाग्यो न ठिकाना है॥
ऐसी जिन्दगानीके भरोसे पै गुमान ऐसे,
देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है।
आवे परवाना जब चलै ना बहाना,
इहां नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है॥

कृष्णगोपाल माथुर

फूलों की रुचि और अरुचि

पेरिसके Jardin d' Aclimatation में कुछ प्रयोगोंसे यह पता चला है कि फूल भी रुचि और अरुचि प्रसन्नता और असन्तोष का परिचय उसी प्रकार देते हैं जैसे हम और आप। प्रायः आपने देखा होगा कि दो प्रकारके पुष्पोंको फूलदानमें रखनेके कुछ घंटों बाद ही फूल मुर्झा जाते हैं। इसका कारण प्रायः यही होता है कि उन्हें आपसका साथ रुचता नहीं है। यदि उन्हें अलग अलग रखा जाय तो वह इतनी जल्दी न मुर्झाने लगेंगे। मुर्झाना आरंभ होने पर यदि फूलदानमें से उन्हें निकालकर अलग अलग रखा जाय तो वह फिर खिल उठेंगे।

लिली पुष्प विशेषतः औरों की संगतिका विरोधी है। जहां गुलदस्तेमें उसे लगाता है तहाँ अरुचिका परिचय कुम्हला कर देना आरम्भ कर देता है। गुलाब, कारनेशन (carnation), मटर (Sweet pea), मिगनोनेट (mignonete) भी और से परे ही रहना चाहते हैं। औरों के साथ रखे जाने पर या तो यह स्वयम् मुर्झा जाते हैं या दूसरोंको मुर्झा देते हैं।

बहुतसे पुष्प औरङ्गजेबी होते हैं; संगीत से उन्हें विशेष अरुचि होती है। पियानो पर रखने पर फूल अधिक जल्दी मुर्झा जाते हैं। ईस्टरलिली और साइक्लमेन (Cyclamen) नृत्यका बेण्ड बजने पर बाजोंकी ओरसे मुंह फेर लेते हैं।

वायलेट पुष्पोंको कुछ मनुष्योंसे भी घृणा होती है। उनके पास आते ही वह सुगंध देना ही नहीं बन्दकर देते बल्कि मुर्झा भी जाते हैं। कुछ नाजुक मिजाज गुलाबोंमें भी यही बात पायी जाती है।

पुष्प और पत्तेवाले पौधोंको किसी किसी स्थानसे भी द्वेष होता है। उन्हें किसी कमरेमें रखने पर यदि मालूम हो कि वह मुर्झाने लगे हैं तो उन्हें दूसरे कमरेमें ले जाना चाहिये। केवल स्थान परिवर्तन से ही वह फिर हरे भरे हो जायंगे।

अद्भुत घंटे

भारतवर्षमें शिव मन्दिरोंमें घंटे लटके रहते हैं। यहींसे यह रिवाज शायद चीन तक पहुँच गया था। वहां भी मन्दिरों में घंटे लटकाये जाते हैं। पेकिंगके पास ही टा चुँगसू (Ta Chungs-su) नामक एक अप्रख्यात मन्दिरमें सर्वोत्कृष्ट घंटा है। माण्डले के घंटेसे वह बड़ा है और मास्कोके घंटेसे अधिक महत्वशाली। कियोटो (Kioto) के घंटेसे उसकी ध्वनि अधिक सुरीली है।

उसकी परिधि १४ फुट है। उसके किनारे ६ इञ्च मोटे हैं। उसका भार १४५६ मन है। उसके बाहर और भीतर ८४००० अक्षर स्पष्ट खुदे हुए हैं। ५०० वर्ष पहले सम्राट् यंगलो (Young Lo) ने उसे ढलवाया था। ढालनेमें बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। पांच बार विफलता हुई। या तो पूरा ढलता ही नहीं था या शब्द कर्कश हो जाता था। सम्राटने ढालनेवाले कारीगरको बुलाकर आज्ञा दी कि यदि छठी बार ठीक न निकला तो तुम्हें सूली पर चढ़ा दिया जायगा।

ढालने वालेकी एक अत्यन्त रूपवती कन्या भी थी। उसने जब यह समाचार सुना तो बहुत दुखी हुई; वह एक मन्दिरमें गयी और देवता की पूजा करने लगी। उसे वहां यह बतलाया गया कि जब तक मनुष्यकी बलि न दी जायगी घंटेका शब्द कर्कश रहेगा। किसी मनुष्यको द्रवित धातुमें डालना पड़ेगा, तब ढालने पर घंटेका सरस शब्द होगा। कन्याने आत्म बलिदान करके पिताको प्राणदान देनेका निश्चय कर लिया। जब धातु गलाकर सांचेमें छोड़ी जा रही थी यह कन्या भी उसीमें कूद पड़ी। एक छड़में वह जलकर धातु मय हो गयी। साँचेमें से जब घंटा निकाला गया तो कन्याके सदृश सुन्दर, सुडौल और सुरीला था। सम्राट्को भी वह बहुत पसन्द आया। किन्तु घन्टेकी सुरीली ध्वनिमें किसी दुखनीकी दुखमयी गाथा भी सुनाई पड़ती है, जिससे कोमल चितवालोंके दो चार आँसू निकल ही पड़ते हैं।

लेमिङ्ग

यह प्राणी मूषक वर्गका है। यह पांच इंच लम्बा होता है। इसका समूर पीला-भूरा होता है, जिसपर गहरे भूरे और काले रंगके निशान रहते हैं। उसका सर छोटा और आंखें बटनकी सी होती हैं; उसके कान छोटे छोटे होते हैं जो बालोंमें ढके रहते हैं। उसकी दुम छोटी होती है और प्रत्येक पैरमें चार उंगली रहती हैं। उसकी थुथनी बड़ी टेढ़ी होती है, परन्तु उसके विचार भी ऐसे ही होते हैं। नारवे और स्वीडिनकी मध्यस्थ पर्वतमालामें इसका निवास स्थान है। पत्थर या घासके नीचे यह अपना घर बना लेता है। यह घासकी जड़, कुकरमुत्ता आदि चीज़ोंको खाकर निर्वाह करता है। यह बड़ा साहसी, पराक्रमी और परिश्रमी होता है।

लेमिंग वर्ष—यह वर्ष पांच वर्षसे बीस वर्ष तक के अन्तर पर आते हैं। यह सम्वत जब आता है तो लेमिंग अपने निवास स्थानको छोड़कर निकल पड़ते हैं। फिर तो यह नारवे और स्वीडनके खेतोंको वीरान कर देते हैं। उनके मार्गका अवरोधक ही विधाताने नहीं बनाया है। वह वीर सैनिकोंकी नाईं जिन्हें मार्चकी आज्ञा मिल चुकी है सीधे चले आते हैं। यदि नदी और झील रास्तेमें पड़ जाती हैं तो उन्हें पार करके फिर सीधे चल पड़ते हैं। मीलों लम्बी झीलको पार करना इनके लिए अत्यन्त सहज है। भालू, भेड़िये, लोमड़ी, कुत्ते, बाज़, शिकरे आदि नभचर और थलचरोंके आक्रमण पर तनिक भी ध्यान न देकर यह यात्रा जारी रखते हैं। आदमी

और गाय भैंस भी इन्हें खूब ही मारते और कुचलते हैं, पर यह सीधे चले जाते हैं। केवल रात्रिको यात्रा करते हैं और दिनमें आराम करते हैं।

साधारणतः सालमें मादा दो बार बच्चे देती है। पर यात्रामें जल्दी जल्दी बच्चे पैदा होते हैं। इसीलिए उन्हें यात्रामें बड़ा कष्ट होता है, तथापि बालक युवा वृद्ध सभी निरन्तर यात्रामें बढ़ते चले जाते हैं, यहाँ तक कि वह बोथनियाकी खाड़ी या एटलाण्टिक महासागरके तट पर पहुँच जाते हैं। कभी कभी ३ वर्षमें उनकी यात्रा समाप्त होती है, परन्तु वह बेधड़क समुद्रमें कूद पड़ते हैं और तैरने लगते हैं। वह शायद समझते हैं कि यह भी एक झील है, परन्तु यह विचार उनके साथ ही जलमय क़ब्रमें दफ़न हो जाता है।

जो लेमिंग अपने निवासस्थानमें रह जाते हैं वह जब वंश वृद्धिसे बहुत से जमा हो जाते हैं तो यात्राके लिए निकल पड़ते हैं।

नवीन ओडिकरे

डा० एडगर एल. होलिंग्स हेड ने हालमें ही एक नवीन प्रकारकी किरणोंके आविष्कार करनेकी सूचना दी है। उनका दावा है कि इन किरणोंके उत्पादनमें घरमें लगी हुई बिजलीके तारोंका प्रयोग हो सकता है। इसके साथ सम्बन्ध करके अत्यन्त सरल और सस्ते यंत्रसे इन किरणोंका उत्पादन कर सकते हैं। यह किरणें एक्स—किरणोंसे अधिक बेधक हैं, और उनके समान ही उपयोगी और लाभदायक। ११½ इंच मोटी सीसे की और ४½ इंच मोटी फौलादकी चादरको यह किरणें बेध सकती हैं।

शायद पाठकोंको इन बातोंको सुनकर आश्चर्य होगा, किन्तु जब रंटजन महोदय ने पहले पहल एक्स—किरणोंकी घोषणा की थी तो जनताको बड़ी कठिनाई से विश्वास हुआ था। परन्तु डा० होलिंग्स हेड के प्रयोगोंकी जांच योग्य डाक्टरों और भौतिक शास्त्रियों ने कर ली है। इन किरणोंके आविष्कारसे चिकित्सा संसारमें बड़ी काया पलट होनी सम्भव है।

यदि मोटर कार १५ मील प्रति घंटेके वेगसे चल रही हो तो ब्रेक लगाने पर भी वह २० फुट चलनेके पहले ठहर नहीं सकती।

एक सम्राट् चोर

१५०० वर्ष पहले रेशम यूरोपके देशोंमें सोनेके भाव बिका करता था। उसको देखकर यूरोप निवासी अनेक कल्पनाएं किया करते थे। सं० ६०७ वि०में सम्राट् जस्टिनियनको मालूम हुआ कि दो ईसाई पादरी चीन देशसे प्रचार काम करके लौटे हैं और वह रेशम बनानेका हाल जानते हैं। यह मालूम होने पर सम्राट् ने उन्हें आज्ञा दी कि चीनको लौट जायं और रेशमके कीड़ोंके अण्डे ले आवें। यह सुनकर पादरी लोग बड़े परेशान हुए। उन्होंने निवेदन किया कि चीनके बाहर कीड़े या अण्डोंके ले जानेवालोंको प्राण दण्ड दिया जाता है। राजकुमारों और सेनापतियों तकको माफ नहीं किया जाता। सम्राट् ने अपने गुप्तचरोंका डंडा दिखा कर कहा कि इसका प्रयोग करो। यह डंड पोले हुआ करते थे, और इन्हींमें पत्र इत्यादि छिपाकर गुप्तचर ले जाया करते थे। इस प्रकार सम्राट् जस्टिनियन ने चोरी कराई और यूरोपको रेशम प्रदान किया। पाठकोंको याद होगा कि कुनीनकी चोरी भी ब्रिटिश दूत ने बड़ी चतुराईसे की थी।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १९ } कन्या, संवत् १९८१ { संख्या ६

आंखोंके विषयमें कुछ विचारणीय बातें

मिस्टर जोन बर्नीसने एक समय युवकोंमें दृष्टि शक्तिकी अल्पता तथा उसके दोषोंका वर्णन करते हुए एक पत्रके सम्पादकसे कहा था कि हमें युवावस्थाके ऐसे बहुत कम पुरुष मिलेंगे जिन्हें दृष्टिकी अल्पताके कारण ऐनककी सहायताकी आवश्यकता न होती हो। यदि हमारे हाथ दूरबीनका गुण रखते तो हमें ऐनककी ज़रूरत कदापि न होती। दृष्टिकी अल्पता प्रायः इस कारणसे हो जाती है कि हम हर एक पुस्तकको छोटे अक्षरोंकी हो वा मोटे टाइपकी आंखोंसे एक जैसा दूर रख कर बांचते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह दृष्टिकी अल्पताका मुख्य कारण है कि हम आंखोंका उचित प्रयोग नहीं करते। जब हमारी आंखें थक जाती हैं तो हम पढ़ना नहीं बन्द करते बल्कि वास्तवमें हममें से विशेष व्यक्ति तो ऐसे हैं कि आंखों से थोड़ा काम ले कर उन्हें आराम देनेके समर्थ ही नहीं हैं; क्योंकि उनकी जीवकाका आधार उन्हीं पर है। फिर यह भी है कि वर्तमान समय और जातिके लोगोंको छपी हुई पुस्तकोंका इतना पठन करना पड़ता है कि आजसे पचास वर्ष पहलेके लोगोंको नहीं करना पड़ता था। हमें जब ज़रा सा भी समय मिलता है तो हम झट दैनिक, मासिक पत्र तथा उपन्यास इत्यादि देखनेकी इच्छा करते हैं। इस प्रकार कठिनतासे आंखोंको कभी जाकर गिनतीके कुछ मिनटोंका आराम भाग्यवश ही मिलता होगा।

एक पत्रके सम्पादकका कथन है कि मैं रेल गाड़ीमें पत्र पढ़नेसे अन्धोंके सदृश हो गया हूँ। उसका स्वभाव था कि अपने घरसे जो दफ़रसे दूर था रेलमें जाता था और उसी सफ़रके समयमें

दस दैनिक पत्रोंको आदिसे अन्त तक देख डालता था और चिन्ह लगाता जाता था कि अमुक विषय पर संध्याके पत्रमें कुछ लिखना चाहिये। रेलकी पटरी जिस परसे गाड़ी जाती थी बड़े ऊंचे नीचे स्थानोंमें थी जिसका परिणाम यह होता था कि सारे रास्ते भर गाड़ी खूब हिलती थी और दृष्टिके प्रत्येक बार एक पंक्तिसे उखड़ जानेमें और फिर उसको यत्न करके वहीं जमानेमें आंखों-को अधिक परिश्रम करना पड़ता था। कई वर्ष के पीछे उसे ज्ञात हुआ कि मेरी दृष्टि शक्तिमें भयानक अन्तर हो गया है। इसलिये उसे रेलमें पत्र पढ़ना बन्द कर देना पड़ा; जितना होता था आंखोंको आराम देता था; इससे उसकी दृष्टि सुधर गई।

लेखक सम्पादक इत्यादिक ऐसे लोगोंकी कि जिन्हें अपने कामके लिये अधिक पढ़ना लिखना पड़ता है सामान्य ऐनकबाज़ोंमें गणना होने लगी है। परन्तु दृष्टिकी क्षीणता केवल इनके ही भागमें नहीं आई है। हमको दृष्टिकी अल्पताके चिन्ह स्कूलों कालिजों और पाठशालाओंमें भी देख पड़ते हैं जहां हमारे देशके बच्चोंकी अधिक संख्या ऐनककी सहायता लेती है।

हमारे वृद्ध सज्जन अपनी आंखोंको सांझ सवेरे प्रतिदिन धोया करते थे, जिससे उनकी दृष्टि शक्ति वृद्धावस्थामें भी हीन नहीं होने पाती थी। यह काम बहुत सुगमतासे हो सकता है; विधि यह है कि किसी गहरी परात या थालीमें शुद्ध और पवित्र जल भर कर (यदि कुछ शीतल हो तो अच्छा होगा) एक रुपया वा पैसा डाल दें फिर पानीमें आंख डुबो कर खोलें और उसको देखें। हम यह नहीं कह सकते कि इससे सर्वदा चक्षु रोग वालोंको लाभ होगा परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि इससे थोड़ा बहुत लाभ अवश्य होगा।

हमारा अनुमान है कि किसी भी उपदेशक या व्याख्यानदाताके (जो ऐनक लगाये हुये व्याख्यान दे रहा रहा हो) व्याख्यानने श्रोतागण पर कभी प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डाला। उसे ऐसा ज्ञात होता है मानों उसके और श्रोतागणके मध्यमें एक दीवार खड़ी हुई। कई उपदेशकोंको स्मरण शक्तिकी निर्बलताके कारण बारम्बार पत्रपर लिखे हुये लेखको बांचनेके लिए ऐनककी आवश्यकता होती है। परन्तु प्रायः यही देखा गया है कि हर एक उपदेशक श्रोतागणसे बोलते समय ऐनक उतार लेता है कि उसे अपने मनके भाव प्रकट करके उनके मन तक पहुँचानेमें सुभीता हो। दृष्टि शक्तिकी हीनताके कारण वह यह भी निश्चय नहीं कर सकता कि मेरे व्याख्यानका क्या प्रभाव श्रोता गणके हृदयों पर हुआ है। इसके विषयमें मिस्टर ग्लेडस्टनकी सम्मति थी कि श्रोतागणमेंसे हर व्यक्तिकी ओर सावधानीसे दृष्टि रखो। इससे मालूम हो जाता है कि किस बातने श्रोतागणके चित्तको आकर्षित किया है। गुरु और शिष्यमें विद्या लाभार्थ सम्बन्ध होना विशेष करके आंखों से आंखें मिलाये रखने पर निर्भर है। कांचके पर्देका बीचमें होना उस बिजलीके समान न दीखने वाले सम्बन्धको जो हृदय पर्यन्त गहरा असर डाल देता है काट देगा।

इसमें सन्देह नहीं कि नेत्र आत्माकी खिड़कियां हैं और सारे विद्वान ज्ञानी और ऋषि मुनि विशाल नेत्र वाले हुये हैं। उनके नेत्रोंमें एक प्रकार का तेज होता था। सब से प्रथम किसीके मुखकी ओर देखते हुए हम नेत्रोंको देखते हैं और उनकी छोटाई बड़ाई वर्ण इत्यादिकसे हम आकर्षित होते हैं। साधारण व्यवहारमें यही विदित होता है।

मिस्टर चेम्बरलेन जब व्याख्यान आरम्भ करते थे तो उनके सुन्दर नेत्रोंसे तेजका प्रकाश होता था। इसे पढ़ कर यदि वह महाशय जिन्हें उनके व्याख्यान सुननेका अवसर प्राप्त हुआ कदाचित यह कहें कि नहीं कदापि नहीं मिस्टर चेम्बरलेन ऐसे नहीं थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनका यह विचार असत्य भी नहीं है परन्तु तात्पर्य यह है कि उस तेजका रूप ऐसा होता है कि विशेष व्य-

क्रियोंके सिवा उसका अनुभव करना कठिन है। जिन महाशयोंने मि० चेम्बरलेन या उनके चित्रके दर्शन किये हैं उन्होंने देखा होगा कि मि० चेम्बरलेन एक आंख पर चश्मा लगाते थे; परन्तु व्याख्यानके समय बार बार उसको हाथ लगाते थे, कभी उतार लेते थे कभी लगा लेते थे, अर्थात् जब वह किसी कठिन दृष्टान्तको खोल कर समझाने लगते थे या किसी विचित्र विषय पर वार्तालाप करते थे तो बिना ऐनकके ही करते थे। वह भी इस बातको समझते थे कि जनता पर असाधारण प्रभाव डालनेके लिए और असली भावको उनके हृदयमें बिठानेके लिये ऐनक परदेकी दीवार है।

अनेक बार यह होता है कि इसी दोषके कारण कई विद्वान व्याख्यान दाता और उपदेशक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। ऐनकके शीशेकी चमकके कारण भी वह लोग जो अपनी दृष्टि उपदेशककी ओर रखते हैं थक कर निराश हो जाते हैं क्योंकि किसी उपदेशसे शिक्षा प्राप्त करनेका मुख्य गुर यह है कि नेत्रोंकी ओर निहारते रहें और कानोंसे उपदेश सुनते रहें। जब ऐनकके शीशेकी चमकके कारण उधर आँख नहीं ठहर सकती तो ध्यान भग्न होकर हट जाता है और बहुत से लोग कानाफूसीमें लग जाते हैं। इस तरह उपदेशकका समस्त परिश्रम निष्फल हो जाता है।

स्मरण शक्ति भी प्रायः दृष्टि शक्तिके अधीन है। इसके लिए एक अत्यन्त ही लाभकारी नियम यह है कि यदि आप अपनी आंखें गुरु या टीचर या उस्तादकी आंखोंसे मिलाये रखेंगे तो सारी बात या शिक्षा सुगमतासे आपकी समझमें आ जायगी और चिरकाल तक स्मरण रहेगी; नहीं तो जल्दी भूल जायगी। आंखोंकी ओर दृष्टि रखनेसे शब्दोंका ठीक ठीक उच्चारण करना उनके युक्त समय पर बोलनेकी रीति आशय इत्यादि अच्छी प्रकार समझमें आ सकते हैं। यदि आप कहीं कथा उपदेश वा व्याख्यान श्रवण करने जावें और उससे लाभ उठानेकी इच्छा हो तो सबसे पहले यह बात याद रखें और वक्ताकी आंखोंको अवलोकन करते हुए विषयके भाव उसके अभिप्राय और तात्पर्यको ग्रहण करें। नहीं तो सुना निरर्थक होगा। यदि आप इसी प्रकार कुछ समय तक करते रहें तो थोड़े ही कालमें आपको निश्चय हो जायगा कि आपकी स्मरण शक्ति पुष्ट हो गई है। अभ्याससे शनैः शनैः इसी प्रकार ऐसे लोग उन लोगोंकी श्रेणी में प्रवेश कर जाते हैं जिनके सम्बन्धमें आपने सुना होगा कि अमुक पुरुष ऐसा है कि कोई किसी भी भाषामें व्याख्यान दे उसे कंठ हो जाता है। इसका भेद यही है। ऐसे लोगोंको स्वयं नहीं ज्ञात होता कि यह अवस्था उनकी किस समय आरम्भ हुई और अभ्यास किस प्रकार और कब हो गया। एकाग्र दृष्टि ही इसकी कुंजी है; यही स्मरण शक्तिको बढ़ानेकी श्रेष्ठ ओषधि है।

—राजनारायण भटनागर

कपासका रेशा

औद्योगिक वा व्यापारिक दृष्टिसे कपासकी उपयोगिता उसकी श्रेणी और रेशेकी लम्बाई पर निर्भर है। रेशेका ही व्यापारिक क्षेत्रमें बहुत विचार किया जाता है। संसारके कपासके परतलेमें स्थानभेदके अनुसार ०·५ से १·६५ इंच तक यह भिन्नता पाई जाती है। सबसे छोटा रेशा हिन्दुस्तानमें और सबसे बड़ा रेशा फ्लोरिडाके समीपवाले टापुओंमें होता है।

इससे यह प्रकट होता है कि इस उद्योगके लिए कपासके रेशेका ज्ञान अत्यंत उपयोगी है। रोमयुक्त तंतुओंसे बीजका बाहरी भाग ढका होता है। उसमें कई गुण होनेके अतिरिक्त बीजगर्भके रासायनिक तत्व होते हैं। जब गर्भस्थान ढक जाता है, तो बाहर फूटनेके लिए प्रयत्न करता है और अपने लोभावृत तत्वोंको खिलने देता है। वृद्धिकी आरं-

भिक अवस्थामें रेशा वर्तुल (गोलाकार) होता है। वह भीतर चारों तरफ लिपटा हुआ होता है। रेशेकी यह अवस्था होने पर उसमें बीजके तत्व प्रवेश करते हैं। बीजसे उसे भोजन मिलता है और दिन पर दिन वृद्धि पाता है। इस प्रकार रेशेकी मजबूतीके लिए बीजके तत्वोंका होना आवश्यक है। जब रेशा बढ़ने लगता है, तब वर्तुल क्रिया रुक जाती है, और धीरे धीरे वह बीजके ऊपरी हिस्से पर आता है। गोलाकार नली सूख कर चपटी हो जाती है। नलीके भीतर और बाहरकी क्रियायें एक सी नहीं होती हैं। इसलिए, रेशा क्रमसे एक छोरसे दूसरे छोर तक ऐंठन पैदा करता है। जो कपास कि चपटी और खुली हुई नहीं होती है और सिलसिलेवार प्रायः १८० ऐंठन होती हैं उसका रेशा कताई और बुनाईके लिए, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐंठन कताई और बुनाईके लिए उपयोगी होती है। इसे इस उद्योगका माध्यम समझना चाहिये। ऐंठन रेशेको सावधानीसे रखती है। यदि रेशे बिना ऐंठनके होते हैं तो उनका सूत निकलना मुश्किल हो जाता है। उस समय अन्यान्य कृत्रिम क्रियाओंकी आवश्यकता होती है। परन्तु प्रकृति ने वैसा नहीं होने दिया। इसीसे रेशेमें बराबर ऐंठन होती है।

कपासकी पूरी पहचानके लिए उसका वर्गीकरण करना चाहिये। यह विभाग निश्चित तरीकों पर होता है। उन सबमें मुख्य कपासके रेशेकी लम्बाई है। यह गुण कपासकी उत्तमताका सबसे अधिक द्योतक है। विशेषज्ञोंने व्यापारियोंके ज्ञानके लिए कपासमें निम्नलिखित गुण होना आवश्यक प्रकट किया है :—

(१) रेशा लम्बा हो।

(२) वजनकी परीक्षामें साधरण शक्ति हो।

(३) अत्यंत स्वच्छ हो और पत्तियोंसे अलग हो।

(४) हाथसे स्पर्श करनेके समय कोमल प्रतीत हो।

(५) रंग, सफेद, और पीला या नारंगीके बीच का हो।

(६) सूक्ष्मदृष्टिसे अवलोकन करने पर मोटापन प्रतीत हो। बीजके तत्वमें रेशे भिदे हों और बारीक भाग में हों।

कपासका खरीदार कच्चे कपासको खरीदते समय इन बातोंकी जांच करता है। जिस कार्यके लिए उसे कपास खरीदना है, उसकी उपयोगिताको पूरी तरहसे देखता है। सभी देशोंकी कपासकी मंडियोंमें खरीदारकी सुविधाके लिए भिन्न भिन्न श्रेणीके कपासके आरंभसे अंत तकके रूप मौजूद रहते हैं। व्यापारिक साखकी दृष्टिसे इस नमूनेमें गड़बड़ नहीं होती है। कपासके मंडीमें आने पर व्यापारियोंने अपनी सुविधाके लिए उसको गुणके अनुसार इस प्रकार विभाजित किया है :—

(१) बहुत छोटे दर्जेका
(२) हलका—मध्यम दर्जेका
(३) मध्यम दर्जेका
(४) अच्छा—मध्यम दर्जेका

यह व्यापारिक शब्द हैं और रिवाजके अनुसार व्यापारमें इनका प्रचार है। यद्यपि सर्वसाधारणके लिए यह शब्द आश्चर्यजनक प्रतीत होंगे; तथापि व्यापारियोंके लिए तो पूर्ण रूपसे व्यवहारिक हैं। इसी विभागके अनुसार वह अपनी आवश्यकताका कपास खरीदते हैं।

ब्रेजिल और गिनीके ब्रेजिलियन और पेरुवियन कपासका "मध्यम स्वच्छ" "अच्छा स्वच्छ"—और "अच्छा" विभाग किया गया है। हिन्दुस्तानके बम्बई और मद्रास आदि स्थानोंका कपास "स्वच्छा" "अच्छा स्वच्छ" और "अच्छा" होता है। बाजारमें इन सब विभागोंके भी उपविभाग हैं। कपासकी मंडियोंमें इन विभागोंकी सूचियां रहती हैं। कपासके दलाल हरएक प्रकारके कपास को पहचाननेकी योग्यता रखते हैं। वहां सभी स्थानोंकी पैदावारका विवरण रहता है। यह विवरण सामयिकता पूर्ण होता है। उसमें

परिवर्तन प्रतिदिनकी सूचनाओंके अनुसार होता है। मंडियोंमें कपासके नमूने से ही सौदे होते हैं। यह नमूने भविष्यमें झगड़ा निपटानेके लिए प्रमाण स्वरूप माने जाते हैं। इस प्रकार कपासकी इसीलिए परीक्षा की जाती है कि कारखानेवालोंको नुक्सान न उठाना पड़े। हलके दर्जेके कपाससे अच्छा सूत नहीं तैयार होता है। ऐसे सूतके कपड़ोंको धोने, छापने और रंगने आदिमें कठिनाई पड़ती है। इसलिए सूत तैयार करनेके पूर्व कपासकी परीक्षा करना आवश्यक है। उसकी साधारण परीक्षा रेशेकी लम्बाई, कोमलता चिकनाहट और मजबूतीके रूपमें होती है। बीजके ऊपरके कपासको हटानेसे जो रेशे खिंचते हैं, उससे उनकी मजबूती प्रकट होती है और साथही कमजोर रेशोंका भी परिमाण विदित होता है। झाड़ने पर रेशोंको देखनेसे रुईका अन्दाज सहजमें ही प्रकट होता है। किन्तु रुईकी परख दूसरी ही तरहसे होती है। कुछ रुई लेकर—दोनों हाथसे आधी आधी खींचने पर यदि सख्त आवाज हो तो उसे मजबूत समझना चाहिए और धीमी हो तो कमजोर समझना चाहिए। इसी प्रकार रेशोंकी लम्बाईकी जांच भी दोनों हाथकी चुटकियोंसे खींच कर की जाती है; इसका अभ्यास होने पर जांच ठीक होती है। विज्ञान शास्त्रकी दृष्टिसे कपासमें ६ अंश कारबन, १० अंश उज्जन और ५ अंश ओषजन होता है। उसका रासायनिक सूत्र $क_६ उ_{१०} ओ_५$ होता है। जिन रेशोंमें इतना अंश होता है, उनका सूत मशीनोंमें काम आता है। दक्षिण केरोलिना, जार्जिया और फ्लोरिडाके कपासके रेशोंमें इतना रासायनिक अंश होता है और यहांका कपास मशीनोंके लिए सर्वोत्तम है।

इस कपासका सूत डेढ़ इंच लम्बा और मलाईके समान श्वेत रंगका होता है। यह कपास बहुत महीन वस्त्र तैयार करनेके काममें आता है। हिन्दुस्तानके कपासका रेशा ०·६ से १·० इंच तक होता है; इससे अधिक नहीं। सबसे अच्छा कपास मध्य प्रदेशका होता है। मद्रासका कपास भी अच्छा है, जिसका सूत ०·८ से १·२ इंच तक होता है।

—जी. एस. पथिक

त्रिदोष-मीमांसा

(ले०—स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

आयुर्वेदकी प्राचीनता

पूर्वाचार्योंका कथन है कि संसारकी रचनामें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि कारण हैं। मनुष्यसे लेकर प्रत्येक प्राणीका शरीर इन्हीं पांच तत्वोंसे बना है। यह दर्शन शास्त्रोंका सिद्धान्त संसारके सब सिद्धान्तोंसे प्राचीन है। इससे आर्यावर्तका कोई भी प्राचीन धर्म, प्राचीन पद्धति, प्राचीन सिद्धान्त खाली नहीं; प्रत्येकने अपने अपने विषयकी व्याख्या पञ्चतत्ववादको स्वीकार करते हुए की है। इसे आयुर्वेदकी प्राचीन संहिताओंने भी पूर्णरूपसे स्वीकार किया है, और इसीके पूर्ण आधार पर उन्होंने आयुर्वेद शास्त्रका दृढ दुर्ग खड़ा किया है। जिस आयुर्वेदको सब विद्याओंसे प्राचीन कहा जाता है उसके प्राचीनपनकी जांच जब हम प्राचीन ग्रन्थोंसे करते हैं तो पता लगता है कि जितना इसको प्राचीन माना जाता है यह उतना नहीं है; क्योंकि आयुर्वेद शास्त्रोंमें हमको प्रगल्भ दर्शनवादकी प्राचीन-शैलीका अटल राज्य मिलता है, स्थान स्थान पर इसके तर्कोंका बोलबाला है; स्थान स्थान पर इसीका क्रम देख पड़ता है, जिसको देखकर विश्वास होता है कि आयुर्वेदका पूर्ण संगठन दर्शन वादके बहुत पश्चात् हुआ। और इसके सर्वमान्य त्रिदोष जैसे सिद्धान्त भी दर्शनवादके बहुत समय पश्चात् निश्चित् किये गये; देखिये अत्रियसंहिता, भेड़संहिता; तथा चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय १३। इन ग्रन्थकारोंने स्थल स्थल पर पञ्चतत्ववादको मान कर अपना

अपना विषय सिद्ध किया है; जिसके कारण आयुर्वेदका पञ्चतत्ववादसे पूर्वका अर्थात् सर्व प्राचीन होनेका और पूर्ण रूपेण संगठित ब्रह्मा द्वारा उद्भूत होनेका सन्देह रहता है। इससे भिन्न रहा आयुर्वेद-शास्त्रका औषधि सम्बन्धी परिज्ञान उसके सम्बन्धमें सुश्रुत आदि प्राचीन ऋषियोंने स्पष्ट कर दिया है कि :—

गोपालास्तथा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः
मूलाहाराश्च ये तेभ्ये भेषज व्यक्तिरिष्यते।

अर्थात्—गौ चराने वाले, तपस्वी, शिकारी, आदि अनेक जङ्गलोंमें रहने वाले कोल, भील आदि प्राणी, जिनका आहार कन्दमूल फल है; उनसे औषधिके ठीक ठीक गुण स्वभाव, प्रभावको जाने।

इस प्रकार जब साधारण व्यक्तियोंसे औषधियोंके सीखनेका उपदेश किया जाय तो उसकी सर्व प्राचीनता कितनी अधिक होगी, यह पाठक स्वयम् अनुमान करें।

आयुर्वेदके विकास पर हम अभी कुछ नहीं लिखते, समय पड़ने पर प्रमाण सहित इसके विकास क्रमको दिखावेंगे। हम सर्व प्रथम इस लेखमें त्रिदोषकी छान बीन करना चाहते हैं।

त्रिदोषकी स्थापना कैसे हुई

आयुर्वेदके किसी भी आप्त ग्रन्थको उठाकर देखें, और उसके विद्यमान लेखों पर विचार करें तो हमको पूर्व कालकी परिस्थिति और उस समय के प्राणियोंकी अवस्थाका बहुत कुछ पता लगता है। उन ग्रन्थोंमें अजीर्ण, अध्मान, शूल, आपवात, गुल्म, विषमज्वर, क्षय, कास, श्वास, और प्रतिश्याम आदि कितनी ही व्याधियोंका जो विस्तृत विवरण मिलता है तथा इससे भिन्न विषमज्वर कास श्वास, यक्ष्मा आदिका उल्लेख जो वेदों तक में पाया जाता है, उससे सिद्ध होता है कि उक्त व्याधियां अत्यन्त प्राचीन हैं और इनका पूर्वकालमें भी आज जैसा पूर्ण प्रभाव था। व्याधियोंकी प्राचीनता इन प्राचीन ग्रन्थों द्वारा ही सिद्ध नहीं होती, प्रत्युत इसकी आधुनिक सर्व मान्य विकास सिद्धान्तसे भी पूर्ण पुष्टि होती है। विकास शास्त्र तो बड़े बड़े प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे सिद्ध करके दिखाता है कि व्याधियोंका प्राणियोंके साथ अनादि सम्बन्ध है; और जिन व्याधियोंका होना पशु, पक्षी, बन्दर तथा जङ्गली मनुष्योंमें देखा जाय उसकी प्राचीनतामें कोई सन्देह नहीं हो सकता; क्योंकि इनकी स्थिति मानव-प्राणीसे पूर्वकी सिद्ध होती है। बड़ी बड़ी खोजोंसे सिद्ध हो रहा है कि जो अनेक व्याधियां पूर्वकालमें होती थीं मुख्यतया यही त्रिदोष स्थापनाकी कारण हुईं; इन्हीं व्याधियोंमें निकलनेवाले वात पित्त, और श्लेष्मको देख कर शरीरमें इनके रहनेका अनुमान किया गया।

वायुका निश्चय

जिस समय किसी दोषका निश्चय नहीं हुआ था, उस समय भी अजीर्ण, अध्मान, गुल्म, चलित पीड़ा, उदरमें गुड़गुड़ाहट, अधोमार्गसे वायु निस्सरण, शिरःशूल आदि कितनी ही व्याधियां होती थीं। डकारमें, पेटके अफारे गुड़गुड़ाहटमें, शरीरकी चलती हुई पीड़ामें, गुदासे हवाके बारम्बार निकलने आदिमें वायुके होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता था। उस समय सिवा इस एक वायुके और किसी वायुवत् पदार्थके होनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता था; जिससे सिद्ध होता कि वायुवत् और भी पदार्थ हैं। इसके विपरीत उस समय यह सिद्धान्त सर्व मान्य था कि शरीरमें पञ्चतात्विक वायु है, क्योंकि इसकी पुष्टि दर्शन-शास्त्र करते थे। उस समय दर्शन-वादकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी, इसी कारण उसके सिद्धान्त सर्वमान्य समझे जाते थे। वायु एक मौलिक पदार्थ था, शरीरके मूल भूतोंमें इसकी उपस्थिति सिद्ध की गई थी; इसीलिए शरीरके उक्त विकारोंमें वायुका निकलना और शरीरमें विचरना देख कर यही कारण समझा गया। और इसीके प्रकोपसे शरीरके व्याधि ग्रसित होनेका पूर्ण निश्चय हुआ। उनका यह निश्चय प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्त वाक्योंसे पूर्ण सिद्ध होता था। और जबतक

कई प्रकारके वायवीय पादार्थों (गैसों) का ज्ञान न हुआ था, कोई इसका खण्डन न कर सका। इसीलिए उस समय वायोर्विद जीका कथन सत्य और सर्व मान्य हुआ।

पित्तका निश्चय

इसी प्रकार पूर्वकालमें जब कि योगी और रोगीके लिए वमन विरेचन आदि शरीर संशोधनी प्रक्रियाओंका अधिक प्रचार था; रोगियों और योगियोंको जब वमनकी ओषधियां दी जाती थीं तो प्रायः तीव्र वमनमें पीला कड़वा, हरा पानी या पित्त निकलते दिखाई देता था। और इसी तरह जब किसीको विषमज्वर (मलेरिया बुखार) हो जाता था, तो उसके वमनमें भी यही पित्त पात होते दिखाई देता था। तथा जिसको कामला हो जाता था रोगीका मूत्र, मल पीला हरा उतरने लगता था, तथा नख, नेत्र और शरीर सब पीतवर्ण हो जाते थे। इससे भिन्न पित्तज्वर या विषमज्वर आदिमें जो दाह खुश्की, तृषा व्याकुलतादि उपद्रव देखे जाते थे उनको देख कर यह अनुमान लगाया गया कि शरीरमें अग्निका जो भाग है वह यही है; जिसकी पित्त संज्ञा है, क्योंकि उष्णत्व तीक्ष्णत्व आदि अग्निके धर्म्म इसमें पाये जाते हैं; जो गुण अग्निमें दिखलाये गये हैं बहुत कुछ इसमें मिलते हैं। इससे भिन्न जिस अग्नि तत्वकी शरीरमें स्थिति मानी गई है पित्त उसी का परिवर्त्तित रूप है और कुछ नहीं। उस समय इस युक्तिका खण्डन कोई न कर सका; क्योंकि इसकी भी सिद्धि प्रत्यक्ष अनुमान और आप्त वाक्योंसे होती थी; इसीलिये यह भी सर्वमान्य हुआ।

श्लेष्म का निश्चय

श्लेष्मका निकलना भी राजयक्ष्मा, श्वास, कांस, सन्निपात ज़ुकाम आदि कितनी ही व्याधियोंमें सदासे देखा जाता रहा था, और आज तक देखा जाता है। उक्त दोषोंमेंसे यह इतना सरल जलके साथ समान गुणधर्म रखनेवाला पदार्थ देखा जाता है कि जिसको देख कर यह कोई नहीं कह सकता कि शरीरमें यह जलके अंशसे नहीं। शास्त्रमें लिखे जलके गुणोंसे श्लेष्मके गुणोंका जितना मिलान खाता है इतना किसी दोषका नहीं; इसीलिए यह बिना संशयके स्वीकार किया गया।

त्रिदोष पर विश्वास

खोजोंसे ज्ञात होता है कि उस समय किसीके पास ऐसा साधन न था कि यह जान सकते कि शरीरमें इस वात पित्त और श्लेष्मका असली निवास कहां है और यह किन कारणोंको पाकर निकलते हैं। जहां तक प्रतीत होता है उन्होंने त्रिदोषके गुण और स्थानादि अनुमानसे जाने और दर्शन वादके आधार पर इनका सम्बन्ध, वायु, अग्नि और जलसे निश्चय किया।

जिस समयसे उक्त त्रिदोष सिद्धान्त रूपमें परिणत हुआ तबसे विद्वानोंने अपनी कल्पना बुद्धिसे इनका विस्तार इतना बढ़ाया कि संसारके प्रत्येक पदार्थमें इनकी उपस्थिति सिद्ध कर दी। और उन पदार्थोंमें तद्वत् सहधर्मी गुणोंको देख कर उक्त दोषोंके होनेका निश्चय कराया। इससे भिन्न जो द्रव्य जिस जिस दोषके शामक मिले उनको अपने प्रकट प्रयोगोंसे उक्त दोषोंको शमन कर यह दिखा दिया कि अवश्य ही शरीरमें और संसारके प्रत्येक द्रव्योंमें इनकी उपस्थिति है। दूसरे शरीरमें वमन विरेचन तथा लंघनादि क्रियासे भी बिना ओषधि सेवन कराये यह सिद्ध कर दिखाया कि शरीरमें दोषोंका प्रकोप अवश्य है; यदि ऐसा न होता तो बढ़े हुए दोष लंघनादिसे कभी शमन न होते। इस तरहसे व्याधिके बढ़नेके साथ माने हुए दोषोंका बढ़ना और व्याधिके दबनेके साथ दोषोंका दबना अनेक प्रकारसे प्रत्यक्ष दिखाया गया, जिसका आजसे कुछ समय पूर्व तक प्रायोगिक उत्तर न मिलनेके कारण हर एकको मानना पड़ा। किन्तु अब जब कि त्रिदोषके यथार्थ रूपका ज्ञान हो गया है, इसकी असलियत मालूम कर ली गई है, ऐसी दशामें अब भी उस तरह मानना बड़ी कठिन बात है। और जिस त्रिदोषको

शरीरका मूल और व्याधियोंका कारण कहा जाता है, इस पर विश्वास रखना, सिवाय अन्ध परंपराके और कुछ नहीं।

क्या त्रिदोष शरीर और व्याधियोंके कारण नहीं ?

आयुर्वेदके प्रवर्त्तकोंने जिस बात, पित्त, और कफको शरीरका मूल और व्याधियोंका कारण माना है, क्या यह शरीर और व्याधियोंका कारण है? क्या इनका सम्बन्ध वायु अग्नि और जल नामक भौतिक तत्वोंसे है ? इसका भौतिक और शरीर विज्ञानसे उत्तर ढूंढना है।

हम पञ्चतत्व वाद पर कुछ नहीं कहना चाहते; क्योंकि, इसके सम्बन्धमें विज्ञान बहुत से लेख निकाल चुका है। इन लेखोंमें अच्छी तरह सिद्ध कर दिखाया है कि प्राणियोंके शरीरकी रचना पांच तत्वोंसे नहीं हुई, प्रत्युत प्राणियोंकी शरीर रचनामें १२—या १४ तत्व शामिल हैं। इससे भिन्न यह भी अच्छी तरह प्रकट हो गया है कि वायु और जल नामक तत्व मौलिक नहीं प्रत्युत दो दो मौलिक पदार्थोंके योगसे बने यौगिक हैं। अग्नि नामक पदार्थकी गणना किसी भी तत्वमें नहीं होती, क्योंकि, इसमें पदार्थत्व नहीं पाया जाता। अनुसन्धानोंसे सिद्ध हो रहा है कि यह शक्ति सामर्थ्यका रूपान्तर मात्र है। और सृष्टिकी रचनामें प्रकट तथा गुप्त कारण है। अब रहे इनके रूपान्तर वात, पित्त और कफ, उनकी विज्ञानने कहां तक खोज की है देखिये।

वात—दोष

आयुर्वेद शास्त्रने शरीरमें रहनेवाले जिस वायुको हलका, शुष्क, विशद, शीतल, गमन क्रियावाला अमूर्त्त माना है, प्रथम उसके गुणोंको देखिये। ग्रन्थकारोंने जिस वायुको हलका माना है, इसके हलके पनकी उन्होंने कोई सीमा निर्द्धारित नहीं की। इसका कारण यह रहा है कि उस समय इस वायुसे हलका और पदार्थ दिखाई न देता था। इसीलिए, शायद सीमा नियत करनेकी आवश्यकता न पड़ी हो। किन्तु, अब वायुके भार से भी हलका उज्जन (Hydrogen) नामक एक और वायवीय पदार्थ देखा जाता है तो ऐसी दशामें वायुको ही सबसे हलका मानना कहांतक उचित है, आपही विचार करें। दूसरे इसको शुष्क और शीतल कहा है। किन्तु वायु न तो शुष्क है और न शीतल है। प्रत्युत यह दोनों गुण उत्ताप और जलके संसर्ग से प्रतीत हुआ करते हैं। गर्मीके दिनोंमें विशेष उत्तापके कारण जब वायुसे जलके कण परिशोषित हो जाते हैं तो वायु शुष्क प्रतीत होता है और वर्षाकालमें जब वायु जल कणोंसे विशेष आवृत होता है तो शीतल प्रतीत होता है। वास्तवमें वायु न शीतल है न शुष्क। तीसरे—वायुको शुद्ध अर्थात् उज्वल माना है। प्रतीत होता है कि दृष्टिगत न होनेके कारण ही अनुमानसे रंग उज्वल निश्चित किया। किन्तु वास्तवमें वायु वर्ण वाला है। एक वैज्ञानिक इसको द्रव (पानीवत्) करनेमें समर्थ हुआ तो उसने इसको (?) पीलेवर्णमें देखा।

चौथे इसको गमनशील माना गया है। पूर्वकाल में चाहे यही एक गमनशील पदार्थ रहा हो, किन्तु आजकल इस जैसे कितने ही गमन शील पदार्थ दिखाई देते हैं। यथा ओषजन (oxygen) नत्रजन (Nitrogen) कर्बन द्विओषिद आदि। फिर इसीमें यह विशेषता क्यों मानी जाय ?

पांचवें इसको अमूर्त्त माना है; किन्तु, कोई भी पदार्थ जिसकी तत्व संज्ञा है पदार्थत्व रखता है, प्राकृतिक नियमानुसार अमूर्त्त नहीं। न कोई पदार्थ ज्ञान इन्द्रियोंसे परे होने पर अमूर्त्त हो सकते हैं। प्रत्युत अमूर्त्त वह हैं जो किसी साधन से भी देखे न जा सकें।

वायु तो अणुओंके रूपमें है। किन्तु, वायु जिन परमाणुओंसे बना है अब तो वह भी यन्त्रोंके द्वारा देखे जाने लगे हैं। फिर अब किस तरह माना जाय कि वायु अमूर्त्त-पदार्थ है।

वायु—भेद

अब शरीरमें वायुके निवासको देखिये। आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि यह वायु प्राण, अपान

व्यान, समान, और उदान नामक पांच रूपोंमें विभक्त होकर शरीरमें निवास करता है और खान पानादि प्रत्येक क्रियाओंका सम्पादन करता है। किन्तु जब इसकी प्रायोगिक खोज करते हैं तो इसकी शास्त्रोक्त रूपमें कहीं भी उपस्थिति नहीं मिलती।

(१) प्राण वायु

जिस प्राण वायुका सिर, छाती, कान, जिह्वा, नेत्र और नासिकामें निवास बतलाया जा रहा है, खोज करने पर उसकी स्थितिके कोई चिन्ह नहीं मिलते। हां इतना देखा जाता है कि बाहरके वायुका आवागमन नासामार्गसे फुप्फुस तक होता है, जो आते जाते समय सिवा फुप्फुस द्वारा ग्रहण किये जानेके कहीं नहीं ठहरता। जो वायुका भाग फुप्फुसोंके द्वारा लिया जाता है उसमें भी वायुका समग्र भाग नहीं होता। प्रत्युत वायुका एक भाग, जिसको ओषजन (Oxygen) अर्थात् पीयूष वायु कहते हैं, फुप्फुसोंके द्वारा वायुसे विश्लेषित कर ग्रहण कर लिया जाता है और वहींसे यह सीधा रक्तमें पहुँचा दिया जाता है। इस पीयूष वायुके रक्तमें मिल जानेपर ही शरीरमें अनेक प्रकारकी रासायनिक क्रियायें होती देखी जाती हैं; जिनमें इस वायु का साधारण रूप सदा विलीन होता रहता है। उपरोक्त श्वास प्रश्वास द्वारा जो वायु नासिकासे छातीमें अवस्थित फुफ्फुस तक आता जाता है उस की स्थिति कहीं नहीं देखी जाती—न वायुका सिर, जिह्वा और नेत्रमें निवास पाया जाता है। यदि हम नासिकाके समान इसका आवागमन मुखयोगसे मानकर जिह्वामें उपस्थित मानें तो, जिह्वामें इसकी विद्यमानता सिद्ध नहीं होती, न इसका कोई कार्य ही देखा जाता है, जिसके द्वारा इसके होनेका निश्चय हो और जिस स्थानमें इसका निवास माना है वहां मस्तिष्क है, न कि वायु। इसी तरह नेत्रमें भी इसकी उपस्थितिके कोई चिन्ह नहीं देखे जाते रहा कर्ण कुहरमें वायुका निवास, उसमें जहां तक पोला भाग है—जिस तरह किसी खाली बोतल आदि पात्रोंमें पाया जाता है—वहाँ पर भी वायु उसी तरह मिलता है, और हर अवस्थामें कार्य रहित देखा जाता है। रहा थूकना, छींकना, डकार लेना, श्वास लेना, भोजन ग्रहण करना आदि कार्य यह सब स्थानीय अङ्गोंको गतिके द्वारा होते हैं न कि किसी वायु से।

(२) उदान—वायु

जिस उदान-वायुका निवास नाभि हृदय और कण्ठमें माना है; उसकी उपस्थिति नाभिके किस स्थानपर है, यह ग्रंथकारोंने खोल कर नहीं बतलाया। आधुनिक शरीर-विज्ञानसे सिद्ध है कि नाभि स्थलमें कोई ऐसा खाली स्थान नहीं, जहां वायु आदि पदार्थ रह सकें। रहा हृदय और कण्ठ सो वहां भी इसकी विद्यमानता सिद्ध नहीं होती। कण्ठ तो केवल प्राण-वायुके आने जानेका एक मार्ग है, न कि उदान-वायुके निवासका स्थान और हृदयमें आज तक ऐसी कोई जगह नहीं देखी गई जहां सिवाय रक्तके कोई अन्य पदार्थ ठहर सके।

और इसके जो—वाणीको शक्ति प्रदान करना, शरीरके अङ्गोंका संचालन, बल, वर्ण, आभा और प्रभाका उत्पन्न करना आदि—काम बतलाये हैं वह भी सिद्ध नहीं होते। बोलनेकी शक्ति स्वरयन्त्रोंके ठीक ठीक सञ्चालनसे उत्पन्न होती है। अङ्गोंका सञ्चालन, मांस पेशियों और कण्डराओंकी शक्तिसे होता है। शक्ति मांसके अवयवोंमें उत्पन्न होकर शरीरको मिलती है। वर्ण, आभा और प्रभा यह स्वस्थता और ब्रह्मचर्य पर निर्भर हैं, न कि किसी वायुपर।

(३) समान-वायु—समान वायुका निवास स्वेदवाही, अम्बुवाही, दोषवाही, स्रोतोंमें तथा जठराग्निके पक्व भागमें माना है। सबसे पूर्व स्वेदवाही, जलवाही और दोषवाही स्रोतोंका होना ही सिद्ध नहीं होता; न आज तक किसी वैद्यने ही बताया कि यह शरीरके किस किस स्थान पर किस किस रूपमें हैं। यदि जिन स्वेदोत्पादनी ग्रन्थियोंसे स्वेद बन कर त्वचारन्ध्रोंसे निकलता है, उन एक अत्यन्त छोटेसे—जिसकी

लम्बाई एक चाँवलके बराबर भी नहीं—मार्गको स्वेदवाही स्रोत मान लें तो उसमें उक्त वायुका निवास किसी तरह सिद्ध नहीं होता और यदि इसका निवास समग्र रोम कूपोंके साथ संलग्न स्वेद कूपोंमें मानें तो चौथे व्यान वायुको जिसका निवास समग्र शरीरमें कहा है कहां मानेंगे; क्यों-कि समग्र शरीरकी त्वचा तो स्वेद कूपोंसे परि-पूर्ण है।

दूसरे शरीरमें जलवाही स्रोत भी नहीं देखे जाते; क्योंकि सबसे पूर्व जो जलवाही स्रोतोंका मूल क्लोम माना है, वह कहां पर है आज तक यही सिद्ध नहीं हुआ। और उस क्लोममें से—जिसको तिल प्रमाण माना है—कौनसे जलवाही स्रोत निकलते हैं, वह शरीरमें कहा हैं, क्या उनका रूप है, यह आजतक किसी वैद्यने नहीं बतलाया। ऐसी दशामें जिसके मूलका ही पता न लगे। उसमें किसी वायु आदि पदार्थकी स्थिति किस आधार पर मानी जाय; कोई वैद्य कृपा कर बतलायें। तीसरे जब दोषोंका होना ही सिद्ध नहीं होता तो ऐसी दशामें जिस तरह बिना कारणके कार्यका होना सिद्ध नहीं हो सकता है, उसी तरह यह भी सिद्ध नहीं होता।

चौथे जठराग्निके पक्वभागमें जो समान वायुका निवास माना जाता है, वह जठराग्नि कहां है, इसको किसी वैद्यने आज तक न दिखाया। इसके विपरीत आज यह अच्छी तरह प्रत्यक्ष दिखलाया जा सकता है कि भोजनको पचानेवाली अग्नि नहीं है; प्रत्युत कई प्रकारके उदर ग्रन्थियोंसे निकलने-वाले पाचक या भोजन परिवर्त्तक रस हैं, जो भोज-नमें मिलकर उसको पचनेके योग्य या शरीरके योग्य बना देते हैं। और यदि हम थोड़ी देरके लिये इन्हीं रसोंको जठराग्नि मानें तो उसका पक्व भाग कहां कहां मानें; क्योंकि उक्त रस मुख ग्रन्थि, आमाशय, यकृत, लबलबा (जिसका नाम अब क्लोम रखा है) आदिसे निकल कर आते हैं। इसके स्थानको कोई वैद्य बतलाने की कृपा करें और साथ ही समान वायुके कार्य भी बतलावें कि वह उक्त स्थानोंमें किस प्रकार कार्य करता है।

(४) व्यान-वायु—जिस व्यानवायुका निवास शरीरके प्रत्येक भागमें माना है ढूँढ़ने वालोंने शरीरके मांस, मज्जा, धमनी, शिरा और त्वचा आदिके एक एक कणका विच्छेद कर डाला पर इस वायु देवताका कहीं पता न लगा कि किस अवस्थामें कब आकर रहता और अपने कार्यका सम्पादन करता है। यदि हम फुप्फुस द्वारा लिए हुए पीयूषवायुको—जो रक्त द्वारा समग्र शरीरमें पहुँचता रहता है—सर्वशरीर व्यापीवायु मान लें तो शरीरमें उसकी न तो वायुवत् स्थिति देखी जाती है और न कार्य और जो उक्तवायुका कार्य अङ्गोंका प्रसरण करना, संकोच करना, चलाना, फिराना निमेषन, उन्मेषन माना है वह सब प्रत्यक्ष-में शरीरकी मांस पेशियों द्वारा मस्तिष्कको प्रेरणा-से होता हुआ देखा जाता है।

(५) अपान—वायु—अपानका निवास अण्ड-कोष, वस्ति, मेढ, श्रोणि, गुदा, अन्त्र और गर्भाशयमें माना है। इन स्थानोंमें भी उक्त वायुके होनेके कोई प्रायोगिक प्रमाण नहीं मिलते और वीर्यका निकालना, रोकना मूत्रका निक-लना, रोकना मलका निकालना, रोकना, गर्भका निकालना, रोकना वा ऋतुका जारी करना वा रोक देना आदि कार्य जो इसके बतलाये गये हैं, वह भी सिद्ध नहीं होते। क्योंकि, वीर्यके शीघ्र और देरीमें निकलनेकी क्रिया मन और वीर्य प्रणालीकी स्थिरता वा उत्तेजनाके अधीन है और मूत्रका निकलना वा रुकना वस्तिकी स्वा-भाविक तथा ऐच्छिक गतिके अधीन है। इसी प्रकार मलका निकलना भी स्वाभाविकतया मलाशयकी ऐच्छिक गतिके अधीन रहता है और ऋतुका समय पर जारी होना या न होना यह गर्भा-शयकी नीरोगता पर निर्भर है। यदि गर्भाशय किसी कारणसे बिकारी हो रहा है, उसकी आन्तरिक श्लेष्मिक कला खराब है, तो ऋतुमें

अनियमितता या न्यूनाधिकता होगी, नहीं तो उक्त विकारकी कोई सम्भावना नहीं। जब तक स्त्रीका स्वास्थ्य ठीक है, गर्भाशयकी क्रिया ठीक है, ऋतु में निकलनेवाला शोणित धीरे धीरे गर्भाशयकी आन्तरिक कलाके छोटे छोटे कोष्ठकोंमें संचित होता रहता है; और समय आने तक वह इतना हो जाता है कि गर्भाशयके उक्त अवयव परिपूरित हो रोक रखनेमें असमर्थ हो जाते हैं। इसीसे उक्त अवयवोंका एक स्थानसे या कई स्थानसे मुख खुल जाता है, जिसमें होकर शोणित श्राव होता है; जब तक शोणितका दबाव उन पर बना रहता है श्राव बना रहता है, दबाव हटने पर उनका मुख फिर मिल जाता है। युवती स्त्री जबतक गर्भ न धारण करले यही दशा प्रतिमास होती है। गर्भका बाहर होना भी गर्भाशयकी एच्छिक व स्वाभाविक गतिके अधीन होता है न कि किसी वायुके अधीन।

पित्त—दोष

शास्त्रकारोंने शरीरमें रहनेवाले पित्तको स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव्य खट्टा, सर और कड़वा माना है और उसके पांच भेद तथा पांच स्थान माने हैं, किन्तु खोजसे शरीरमें एक पित्त मिलता है, जो यकृतमें अवस्थित पित्त प्रणालीसे निकल कर उदरदरीमें आता है। यकृतसे निकलनेवाले पित्तकी एक बार नहीं हजारों बार परीक्षा हुई हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वयम् किसी पशु के पित्त को लेकर उसमें विद्यमान पित्तकी परीक्षा कर सकता है। इस पित्तमें स्निग्धता नामको भी नहीं पाई जाती; हां! प्रकृतिमें उष्ण और स्वादमें तीक्ष्ण कटु और रूपमें द्रव अवश्य होता है, किन्तु स्वभावसे खट्टा नहीं होता। यह खट्टा कब होता है, जब उदरके कई निकलनेवाले अम्ल रसोंसे जाकर मिलता है। किन्तु, शास्त्रका यह कहना है कि "विदग्धश्चाम्लतां व्रजेत" अर्थात् पित्त जठरकी अग्निसे जलने पर खट्टा हो जाता है। इसकी सत्यता वैद्योंको दिखानी चाहिये। प्रतीत होता है कि पूर्वकालमें जब किसी व्यक्तिको अजीर्ण आदि के कारण वमन होता था तो उक्त वमनमें खटाई से युक्त कड़वा पानी या पित्त निकलते देखा जाता था; दूसरे इससे उदरमें दाह तृषादि उपद्रव उत्पन्न होते देखे जाते थे; इनको देख कर उन्होंने निश्चय किया कि यह पित्त ही उदरकी अग्निसे दग्ध हुआ है। क्योंकि, आधुनिक विज्ञानसे पूर्व यह किसीको भी ज्ञात न था कि उदरमें भी गन्धक और नमक आदिके तेज़ाब (अम्लद्रव) बनते होंगे, और वह भोजनमें मिलकर भोजनके पचानेका कार्य करते होंगे। इसीलिए उन्होंने उन्होंने अम्लता उत्पन्न होनेका कारण पित्तका जल जाना निश्चित किया।

पित्त-भेद

शास्त्रकारोंने एक पित्तके पाचक, रञ्जक, आलोचक और भ्राजक पांच भेद माने हैं और निवास आमाशय, पाकाशय (यकृत) हृदय, दृष्टि तथा त्वचामें माना। चरकजी ने स्वेद, रस, लसिका, रक्त और आमाशयमें बताया है। किन्तु जब हम उक्त दोनों प्रकारके मतोंके अनुसार इसकी खोज करते हैं तो इसका सिवाय यकृतके कहीं पता नहीं लगता।

(१) पाचक-पित्त—पाचक पित्तकी उत्पत्ति अग्निके तेजसे बतलाई है; द्रवता रहित तिल प्रमाण इसके स्वरूपका वर्णन किया गया है और ग्रहणी कलाके मध्य आमाशयमें इसका निवास माना है। सबसे पूर्व उस ग्रहणी कलाका ही पता नहीं लगता कि वह कहां पर किस रूपसे रहती है। दूसरे यदि यह तिल प्रमाण अग्नि ही उदरके किसी भागमें मिल जाती तो उससे भी ग्रहणी कलाके होनेका बहुत कुछ ज्ञान हो जाता—पर न आश्रयदाता मिला न आश्रयभूत पदार्थ और जो भोजनको परिपाचन करना, सार, मलका प्रथक करण इसका कार्य बतलाया है; यह कार्य भी किसी पित्त या जठराग्निके द्वारा होते हुए नहीं देखे जाते। प्रत्युत यह सिद्ध हो रहा है कि भोजनके

पचानेका कार्य लालारस क्लोम रस आदि कई प्रकारके उदरसे निकलनेवाले रसोंसे होता है। उन रसमें एक पित्त रस भी है, जो और रसोंके साथ मिलकर भोजनके विशेष स्निग्धी पदार्थोंका परिपाचन करता है। यह परीक्षाओंसे देखा गया है कि यदि किसी कारणसे उक्त रस भोजनमें न मिल सके तो भोजनका पचना कठिन ही नहीं असम्भव है। भोजन करने पर मुंहकी लाला ग्रन्थियोंका रस, आमाशयमें नमकका तेज़ाब, आमाशयसे निकलते ही यकृत और क्लोमरस भोजन पर क्रिया करते हैं। जब भोजन—जो अर्ध तरल रूपमें होता है—अन्त्रमें पहुँचता है तो अन्त्रको श्लेष्मिक कला अपनी आचूषणी शक्तिसे उस भोजनके रसको आचूषण करने लगती है। इस प्रकार आचूषण किये जाने पर वह भोजनका सार (रस) तो रक्त और लसिका वाहक श्रोतोंमें चला जाता है, अवशेष (मल) मलाशयमें जा पहुंचता है; जो समय समय पर उसकी स्वाभाविक गतिके द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। यह है भोजनका यथार्थ रूपमें प्रथक्करण जिसको पूर्वाचार्य पित्तके द्वारा होता हुआ मानते थे। क्या कोई पित्त द्वारा होते हुए उक्त कार्योंको दर्शानेकी कृपा करेगा ?

(२) रञ्जक पित्त—रञ्जक पित्तका एक आचार्यने पाकाशयमें, दूसरेने यकृतमें, तीसरेने रक्तमें निवास माना है। परन्तु आज तक पाकाशय (द्वादशांगुलीय क्षुद्रान्त्र) में तथा रक्तमें इसके निवासका कोई चिन्ह नहीं मिलता। रहा यकृतमें अवस्थित-पित्त प्रणालीसे निकलनेवाला पित्तका होना तो हम क्या संसार स्वीकार करता है। और जो रक्तको रञ्जन करना इसका कार्य बतलाया गया है वह अवश्य यकृतसे निकलनेवाले पित्तके ही भोजनमें मिलनेसे होता है। किन्तु यह स्मरण रहे कि पित्तमें एक तरहका ही पदार्थ नहीं होता प्रत्युत वह कई तरहके पदार्थोंका मिश्रण होता है, जिनमेंसे एक रक्तको रञ्जन करनेवाला पदार्थ भी होता है। जो भोजनके सार भागमें मिलकर रक्तवाही स्रोतोंमें पहुँच जाता है जिसकी विद्यमानतामें या जिसको प्राप्त करके रक्तके सजीव कण अपनी वंश वृद्धि बड़े वेगसे करने लग जाते हैं, जिसको साधारण भाषामें रक्तका बढ़ना कहते हैं। पर कहीं कोई पित्तकी इस कार्य शक्तिसे यह अर्थ न निकाल ले कि चरकजी महाराजके कथनानुसार इसकी रक्तमें विद्यमानता सिद्ध हो गई। ऐसा अर्थ निकालना बड़ी भारी भूल होगी; पित्त जिस रूपमें अपने स्थानसे निकल कर आता है भोजनमें मिलने पर उसका वह रूप कदापि नहीं रहता। प्रत्युत उदरके भीतर होनेवाली रासायनिक क्रियामें उसका वह रूप विलीन हो जाता है, और रक्तमें पहुंचने तक पित्तका कहीं चिन्ह तक नहीं मिलता।

(३) साधक-पित्त—साधक पित्तका निवास हृदय माना है। हृदयमें कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां पर कोई पदार्थ ठहर सके। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि हृदय रक्तके संचालन करनेका यन्त्र है और इसीकी गतिके कारण रक्तका अभिसरण होता है। रक्त ही आता जाता है, और कोई पदार्थ नहीं। और जो हृदयस्थ पित्तका बुद्धि-अभिमानादिको उत्पन्न करना कार्य बताया है सो यह कार्य न हृदयसे, न हृदयस्थ पित्तके द्वारा होता देखा जाता है। प्रत्युत यह कार्य मस्तिष्क शक्तिके अधीन होते देखा जाता है और बुद्धि विचार अभिमानादिका उद्भावन उसके भिन्न भिन्न विभागसे होता है।

(४) आलोचक-पित्त—आलोचक पित्तका निवास नेत्र माना है। नेत्रके यह किस पर्देमें किस रूपसे रहता है, आजतक किसी भी नेत्र चिकित्सकको न दिखाई पड़ा। और जो ज्योति न करना इसका कार्य निश्चित किया है सो जिस अग्नि तत्वके आधार पर यह माना है वही सिद्ध नहीं होता है। बड़े बड़े प्रयोगोंसे देखा जाता है कि नेत्रोंमें दृष्टिकी शक्तिका उत्पन्न होना, किसी भी स्थित पदार्थके कारण नहीं, प्रत्युत यह शक्ति प्रकाशसे

होती है। जब प्रकाश सूर्यसे चलकर पृथ्वीके पदार्थों पर पड़ता है और उक्त पदार्थोंसे प्रतिफलित हो कर जब हमारे नेत्रोंपर पड़ता है तो उक्त पदार्थ का बिम्ब हमारे नेत्रके भीतरी पर्दे पर दर्पणवत् पड़ता है और उसका जो रूप खचित होता है उसको बोधतन्तु ज्ञात करते हैं। साथ ही साथ यह बोधतन्तु उस बिम्बका बोध मस्तिष्कको कराते हैं जिससे मनुष्यको उस पदार्थके देखनेका बोध होता है, जिसका लौकिक नाम दृष्टिकी शक्ति है। हम यदि इसके विपरीत यह मानें कि दृष्टि शक्ति नेत्रके मध्य रहनेवाले पित्तमें है, जो सदा उससे प्राप्त होती रहती है तो रात्रिमें, या प्रकाश रहित स्थानमें दिखाई देना चाहिये था; सो आज तक नहीं देखा जाता। इससे प्रकट है कि देखने की शक्ति किसी अन्दरके पदार्थसे नहीं मिलती प्रत्युत बाह्य पदार्थकी शक्तिसे मिलती है।

(५) भ्राजक—पित्त—भ्राजक पित्तका निवास त्वचामें माना है, वह त्वचाके किस स्तरमें है, और इसके होनेका क्या प्रमाण है, यह न किसी ने बतलाया; न दिखाया। जिन व्यक्तियोंने बाल की खाल उतार कर उसमें विद्यमान पदार्थोंको भी देख लिया है, उनको भी इसके होनेका कोई प्रमाण न मिला। त्वचामें जो पदार्थ देखे गये हैं वह यह हैं—लोम, लोमकूप, लोम मूल, स्वेद मार्ग, स्वेद ग्रन्थि, उपचर्म, चर्मसे लगी हुई रक्तकी केशिकायें और बोधतन्तु। चरकजीने स्वेदमें पित्त का निवास बतलाया है; मालूम नहीं होता कि प्रस्वेदमें किस आधारपर इसका होना माना गया है। क्या प्रस्वेद भी शरीरका एक सजीव अवयव है? रहा तैलादि पदार्थोंका त्वचामें लग कर पचना, जो पित्तके द्वारा माना है, सो प्रत्यक्षमें त्वचाके सजीव-कोषोंके द्वारा होता है, न कि पित्त द्वारा।

श्लेष्म-दोष

शास्त्रकारोंने शरीरमें रहनेवाले श्लेष्मको भारी, ठण्डा, मुलायम, चिकना, स्वादमें मीठा; स्थिर प्रकृतिवाला, गाढा और ल्हेसदार पदार्थ माना है। उनका कथन है कि जब जठराग्नि कुपित होती है तो यह उसके प्रभावसे विदग्ध होकर खारा हो जाता है। यद्यपि इसकी शास्त्र-कारोंने जैसी आकृति प्रकृति बतलाई है, वह बहुत कुछ मिलती है; किन्तु इसके स्थान और का-र्यादिका शास्त्रकथित विवरण नहीं मिलता।

श्लेष्म-भेद

इसके अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेषक पांच भेद माने हैं और इनका शरीरमें छाती आमाशय, जिह्वा, सर तथा सन्धियोंमें क्रमसे निवास माना है। किन्तु जब हम इसके निवास और कार्यको खोज करते हैं तो उपरोक्त निश्चित किये स्थानोंमें से एक भी ऐसा स्थान नहीं देखा जाता कि जहां पर यह निरन्तर पाया जाता हो।

(१) अवलम्बक-श्लेष्म—अवलम्बक श्लेष्मका निवास हृदय या छाती बतलाया है। वह छाती के या हृदयके किस स्थान पर निवास करता है किसीने खोलकर न बतलाया। अब यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि शरीरके जो खोखले मार्ग हैं—यथा मुखसे लेकर गुदा पर्य्यन्त, नाकसे लेकर फुप्फुस पर्य्यन्त, योनि मुखसे लेकर गर्भाशय पर्य्यन्त—उनकी आन्तरिक कला जिसको श्लैष्मिक कला या बलगमी झिल्ली कहते हैं, उनमें यह श्लेष्म सदा बनता रहता है और सदा शरीरके काम आता रहता है। जबतक शरीरके उक्त स्थानोंकी कलामें कोई विकार नहीं आता, तबतक किसी तरह भी श्लेष्म कलासे बाहर नहीं निकलता, प्रत्युत जहाँ बनता है, वहीं परिपाचित हो जाता है। किन्तु किसी कारणसे उक्त कला विकारी होजाय—उसमें शोथ, दाहादि उत्पन्न हो जाँय तो उक्त कलाकी विकृतिके कारण वहांकी क्रिया बिगड़ जाय तो वहां पर परिपाचित होनेवाला श्लेष्म-न पच-कर बाहर निकलने लगता है और वह विशेष बढ़कर नाक, मुख, गुदा और योनि मार्गादिसे स्रवने लगता है; जिसको बलगम जाना आदि कहते

हैं। यह श्लेष्म एक प्रकारसे पराश्रित पदार्थ है, फिर इसको शरीरका कारण किस तरह कहा जाय और किस तरह शरीरके स्वाभाविक कार्य इससे होते माने जांय। शास्त्रकारका कथन है कि यह श्लेष्म त्रिकस्थानको स्थिर रखता है, और अन्नद्वारा शरीरमें शक्ति उत्पन्न कर हृदय को सहायता करता है। आज तक किसी भी वैद्यने यह न बतलाया कि यह किस प्रकार अन्नद्वारा हृदयकी सहायता करता है और इसका यह कार्य किस सिद्धान्त पर स्थिर है। यह प्रकट है कि शरीरको अन्नद्वारा शक्ति मिलती है, किन्तु शक्ति उत्पादनमें कारण श्लेष्म नहीं है; प्रत्युत शरीरके सजीव अवयव और शरीरकी रसायनी क्रिया है, जिससे वह अन्नसे रसमें, रससे रक्तमें परिणत होकर शरीरकी शक्ति, पूर्ति और वृद्धिमें सहायक होता है।

(२) क्लेदक श्लेष्म—क्लेदक श्लेष्मका निवास आमाशय माना है। अनुसन्धानसे ज्ञात होता है कि आमाशयमें न तो किसी एक निश्चित स्थान पर किसी श्लेष्मका निवास है न अन्नको गीला करना इसका कार्य है। हम पहले बता चुके हैं कि श्लेष्मका शरीरके प्रत्येक खोखले मार्गमें निवास है, किसी एक स्थानमें नहीं। शरीरके जितने खोखले मार्ग हैं उनसे आमाशय जुदा नहीं; ऐसी दशामें आमाशयमें इसका निवास भिन्न मानना कहां तक ठीक है, पाठक विचार करें। और अन्नको गीला करना भी इसका कार्य नहीं देखा जाता, प्रत्युत यह सबसे पूर्व कार्य मुखकी लाला करती है। चने जैसे खुश्क पदार्थोंका खाने पर प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जब तक उसमें वह पूरी तादादमें न मिल जाय ग्रास गलेसे नीचे नहीं उतरता, इसी प्रकार आगे चल कर उक्त खाद्य सामग्रीको उदरके पाचक रस गीला करते और उसको परिपाचनके योग्य बनाते हैं। रहा अन्नको मन्थन करनेका कार्य, यह कार्य उदरदरीकी स्वाभाविक गतिके कारण ही होता रहता है, जहां किसी का हस्तक्षेप हो नहीं।

(३) बोधक श्लेष्म—बोधक श्लेष्मका निवास जिह्वामें माना है; यह स्थल भी खोखले मार्ग (अन्न प्रणाली) से भिन्न नहीं। जो श्लेष्मिक कला मुखसे लेकर गुदा पर्य्यन्त पाई जाती है वही जिह्वा पर चढ़ी है। जो जिह्वा पर श्लेष्मिक कला है उसका अन्न प्रणालीकी कलासे एक सम्बन्ध है, फिर इसको किस प्रकार भिन्न मान कर श्लेष्मका निवास भिन्न माना जाय? क्या कंठमें और अन्नकी नालीमें श्लेष्म नहीं बनता? यदि बनता है तो उससे जिह्वाका श्लेष्म भिन्न क्यों? और श्लेष्मकी शक्तिसे रसास्वादन होता है ऐसी निश्चिति भी ठीक नहीं सिद्ध होती। प्रयोगोंसे दिखाया जा सकता है कि रसास्वादन जिह्वाके बोध तन्तुओं (रस बोधी सजीव-कोषों) द्वारा होता है—जो जिह्वाकी श्लेष्मिक कलाके साथ साथ संलग्न छोटे छोटे अङ्कुरोंके रूपमें—उठे हुए खाद्य पदार्थोंका स्पर्श करते रहते हैं।

(४) तर्पक—श्लेष्म—तर्पक श्लेष्मका निवास सिरमें बतलाया है। आज तक बड़े बड़े शल्य चिकित्सकोंको इसके होनेका कोई पता न लगा, न सिरमें श्लेष्मकी उत्पादक कला ही देखी गई, जिससे श्लेष्मके होनेकी सम्भावना हो। बहुत से वैद्योंका यह एक बड़ा भारी भ्रम देखा जाता है कि जब किसी व्यक्तिको प्रतिश्याय या नजला हो जाता है तो नासाके मार्गसे जानेवाले श्लेष्मको या नासामार्गके ऊर्ध्वभागसे कण्ठकी ओर गिरने (टपकने) वाले श्लेष्मको सिरसे गिरना मानते हैं जो बिलकुल ही सही नहीं है। क्योंकि सिरकी ओरसे नासिका या कण्ठकी ओर आनेका कोई मार्ग ही नहीं है, तो फिर बिना मार्गके किसी पदार्थका आना किस प्रकार सही हो सकता है। जो श्लेष्म नासामार्गके ऊर्ध्व भागसे नीचेको आता है वह मार्ग नासासे लेकर फुप्फुसकी ओरको जानेवाला मार्ग है, न कि सिरकी ओरसे आने वाला। और इस श्लेष्मका जो नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंको तृप्त करना कार्य बतलाया है, वह भी

प्रयोगोंसे सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत ज्ञान इन्द्रियोंका तृप्त रखना (बोधक-शक्ति देना) मस्तिष्कका कार्य सिद्ध होता है।

(५) श्लेषक-श्लेष्म—श्लेषक श्लेष्मका निवास सन्धि स्थान बतलाया है, और सन्धियोंको तर रखना इसका कार्य कहा है। दोनों बातें सिद्ध नहीं होतीं। यह अब प्रत्यक्ष दिखलाया जा सकता है कि सन्धिमें न श्लेष्मिक कला है, और न श्लेष्मवत् प्रकृतिका कोई पदार्थ ही है; प्रत्युत जो पदार्थ वहां पाया जाता है वह यथार्थमें स्नैहिक गुण सम्पन्न एक प्रकारका तेल है; और इस स्नेहको उत्पादक कला भी श्लेष्मिक कलासे भिन्न रूपवाली है। जब इस कलाकी आकृति, प्रकृति और कार्य भी भिन्न देखे गये तो ऐसी अवस्थामें किस भूलमें पड़कर इसको श्लेष्म माने।

हमने ऊपर जो कुछ छानबीन की है प्रायोगिक आधारों पर की है और वैद्य समुदायके आग्रह करने पर उनको प्रकट दिखलानेके लिए तय्यार हैं। आशा है कि इस विषय पर वैद्य समुदाय निर्पेक्ष भावसे विचार करैगा।

साकार और निराकार

ईश्वर साकार है या निराकार इस विषय में बहुत ही मतभेद है। कुछ लोगोंका कथन है कि वह निराकार तथा चैतन्य स्वरूप है और कुछ लोग उसे शंख, चक्र, गदा पद्मधारी चतुर्भुज मूर्ति कहा करते हैं। यदि कोई उसे धनुष बाण लिए हुए निर्जन बनमें एक विचित्र तपस्वीके रूपमें देखता है तो कोई मधुर ध्वनिसे मुरली बजा बजा कर गोपियोंके बीचमें रासक्रीड़ा करता हुआ देख कर अपने नेत्रोंको तृप्त करता है। कुछ लोगोंका मत है कि उसका रूप कृत्रिम है—ब्रह्मज्योति ही उसका शरीर एवंकान्ति है। इस विवादमें हस्तक्षेप करना गहन काननमें प्रविष्ट होनेके ही समान असाध्य है। यदि अभिमन्युके समान दुःसाहस करके ऐसे चक्रव्यूहमें किसी प्रकार प्रविष्ट भी हो जायं तो निकलनेका कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ता। मालूम होता है कि इन्हीं बातोंको सोच विचार कर विद्वानोंने ईश्वरको "निराकार" माना है। जलका अपना कोई भी आकार नहीं है, पात्र भेद तथा आधारकी भिन्नतासे ही जलके आकारका निरूपण हुआ करता है। इसी प्रकार ईश्वर भी निराकार तो है अवश्य किन्तु भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए समय समय पर आकार धारण किया करता है। वह सर्व शक्तिमान है, संसारके भिन्न भिन्न आकार तथा परिवर्तन उसकी संकल्प शक्तिके द्वारा ही निष्पन्न हुआ करते हैं। मूर्तिका उपादान प्रकृति उसकी अधीनतामें है, फिर क्या—अपनी इच्छानुसार वह कभी भी साकार रूपसे प्रकाशित हो सकता है। ऐसी दशामें यह कहना अनुचित न होगा कि ईश्वर रूप हीन होने पर भी मूर्तिमान है,—निराकार होकर भी साकार है।

विष्णु पुराणमें लिखा हुआ है—

"अस्त्र भूषण संस्थानं स्वरूपो रूप वर्जितः।
विभर्ति मायारूपो ऽसौश्रेयसे प्राणिनां हरिः॥"

१।२२।७४

अर्थात्—वह मायामय परमात्मा रूपसे रहित होने पर भी प्राणियोंके कल्याणके निमित्त अस्त्र तथा आभूषणसे युक्त रूप धारण किया करता है।

इतनाही क्या अद्वैतवादके कट्टर पक्षपाती श्रीस्वामी शंकराचार्यने भी अपने वेदान्त भाष्यमें एक स्थान पर लिखा है—

"स्यात्परमेश्वर स्यापि इच्छा वशान्मायामयंरूपं साधकानुग्रहार्थम्।" ब्रह्मसूत्र भाष्य—१।१।२०

अर्थात्—ईश्वर साधकके ऊपर अनुग्रह करके अपनी इच्छानुसार मायामय रूप धारण किया करता है। इसी मतको पुष्टिके निमित्त एक अन्य स्थलमें लिखा हुआ है—

यतीनांमन्त्रिणाञ्चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा
ध्यान पूजा निमित्तं हि तनुं ग्रहणाति मायया ।

(सूत संहिता १ । २ श्लोकके माधवाचार्यकृत भाष्यका सुप्रभेद वचन ।)

अर्थात्—सन्यासी, मन्त्रज्ञ, ज्ञानी, योगी तथा साधक इत्यादिके ध्यान एवं पूजाके निमित्त ईश्वर अपनी माया द्वारा निर्मित शरीर धारण किया करता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किसी दशा में किसी समय भगवान साकार रूपसे प्रकाशित हुये थे या नहीं, किन्तु इस प्रश्नसे कोई दार्शनिक सम्बन्ध नहीं है। यह इतिहासका विषय है। भिन्न भिन्न युगोंमें साधुओं तथा भक्तों एवं उत्तमोत्तम साधकोंने ध्यान योगसे ईश्वरकी साकार मूर्तिका दर्शन किया था और अपने अपने कृपापात्रोंमें उसका विवरण भी प्रकाशित किया, वंश परम्पराके प्रवाहसे प्रवाहित होकर आज तक वह विवरण हमारे कर्णकोहरको पवित्र कर रहे हैं। किसीने उसे कृष्णके रूपमें, किसीने विष्णुके रूपमें और किसी किसीने विषधर सर्पोंका उपवीत धारण किये हुये चन्द्रमाकी अमृतमय कलाओंसे सुशोभित शिवके रूपमें देखा था। कुछ साधकोंको तो उसी परमात्माको शक्ति रूपसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

भिन्न भिन्न पुराणोंमें भिन्न भिन्न रूपों तथा मूर्तियोंके ध्यान करनेका उपदेश दिया गया है। इसका उदाहरण देनेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

साकार तथा निराकारके सम्बन्धमें आलोचना करते हुये विष्णु पुराणमें लिखा हुआ है—ईश्वरका अमूर्त रूप या निराकार भाव, जिसे सच्चिदानन्दस्वरूप कहा करते हैं, उस भावमें आसानीसे चित्तकी धारणा नहीं होती; अतएव उसके मूर्तरूप या साकार भावकी आवश्यकता है। विष्णु पुराणके खांडिक्य-जनक-सम्वादमें इस प्रसङ्ग पर लिखा है—

तच्च मूर्तं हरेरूपं यादृक् चिन्त्यं नराधिप ।
तत्श्रूयतामनाधारे धारणा नोपलभ्यते ॥
प्रसन्नचारुवदनं पद्म पत्रोपमेक्षणं ।
सुकपोलं सुविस्तीर्णकपाल फलको ज्वलम् ॥
कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णं वक्षीवत्साङ्कि तवक्षसम् ।
समकर्णान्त विन्यस्त चारुकर्ण विभूषणम् ॥
वलिभिमङ्गिना मग्ननाभिना चोदरेणवै
प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवा पिचतुर्भुजम् ॥
समस्थितोरुजंघञ्च सुस्थिराङ्कि कराम्बुजं ।
चिन्तयेद् ब्रह्ममूर्तञ्च पीत निर्मल वाससम् ॥ ६ । ७ ७६ —८३ ॥

इस प्रकार भगवानकी साकार मूर्ती तथा उसकी उपयोगिता भली भाँति सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त ईश्वरकी साकार मूर्तिका एक और भी कारण है—उनका अवतार धारण करना। इस प्रसंगमें उन्होंने गीतामें कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थात्—साधुओंकी रक्षा तथा दुष्टोंका विनाश करने एवं धर्मकी स्थापनाके निमित्त मैं प्रत्येक युगमें अवतार धारण करता हूं।

जो सज्जन अवतार-वादको निर्मूल तथा असम्भव समझा करते हैं, जो चाहे भले ही इस वाक्य पर कुछ भी ध्यान न दें किन्तु जो व्यक्ति ईश्वरके अवतारोंकी सत्यता मानते हैं उनके हृदयमें यह प्रश्न अवश्य उपस्थित होगा कि भगवान किस प्रकार अवतार धारण करते हैं। इस सम्बन्धमें गीताका वाक्य है।

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म मायया ॥

इसके भाष्यमें श्री स्वामी शंकराचार्य ने लिखा है—

यंच भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्ति बलवीर्य तेजोभिः सदासम्पन्नः त्रिगुणात्मिकः वैष्णवीं स्वां मायां प्रकृतिं वशीकृत्य अजोऽव्ययो भूतानामीश्वरो नित्यशुद्धबुद्ध मुक्त स्वभावोऽपि

सन् स्वमायया देहवानिव जात इवचलोकानुग्रहं, कुर्वन् लक्ष्यते प्रयोजना भावोऽपि भूतानुजिघृक्षया

अर्थात्—वही ईश्वर जोकि समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त है, त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको ही अपने वशमें करके अपनी मायाके द्वारा शरीर धारण किया करता है। वह जन्मसे रहित, निर्विकार तथा समस्तचराचर जगत्का स्वामी है। वह नित्य है, जन्म मरणसे मुक्त है और उसका स्वभाव शुद्ध है। कोई निजी आवश्यकता न होने पर भी समस्त प्राणियोंके ऊपर दया करके इस प्रकार वह अवतार धारण करता है।

गीताके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामीने इस प्रसंगमें लिखा है—

ईश्वरोऽपि कर्म पारतन्त्र्य रहितोऽपि सन् स्वमायया सम्भवामि—स्वां शुद्ध सत्वात्मिकां प्रकृतिमधिष्ठाय स्वीकृत्य विशुद्धोर्जितसत्व मूर्त्या स्वेच्छया अवतरामि।

अर्थात्—भगवान निष्कर्म हैं। कर्मके अधीन न होने पर भी वे अपनी मायाके द्वारा उत्पन्न हुआ करते हैं। वह अपनी शुद्ध सत्वात्मिका प्रकृतिमें निवास करते हुये अपनी विशुद्ध तथा उर्जित सत्वमूर्तिमें अपनी इच्छानुसार अवतार धारण किया करते हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीधर स्वामीके मतानुसार ईश्वर मूर्ति ग्रहण किया करता है अर्थात् साकार हुआ करता है। इस सम्बन्धमें गीताके अन्य सुप्रसिद्ध टीकाकार मधुसूदन सरस्वतीने कुछ सन्देह उपस्थित किया है।

उनका कथन है कि कुछ लोग नित्य, नाशी आकार तथा विकारसे हीन परमानन्दमय भगवानके अवतारके समयमें वास्तविक शरीरका सम्बन्ध माना करते हैं सो युक्ति संगत नहीं है। ईश्वर नित्य, सर्वव्यापी सच्चिदानन्द परमात्मा है—भौतिक या मायिक किसी प्रकारका भी शरीर उसके लिये सम्भव नहीं है। ऐसी दशामें अवतारके समय यदि उसका शरीरत्व प्रतीत होता है तो वह शरीर सा प्रतीत होता है अवश्य किन्तु वह मायाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तात्पर्य यह है कि उस सच्चिदानन्द परमात्माकी मूर्ति पारमार्थिक तो है ही नहीं और वह प्राकृतिक ही है—वह है प्रति मासिक। किन्तु प्राकृतिक या प्रति मासिक चाहे कुछ भी हो—वास्तविक हो, या केवल माया ही हो—ईश्वरका अवतार धारण करके साकार रूपसे प्रकट होना निर्विवाद सिद्ध है।

ईश्वरके साकार या निराकार माननेके सम्बन्धमें और भी एक प्रकारसे विवेचनाकी जा सकती है।

महर्षिबादरायण ने वेदान्त सूत्रमें कहा है—ईश्वर निराकार तो है—किन्तु वह चित् स्वरूप एवं चैतन्यमय भी है।

"अरुपदेवहि तत्प्रधानत्वात्" । भ ३ । २ । १४ ।

उपनिषद्में स्थान स्थान पर ब्रह्मके साकार रूपका प्रसंग है अवश्य किन्तु श्रुति प्रधानतया उसे आकारहीन ही प्रमाणित करती है। यथा:—

"अस्थूलम् अनणुग्रह स्वमदीर्घम्"—वृ: ३।८।८

"अशब्दमस्पर्शम् रूप मव्ययम्।" कठ, ३।१३

"दिवोह्य मूर्तः पुरुषः"—मुण्डक, २।१।२

"आहच तन्मात्रम्"—३।२।१७

आहच श्रुतिः चैतन्य मात्रं विलक्षण रूपान्तर रहितं निर्विशेषं ब्रह्म। नान्य आत्मनः अन्तर्वहिर्वा चैतन्याद्न्यद्रूप मस्ति। चैतन्य मेवतु निरुपयमस्य स्वरूपम्—शङ्कर भाष्य

अर्थात्—जिस स्थान पर ब्रह्मका परिचय दिया गया है श्रुति न केवल निर्विशेष चैतन्य कह कर ही उसका निर्देश किया है। बाहर या भीतर सदा चैतन्यके अतिरिक्त उनका और कोई भी अन्य रूप नहीं है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि ब्रह्म निराकार चैतन्यघन है तो भला वह संसार की सृष्टि किस प्रकार कर सकता है? जो निराकार है वह इन्द्रियोंसे हीन है—उसमें अवश्य कोई विलक्षण शक्ति है।

"सर्वोपेताच तद्दर्शनात्।" २।१।३०

श्रुति ने "एक विचित्र शक्तिसे युक्त" कह कर ब्रह्मका वर्णन किया है। किन्तु इन्द्रियोंसे हीन तथा निराकार होकर भी उसने मूर्तिवान पृथ्वीकी सृष्टि किस प्रकारके? इसके उत्तरमें महर्षि बादरायणका कथन है—

विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम्। २।१।३१

अर्थात्—ब्रह्म इन्द्रियोंसे हीन तो है अवश्य परन्तु उसमें समस्त इन्द्रियोंका आभास सदा वर्तमान रहा करता है; इस विषयको प्रमाणित करते हुये श्रुतिने कहा है—

"सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्"

इसीके कारणका निर्देश करते हुये आगे चल कर कहा है—

"अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्य कर्णः।"

अर्थात्—उसके हाथ नहीं है किन्तु वह ग्रहण करता है, पैर न होने पर भी चला करता है, आँखें न होने पर भी देखता है, एवं कान न होने पर भी सुना करता है। हमें यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि हम लोग जिसे इन्द्रिय शक्ति कहा करते हैं—चाहे वह ज्ञानेन्द्रियोंकी अथवा कर्मेन्द्रियोंकी ही हो—वह आत्मामें विराजमान रहती है। उनके व्यापार साधारणतया इन्द्रियोंके द्वारा ही हुआ करते हैं। अतएव हम नेत्रोंके द्वारा देखा करते हैं कर्णोंके द्वारा श्रवण किया करते हैं, हाथों के द्वारा ग्रहण करते हैं और पैरोंके द्वारा चला करते हैं। यदि हम वर्तमान दशामें अन्धे, लंगड़े लूले या बधिर हो जायँ, यदि कोई हमारी आँखें निकाल डाले, पैर या कोई अन्य ही इन्द्रिय काट डाले तो हमारी वह शक्ति निस्तब्ध हो जायगी, किन्तु यदि औषधिका प्रयोग करनेसे हमारा अन्धापन दूर हो जाय, यदि किसी कौशलसे हमारे अङ्ग फिर पूर्ववत हो जायँ तो वे अपने अपने व्यापारोंमें फिरसे प्रवृत्त हो जाते हैं। इसका कारण केवल यही है कि हमारी वे शक्तियाँ तो हमारी आत्मामें ही वर्तमान थीं केवल उपाधिके ही अभाव से वे स्तम्भित हो गई थीं।

जीव ब्रह्मका अंश है। जब वह संसार क्षेत्रमें निक्षिप्त होता है तो उसमें इन समस्त इन्द्रियोंकी शक्तियाँ प्रसुप्तावस्थामें रहा करती हैं। किन्तु वे अधिक दिनों तक अन्तर्हित नहीं रह सकतीं—उनमें विकशित होनेकी भी उत्कण्ठा होती है। जीव भी कर्म करनेके लिए उत्सुक हुआ करता है, तब धीरे धीरे उसकी समस्त इन्द्रियोंका विकाश होता है। इस प्रकार विकरण (इन्द्रियोंसे हीन) जीव इन्द्रियोंसे युक्त हुआ करता है। जिस अवस्थामें हम इन्द्रियोंसे युक्त हैं, उसमें उन्हींके द्वारा कर्म किया करते हैं; परन्तु यह कहनेका हमें कोई भी अधिकार नहीं है कि इन्द्रियोंसे हीन होने पर आत्मा अपनी शक्तिका उपयोग ही नहीं कर सकेगा। साधनाकी उच्चावस्थामें साधकके हृदयमें एक प्रकारकी दिव्य दृष्टि, श्रुति तथा गन्ध इत्यादि विभूतियोंका उदय हुआ करता है, उसके ऊपर विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि जीव अपनी मुक्तावस्थामें निरीन्द्रिय होकर भी करण-शक्तियोंकी परिचालना किया करता है। नित्य मुक्त परब्रह्म परमात्माके सम्बन्धमें श्रुतिने इसीलिए उपदेश दिया है—

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्य कर्णः

इसीसे तो भगवान बादरायणने कहा है कि इन्द्रियोंसे हीन होनेके कारण भगवानको सृष्टिकी रचनामें असमर्थ मानना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि समस्त इन्द्रियोंसे हीन होने पर भी वह उनके गुणोंसे युक्त है। इस अवस्थामें साकार और निराकारका कोई विवाद नहीं रह जाता। चाहे वह साकार हो या निराकार, नेत्रोंसे हीन हो कर भी समस्त वस्तुओंको देखा करते हैं, पैरोंसे रहित होकर भी सर्वत्र जाया करते हैं और हाथोंके न होने पर भी ग्रहण किया करते हैं। कानोंके न होने पर भी वह सुना करते हैं, अर्थात् समस्त इन्द्रियोंके गुणोंसे युक्त हैं—सृष्टि, स्थित तथा प्रलयके कारण हैं। —ठाकुर दत्त मिश्र

भारतकी प्राचीन न्याय-पद्धति

प्राचीन समयमें संसारके कई देशोंमें अद्भुत उपायोंसे अभियुक्त व्यक्तिका इंसाफ़ किया जाता था। ईस्वी सन्‌की बारहवीं शताब्दीमें जब इंगलैंडमें जूरी-प्रथाका चलन चला तब उसके प्रारम्भ कालमें जूरियोंको, अभियुक्त व्यक्तिके अपराधका विचार नहीं करना पड़ता था। वह सिर्फ़ यही ठीक कर लेते थे कि जिस व्यक्तिके विरुद्ध अभियोग हुआ है, उसके सम्बन्धमें विचार करना होगा या नहीं। जब वह विचारका मत प्रकट करते तब गरम जलसे भरे पात्रमें एक पत्थर का टुकड़ा रख कर, उसको हाथसे उठानेके लिए अभियुक्त व्यक्तिसे कहा जाता था। इसके बाद उस हाथको सात दिन तक बाँध कर रखा जाता था। आठवें दिन जब देखा जाता कि जला हुआ स्थान अच्छा हो गया है, तब तो वह व्यक्ति निर्दोष साबित किया जाता और छोड़ दिया जाता था। इस प्रकारकी विचार प्रणाली हमारे भारतवर्षमें भी अज्ञात नहीं थी। रामायणमें वर्णित सीता जीकी अग्नि-परीक्षाको हिन्दू मात्र जानते हैं। दूसरे ज़मानेमें भी हम याज्ञवल्क्य प्रणीत मिताक्षरामें ऐसी व्यवस्था देखते हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके प्रारम्भिक शासन कालमें, मिताक्षरा-शासित हिन्दुओंमें, निम्नलिखित नौ उपायोंसे फ़ौजदारी मुक़दमेका विचार किया जाता था।

(१) तौल-परीक्षा
(२) अग्नि-परीक्षा
(३) जल-परीक्षा
(४) विष-परीक्षा
(५) तंडुल-परीक्षा
(६) कोष-परीक्षा
(७) उत्तप्त तैल-परीक्षा
(८) उत्तप्त लोह-परीक्षा
(९) मूर्त्ति परीक्षा

(१) तौल परीक्षा द्वारा जब अभियुक्त-व्यक्ति और उसके पुरोहितको एक दिन निराहार रहना पड़ता था। दूसरे दिन उसको गंगाजलमें स्नान कराकर पुरोहित होमादि यज्ञ और देवीकी पूजा करते थे। इन कामोंके बाद तुलादंडको सम्बोधन कर अभियुक्त व्यक्ति कहता—

"हे तुलादंड, तुम सत्यके आधार हो प्राचीन कालमें देवताओंने तुम्हारी सृष्टि की है। अतएव हे सिद्धिदाता, तुम सत्यको प्रकट करते हुए मुझे सब सन्देहोंसे विमुक्त करो। तुम माताके समान पूजनीय हो। मैंने यदि अपराध किया है, तो मुझे नीचे ले जाओ। और यदि मैं निर्दोषी हूँ तो मुझे ऊपर उठा दो।"

अभियुक्त व्यक्तिकी इस प्रार्थनाके बाद उसका वज़न किया जाता था। बादको पुरोहित साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए शास्त्रोक्त विधिसे मंत्र उच्चारण करता और एक कागज़में अभियोगका विवरण लिखकर उसके मस्तकमें बांध देता था। थोड़ी देरके बाद उसका फिर वज़न किया जाता था इस दूसरी बारके वज़नमें वह यदि पहलेके वज़नसे भारी हुआ तो उसके अभियोगकी सत्यता ज्यों-की त्यों रहती थी और यदि वज़नमें कम हुआ तो उसकी निर्दोषता अवधारित होती थी। पहली और दूसरी बारके वज़नमें यदि उस व्यक्तिके भारका घटना-बढ़ना न होता तो उसको तीसरी बार तोला जाता था। यदि उसके शरीरके वज़नसे तुलादंड टूट पड़ता तो उसके अपराधके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं रहता था।

(२) अग्नि परीक्षा। इस परीक्षाके लिए, नौ हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा और आध हाथ गहरा एक खड्ढा खोदा जाता था और उसको पीपलकी लकड़ी की अग्निसे भर दिया जाता था। इसके बाद अभियुक्त व्यक्ति अग्निको प्रणाम करके कहता—

"हे अग्नि, तुम सर्वभूतमें विद्यमान हो, सर्व शुचि हो और धर्माधर्मके साक्षी हो। अतएव, तुम सत्यको प्रकट कर दो।"

इस प्रकार प्रार्थना कर वह व्यक्ति नंगे पांव अग्निके ऊपर फिरता था। इस फिरनेमें उसके पावोंका स्पर्श यदि अग्नि न करती तो वह निरपराधी साबित होता था और यदि उसके पांव जल जाते, तो उसको अपराधी गिना जाता था।

(३) जल-परीक्षा। इस परीक्षा द्वारा जब फौजदारी मुकदमेका विचार करना होता तब अभियुक्त व्यक्तिको एक जलाशयमें ले जाकर नाभितक जल में खड़ा किया जाता था। इसके बाद वह वरुणदेवको प्रणाम करके कहता "हे वरुण, तुम सत्यको प्रकट करके मेरी रक्षा करो।"

इस समय एक ब्राह्मण छड़ी हाथमें लेकर जलमें उतरता था। इसके बाद एक व्यक्ति धनुषमें डोरी चढ़ाकर सूखी ज़मीन पर तीन बाण छोड़ता था इन तीनोंमें से जो बाण सबकी अपेक्षा दूर जाता उसको लेनेके लिए एक आदमी जाता था। उसके उस बाणको उठा लेने पर एक और व्यक्तिको बाण उठानेके लिए भेजा जाता था। इस समय अभियुक्त व्यक्तिसे, छड़ीधारी ब्राह्मणकी छड़ी या पावोंका स्पर्श करके जलमें डूब जानेका कहा जाता था। वे दोनों व्यक्ति जो बाणको लानेके लिए जाते थे, उनके लौटनेके पहले ही अगर अभियुक्त व्यक्ति जलसे ऊपर अपने मस्तकको निकाल देता, तो उसके अपराधमें कोई सन्देह नहीं रहता था। और यदि बादको निकालता तो निर्दोषी साबित होता था।

(४) विष-प्रयोग। इस परीक्षासे जब अपराधका निर्णय करना होता तब अभियुक्त व्यक्ति हलाहल विषसे प्रणाम करके कहता—"हे हलाहल विष, तुम ब्रह्माके पुत्र हो, धर्मपालक और सत्य परायण हो। मैं यदि सत्य बात कहता हूँ तो तुम मेरे लिए अमृत तुल्य होकर मुझे इस भारी अभियोगसे मुक्त करो।"

यह विष-परीक्षा दो प्रकारसे होती थी।

(क) पुरोहित लोग होमादि सम्पन्न करके अभियुक्त व्यक्तिको स्नान कराते थे। इसके बाद २॥ रत्ती विषनाग (एक प्रकारका विष) अथवा ५४ रत्ती सिका हुआ विष घीके साथ मिला कर उसको खिलाया जाता था। इस विष प्रयोगसे यदि उसके शरीरमें विषकी कोई क्रिया दिखाई नहीं देती, तो वह निरपराधी गिना जाता था। यदि ऐसा न होता, तो उसका अपराध ज्योंका त्यों बना रहता था।

(ख) एक मृण्मय कलसमें एक प्रकारके सांपको रखकर उसमें एक अंगूठी डाल दी जाती थी। इसके बाद अभियुक्त व्यक्तिसे उस अंगूठीको निकालनेके लिए कहा जाता था। अंगूठी निकालनेमें यदि सर्प उस व्यक्तिके हाथमें न काटता था, तो वह निर्दोषी साबित होता था, पर यदि सांप काट लेता, तो उसके अपराधमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता था।

(५) कोष—परीक्षा। इस परीक्षामें देवी देवताओंकी मूर्त्तियाँ धोकर उस जलके तीन कोष* अभियुक्त व्यक्तिको पिलाये जाते थे। इसके बाद १४ दिन तक उसकी प्रतीक्षा की जाती थी। १४वें दिन तक यदि वह व्यक्ति बीमार हो जाता, तो उसके अपराधी होनेमें किसीको सन्देह नहीं रहता था। और यदि वह स्वस्थ बना रहा तो निर्दोषी माना जाता था।

(६) तन्दुल—परीक्षा। इस परीक्षामें जब चोरीका इलज़ाम किसी पर होता तब उसकी जाँच यों की जाती थी। एक शालग्रामकी शिला द्वारा चांवलोंको तोलकर वह चांवल अभियुक्त व्यक्तिसे चबवाये जाते थे। चांवलोंको चबाकर वह एक पीपलके पत्तेके ऊपर डालता जाता था। यह काम कई अपराधियोंसे एक साथ कराया जाता था। उनमेंसे जिसके चबाये हुए चांवल

---

* तांबेका बना पूजाका जल-पात्र।

सूखे निकलते थे, वही दोषी साबित होता था। और दूसरे आदमी छोड़ दिये जाते थे।

(७) तप्त-तैल-परीक्षा। इस परीक्षामें अभियुक्त व्यक्तिसे गरम तेलमें हाथ डुबोनेको कहा जाता था। हाथ डुबानेसे यदि उसका हाथ जल जाता था, तो वह दोषी ठहराया जाता था। और यदि हाथमें कुछ भी तकलीफ़ न होती तो उसके निर्दोषी होनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता था।

(८) तप्त लोह-परीक्षा। एक लोहेका गोला अग्निमें लाल करके अभियुक्त व्यक्तिके हाथमें दिया जाता था। उससे यदि उसके हाथ जल जाते तो वह दोषी, और नहीं जलते तो निर्दोषी माना जाता था।

(९) मूर्त्ति-परीक्षा। इस परीक्षासे जब इंसाफ़ करना होता तब रौप्य निर्मित एक मूर्त्ति और एक लोहेकी बनी मूर्त्ति दोनोंको, एक मृणमयकलसके अंदर रखकर अभियुक्त व्यक्तिसे उन्हें बिना देखे निकालनेके लिए कहा जाता था। उन दोनों मूर्त्तियों मेंसे एकही मूर्त्ति निकालनेका उसे अधिकार होता था। यदि वह रौप्यमूर्त्तिको निकालता, तो निर्दोषी साबित होता था और यदि लोह-मूर्त्तिको निकालता तो उसके अपराधी होनेमें कोई सन्देह नहीं रहता था।

बूढ़े, अंधे, छोटे बालक, बालिकाएं, रोगी ब्राह्मण, स्त्रियाँ, इनके अपराधकी जाँच प्रथमोक्त उपाय अर्थात् तुला-दंडके द्वारा होती थी। शूद्र अभियुक्त होता तब अग्नि, जल अथवा विषपरीक्षासे विचार होता था। किन्तु यदि सहस्र मुद्रासे कमका मामला होता तो गर्म लोहेका गोला, विष अथवा तुलादंडसे अभियुक्त व्यक्तिका इंसाफ़ नहीं होता था।

वारेन् हेस्टिंग्सके शासन—कालमें इब्राहिम अलीखां नामका एक व्यक्ति बनारसमें प्रधान मजिस्ट्रेट था। इसके सामने मिताक्षराके विधानके अनुसार दो फ़ौजदारी मुक़द्दमोंका विचार हुआ था। किस तरह यह विचार किया गया था यह बात उसकी रिपोर्ट से मालूम होती है। पाठकोंके कौतुहल निवारणके लिये हम उस रिपोर्टका सारांश नीचे देते हैं—

"सन् १७८३ ई० में, बनारसमें गर्म लोहेके गोले द्वारा एक फ़ौजदारी मुक़द्दमेंका विचार हुआ था। शंकर नामके एक व्यक्ति पर चोरीका इलज़ाम लगा। शंकरने कहा कि—"मुक़द्दमा झूठा है, मैं निर्दोषी हूँ।" फ़रियादीने काफ़ी सबूत पेश न कर सकनेके कारण अग्नि-परीक्षाके द्वारा विचार होनेकी प्रार्थना की। आसामी भी इसमें राज़ी हुआ। मैंने विचारकों और पंडितोंसे कंपनीके नियमके बाहर उपाय करनेका निषेध करते हुए कहा—"अग्नि-परीक्षाके बदले तुलसीदल, गंगाजल अथवा एक हरा बांस या शालग्राम-शिला स्पर्श करके दोनों पक्षवाले साक्षी दें।" मगर किसी पक्षने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। फिर दोनोंकी प्रार्थनाके अनुसार विचार करना स्थिर हुआ। इसके चार कारण थे—

(१) आसामीके अपराध या निर्दोषिता साबित करनेके लिए कोई उपाय नहीं था।

(२) दोनों पक्ष हिन्दू थे।

(३) हिन्दू राजाओंके राज्यमें ऐसी विचार-प्रणाली प्रचलित थी।

(४) अग्निके उत्तापसे आसामीका हाथ जलता है या नहीं, यह बात परीक्षा करके देखनेका विचार था।

इन सब कारणोंसे मैंने अदालतके नियुक्त पंडितोंको और काशीकी दूसरी पंडित मंडलीको इस आशयका हुक्म सुनाया—

"फरियादी और आसामी दोनों हिन्दू हैं। वे उत्तप्त वर्त्तुलकी सहायताके बिना और किसी प्रकारके विचारसे सन्तुष्ट नहीं होंगे। अतएव मिताक्षरा-वर्णित प्रकारसे उत्तप्त लोह-वर्तुलकी सहायता द्वारा आसामीका विचार हो।"

उपरोक्त आदेशके अनुसार विचारका आयोजन होने पर मैं सेना, अध्यापक मंडली और

अदालतके कर्मचारियोंके साथ निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा और फरियादीसे मैंने कहा—"यदि आसामीके हाथ न जले तो तुमको कैद किया जायगा।" परन्तु वह इस भय प्रदर्शनसे ज़रा भी न डरा और प्रार्थित उपायका अवलम्बन करनेके लिए बार बार इच्छा प्रकट करने लगा। तब मैं उसकी प्रार्थना मंजूर करनेको बाध्य हुआ। अनन्तर पंडित लोग देव देवीकी पूजा सम्पन्न करके अग्निमें घृताहुति देने लगे। इसके बाद गोमयसे मृत्तिकाके ऊपर नौ वृत्त अंकित किये गये। आसामीको गंगा स्नान कराकर भीगे वस्त्रोंसे लाया गया। पीछे, किसी प्रकारकी प्रतारना न कर बैठे इस आशंकासे उसके दोनों हाथ साफ़ जलसे धोकर, एक तालपत्रमें शास्त्रोक्त मंत्रके साथ अभियोगका विवरण लिखकर उसके मस्तकमें बांधा गया। इसके पश्चात् पंडितोंने ७ पीपलके पत्ते, ७ दूबें, कुछ पुष्प और थोड़ेसे जौ दहीमें मिलाकर तथा ७ सफेद सूतोंमें बांधकर आसामीके दोनों हाथोंमें रखे। फिर एक लोह वर्तुलको प्रज्वलित अग्निकुंडमें लाल करके उसे एक चिमटेके द्वारा उसके दोनों हाथोंमें रखा गया। आसामीने वर्त्तुल हाथमें लिये हुए गोमय अंकित नौ वृत्तोंमें सात चक्कर लगाये और नवें वृत्तमें उसे डाल दिया। इन सात वृत्तोंमें उत्तीर्ण होनेके लिए आसामीको ३॥ गज़ जगहमें पैदल चलना पड़ा था। उस समय परीक्षा द्वारा देखा गया कि आसामीके दोनों हाथोंमें किसी जगह अग्निका स्पर्श नहीं हुआ है। परीक्षा-स्थलमें उस समय कोई पांच सौ आदमी उपस्थित थे। आसामीके हाथ नहीं जले, यह देखकर सभीको आश्चर्य हुआ। मैं भी स्तम्भित हो गया। परन्तु मैंने सोचा कि शायद आसामीके हाथमें कोई पदार्थ लगा हो, और इसी कारण उसके हाथ न जले हों। इसके सिवा, आसामी ने वर्त्तुलका हाथमें लेकर बहुत थोड़ी देर हीमें डाल दिया था। जो हो, हिन्दू धर्मशास्त्र ने इसका दूसरा कारण निर्देश किया है। हिन्दू शास्त्र कहता है और पंडित लोग भी कहते हैं कि जो व्यक्ति सच बात कह देता है उसके हाथ अग्निमें नहीं जलते। निस्सन्देह आसामीके हाथ नहीं जले, यह मैंने अपनी आंखोंसे देखा; मैं अकेला ही नहीं था, बल्कि वहाँ जितने लोग उपस्थित थे, सभीने देखा। विचारके फलसे, आसामीके हाथ नहीं जले, इसलिये उसे छोड़ दिया गया। भविष्यमें कोई व्यक्ति ऐसे इन्साफ़की प्रार्थना न करे; इसके लिये फ़रियादीको एक सप्ताह की कैदकी गई। मेरा विश्वास है कि जिन्होंने दर्शन-विज्ञानमें ज्ञान प्राप्त किया है, वह ही कह सकते हैं कि किसव्यक्तिका हाथ नहीं जलता, और किसका क्यों जलता है?

उतप्त तेल परीक्षा निम्नलिखित प्रकारसे होती है। परीक्षाका निर्दिष्ट स्थान साफ़ कर उसे गोबरसे लीपा जाता है। दूसरे दिन सूर्योदयके समय पंडित लोग श्रीगणेशजी आदि देवताओंकी पूजा कर मंत्रोच्चारण करते हुए एक सोना-रूपा-तांबा लोहाके या मिट्टीके बने हुए पात्रमें एक सेर घृत या तेल डालकर उसे अग्नि पर गरम करते हैं। इसके बाद एक बेलका या पीपलका पत्ता उसमें डालकर देखते हैं कि पत्ता जल जाता है या नहीं। अगर पत्ता जल जाता है तो उस गरम तेल में एक सोना चांदी तांबा या लोहेकी बनी अंगूठी डाल कर उसे मंत्रपूत किया जाता है। उस अंगूठीको हाथसे उठानेमें यदि अभियुक्तके हाथ न जले तो वह निर्दोषी साबित होता है। और अगर हाथ जल गये तो उसके दोषी होनेमें कोई सन्देह नहीं रहता। कृषीश्वर भट्ट नामक एक ब्राह्मणने रामदयाल नामक एक चित्रकार पर चोरीका अपराध लगाया। रामदयालने कहा कि "मैं निर्दोषी हूं।" इसके सम्बन्धमें बहुत तर्क-वितर्कके बाद यह निश्चय हुआ कि तेल-परीक्षाके द्वारा मुक़द्दमेका विचार हो। मैंने दोनों पक्षोंको बहुत प्रयास किया, परन्तु डराने फल कुछ नहीं हुआ। अन्तमें मैंने तेल-परीक्षाके द्वारा ही विचार करनेकी अनुमति दे

दी। विचारके समय जितने पंडित वहाँ उपस्थित थे उनमें भीष्म भट्ट, नाना पाठक, मणिराम पाठक, मणिराम भट्ट, शिव, अनन्तराम भट्ट, कृपाराम ष्णुहरि, कृष्णचन्द्र, रामेन्द्र गोविन्दराम, हरिकृष्ण भट्ट और कालिदासके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। शेषोक्त तीन व्यक्ति अदालतके नियुक्त पंडित थे। पंडितों ने होमादि क्रिया तथा गणेश जीकी पूजा सम्पन्न करके मुझसे उपस्थित होनेका अनुरोध किया। मैं दीवान, फौजदारी अदालतके दोनों दारोगे, शहर कोतवाल, अदालतके कर्मचारियों और काशीके प्रधान प्रधान व्यक्तियोंके साथ विचार-स्थल पर पहुँचा। उस समय भी मैंने रामदयालसे कहा कि तुम ऐसा इंसाफ मत कराओ, क्योंकि इसमें यदि तुम्हारे हाथ जल गये, तो फरियादीका सारा नुकसान तुमको देना होगा और साथ ही समाजमें तुम्हारी बुराई फैलेगी। किन्तु रामदयाल ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया और गरम तेलमें अपने हाथ डाल दिये। हाथ डालते ही उसके हाथ जल गये। मैंने उपस्थित पंडितोंसे पूछा तो उन्होंने कहा कि "आसामीका अपराध साबित हो गया है, अब इसको फ़रियादीका सारा नुक़सान देना होगा। नुक़सानका मूल्य यदि पाँच सौ अशर्फियोंसे अधिक हो तो शास्त्रके वचनानुसार उसके हस्त-छेदन करना विधेय है। पंडितोंके ऐसा मत प्रकट करने पर मैंने रामदयालसे सात सौ रुपये फ़रियादीको दिलानेका हुक्म दिया। किन्तु आसामी को दूसरी किसी प्रकारकी सज़ा नहीं दी गई।'

इन दोनों मुक़दमोंके काग़ज़ात कलकत्ते भेजे गये। कर्तृपक्षके लोगोंने उनको देखकर बड़ा आश्चर्य किया। गवर्नर जनरल वारेन् हेस्टिंग्सने भी उन सब काग़ज़ोंको देख कर बड़ा आश्चर्य माना और कई प्रश्न किये। उन सब प्रश्नको अली इब्राहिम खाँके उत्तरके साथ नीचे लिखा जाता है।

प्रश्न—"होम" शब्दका अर्थ क्या है?

उत्तर—देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये जो उपहार दिया जाता है, उसका नाम होम है। यह उपहार कई तरहका होता है। जब अग्नि होम किया जाता है तब पलास, रक्तचन्दन और पीपल काष्ठ, कुश, काले तिल, जौ, चांवल, इक्षु, घृत, खजूर और अन्यान्य चीज़ोंको अग्निमें आहुति देते हैं।

प्रश्न—होम कितने प्रकारके होते हैं?

उत्तर—भिन्नभिन्न उपलक्षमें भिन्न भिन्न प्रकार के होम किये जाते हैं। किन्तु उत्तप्त लोह तथा तेल परीक्षामें एक ही प्रकारका होम होता है।

प्रश्न—"मंत्र" शब्दका अर्थ क्या है?

उत्तर—पंडित लोग ऐसे तीन शब्दोंका प्रयोग किया करते हैं, मंत्र, यंत्र, तंत्र। मंत्र अर्थमें कतिपय देवताओंके नाम सम्बलित वेदसे उद्धत श्लोक हैं। यंत्र अर्थमें अभिलषित वस्तु प्राप्त होनेके लिए कुछ अंकोंका प्रयोग है। और तंत्र शब्दका अर्थ एक प्रकारकी औषध है, जिसका शरीरके किसी स्थानमें प्रयोग करनेसे उस स्थानमें किसी प्रकार का आघात नहीं लग सकता। ऐसा सुना जाता है कि यह दवा हाथमें चुपड़ कर उस हाथसे उतप्त लोह-वर्तुल पकड़ा जाय तो हाथ नहीं जलता है।

प्रश्न—जिस आसामीका विचार उत्तप्त-लोह वर्तुलकी सहायतासे हुआ था, उसके हाथमें कितने जौ, दहीमें भिगोकर दिये गये थे।

उत्तर—सिर्फ़ नौ।

प्रश्न—उस समय उस व्यक्तिकी मानसिक अवस्था कैसी थी।

उत्तर—उसको पूरा ज्ञान और विवेचना शक्ति थी, किन्तु वह ज़रा भी उद्विग्न नहीं हुआ था।

प्रश्न—जिस व्यक्तिकी मुकद्दमेमें तेल-परीक्षा हुई थी, उसकी मानसिक अवस्था कैसी थी?

उत्तर—वह पहले डरा था, परन्तु तेल परीक्षामें उसके हाथ जल जानेके बाद भी वह बार बार कहता था कि "मैं निर्दोषी हूं" परन्तु परीक्षा के पहिले वह वायदा कर चुका था कि यदि उसके हाथ जल जायँगे तो उसको जितना नुक-

सान फ़रियादीका हुआ है—उसे देना होगा। इसी लिये उसको नुक़सान देनेका हुक्म दिया गया।

प्रश्न—अग्नि-परीक्षा, उत्तप्त लोह परीक्षा और उत्तप्त तेल परीक्षा, इन तीनोंमें कोई भेद दिखाई नहीं देता, फिर इन तीनोंके अलग अलग नाम क्यों है? तीनों ही को अग्नि-परीक्षा क्यों नहीं कहा जाता है?

उत्तर—किसी किसी पंडितके मतसे तीनों अलग अलग हैं।

—कृष्ण गोपाल माथुर।

रसूल

(१)

रसूल एक बीस बाइस वर्षका युवक था। क्या गठन थी, क्या शरीर, और क्या मस्ताना चाल। देखनेमें भी सुन्दर था। गोरे रंगके चेहरे पर छोटी छोटी मूँछे आ रही थीं जिन्हें बढ़ानेके लिए भोजन करनेके बाद वह बरबस उनपर हाथ फेरा करता था। अपने बड़े बड़े केशोंको जो उसके उत्तमांगका भूषण थे, वह छटांक भर चमेलीके तेलका रोज़ अर्घ्य दिया करता। बीचमें से माँग निकाल कर जब वह अपने कुटिल बालोंको बार बार सँवारता तो उसके केशाग्र उस अभिनव लास्यका अनुकरण करते जो किसी कोमललता-की कोमलतम लम्बी लम्बी टहनियोंमें, मन्द पवन के चलने पर देखनेमें आता है।

रसूलके दोनों कानोंमें इत्रकी दो फुरेरियाँ हमेशा रक्खी रहती थीं। रोज़ शामको मालियोंमें जाकर मोतिया या मदनमानके दो बढ़िया गजरे वह ज़रूर खरीदता जो शीघ्र ही उसके गलेका हार बन जाते थे। इन दो गजरोंको कभी अपने मलमल वाले और कभी अपने बारीक, ढीले, रेशमी कुरतेके ऊपर गलेमें पहन कर रसूल अकड़ती चालसे बाज़ारमें निकलता। उस वक्त मालूम होता मानो कोई हाथीका बच्चा झूमता चला आ रहा है।

रसूल बहुत रामपुरी बदमाशों या लखनऊके गुण्डोंकी तरह कोई मोटा डण्डा हाथमें नहीं रखता था। उसके फैशनकी चीज़ थी एक बहुत खूब-सूरत, पतली, वलायतकी बनी हुई छड़ी—वैसी ही छड़ी जैसी कि अंगरेजी भारतके विश्वविद्या-लयोंके अधिकांश विद्यार्थी अपने हाथकी शोभा बढ़ानेके लिए काममें लाते हैं। शौक़ीन लोग अगर उससे एक कुत्तेको भी मारनेकी चेष्टा करें तो वह टूट जाए; परन्तु रसूलकी खूबी यह थी कि वह उस नाज़ुक छड़ीसे ही अपने तमाम कर्तब कर लेता था।

रसूलकी आयु क्या थी? कहना ही पड़ेगा कि कुछ नहीं। हाँ। उसकी मा ज़रूर पड़ोसियोंके लिए आटा पीस कर आठ दस आने रोज़ कमा लेती थी। रसूलकी स्त्री भी थी। यह देखने-भालने में अच्छी थी और अठारह उन्नीस वर्षकी थी। वह आटा नहीं पीसती थी। तथापि बीस पच्चीस रुपये मासिकका औसत वह भी कर लेती थी। अपने खुशहाल हिन्दू मुसलमान पड़ोसियोंके यहाँ जाकर कभी गेहूँ फटक आती, कभी किसीके यहाँ सीने-पिरोहनेका कुछ काम कर देती, और कभी तीज-त्योहारके अवसरों पर अपनी बिरादरीमें भोजन आदि बनवानेमें सहायता दे दिया करती थी। बस, इसी तरह जो कुल तीस-चालीस रुपए होते थे उनमें तीनों का खर्च चलता था और चलता था रसूलका अच्छेसे अच्छा और बुरेसे बुरा शौक़।

रसूलके बहुत से दोस्त थे। सब ही उससे स्नेह करते थे और सबकी उससे सहानुभूति थी। परन्तु इनमें एकसे उसकी सबसे अधिक मित्रता थी। यह मित्र तम्बाकूकी दुकान करता था, और संभव है, वह बात ही दोनोंकी मित्रताका कारण हो। हर बार जब रसूल उधरसे निकलता तो मित्रकी दूकान पर बैठ कर दो एक चिलम ज़रूर पीता

और बराबरकी दूकानसे पानके बीड़े लेकर चबाता। रसूलके इस मित्रका नाम था रहीम। रहीम अपने साथीके दुर्व्यसनोंमें अकसर सहयोग देता, परन्तु जो बातें रसूलकी उसको अच्छी नहीं मालूम होती थीं उनके लिए वह उसको बुरा भला भी खूब कहा करता। कारण यह था कि रसूलकी अनिष्ट शंका-से कभी कभी उसको व्यथा पहुंचती थी। वह स्वयं भी दुष्कर्मी था परन्तु साथ ही साथ रसूलकी तरह संशयकर्मी नहीं था।

रसूलमें एक बड़ा बुरा व्यसन था। वह साँप पकड़ा करता था। इसीसे रहीमको उसकी ओरसे चिन्ता लगी रहती थी। बूढ़ी मां भी बच्चेकी इस कार्रवाईसे दुखी थी, परन्तु जबसे रसूल एक दो बार उसको पीट चुका था तबसे वह बेटेको कुछ न कह कर अकेलेमें ही आँसू बहा लेती थी। रसूल का यह हाल था कि जब कभी वह कहीं किसी अच्छे साँपका ज़िक्र सुनता तो फ़ौरन वहीं पहुँ-चता। साँप पकड़नेके लिए वह दस दस कोस तक जा सकता था। बरसातके मौसममें पड़ो-सियोंके यहाँ जब कोई साँप निकलता तो वे रसूल को बुलाते थे। रसूलकी मा ऐसे पड़ोसियोंको गाली दिया करती। रसूल अपनी माका अकेला ही पुत्र था।

रसूलका प्रधान विनोद नागग्रह था, इसमें संदेह नहीं। इस विनोदसे एक उपविनोदकी सामग्री जुटती थी जो देखनेमें साँप पकड़नेकी अपेक्षा अधिक रोचक था। साँप पकड़नेमें केवल रसूल ही आनन्द उठा पाता था परन्तु दूसरे विनोदसे उसके मित्रोंका भी मनोरंजन हो जाता था। बरसात आरंभ होनेके समयसे ही वह मेंढक इकट्ठे करना शुरू कर देता था। अपने घरके पास कुछ ईंटे जोड़ कर उसने एक फुट गहरा एक छोटा सा चौबच्चा बना लिया था। बरसातमें इसमें पानी खुद-बखुद जमा होता रहता। इस चौबच्चे में वह अपने छुट्टा छुट्टा मेंढकोंको बड़ा होनेके लिए छोड़ देता था। फिर कभी कोई अच्छा साँप मिलने पर उसे थोड़ी देरके लिए उस चौबच्चेमें छोड़ देता, या साँपको ज़मीन पर ही रख कर चार पाँच बड़े बड़े मेंढकोंको उसके सामने छोड़ देता। कभी कभी तो वह ऐसा करता, और इसीमें उसे सबसे अधिक मज़ा आता था, कि किसी ज़बरदस्त सर्प को पाकर वह एक बड़े घेरेमें उसे तथा आठ दस बहुत मोटे मोटे मेंढकोंको छोड़ देता और जभी शिकार और शिकारीमें दाँव-पेंच शुरू होते तो सहसा दो नेवलोंको भी घेरेके भीतर डाल देता। उस समय साँपको जिस परिस्थितिका सामना करना पड़ता था वह देखनेकी चीज़ थी।

रसूलके प्रधान प्रधान मित्र ऐसे अवसरों पर विशेष रूपसे निमंत्रित किये जाते थे जो तमाशा देखनेमें कभी कभी इतने लीन हो जाते थे कि उनकी निस्तब्धतामें एक सूई के गिरनेका भी शब्द सुनाई दे जाता। उधर प्रतीक्षाके अवसान पर उनके अट्टनादमें कभी कभी शायद वज्रघोषको भी तिरस्कृत होना पड़ता। और, यह बात नहीं थी कि बरसातके बाद यह खेल बन्द हो जाता हो। बर-सातके बाद मेंढक और साँप बड़े यत्नसे पाले जाते थे। प्रति पन्द्रहवें दिन भिश्ती आकर हौज़-का पानी बदल जाता था जिससे कि गन्दे जलमें मेंढकोंका स्वास्थ्य खराब न हो। जो साँप खेलके लिए पहलेसे चुने जाते थे उन्हें रोज़ एक पाव दूध पिलाया जाता था। रसूल-जननी और रसूल-पत्नी उसके इन कृत्योंको देख कर केवल दुःख ही कर सकती थीं, मुंहसे कुछ कहनेका उन्हें अधिकार न था। हत्यारे रसूल ने असंख्य निरीह जीवोंको पीड़ा पहुँचा कर और उनकी जान लेकर अपने पापके ढेरको इतना ऊँचा बना लिया था कि उसके आमोदकेसहयोगी निरहिंसक मित्र भी भीतर ही भीतर सदैव शंकित रहते थे कि उनका प्यारा दोस्त टीलेकी चोटीसे दोज़ख़के नीचे गह्वरमें गिर कर किसी रोज़ चकनाचूर न हो जाए।

(२)

एक रोज़का ज़िक्र है। आषाढ़का महीना था। एक हलकी-सी झड़ी हो चुकी थी। बरसातमें वृक्षों पर वैसे हा बहार रहती है। दो तीन रोज़से पानी न पड़नेसे पेड़ों पर जो थोड़ी बहुत धूल सी जमी हुई मालूम पड़ती थी, आजकी बौछारने उसे बिलकुल धोकर बहा दिया था। धूप छाँह अदले-बदलेसे आ आकर उन पेड़ोंका श्रृंगार कर जाती थीं। पेड़ मालूम होता था, आज उबटन आदिके उपरान्त नहा-धोकर आपसमें दिल्लगी कर रहे हैं। उनके चुलबुले पनको देखकर मसखरी हवा भी कभी कभी अलक्ष्य रूपसे आकर अपनी कुहनीसे उनको झटकती हुई सर्-से निकल जाती थी। बाग़ोंमें वृक्षदलोंके नीचे कहीं कहीं गड्ढोंमें पानी भर जाने से छोटी छोटी तलैयां बन गई थीं। बाज़ बाज़ शौकीन लोगोंकी मण्डलियां ऐसी तलैयोंके किनारे एक देहाती चारपाई बिछवा कर या हरी हरी घासके अधसूखे फ़र्श पर ही बैठ कर पानी में रक्खे हुए टोकरी-भरे आमोंको खेलकी तरह चूसकर फेंक देती हैं—अथवा शौकीन ही क्यों, प्रकृतिके सर्वोत्तम प्रसादको प्रकृतिके ही मन्दिरमें पानेकी इच्छा किसके हृदयमें उत्पन्न नहीं होती होगी ?

परन्तु रसूल अपनी मण्डलीके साथ नहीं गया। वह आम खाने गया भी नहीं था। उसकी धुनको हम जानते हैं। अपनी फिराकमें मस्त, पतली छड़ीको घुमाता हुआ, लहलहाता रेशमी कुरता पहने वह शहरके सीमांत देशमें घूम रहा था। बिलकुल अचानक ही उसकी इच्छा हो पड़ी कि दो चार आम खा लूं। बाग़में ताजे आम तुड़वाते तुड़वाते ही उसकी दृष्टि एक पुराने काले भुजंग पर पड़ी। भुजंग पचीस गज़की दूरी पर एक बड़े पेड़की जड़में कुण्डली मारे हुए बैठा था। उसे देखना था कि रसूल दबे-पांव उसकी ओर लपका और सांपके सावधान होते न होते ही उसने अपनी अभ्यस्त दक्षतासे एक पैंतरेमें उसका फन पकड़ लिया। क्रोधमें भर कर बूढ़े सांपने उसकी बांहसे लिपट कर उसे तोड़ डालनेकी चेष्टा की परन्तु उस्ताद रसूल ने सांप पकड़ना आज शुरू नहीं किया था। देवयोनिका जीवन मालूम कितने अनेक मनुष्योंको अपनी क्रोधाग्निमें भस्म कर वृद्ध हुआ होगा पर आज वह एक लड़केका शिकार बन गया। लड़का उसके दांत तोड़ कर तथा साँपको अपने गलेमें दुपट्टेकी तरह लटका कर अकड़ता हुआ बाग़से चला गया। आम खानेकी इच्छाकी अब उसके हृदयमें छाया भी नहीं रह गई थी।

रसूल मतवाले हाथीकी तरह झूमता-झामता मुसकराता हुआ अपने मित्र रहीमकी दूकान पर पहुँचा। वह एक विजयी वीर था जो खुले रणक्षेत्र में शत्रुकी गर्दन काटकर इस समय अपने साथियोंकी सभामें साधुवाद और बधाईकी उज्ज्वल आशाको लेकर आया था। गलेमें पड़ी हुई नाग माला ही उसके अद्भुत विजय कर्मकी घोषणा थी। दूकान पर बैठते ही रसूलने कहा, "दोस्त रहीम! ज़िन्दगी भरमें आज मैंने सांप पकड़ा है। वाह! क्या ज़बरदस्त मेरी तक़दीर है। खानेके लिये चार आम तुड़वा रहा था कि इस पर निगाह पड़ी। और कैसी आज़ादीके साथ, कैसी आज़ादीके साथ, इसे पकड़ा है कि रहीम! तुम अगर देखते तो कहते। क़लम खुदा की, मुझे ज़रा भी तो कोशिश नहीं करनी पड़ी।"

रहीमने दूरसे ही अपने मित्रको आते देख लिया था। सचमुच, इतना बड़ा और ज़बरदस्त सांप रहीमने अपनी उम्रमें नहीं देखा था। वह उसके चञ्चल भावको अपनी दूकानसे ही बैठा देख रहा था। रसूलके दूकान पर पहुंचने पर सांपकी चञ्चलता कुछ कम हो गई, परन्तु ज्यों ज्यों उसकी विकत्थना बढ़ती गई त्यों त्यों, मालूम होता था, सर्पका भी क्रोध बढ़ता जा रहा था। उसकी दबी हुई फुँकारको बार बार सुनकर रहीम उदास हो रहा था। अंतमें उसने कहा, "रसूल! मैं तुम्हारा

दोस्त हूं और तुम मेरे। मेरा एक कहना मान लो। तुम यह काम अब छोड़ दो। इस सांपको जाने दो।"

रसूलने ज़ोरसे हँसकर कहा, "वाह, रहीम! यानी कि तुम मुझसे मेरी ज़िन्दगी ही मांग रहे हो। पहले भी तो तुमने कई बार मुझसे यही बात कही है। मगर मैं इसे छोड़ कर तुम्हारा और तमाम कहना माननेको तैयार हूं।"

"ख़ैर, मैं जानता था कि मैंने फ़िज़ूल कहा। मगर तुम इस सांप को फ़ौरन छोड़ दो। मैंने ऐसा सांप कभी नहीं देखा। देखते नहीं, इसके गुस्सेका कहीं ठिकाना है। रसूल! इसे छोड़ दो, नहीं तो यह तुम्हें खा जाएगा।"

"रसूलने सांप पकड़नेका काम किसीसे सीखा नहीं, फिर भी वह बड़े बड़े उस्तादोंको सिखा सकता है। और, इस सांपको तो मैं उम्र भर नहीं छोड़ सकता। इसको रोज़ मैं आधा सेर दूध पिलाऊँगा और दो मेंढक खिलाऊँगा। इसे तो मैं हज़ार रुपएमें भी नहीं दे सकता।"

(३)

रहीमकी प्रार्थना पूर्ण रूपसे अस्वीकृत हुई। थोड़ी देर और उसकी दूकान पर बैठ कर रसूल वहांसे चला। आज वह गर्वोल्लाससे मतवाला था। उसकी इच्छा हुई कि अभी ज़रा देर और बाज़ारमें घूम कर लोगोंको अपनी विजय सूचना दूँ। उसने अपने अन्य मित्रोंको भी बड़े बड़े शब्दोंमें अपने आजके पराक्रमकी कथा सुनाई।

एक जगह जहां, सड़क कुछ तंग थी, वह अपने साथियों सहित पान खानेके लिए एक पनवाड़ीकी दूकानके सामने खड़ा हुआ। पहले उसने केलेके शरबतका एक एक गिलास बनानेकी दूकानदारको आज्ञा दी। मित्र लोग एक एक करके गिलास उड़ाने लगे। सबको पिलाकर उसने स्वयं पीनेके लिए गिलास हाथमें लिया और पनवाड़ीसे पान लगानेको कहा। गिलासको होठोंसे लगा कर उसने दो घूंट पिए। सांप अभी तक पहलेकी तरह उसके गलेमें चुपचाप लटक रहा था। अब वह सहसा उसकी गर्दनके चारों तरफ़ लिपट कर ज़ोरसे तन गया। रसूलका दम घुटने लगा और उसके हाथसे शरबतका गिलास गिर पड़ा। रसूलने अपनी चेतनावस्थाके अन्तिम प्रयासमें नागपाशको ढीला करनेकी कोशिशकी परन्तु मरते हुए अत्याचारीकी अपेक्षा सांपमें बहुत अधिक शक्ति थी। दूसरे क्षण ही रसूलके दोनों हाथ फैल गए, उसकी पुतलियां ऊपरको चढ़ गईं, और वह दारुण वेदनाकी अवस्थामें, अकड़ता हुआ, पके फलकी भांति भूमि पर गिर पड़ा। अभागेके साथी इतने हतबुद्धि हो गए थे कि दो मिनट तक वह इस व्यापारको समझ तक न सके।

शत्रुका प्राणापहरण कर सांप फुंकार मारता हुआ उसके गलेसे निकला। निकल कर वह उसकी छाती पर फन खड़ा करके बैठ गया और खड़े हुए लोगोंकी तरफ़ देखने लगा। किसीका साहस न हुआ कि उस पर वार करे। तब वह तीन बार अपने दलित शत्रुके माथे पर, अपने फनका प्रहार कर ज़ोर ज़ोरसे फुंकार मारता हुआ नालीमें उतर गया, मानो वह घृणा और क्रोधमें कहता जा रहा था—"रसूल! रसूल! रसू—ल!"

शिलीमुख

ऐतिहासिक भूगोलका संक्षिप्त परिचय

प्राचीन कालमें जो सभ्य जातियां भूमध्य सागरके किनारे पर बसती थीं, उनमें फैनीशियन लोगोंका नाम पहले आता है। यह लेबनान पहाड़से लेकर भूमध्य सागरके पूर्वी किनारे तकके भूभागमें बसते थे। इनका देश उपजाऊ था। अपने समयमें यह प्रसिद्ध नाविक और व्यापारी थे। इनके देशमें सिडन और शयर नामक दो बन्दरगाह थे। पहले पहल इन्हीं लोगों ने अपने देशसे बाहर निकल कर पृथ्वी मण्डलके दूसरे देशोंका परिचय प्राप्त किया

था। इन्हींके इस ज्ञानसे पहले पहल भूगोल विद्या का प्रारम्भ हुआ है। इनका ज्ञान इस प्रकार है-

फैनीशियन लोगोंका प्राधान्य ईसाके १३०० वर्षोंसे लेकर १००० वर्ष पूर्व तक रहा। इन तीन सौ वर्षोंके भीतर उन लोगों ने भूमध्य सागरको चारों ओरसे मथ डाला। उसके किनारों पर भिन्न भिन्न स्थानोंमें उन्होंने अपने किले, कोठियाँ और नगर बनवाये। साइप्रस द्वीपमें अपनी नौ आबादियाँ क़ायम कीं और ईजियन द्वीपों पर अपना अधिकार जमाया। फिर सिसली और सारडेनिया को अपने प्रभाव क्षेत्रमें करके उत्तरी अफ्रीकेके किनारे कार्थेज नामका नगर बसाया। पीछेसे यह नगर उत्तरी अफ्रीकाके एक बलवान् और समृद्धि पूर्ण राज्यका प्रधान नगर होगया।

सारडीनिया और बैलारिक द्वीपोंकी खोज करनेके बाद फैनीशियन लोगोंने जिब्राल्टरका मुहाना पार किया। स्पेनके दक्षिण पूर्वी भागमें उन्होंने गेडिज़ (वर्तमान केडिज़) नामक नगर बसाया यहाँ उन्हें चांदी, लोहा, सीसा बहुत अधिक परिमाणमें मिला। फिर वह अटलांटिक महासागर में प्रवेश कर बिस्केकी खाड़ीसे होकर इंग्लैण्डके कानवालके तट पर जा उतरे। यहाँ उन्हें टीन मिली। उन्होंने कनाटी द्वीपों का भी पता लगाया। कार्थेज निवासी हन्नूके नेतृत्वमें जो जहाज़ी बेड़ा अफ्रीकाके तटवर्ती प्रदेशोंकी खोजमें निकला था वह कनाटी द्वीपोंसे होकर गया था। हन्नूके बेड़ेमें साठ जहाज़ थे, जिन पर मर्द औरत मिला करके तीस हज़ार आरोही थे। अफ्रीकाके पश्चिमी किनारे पर फैनेशियन लोगोंकी नई बस्तियाँ क़ायम करनेके लिए इस बेड़ेने यात्रा की थी और सीरालोनो तक गया था। हिमिलकोके नेतृत्वमें जो दूसरा बेड़ा गया था वह स्पेन और गालके किनारे किनारे ग्रेट ब्रिटेन जा पहुँचा था। उन्होंने ग्रेट ब्रिटेनको अलबियन और आयर्लैंडका आर्यनी नाम रख दिया था। फैनेशियन लोगोंका एक दूसरा दल लाल सागर होकर इण्डीज़ जा पहुँचा था। सीरिया और पैलेस्टाइनके पूर्ववर्ती देशोंमें जाकर वह व्यापार करते थे और उनसे पूर्ण रीति से परिचित थे।

भूगोल-सम्बन्धी उपर्युक्त ज्ञान-वृद्धिके बाद इस कार्यक्षेत्रमें यूनानी लोग अवतीर्ण होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

प्रसिद्ध यूनानी इतिहासज्ञ हेरोडोटस ईसाके लगभग ४५० वर्ष पूर्व विद्यमान था। उसके जीवन कालमें यूनान अपनी उन्नतिके शिखर पर पहुँच गया था। उसने भूमध्य सागरके तटवर्ती देशोंका वर्णन किया है। उसके वर्णनसे प्रकट होता है कि सभ्यताका प्रसार उत्तर और पूर्व ओर काला सागर, कास्पियन सागर, भारतकी सीमाओं और अरब सागरके किनारे तक हो गया था। परन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि उसने अपने समयके समृद्धि पूर्ण रोम नगर तथा फैनेशियन और कार्थेज वासियोंकी खोजोंका उल्लेख नहीं किया। हाँ वह यूनान, एजियन द्वीप तथा लघु एशियासे भले प्रकार परिचित था। उसने फैनेशियाकी यात्राकी मिस होकर नील नदीके किनारे किनारे होता हुआ वह अरब जा पहुँचा। वहाँसे वह मैसोपोटेमिया गया और दज़ला तथा फरात नदियोंको देखा। एशियाकी सीमाके समीप छोड़कर अफ्रीका को उसने समुद्रसे चारों ओर घिरा बताया है।

हेरोडोटसके लगभग सौ वर्ष पहले एशियामें ईरानियोंका साम्राज्य विद्यमान था। इसकी स्थापना सायरसने की थी और इसका विस्तार भारतकी सीमासे लेकर लघु एशिया तक था। सायरस ने असीरिया और बैबिलोनियाके प्राचीन साम्राज्योंको अपने साम्राज्यमें मिला लिया था और उसके उत्तराधिकारियोंने फैनिशिया, सायप्रस और मिस्र पर भी अधिकार कर लिया था। थ्रेस और मैसीडोनियाके यूरोपीय राज्य भी ईरानी साम्राज्यके अधिकारमें आ गये थे। परन्तु हेरोडोटसके जन्मके एक या दो वर्ष पहले ईरानियोंने यूनान

पर अपना अधिकार कायम करनेके लिए जो प्रयत्न किया था उनमें उन्हें सफलता नहीं मिली।

हेरोडोटसके समयमें यूनानके "भू मध्यसागर और काले सागरके किनारों पर भिन्न भिन्न स्थानों-में उपनिवेश स्थापित हुए थे। सिसलीका सिरा-कूज़, इटलीका दक्षिणी किनारा, मसीला (फ्रांस-का वर्तमान मर्सीलीज़), स्पेनका समुद्री किनारा, उत्तरी अफ्रिकामें सिरेनी, सायप्रस, बैजंटियम (कुस्तुन्तुनिया), थ्रेसका समुद्री किनारा, थ्योडो-सिया (काफ़ा) और क्रीमियामें यूनानकी नई आबादियां बस गई थीं।

फ़ैनिशियन लोगोंका कार्थेजका उपनिवेश यूनानकी उन्नतिके पहलेसे ही एक स्वाधीन राज्य-में परिणत हो गया था। सैरेनैकाके पश्चिम अफ्रिकाका समग्र उत्तरी तटवर्ती देश, समृद्धि पूर्ण टार्टीसस (बैटिका, अनडलुशिया) और जिब्राल्टर की जल प्रणाली कार्थेज राज्य के ही अधीन थी। पहले पहल यूनानियोंसे कार्थेज वालों का सामना सिसली द्वीपमें हुआ और इसे पहल ही युद्ध में वे यूनानियों से हार गये।

ईसाके पूर्व १००० वर्षसे लेकर लगभग ४५० वर्ष तक भूमध्य सागरके तटवर्ती सभ्य देशोंको संसारका जितना ज्ञान था उसका संक्षिप्त विवरण इतना ही है।

(२)

यूनानको पराभूत करनेके लिए जो प्रयत्न ईरान साम्राज्यने किये वह विफल हुए, वरन उसे स्वयम् उलटा पराजित होना पड़ा। इसका परि-णाम यह भी हुआ कि वहाँ गृह-युद्ध होने लगे। सम्राट अर्टाजरक्सीज़के विरुद्ध उसके छोटे भाई साइरसने विरुद्धाचरणका झगड़ा खड़ा कर दिया। परन्तु बैबिलनके समीप कुनक्साके युद्धमें (ईसाके ४०१ वर्ष पूर्व) वह मारा गया। इस समय यूनानमें स्पार्टा वालोंका प्राधान्य हो गया, और एथेन्स राज्य उनके आगे दब गया। इससे मैसा-डोनिया राज्यको हस्तक्षेप करनेका अवसर उप-स्थित हो गया। यह राज्य थेसलीके उत्तर यूनानी नगर राज्योंकी सीमाओं पर स्थित था। इसने प्लैटियाके युद्धमें ईरानियोंको पराजित कर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी।

दूसरे फिलिपके शासन कालमें मैसीडोनिया शक्ति सम्पन्न और समृद्धि पूर्ण हो गया। उसने यूनानके नगर राज्योंको पराभूत किया। अतएव ईरानके विरुद्ध वह सभी यूनानी सेनाओंका प्रधान सेनापति बना दिया गया। वह ईरान साम्राज्य पर आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहा था। परन्तु एक दिन उसे (ईसाके ३३६ वर्ष पूर्व) किसी ने मार डाला। उसका पुत्र एलेकज़ेंडर लगभग बीस वर्षके वयमें अपने पिताके सिंहासन पर बैठा और ईरान पर आक्रमण करनेके लिए जो सैन्य-संग्रह हुआ था उसका सेनापतित्व उसने ग्रहण किया। स्वदेशके विद्रोहोंका पूर्ण रूपसे दमन करके उसने (३३४ वर्ष ईसाके पूर्व) दरे दानि-याल पार किया। उसके साथ बीस हज़ार पैदल और पाँच हज़ार सवार थे। कोजाबाई नदी पर उसने ईरानी सेनाओं पर आक्रमण करके उन्हें पराजित किया। बिना किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा के वह लघु एशियासे होकर सिलीशियाके पहाड़ों पर जा पहुँचा। वहाँ तृतीय दाराने सैन्य-संग्रह कर रखा था। इसुस नामक बन्दरगाह पर घोर युद्ध हुआ। ईरानी हार गये और दारा अपना माल-असबाब तथा बाल बच्चे छोड़कर भाग खड़ा हुआ। अतएव एलेकज़ेंडर दक्षिण ओरको मुड़ा और फ़ैनिशिया तथा सीरिया पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने मिस्र पर चढ़ाई की और उसे जीत कर नील नदीके डेल्टा पर अलेकज़ेंड्रिया नामक अपने नामका नगर बसाया। (ईसाके ३३२ वर्ष पूर्व)।

अफ्रिकामें एलेकज़ेंडर लिबियन मरुभूमि तक गया। वहाँसे वह फिर पूर्वको लौटा और दारासे भिड़नेके लिए मेसोपाटैमियाकी यात्रा की, क्योंकि दारा यहाँ सैन्य संग्रह कर रहा था। मोसलके

समीप अरबला नामक स्थानमें युद्ध हुआ और दाराकी फिर हार हुई। अलेकजेंडरके लिए बैबिलन, सूसा और ईरान-साम्राज्यकी राजधानी पर्सीपोलिसका मार्ग खुल गया। उसने विजयीके रूपमें ससैन्य राजधानीमें प्रवेश किया। वहाँसे उसने बैक्ट्रियाना (आधुनिक बलख) के सूबेदारका पीछा किया। उसकी यह यात्रा मुख्य ईरानके बीचसे हुई। आक्सस नदी पार करके वह सगदियाना (बोखारा) जा पहुँचा और जैक्सरटीज़ नदी पर सीदियन लोगोंको पराजित किया।

दो वर्ष बाद अलेकजेंडर भारतपर आक्रमण करनेको रवाना हुआ। यूरोपवालोंको उस समय इसका नाम भर मालूम था। उसने अटकके पास सिन्धु नदी पार की और पंजाब देश पारकर सतलज नदीपर आ पहुँचा। यहाँसे उसे विफल मनोर्थ होकर लौटना पड़ा। उसने सतलजमें नावोंका एक बेड़ा बनवाया और अपनी सेनाको तीन भागोंमें बांट दिया। एक भागने जल मार्गसे प्रस्थान किया और दूसरा उसके साथ साथ किनारे किनारे रवाना हुआ। इस सैन्य दलको मार्गमें भारतीयोंसे जगह जगह युद्ध करने पड़े। जब यह दोनों दल समुद्र तट पर जा पहुंचे तब उसने एक दलको जहाज़ों द्वारा ईरानकी खाड़ीसे भेज दिया और दूसरा दलने बिलोचिस्तानकी मरु भूमिसे होकर यात्राकी। इस दलके साथ एलेकजेंडर भी था। तीसरे दलको उसने अफ़गानिस्तान होकर लौट जानेको पहले ही भेज दिया। जितना सेना लेकर वह भारत गया उसका चौथाई भाग ही ईरानमें लौटकर आ सका।

इस दिग्विजयसे अलेकज़ेंडर विश्व प्रख्यात हो गया। ईरान लौट आने पर उसके दरबारमें लीबिया, इटली, कार्थेज, सीदिया, गाल और आयबेरियाके राजदूत आ आ कर उपस्थित होने लगे। इस समय उसकी शक्ति उन्नतिके शिखर पर पहुँच गई थी। उसके समयमें पेथियस नामक एक ग्रीक नाविकने समुद्र-यात्रा कर यूरोप महाद्वीप की परिक्रमा की थी। इसीने सर्व प्रथम इस बातका पता लगाया था कि यूरोपके उत्तरमें भी समुद्र है। यह यूनानी उपनिवेश मसीलाका निवासी था।

अलेकजेंडरके समयमें इटलीमें रोमन लोग अपने पड़ोसी राष्ट्रोंसे लड़-भिड़ रहे थे। उन्होंने सम्पूर्ण दक्षिणी इट्रूरियाको अपने अधिकारमें कर लिया था। और दक्षिणके वीर सयमाइट लोगोंके साथ उनका भयंकर युद्ध चल रहा था। इस समय सिसलीमें यूनानी और कार्थेजवाले समग्र-द्वीप पर अधिकार जमानेके लिए परस्पर लड़ रहे थे। द्वीपका पश्चिमी भाग कार्थेजवालोंके अधिकारमें था और पूर्वी भाग यूनानवालोंके अधिकारमें था। वहांका सिराकूज नगर एक प्रसिद्ध बन्दरगाह और बहुत मज़बूत दुर्ग हो गया था।

(३)

अलेकजेंडरकी मृत्युके बाद विशाल मेसीडोनिया-साम्राज्य उसके सेनापतियोंने आपसमें बांट लिया। यह लोग बीस वर्ष तक परस्पर लड़ते रहे। अन्तमें चार सेनापतियोंकी प्रधानता स्थापित हो गई। इन्होंने अपने अपने स्वतन्त्र राज्य क़ायम किये। टालेमीने मिस्र, लीबिया, उत्तरी सीरिया लेकर जूड़ियाको अपने राज्यमें शामिल किया। कसेंडर यूनान और मुख्य मैसीडोनियाका शासक हुआ। लिसीमाचसका राज्य थ्रेस और पश्चिमी लघु एशियामें स्थापित हुआ। और सिलूकसने लघु एशियासे लेकर इंडस तकके राज्य पर अधिकार जमाया।

जिस समय अलेकज़ेंडरके सेनापति अपने स्वामीका राज्य आपसमें बाँट लेनेके लिए एक दूसरेसे लड़ रहे थे उस समय रोमन लोग इटलीमें अपना प्राधान्य क़ायम करनेके प्रयत्नमें लगे थे। पूर्वोक्त समनाइट लोगोंको पराभूत करके उन्होंने इटलीके समग्र दक्षिणी प्रायद्वीप पर अपना अधिकार जमा लिया था। यहीं उनका यूनानी प्रवासियोंसे सामना हुआ। यूनानियोंने अपनी रक्षा

यताके लिए इपीरसके राजा पिरहसको बुलाया। अपने स्वदेशवासियोंका विचार कर पिरहसने इनकी सेनाओंका नेतृत्व ग्रहण कर रोमन लोगोंको युद्धमें परास्त किया। भारतीय राजाओंका अनुकरण कर उसने इस युद्धमें हाथियोंका उपयोग किया था। रोमन लोगोंको पराजित करके वह सिसली चला गया और वहाँके यूनानियोंकी, जो कार्थेजवालोंसे लड़ रहे थे, सहायता करने लगा। उस समय समग्र दक्षिणी इटली पर रोमन लोगोंका अधिपत्य स्थापित हो गया और दूरस्थ राष्ट्रोंको इस बातका पता लग गया कि एक नया बलवान् राष्ट्र अस्तित्वमें आया है। इजिप्टके शासकने रोमसे सन्धि करनेके लिए उसी समय अपना राजदूत भेजा था।

इस प्रकार समुन्नत होते ही रोमन लोगोंका कार्थेजवालोंके साथ भयङ्कर युद्ध छिड़ गया जिसका सिलसिला लगभग सौ वर्ष तक जारी रहा। पहली मुठ भेड़ (ईसा के २६४—२४१ वर्ष पूर्व) एक मात्र सिसली—द्वीपके अधिकारके लिए हुई। इस युद्धके समय रोमन लोगोंने अपना जहाजी बेड़ा बनाया और धीरे धीरे अनेक विपत्तियोंको झेलनेके बाद उन्होंने अपना प्राधान्य समुद्रपर क़ायम कर लिया। इस युद्धके अन्तमें सिसली—और सारडीनिया दोनों द्वीप कार्थेजवालोंके अधिकारसे निकल गये, उन पर रोमन लोगोंका प्रभुत्व स्थापित हो गया।

ईसाके पूर्व तीसरी सदीके मध्य भागमें कार्थेज वालोंका प्रभाव आयबेरिया (स्पेन) पर बहुत अधिक बढ़ गया था और उसका एक बड़ा भाग उनके अधिकारमें आ गया था। हमिलकरने वहाँ बर्सीलोना नामक नगर और उसके दामाद हस्ड्रूबलने नवीन कार्थेज (कर्टाजीना) नामक नगर बसाया था। उनकी रोम से एक सन्धि हुई थी जिसके अनुसार वह इबरस (इब्रो) नदीके आगे नहीं बढ़ सकते थे। हमिलकारकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीपर उसका पुत्र हनीबाल आसीन हुआ। इसने सगुनटम (मुराबिड्रो) पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया। इस नगरको यूनानियोंने बसाया था और आयबेरियामें यह एक प्रसिद्ध व्यापारका केन्द्र और समृद्धि पूर्ण नगर था। इस पर आक्रमण करनेसे पूर्वोक्त सन्धि भङ्ग हो गई। अतएव (ईसाके २१८ वर्ष पूर्व) रोमन लोगोंने युद्धकी घोषणा कर दी।

गाल लोगोंसे युद्ध जारी रहनेके कारण रोमन लोगोंकी शक्तिका विस्तार उत्तरी इटलीमें फैल गया और उसका प्रभाव आड्रियाटिक सागरके पूर्वी किनारे पर पड़ने लगा। कार्थेजवालोंके साथ जो दूसरा युद्ध (ईसाके २१८—२०१ वर्ष पूर्व) छिड़ा उसमें हनीबाल लिटिलसेंटबर्नार्ड नामक दर्रेसे आल्प्स पहाड़को पार कर इटलीमें घुस आया और रोमन लोगोंको ट्रसीयानी झीलके तट पर तथा कनाईमें पराजित किया। परन्तु ज़ामाके युद्ध में रोमन लोगोंने हनीबालको घोर रूपसे पराजित किया। फलतः सन्धि स्थापित हुई जिसके अनुसार कार्थेज करद राज्यमें परिणत कर दिया गया और स्पेनमें उसके अधिकृत देशों पर रोमन लोगोंका अधिकार हो गया।

कनाईके युद्धके बाद हनीबालके साथ मैसीडोनियावालोंने परस्पर सहायता करनेकी सन्धिकी थी। इससे रोमन लोगोंने उन पर भी चढ़ाई कर दी। मैसीडोनिया और यूनानमें तीन युद्ध करके रोमन लोगोंने सम्पूर्ण यूनान पर अपना संरक्षण स्थापित कर दिया और योरप तथा एशियामें मैसीडोनियावालोंके जो अधिकृत देश थे उन्हें छिन्न भिन्न कर दिया।

यद्यपि इस दूसरे युद्धमें कार्थेजवाले अपमान जनक सन्धि करनेको बाध्य किये गये थे तो भी उसकी शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं हो गई थी। वह पुनः शक्ति सम्पन्न हो गया। अतएव रोमन लोगोंने उन पर फिर चढ़ाई की थी। कार्थेज तीन वर्ष तक घिरा रहा। अन्तमें जब कार्थेज वाले हार गये तब रोमन लोगोंने उसे जलाकर बिलकुल तहस–नहस कर डाला। इस प्रकार (ईसाके १४६ वर्ष पूर्व)

एक समयका शक्तिशाली कार्थेज-साम्राज्य इस भूमण्डलसे सदाके लिए लोप हो गया।

अलेकज़ेंडरके टालमी नामक जिस सेनापतिके हिस्सेमें मिस्र पड़ा था उसके छठे वंशधरके शासन-कालमें कार्थेजका पराभव हुआ था। यूनानियोंके राजत्वकालमें अलेकज़ेंड्रिया नगर उनकी राजधानी थी। वह यूनानी सभ्यता एवं तत्कालीन सभ्य संसारके व्यापारका भी केन्द्र हो गया था। ईसाके कोई तीन सौ वर्ष पूर्व युक्लिड वहींके एक प्रसिद्ध स्कूलमें गणितका अध्यापक था। इसी समय वहाँके जगत्प्रसिद्ध पुस्तकालयका प्रबन्धक सायरेनीका एराटोथेनीज़ बनाया गया था। संसारके प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिर्विदोंमें इसकी गणना की जाती है। इसका नाम भूगोल विद्याकी उन्नतिके सम्बन्धमें सदा आदरके साथ लिया जायगा। पृथ्वीके मेरीडियन—द्वारा नापनेकी विधिका पता पहले पहल इसीने लगाया था। उसकी प्रणाली इस समय भी प्रचलित है। ईसाके पूर्व २७६ वर्षसे १९४ वर्ष तक यह प्रसिद्ध व्यक्ति विद्यमान रहा।

कार्थेजके बिनष्ट हो जानेके बाद रोमन लोगोंकी शक्ति बढ़ती ही गई। अलेकजडरके सेनापति लिसीमाचसके उत्तराधिकारी अटालसने लघु एशियाके परगामस नामक अपने एक संरक्षित राज्यको रोमन लोगोंको प्रदान कर दिया। अतएव रोमन-साम्राज्यका विस्तार एशियामें भी हो गया। इसके बाद उन्होंने ट्रांसल्पाइन गालको जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। पहाड़ोंके उत्तरमें नोरीकम (टायरल) तथा अक्काई सेक्सटिआई (डौफ्रिनीके आल्समें, ऐक्स) की घाटियोंमें उनकी मुठभेड़ किम्ब्री और ट्यूटानीज़से होगई। अफ्रीकामें नुमीडिया (अलजीरिया) के राजा जुगुर्थाको तथा मौरीटैनिया (मराको) के राजा जूबाको पराभूत करके यह राज्य भी उनके अधिकार में आ गये।

इन विजयोंके बाद रोमन लोगोंने एशियाकी ओर ध्यान दिया। उन्होंने तीन भयङ्कर युद्धोंमें पोन्टसके मिथरीडाटेस और अर्मीनियाके उसके सहायक टिगरैनेसको पराजित किया। ईसाके ६६ वर्ष पूर्व उन्होंने मिथरीडाटेसको यूफ्रेटीज़के किनारे अन्तिम बार पराजित किया और समग्र लघु एशिया पर उनका अधिकार हो गया। यही नहीं फैनिशिया, सीरिया और पैलेस्टाइनके राज्योंने भी उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। ईसाके ६३ वर्ष पूर्व उन्होंने यहूदियोंके पवित्र नगर जेरूसलेम पर आक्रमण कर उसकी शहरपनाहको तोड़ फोड़ कर नष्ट कर दिया।

उपर्युक्त घटनाओंके बाद जूलियस सीज़रने गाल देश पर अपना आक्रमण प्रारम्भ किया। उसने उसे पूर्ण रूपसे जीतकर जर्मन जातियोंको वहाँसे खदेड़ कर राइन नदीके पार कर दिया। इसके बाद उसने (ईसाके ५५ वर्ष पूर्व) अलिबयन पर चढ़ाई की और उसका ब्रिटैनिया नाम रख दिया। सीज़रके बधके बाद रोम-साम्राज्यमें जो गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ उसमें आक्टाविआनस (बादको सम्राट् आगस्टस) के प्रतिद्वन्द्वी पूर्वी रोमन-राज्यके शासक मार्कस एन्टोनियसकी सहायता मिस्रकी महारानी क्लियोपाट्राने की थी। परन्तु अक्टियमके जल-युद्धमें एन्टनियस हार गया। इसके बाद उसकी तथा महारानी क्लियोपाट्रा दोनोंकी मृत्यु हो गई। अतएव मिस्र भी रोमन साम्राज्यमें मिला लिया गया। आगस्टसने मुल्की और फ़ौजी दोनों अधिकार अपने हाथमें कर लिये। इस प्रकार (ईसाके २८ वर्ष पूर्व) रोमन-साम्राज्य पर निरङ्कुश सम्राट्का शासन प्रारम्भ हुआ। ईसाई-सन्के प्रारम्भमें यह साम्राज्य उन्नतिके शीर्ष-स्थान पर पहुँच गया था। यूरपमें उत्तरमें वह राइन और डैन्यूब नदियोंके किनारे तक फैला था और दक्षिणमें लघु एशिया और सीरिया तथा समग्र उत्तरी अफ्रीका पर रोमन सम्राट्का बोल बाला था।

आगस्टसके समयसे कान्स्टैंटाइनके समय तक रोमन सेनाओंने रोम साम्राज्यकी सीमाओंको और भी आगे बढ़ाया। फर्थस आवफोर्थ और

क्लाइडतक इन्होंने ब्रिटेनको जीत लिया, डन्यूब नदीके उत्तर डैशिया राज्यको अपने अधीन किया, अर्मीनिया और पर्थिया पर भी उनकी सफल चढ़ाइयाँ हुईं और मिस्रमें न्यूबियातक नील नदी-की घाटी पर उनका अधिकार हो गया।

कैन्स्टंटाइनके शासन-कालमें दो महत्वपूर्ण बातें हुईं। एक तो ईसाई-धर्म राज्य-धर्म स्वीकार किया गया, दूसरी रोमसे राजधानी उठा कर बिज़ैंटियम (सन् ३३० रोम, साम्राज्यकी राजधानी बनाया गया और सम्राट् के नाम पर इसका नाम कान्स्टंटिनोपल रख दिया गया।

इस समय ईरानमें ससान-राज घरानेकी प्रभुता था। उनके साशन-कालमें ईरानकी जैसी उन्नति हुई, वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। उसकी शक्ति यहाँ तक बढ़ गई थी कि रोमन सेनाओंके भी दाँत उन्होंने खट्टे कर दिये थे।

चीनका विश्वसनीय इतिहास चोधरानेके राजत्वकाल (ईसाके पूर्व ११२२ से २५५ वर्ष तक) से प्रारम्भ होता है। इसी समय वहाँ कान्फूसियस और मिंसि यसका प्रताप चमका था (ईसाके पूर्व ६०० वर्ष) तिन घरानेके शासन-कालमें शिह्वानती ने (ईसा के पूर्व २२१ से २०६ वर्ष तक) चीनके छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्योंको जीत कर अपने राज्य-को विस्तृत किया और उत्तरके हौंग-नान (हूण) या तातारियोंके आक्रमणोंसे बचनेके लिए उसने चीनकी प्रसिद्ध दीवारका निर्माण किया। ईसाई सन्के प्रारम्भ होनेके कुछ समय बाद ही चीनियों-का पार्थिया वालोंसे सम्बन्ध स्थापित होने लगा था और वह रोम-साम्राज्यका भी परिचय पा गये थे। जिस समय कैन्स्टन्टाइन ने अपनी नई राज-धानी स्थापित की थी उस समय चीनकी राज-धानी नानकिन था।

रोमन-राज्यके उदय-कालमे भौगोलिक ज्ञानकी कुछ कम वृद्धि नहीं हुई। पोंटस निवासी स्ट्रैबो भूगोल विद्याका एक प्रसिद्ध विद्वान् था। इसने यूरोप, अफ्रीका और एशियाका जो विवरण लिखा है उसमें चीनका भी उल्लेख हुआ है। परन्तु इस कालमें क्लाडियस टालिमीने इस सम्बन्धमें बड़ी ख्याति प्राप्त की। यह अपने समयका एक नामी ज्योतिषी और भूगोलका विद्वान् था। यह अलेक्ज़ेंड्रियाका निवासी था और लगभग सन् १५० ईसवी के विद्यमान था। इसे भूगोलका ज्ञान उत्तरमें शेटलेंडसे दक्षिणमें नीगर और नीलनदीकी झीलों-तक तथा पूर्वमें चीनके अज्ञात भागों और सीलोन द्वीप तकका था।

सूर्यसिद्धान्त

[गताङ्क से आगे]

परन्तु इससे कुछ संतोष नहीं होता क्योंकि प्राचीन लेखोंसे यह सिद्ध होता है कि वसंत संपात विन्दु अश्विनीके आरंभ स्थानसे २७ अंश-से भी अधिक आगे रहा है। शतपथ[1] ब्राह्मणमें लिखा है कि कृत्तिकाएं ठीक पूर्व दिशामें उदय होती हैं और अन्य तारे पूर्व दिशासे हटकर उदय होते हैं। जिससे स्पष्ट है कि उस समय कृत्तिकाएं ठीक विषुवद्वृत्त पर थीं। आजकल यह प्रयागमें कोई २७° उत्तर उदय होती हैं। इससे यह गणना की जा सकती है कि जिस समय कृत्तिकाएं विषु-वद्वृत्त पर थीं उस समय वसंत सम्पात विन्दु कहां था। कृत्तिकाके योग तारा (η–Tauri) का भोग ३६°६′ और शर प्रत्यक्ष वेध[2] से ४°२′ होता है। यदि क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका

१–एकं द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकास्तद्भूमानमेवैतदुपैति तस्मात्कृत्तिका स्वादधीत ॥२॥ एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवंते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवंते तत्प्राच्यामेवास्यैत-द्दियाहितौ भवतस्तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ ३ ॥ शतपथ ब्राह्मण २.१.२. [भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ १२७ में उद्धृत]

२–भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ५५५।

कोण (परम अपक्रम) २४° मान लिया जाय तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि शतपथ ब्राह्मण-कालमें कृत्तिकाका भोग वसंत सम्पातसे क्या था। चित्र ५१ में व आजकलका वसंत सम्पात विन्दु और प व पा विषुवद्वृत्त है। और वा शतपथ-ब्राह्मण कालका वसंत सम्पात विन्दु तथा च क वा विषुवद्वृत्त है। क कृत्तिका तारापुंज है जो विषुवद्वृत्तपर दिखलाया गया है। कद कृत्तिकाका कदम्बाभिमुख शर है जो ४°२′ माना गया है। द वा कृत्तिकाका शतपथ ब्राह्मण कालका ऋणात्मक भोग है, अ अश्विनीका आदि विन्दु तथा अ द कृत्तिकाका भोग है जो ३६°६′ माना गया है। व अ अयनांश है जो १९८२ वि० के मेष संक्रान्तिके दिन २२°४१′ के लगभग है।

गोलीय समकोण त्रिभुज क वा द में नेपियरके नियमके अनुसार,
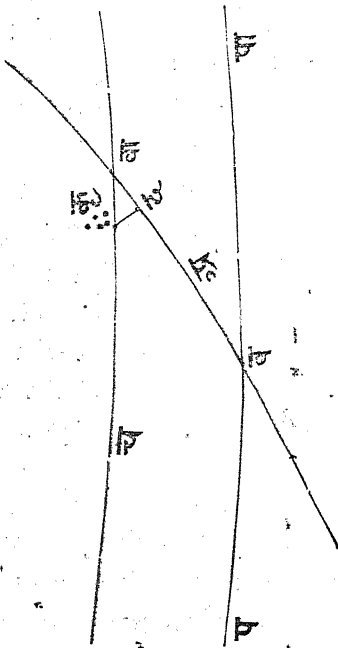
चित्र ५१

ज्या (दवा)=स्पर्शरेखा(कद) × स्पर्श रेखा(९०° − <कवाद)
= स्पर्श रेखा ४°२′ × स्पर्श रेखा (९०° − २४°)
= ·०७०५ × २·२४६०
= ·१५८३
∴ दवा = ९°६′

∴ कृत्तिकाका भोगांश शतपथ-ब्राह्मण कालमें वसंत सम्पातसे ९°६′ पच्छिम था।

∴ ववा=वअ+अद+दवा=२२°४१′+३६°९′+९°६′
= ६७°५६′

इसलिए यह सिद्ध है कि वसंत सम्पात विन्दु शतपथ ब्राह्मणके समय जहां था उससे इस समय ६७°५६′ पच्छिम है। परन्तु सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार वसंत सम्पात विन्दुओंका महत्तम अंतर ५४° से अधिक नहीं होना चाहिये। इसलिए यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्तका यह मत कि वसंत सम्पात विन्दु मध्यम स्थानसे २७° पूर्व और पच्छिम जाता है ठीक नहीं है।

इस संबंधमें केई[1] महाशय कहते हैं कि कृत्तिकासे कृत्तिका तारापुंज (Pleiades) को नहीं समझना चाहिये वरन् वसंत सम्पातको समझना चाहिये जैसे आजकल युरोपीय विद्वान सायन मेष (First point if Aries) को समझते हैं। ऐसा माननेसे शतपथ ब्राह्मणकाल उतना प्राचीन नहीं ठहरता जितना पूर्वोक्त गणनासे ठहरता है। पूर्वोक्त गणनासे शतपथ ब्राह्मणका समय आज से कोई ४८६१ वर्ष पूर्व अथवा विक्रमसे २८८५ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है जो केई महाशयको असम्भव जान पड़ता है। परन्तु मेरी समझमें केई महाशय भ्रममें हैं। पूर्वोक्त अवतरणमें जहाँ कृत्तिका शब्द आया है वहां इसका प्रयोग बहुवचनमें है जिससे प्रकट है कि कृत्तिकाका अर्थ कृत्तिका तारापुंज है जिसमें कोरी आँख से ६ तारे देख पड़ते हैं। यदि इसका अर्थ वसंत सम्पात विंदु होता तो बहुवचनमें प्रयोग कदापि न होता। इसके सिवा यह विचार करनेकी बात है

१—Memoirs of Archaeological Survey of India No. 18. Hindu Astronomy by G. R. Kaye pp. 23-24.

कि जब कृत्तिका उसी नामके तारा पुंजको न समझ कर वसंत सम्पात विंदुको समझा जाय तो क्या इस विंदुको देखकर पूर्व दिशाका ज्ञान हो सकता है ? क्या आजकल सायनमेषको देखकर पूर्व दिशाका ज्ञान हो सकता है अथवा अग्रहायन पुंजके इल्वलके प्रथम तारे (δ orionis) से जो आजकल प्रायः विषुवद्वृत्तपर है ? इस विषयको बहुत न बढ़ाकर अब संक्षेपमें यह बतलाया जायगा कि आजकलके भौतिक ज्योतिष शास्त्र (physical astronomy) के अनुसार अयन चलन या वसंत सम्पातको पीछे खसकनेका क्या कारण है, जिससे यह भी सिद्ध हो जायगा कि इसका पूर्ण भगण होता है न कि लोलककी तरह आंदोलन।

प्रत्यक्ष वेधसे क्या परिणाम निकलता है ?

यदि किसी तारे के किसी समय के विषुवांश और क्रांति की तुलना उसी तारेके अन्य समयके विषुवांश और क्रान्तिसे की जाय तो देख पड़ता है कि इनमें बहुत अन्तर होता जाता है। उदाहरणके लिए ध्रुव तारे[1] (polaris) के विषुवांश[2] और क्रांति यह हैं :—

१८५० ई० की पहली जनवरी को	विषुवांश १ घं० ५ मि० २३ से० क्रान्ति + ८८°३०′४६″
१९०० ई० की पहली जनवरी को	विषुवांश १ घंटा २२ मिनट ० सेकंड क्रान्ति + ८८° ४६′ ४३″

यह कहा जा सकता है कि विषुवांश और क्रांतिके परिवर्तनका कारण है कि तारा स्वयं चलता है। दूसरा अनुमान यह हो सकता है कि विषुवांश और क्रान्ति जिन भुज युग्मों (axes of coordinats) से निश्चय किये जाते हैं उन्हींमें परिवर्तन होता होगा।

५० वर्षमें ध्रुवतारेकी क्रांति १६′ ४″ अधिक हुई जिससे स्पष्ट होता है कि ध्रुवतारेसे ध्रुव का अंतर प्रायः १६″ प्रतिवर्ष कम हो रहा है अर्थात् या तो ध्रुवतारा ध्रुवकी ओर जा रहा है या ध्रुव तारेकी ओर जा रहा है। जब अन्य तारोंसे ध्रुवताराके अंतरोंकी तुलना की जाती है तो देख पड़ता है कि इनमें परस्पर इतनी भिन्नता नहीं हो रही है जितनी ध्रुव और ध्रुवतारोंमें हो रही है। ध्रुवतारेमें जो स्वयं गति (proper motior) है वह इतनी सूक्ष्म है कि इससे १६″ प्रति वर्षका अंतर नहीं पड़ सकता। यह भी देखा गया है कि ५० वर्षोंमें अन्य तारोंका भी अंतर ध्रुवसे बहुत कम पड़ गया है परन्तु उनका परस्पर अन्तर प्रायः जैसेका तैसा ही है। इन सब बातोंसे यही परिणाम निकलता है कि ध्रुव और ध्रुवतारेके बीचका अन्तर ध्रुवतारेकी गतिके कारण नहीं कम हो रहा है वरन् आकाशीय ध्रुवकी गतिके कारण कम हो रहा है।

यदि ध्रुव अपना स्थान सदैव बदलता रहता है तो यह भी आवश्यक है कि विषद्वृत्त भी जो ध्रुवसे सदैव ९० अंश दूर रहता है अपना स्थान निरंतर बदला करे। पर विषुवद्वृत्तके चलते रहने पर भी क्रान्ति वृत्तसे उसका जो मध्यम झुकाव है वह सदैव प्रायः एक सा रहता है। यह झुकाव मध्यम मानसे केवल कुछ कलाएं इधर उधर आंदोलन करता है। सूर्य की परम क्रान्ति १८५० ई० में जितनी थी प्रायः उतनी ही १९०० ई० में थी इसलिए विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्तके बीचका कोण प्रायः स्थिर रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विषुवद्वृत्त इस प्रकार चलता है कि यह क्रान्तिवृत्तको सदैव समान कोण पर काटता है और विषुव सम्पात बिन्दु (वसंत या शरद् सम्पात बिन्दु) पृथ्वीकी गतिकी विलोम दिशामें भ्रमण कर रहा है। इससे यह

१—Balls Spherical astronomy pp. 171. साधारणतः लोग समझते हैं कि ध्रुव तारा एक ही जगह देख पड़ता है और इसी की परिक्रमा अन्य तारे करते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है। ध्रुवतारा भी आकाशीय ध्रुवकी जो अदृश्य है परिक्रमा करता है और उसके बहुत पास है इसलिए कुछ भेद नहीं जान पड़ता।

२—देखो चित्र ४० और इसका वर्णन।

सिद्ध होता है कि कदम्ब (क्रान्ति वृत्तीय ध्रुव) स्थिर है और आकाशीय ध्रुव (विषुवद्वृत्तीय ध्रुव) उसके चारों ओर सदैव समान दूरी पर रहता हुआ परिक्रमा कर रहा है। इसी गतिको विषुव सम्पात विन्दुका चलन (Precession of equinoæes) या अयन चलन कहते हैं। यह गति विशेषकर सूर्य और चंद्रमाके आकर्षणके कारण होती है इसलिए इसको चांद्र सौर अयन चलन (luni-solar precesion कहते हैं।

चांद्र सौर अयन चलनका कारण—

ऊपर सिद्ध हो चुका है कि जिस अक्ष पर पृथ्वी २४ घंटेमें एक बार घूम जाती है उसकी दिशामें जो परिवर्तन होता है उसीसे विषुव सम्पात विन्दु चल रहा है। पृथ्वीकी अक्षकी दिशामें जो विचलन हो रहा है उसका कारण यह है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् ध्रुवों पर कुछ चपटी और विषुवत् रेखा पर कुछ उभड़ी हुई है इसलिए सूर्य और चंद्रमाका लब्ध (resultant) इसके केन्द्रसे होकर नहीं जाता है। चित्र ५२ में
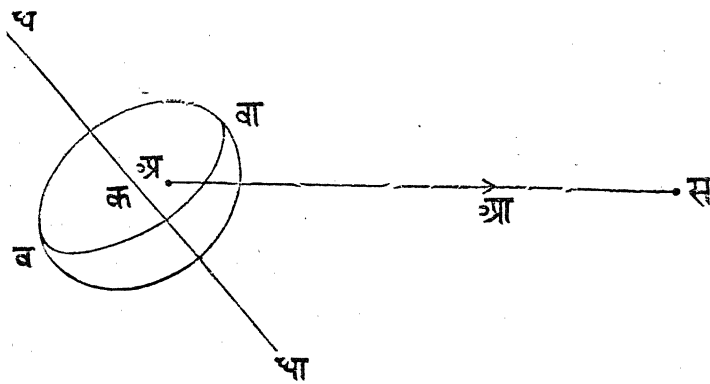
चित्र ५२

'स' को सूर्य, 'क' को पृथ्वीका केन्द्र 'धधा' को पृथ्वीका अक्ष जो आकाश तक बढ़ा दिया गया है, 'व वा' को विषुवत रेखा, 'अ' को वह विन्दु जहां सूर्यका आकर्षण काम कर रहा है तथा 'अ अ' को सूर्यके आकर्षणकी दिशा समझो। यदि पृथ्वी पूर्ण गोल होती तो 'अ' और 'व' एकही विन्दु पर होते जिससे 'व व' विषुवत रेखाका तल सूर्यकी ओर न झुकता। चित्रसे यह भी प्रकट है कि निरक्षदेशीय मेखलाका आधा भाग जो 'व' की ओर है सूर्यके निकट है और दूसरा आधा भाग जो 'व' की ओर है सूर्यसे दूर है। इसलिए सूर्य का आकर्षण 'व' भागकी ओर कम होगा जिसका परिणाम यह होता है निरक्षदेशीय तल सूर्यकी ओर कुछ झुक जाता है जिससे पृथ्वीका अक्ष 'ध ध' कुछ डगमगा जाता है। इससे यह भी जान पड़ता है कि विषुवद्वृत्तका तल झुकते झुकते क्रान्तिवृत्तके तलसे जिसपर सूर्य रहता है अंतमें मिल जायगा और पृथ्वीका अक्ष क्रान्तिवृत्तसे समकोण बनाने लगेगा तथा ध्रुव और कदम्ब एक हो जायंगे। परन्तु बात ऐसी नहीं है। क्योंकि पृथ्वी बहुत तीव्र गतिसे अपने अक्ष पर घूम रही है जिससे विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तके तलोंके बीचका कोण सदैव प्रायः एकसा बना रहेगा और ध्रुव कदम्बके चारों ओर एक वृत्त पर परिक्रमा करता रहेगा।

ठीक ऐसी ही बात लट्टू या फिरकीके घूमनेमें भी होती है। जिस समय लट्टू तीव्र गतिसे घूमता रहता है उस समय उसका अक्ष उसके भार या गुरुत्वके प्रभावसे लम्ब रेखासे कुछ झुका अवश्य रहता है परंतु गतिकी तीव्रताके कारण वह पृथ्वीके धरातलसे मिल नहीं जाता। हां, जिस समय गति बहुत मंद हो जाती है उसी समय लट्टू पृथ्वी पर लग जाता है। चित्र ५३ में 'अ' लट्टूका गुरुत्वाकेंद्र (Centre of gravity) है जिस पर लट्टूका गुरुत्व अथवा पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण 'अ गु' रेखाकी सीधमें काम कर रहा है, ध धा लट्टूके अक्षकी रेखा है जिसका एक सिरा 'ध' भूतल पर लगा

हुआ घूम रहा है और दूसरा सिरा 'धा' 'धक' लम्ब रेखासे कुछ हटा हुआ इसीकी परिक्रमा कर रहा है। जबतक लट्टूकी गति तीव्र रहती है तबतक यह इसी भाँति भूतलकी ओर प्रायः एक सा
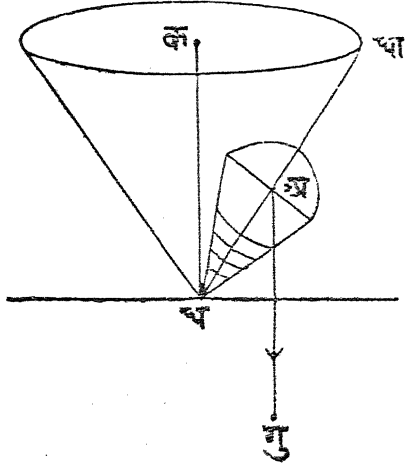
चित्र ५३

झुका हुआ 'क ध' लम्बकी परिक्रमा करता रहता है। 'क ध' रेखा के चारों ओर एक परिक्रमा जितने समयमें होती है उतने समयमें लट्टू 'ध धा' अक्षपर नहीं मालूम कितनी बार घूम जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटेमें एक बार घूमती हुई क्रान्तिवृत्तीय अक्षकी, जिसकी तुलना 'ध क' लम्ब रेखासे हो सकती है, कोई २५००० वर्षमें एक परिक्रमा कर लेती है जिसके कारण वसंत-सम्पात प्रति सायन* वर्ष ५०·२ विकलाके लगभग विलोम दिशामें खसकता जाता है। चित्र ५२ और ५३में समानता दिखलानेके लिए कई अक्षर एकसे हैं। चित्र ५२में पृथ्वी लट्टूकी तरह है, 'अ' इसका सौराकर्षण केन्द्र है, ध धा लट्टूका अक्ष है और यदि 'क' से 'स अ' के समानान्तर रेखा खींची जाय तो यह 'ध क' के समान होगी।

जो कुछ सूर्यके सम्बन्धमें कहा गया है वही चंद्रमाकेलिए भी लागू होता है। चंद्रमाका प्रभाव सूर्यके प्रभावके दूनेसे कुछ अधिक होता है क्योंकि चंद्रमा पृथ्वीके बहुत पास है।

सूर्य और चंद्रमामेंसे प्रत्येकका प्रभाव उस समय सबसे अधिक होता है जिस समय इनकी उत्तर या दक्षिण क्रांति सबसे अधिक होती है। जिस समय यह विषुवद्वृत्तपर होते हैं उस समय इनका प्रभाव शून्य होता है। परन्तु ग्रहोंका उलटा प्रभाव भी वसंत संपातकी गति पर पड़ता है। ग्रह सम्बन्धी विचलनका परिमाण प्रति वर्ष ०°११ विकला पूर्वकी ओर होता है। ग्रहोंके कारण वसंत सम्पातमें ही विचलन नहीं होता वरन् पृथ्वीकी वृत्ता भी विचलित होती है जिससे क्रान्तिवृत्तका तल डगमगा जाता है तथा क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका कोण (परम अयक्रम) प्रतिवर्ष आधा विकलाके लगभग कम होता जा रहा है। परन्तु यह कभी एक सीमाके भीतर ही, अर्थात् मध्यम स्थानसे १½ अंश कम या अधिक होती है।

अभीतक बतलाया गया है कि सौरचान्द्र अयनचलनके कारण आकाशीय ध्रुव कदम्बकी परिक्रमा एक वृत्त पर कर रहा है। परन्तु यह कुछ स्थूल है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा सदैव क्रान्तिवृत्त पर नहीं रहता वरन् इससे ५ अंशके लगभग उत्तर या दक्खिन हो जाता है तथा इसका पात (राहु) प्रायः १९ वर्षमें एक परिक्रमा कर लेता है। अयन चलनके कारण जिस प्रकार

*वसंत सम्पात बिन्दुसे चलकर जितने समयमें सूर्य फिर वसंत सम्पात बिन्दु पर आ जाता है उतने समयको सायन वर्ष (trohical yeos) कहते हैं। यह ३६५·२४·२२१६ मध्यम सावन दिनके समान होता है।

क्रान्तिवृत्तके एक बिन्दुसे चलकर जितने समयमें सूर्य फिर उसी बिन्दुपर आ जाता है उसे नाक्षत्र सौर वर्ष (Sibereol feat) कहते हैं। यह ३६५·२५६३७४ मध्यम सावन दिनके समान होता है। यही रवि या पृथ्वीका शुद्ध भगणकाल भी कहलाता है। (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ ३१)

सूर्य सिद्धान्तके अनुसार रविका जो भगणकाल है वही (३६५.२५८७५६ मध्यम सावन दिन) सौर वर्ष हमारे यहां माना जाता है। (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ ३१)

आकाशीय ध्रुव क्रान्तिवृत्तीय ध्रुवकी परिक्रमा २३° २७′ व्यासार्द्धके वृत्तपर करता है उसी प्रकार राहुकी विलोम गतिके कारण चन्द्रकक्षाका ध्रुव भी क्रान्तिवृत्तीय ध्रुवकी परिक्रमा ५ व्यासार्द्धके वृत्तपर करता है और इस चन्द्रकक्षाके ध्रुवकी परिक्रमा आकाशीय ध्रुव अयन चलनके उस भागके कारण करता है जो चंद्रमाके प्रभावसे होता है।

इन दोनों कारणोंसे आकाशीय ध्रुव कभी मध्यम स्थानसे कुछ आगे रहता है और कभी पीछे तथा कदम्बसे इसकी दूरी कभी कुछ कम हो जाती है और कभी कुछ अधिक। इसलिए आकाशीय ध्रुवका यथार्थ मार्ग तरंगाकार होता है। इस परिवर्तनका चक्र प्रायः १६ वर्षका होता है जितनेमें राहुका एक चक्र होता है। चन्द्रमाके कारण आकाशीय ध्रुवके स्थानमें जो यह तनिक सा परिवर्तन होता है उसे अक्षविचलन (mutation) कहते हैं।

अक्षविचलनका परिणाम यह होता है कि वसंत सम्पात विन्दु अपने मध्यम स्थानसे जो सौर-चान्द्र, और ग्रहसंबन्धी अयनचलनसे निश्चय किया जाता है कभी आगे रहता है और कभी पीछे। इसके कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका झुकाव (परमापक्रम) भी अपने मध्यममानसे कभी कुछ कम और कभी कुछ अधिक होता है।
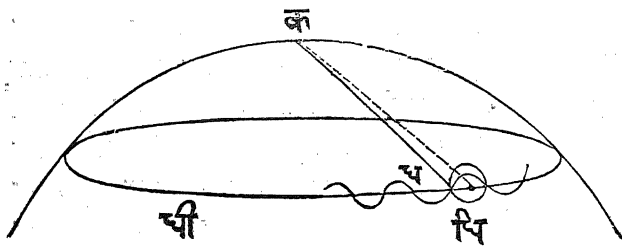
चित्र ५४

अक्षविचलन का आविष्कार ब्रैडली नामक ज्योतिषीने १७८४ विक्रमीयसे १७६८ विक्रमीय की (१७२७-१७४१ ईस्वी) अवधिमें, अजगरके 'ग' तारे (Draconis)के निरंतर वेधसे किया था। अक्षविचलनका स्पष्ट ज्ञान चित्र ५४ से होता है।

मान लो 'धिधी' एक छोटा वृत्त है जिसे मध्यम ध्रुव कदम्बकी परिक्रमा करता हुआ बना रहा है। 'धि' को केन्द्र मानकर एक दीर्घ वृत्त खींचो जिसका दीर्घ अक्ष कदम्बकी सीधमें हो और १८″.५ बड़ा हो और लघु अक्ष उसी छोटे वृत्तपर १३″.७ बड़ा हो। ज्यों ज्यों मध्यम ध्रुव 'धि' छोटे वृत्त पर दीर्घवृत्तको अपने साथ लेता हुआ समान गतिसे विलोम दिशा में चलता है त्यों त्यों यथार्थ ध्रुव 'ध' दीर्घवृत्तकी परिधिपर ६७९८ दिनमें (राहुके भगण कालमें) एक परिक्रमा करता जाता है।

'धिक' कदम्बसे ध्रुवका मध्यम अंतर और 'धक' स्पष्ट अंतर है। जिस समय 'ध' दीर्घ अक्ष पर रहता है उस समय वसंत सम्पात विन्दुके मध्यम और स्पष्ट स्थान एक होते हैं अन्यथा वसंत सम्पात विन्दुका स्पष्ट स्थान मध्यम स्थानसे कुछ आगे या पीछे होता है। इसी प्रकार जब 'ध' लघु अक्षपर रहता है तब कदम्बसे ध्रुवके मध्यम और स्पष्ट अन्तर अथवा मध्यम और स्पष्ट झुकाव (क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका कोण) एक होता है अन्यथा कुछ कम या अधिक।

अयन चलन और परमापक्रमकी वार्षिक गति स्थिर नहीं होती वरन् इसमें कुछ सूक्ष्म परिवर्तन होता रहता है। एक सायन वर्षमें इनके जो मान होते हैं वह नीचे लिखे सूत्रोंसे जो भौतिक ज्योतिर्विज्ञान तथा उच्च गणितके आधार पर स्थापित किये गये हैं प्रकट होते हैं:—

१९०० ईस्वीसे 'व' वर्ष उपरान्त,
सायन वार्षिक मध्यम अयन चलन
(वसंत संपात चलन)

= ५०″·२५६४ + ०″·०००२२२५ व*........(१)

तथा विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तके बीचका कोण (यदि अन्य छोटे पदोंको छोड़ दिया जाय)

= २३°२७′८″·२६ − ०″·४६८ व*.........(२)

अक्ष विचलन के (mutation) कारण वसंत सम्पात विन्दुके मध्यम स्थानमें जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

− १७″·२३५ ज्या (सायन राहु) − १″·२७ ज्या (२ सायन सूर्य)*.........(३)

तथा क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचके कोणके मध्यम मानमें जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

+ ९″·२१ कोटिज्या (सायन राहु) + ०″·५५ कोटिज्या (२ सायन सूर्य)*.........(४)

इष्ट कालमें राहुका जो सायन भोगांश होता है अर्थात् विषुव सम्पात विन्दुसे क्रान्तिवृत्तपर राहु जितना दूर होता है वही सायन राहु तथा सूर्यका जो सायन भोगांश होता है वह सायन सूर्य कहा गया है।

इस अयन चलनके कारण वसंत संपात विंदुसे प्रत्येक तारेका अंतर सदैव बढ़ रहा है जिससे तारेका सायन भोगांश बढ़ता जाता है। यदि वर्षके आरंभका तारेका भोगांश दिया हुआ हो तो किसी अन्य समयका भोगांश इस सूत्र† से जाना जाता है—

ता = त + ५०″·२६ व − १७″·२३५ ज्या सायन राहु − १″·२७ ज्या २ सायन सूर्य.........(५)

जहां

त = वर्षके आरंभमें तारेका मध्यम सायन भोगांश

व = वर्षके आरंभसे इष्ट कालका अंतर (वर्षके दशमलव भिन्न में)

इस सूत्रके दाहिने पक्षका दूसरा पद ५०″·२६ व मुख्य है क्योंकि व जितना ही बड़ा होता जायगा उतना ही अधिक तारेका भोगांश होगा।

तीसरे पदमें सायन राहु आया है जो यदि शून्य या १८०° हो तो ज्या सायन राहु शून्य होगा। इस समय तीसरा पद बिलकुल लुप्त हो जायगा, अर्थात् जब सायन राहुका भोगांश शून्य या १८०° हो तो तीसरा पद उड़ जायगा। और जब सायन राहु ९०° होगा तो तीसरे पदका मान − १७″·२३५ तथा जब सायन राहु २७०° होगा तब तीसरे पद का मान + १७″·२३५ होगा। इसके कारण राहुके एक भ्रमण कालमें वसंत सम्पात विन्दुका स्पष्ट स्थान ९ वर्षके लगभग मध्यम स्थानसे पूर्व और ९ वर्षके लगभग मध्यम स्थानसे पश्चिम रहता है।

सूर्यके कारण भी जो तनिक सा अक्ष विचलन होता है वह चौथे पदसे सूचित किया गया है। इसका चक्र ६ महीनेमें बदलता है क्योंकि जिस समय सूर्यका सायन भोगांश शून्य, ९०°, १८०°, २७०° और ३६०° होगा उस समय इसका मान शून्य होगा और जिस समय सूर्यका भोगांश ४५°, १३५°, २२५°, ३१५° होगा उस समय इसके मान क्रमानुसार − १″·२७, + १″·२७, − १″·२७ और + १″·२७ होंगे।

इसी प्रकार परमापक्रममें भी अक्ष विचलनके कारण परिवर्तन होता रहता है। अब इन सूत्रोंसे अयनांश जाननेकी रीतिका उदाहरण दिया जाता है:—समीकरण (१) में वसंत सम्पातकी वार्षिक गतिका सूत्र दिया हुआ है।

परन्तु यह वर्ष सायन है और हमारा वर्ष जो सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार माना जाता है इससे बड़ा है। इसलिये पहले त्रैराशिकसे यह जानना चाहिये कि हमारे एक वर्षमें अयनकी गति क्या होती है अर्थात् जब ३६५·२४२२१६ दिनमें अयन गति ५०″·२५६४ + ०″·०००२२२५ व होती है तब ३६५·२५८७५६५ दिनमें क्या होगी। सरल करने

---

* R.S. Balls' Spherical Astronomy pp. 177, 186-187

† इस सूत्रका निश्चय ज्योतिषियोंके एक सम्मेलनमें जो पेरिसमें हुआ था सन् १८९६ ई० के मई मासमें हुआ था (देखो R. S. Balls' Spherical Astronomy pp. 186).

पर १८०० ई० की जनवरीके आरम्भ कालमें सूत्र-का रूप यह होता है

५०″·२५८६७६+·०००२२२५१ व*·········(६)

और १८२२ ई० की जनवरीके आरम्भ कालमें वार्षिक अयन गतिका सूत्र उपर्युक्त सूत्रमें 'व' की जगह २२ रखकर सरल करनेसे यह आता है—

५०″·२६३५७१+०००० २२२५१ व†·········(७)

जनवरीके आरम्भसे मेष संक्रान्ति कालतक प्रायः १०२ दिन या ·२७९२ वर्ष होते हैं इसलिए यदि सूत्र (७) में व की जगह ·२७९२ रख कर सरल किया जाय तो १८७६ वि० की मेष संक्रान्ति काल-में अयनकी वार्षिक गति

५०·″२६३६३३+·०००२२२५१ व·········(८)

होगी जब कि व का मान हमारे सिद्धान्तीय वर्षके अनुसार लिया जाय ! इस सूत्रसे यह बात जानी जाती है कि वसंत सम्पात विन्दु प्रति वर्ष (हमारे सिद्धान्तके अनुसार) क्रान्ति वृत्तके किस विन्दुसे कितना पीछे हट जाता है। परन्तु हमारा सिद्धान्तीय वर्ष शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षसे ·००२३८२०६५* दिन बड़ा है इसलिये इतने समयमें हमारे मेष संक्रान्तिका विन्दु प्रति वर्ष कुछ आगे बढ़ जाता है। इसका परिमाण जाननेकेलिए मेष संक्रान्ति कालमें सूर्यकी जो स्पष्ट दैनिक गति होती है उससे उपर्युक्त अन्तरको गुणा करना चाहिये। १८२२ ई० के 'नाटिकल अलमनकसे मेष संक्रान्ति कालके आगे और पीछेके सूर्यके भोगांशों-का अन्तर ५८′४६″·२ होता है। इसलिए इस दिन सूर्य्य की स्पष्ट दैनिक गति ५८′४६″·२ होती है। इसको उपर्युक्त अन्तरसे गुणा करनेपर ८″·३९९६ सूर्यकी गति होती है। इसलिए यह समझना चाहिये कि हमारे वर्षके कुछ बड़ा होनेके कारण अयनांशमें प्रति वर्ष ८″·३९९६ की वृद्धि होती है। इसको सूत्र (८) में सम्मिलित करनेसे संक्रान्ति कालमें वार्षिक अयन गतिका सूत्र यह होगा—

५०″·२६३६३३+·०००२२२५१ व+८″·३९९६···

अथवा ५८″·६६३२३३+·०००२२२५१ व···(९)

यदि यह जानना हो कि 'व' वर्षमें अयनांशकी वृद्धि क्या होगी तो यह सूत्र काममें लाना होगा—

$$\text{५८″·६६३२३३ व}+\text{·०००२२२५१}\left\{\frac{\text{व(व+१)}}{\text{२}}\right\}\dagger$$

अथवा ५८″·६६३२३३ व+·०००१११२५५ व
+·०००१११२५५ व^{२}

या ५८·६६३३४४२५५ व+·०००१११२५५ व^{२}

या संक्षेपमें

५८·६६३३४४ व+·०००१११२५५ व^{२}

·············(१०)

इससे अयनांशकी जो वृद्धि आवे उसमें अक्ष विचलनका संस्कार सूत्र (३) के अनुसार करना चाहिए।

अब यह देखना है कि १८७९ वि० की मेष संक्रान्ति कालमें अयनांश कितना था। इसके लिए केवल यह जानना पर्याप्त है कि मेष संक्रान्ति काल

---

* यदि शुद्ध नाक्षत्र वर्ष लिया जाय जो ३६५·२५६३७४४ दिनका होता है तो एक शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमें अयन गति ५०·″२५८३५१+·०००२२२५१ व होती है।

† शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षके अनुसार १८२२ की जनवरी-के आरम्भमें वार्षिक अयन गति ५०″·२६३२४६+०″·००० २२२५१ व और १८२२ की मेष संक्रान्ति जो १८७९ की मेष संक्रान्ति है इसका रूप ५०″·२६३३०८+०″·००० २२२५१ व होगा।

* ३६५·२५८७५६४८४ मेंसे ३६५·२५६३७४४१७ घटानेपर यह आता है

† सूत्र (९) के दूसरे पद में जो व है उसकी जगह क्रमा-नुसार १, २, ३,···व तक उत्थापन करके सबको जोड़नेसे

$$\text{·०००२२२५१}\left\{\frac{\text{व(व+१)}}{\text{२}}\right\}$$ आता है। यह श्रेढी व्यवहार (Arithmetical progression) की संख्याओंके जोड़ने-की तरह है।

में सूर्यका वेध सिद्ध सायन भोगांश क्या है जिसके जाननेका आदेश अगले ११ वें तथा १७-१८ श्लोकों में है।

इसी अध्यायमें आगे यह बतलाया जायगा कि शंकुकी छाया नापकर सूर्यका सायन भोग कैसे जाना जा सकता है और उससे अयनांश कैसे जाना जा सकता है। आजकल यह काम दूरदर्शक यंत्रोंसे बहुत सूक्ष्मता पूर्वक हो सकता है। जिस समय मेष संक्रान्ति होती है उसी समयका सूर्यका सायन भोग जान लिया जाय तो यही अयनांश होता है। परन्तु दूरदर्शक यंत्रोंके अभावमें यही बात नाविक पंचांग (Nautical almanac) से भी जानी जा सकती है। इसलिए इसीसे १९७९ विक्रमीय अथवा १९२२ ई० की मेष संक्रान्ति कालका सूर्य्यका सायन भाग निकाला जाता है। १९७९ विक्रमीयकी मेष संक्रान्ति सूर्य सिद्धान्तके अनुसार १३ अप्रैल गुरुवारको उज्जैनके मध्यम ६ बजे प्रातःकालके उपरांत १८ घड़ी ४७ पल १२ विपल पर हुई। काशी उज्जैनसे ७२ पल विपल ५०† पूर्व है। इस लिए काशीमें मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजेके उपरांत २० घड़ी ० पल और २ विपल पर होगी। परन्तु काशी ग्रीनिचसे ८३°३'४" अथवा १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल पूर्व है। इसलिए जिस समय काशीमें मेष संक्रान्ति हुई उस समय ग्रीनिचमें मध्यम ६ बजेके उपरांत ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल रहा होगा।

इस वर्ष

१२ अप्रैलके मध्यम मध्याह्न कालमें सूर्यका भोगांश* २१°४७'३१"·५

और

१३ „ २२°४६'१७"·७

अंतर..........५८'४६"·२

इसलिए ६० घड़ीमें सूर्यकी स्पष्ट गति ५८' ४६"·२ हुई।

१३ अप्रैलको ग्रीनिचका मध्याह्न काल मध्यम ६ बजेसे ६ घंटे अथवा १५ घड़ी उपरांत हुआ और मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजेसे ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल पर ही हो गयी इसलिए संक्रान्ति कालसे १५ घड़ी—६ घड़ी ९ पल ३१ विपल=८ घड़ी ५० पल २९ विपल पश्चात १३ अप्रैलका मध्याह्न हुआ जिस समय सूर्यका भोगांश २२°४६'१७"·७ था। इससे प्रकट है कि संक्रान्ति कालमें सूर्यका भोगांश इससे कम होगा। परन्तु सूर्यकी स्पष्ट गति ५८'४६"·२ है इसलिए ८ घड़ी ५० पल २९ विपल में सूर्य

$$\frac{५८'४६''·२ \times ८ \text{ घड़ी } ५० \text{ पल } २९ \text{ विपल}}{६० \text{ घड़ी}}$$

अथवा ८'३९"·६९ चला होगा।

इसलिए १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति कालमें सूर्यका अयनांश

= २२°४६'१७"·७—८'३९"·६
= २२°३७'३८"·१

बस इसीमें सूत्र १० के अनुसार जो कुछ वृद्धि आवे उसको जोड़ देनेसे किसी अन्य मेष संक्रान्ति कालका मध्यम अयनांश प्राप्त होगा। यदि अक्ष विचलनका संस्कार सूत्र (३) की सहायतासे कर दिया जाय तो संक्रान्ति कालका स्पष्ट अयनांश प्राप्त हो जायगा। यदि संक्रान्ति कालके सिवा किसी अन्य समयका अयनांश जानना हो तो संक्रान्तिसे जितने दिन बीते हों उतने दिनकी अयन गति (जब कि एक वर्षमें ५८"·६६* लगभग अयन

† Nautical almanac for 1922 pp. 40.

* काशीकी देशान्तर (ग्रीनिचसे) ८३°३'४" पूर्व और उज्जैनका ७५°४६'६" पूर्व है। इन दोनोंका अंतर ७°१६' ५८" हुआ जो ७२ पल ५० विपलके समान होता है। इस लिए यही उज्जैनसे काशीका देशान्तर हुआ।

*अधिक शुद्ध जानना हो तो सूत्र (९) से उस वर्षकी अयन गति निश्चय करना चाहिए।

की गति होती है) मेष संक्रान्तिके मध्यम अयनांश-में जोड़कर अक्षविचलनका संस्कार कर दे तो उस समयका स्पष्ट अयनांश ज्ञात हो जायगा।

उदाहरण—काशीमें १९८२ वि० की कार्तिक शुक्ल ८ रविवारको अयनांश क्या होगा ?

१९७९ से १९८२ तक तीन वर्ष होते हैं इसलिए तीन वर्ष में अयनांश की वृद्धि जाननेके लिए सूत्र १० में 'व' की जगह ३ लिखकर सरल करो,

४८″·६६३३४४ × ३ + ·०००१११२४४ × ३²

=१७५″·९९००३२ + ०″·००१००१२९५

=१७५″·९९१

=२′५५″·९९

इसको २२°३७′३८″·१ में जोड़ा तो २२°४०′ ३४″·०९ मेषसंक्रान्ति कालका मध्यम अयनांश हुआ।

१९८२ वि० की मेष संक्रान्ति वैशाख कृष्ण ५ सोमवारको काशीके मध्यम ६ बजेके उपरांत ६ घड़ी ३४ पल ३६ विपल पर लगी। वैशाख कृष्ण ५ से कार्तिक शुक्ल ८ तक १९५ सावन दिन होते हैं जो ·५३३९ सौर वर्षके समान हुआ। इतने समयमें ५८″·६६ प्रति वर्षके हिसाबसे मध्यम अयनांश ५८″·६६ × ·५३३९ = ३१″·३२ और बढ़ेगा। इसलिए कार्तिक शुक्ल ८ को मध्यम अयनांश २२°४१′५″·४१ होगा।

अक्ष विचलन संस्कारके लिए कार्तिक शुक्ल ८ के दिन सायन राहु और सायन सूर्यका भोगांश जानना आवश्यक है। इस दिन प्रातः काल राहुका निरयन भोगांश ३रा७°१३′८″ है। सायन भोगांश जाननेके लिए २२°४१′५″ जोड़ दो तो हुआ ३रा२९°५४′१३″ अथवा स्थूल रूप से ३रा२९°५४′ या ११९°५४′ यही राहुका सायन भोगांश हुआ।

इसी तरह सूर्यका सायन भोगांश जानना चाहिए। कार्तिक शुक्ल ८ की मध्यरात्रिको सूर्यका निरयन भोगांश १८९°८′१०″ होगा इसलिए प्रातः काल ६ बजे इसका निरयन भोगांश ११८°३३′ स्थूल रूपसे होगा। इसमें २२°४१′५″ जोड़ देने पर इसका सायन भोगांश २११°४′ स्थूल रूपसे हुआ। इसलिए इस दिन सूत्र (३) के अनुसार अक्षविचलन संस्कार

= −१७″·२३५ ज्या ११९°५४′ − १″·२७ ज्या २११°४′

= −१७″·२३५ ज्या ६०°६′ − १″·२७ ज्या (१८०° + ३१°४′)

= −१७″·२३५ × ·८६६९ + १″·२७ × ·५१६०

= −१४″·९४ + ०″·६६

= −१४″·२८

इसको मध्यम अयनांश २२°४१′५″·४१ में जोड़ा तो कार्तिक शुक्ल ८के प्रातःकाल स्पष्ट अयनांश हुआ २२°४०′५१″·१३।

केतकर जी ने अपने ज्योतिर्गणितमें अयनांश जाननेकी जो सारिणी दी है उससे उपर्युक्त अयनांश ६′ या ७′ कम आता है इसका पहला कारण यह है कि केतकर जी ने मेष संक्रान्तिका आरंभ उस समय माना है जिस समय चित्रा नामक तारा सूर्यसे १८०° रहता है जब कि आजकल सूर्य सिद्धान्तके अनुसार मेष संक्रमण कोई ७ घड़ी पहले ही हो जाता है। दूसरा कारण यह है कि केतकर जी ने शुद्ध नाक्षत्र वर्षका प्रयोग किया है और इस भाष्यमें सूर्य सिद्धान्तके अनुसार वर्ष मानकर गणनाकी गयी है।

वेध करके अयनांशकी परीक्षा करना—

स्फुटं दृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्द्वये।
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते।
अन्तरांशैरथावृत्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिके ॥११॥

अनुवाद—११—उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवसंक्रान्तिके दिन यह बात सहज ही देखी जा सकती है कि नक्षत्र किधर चला है। यदि छायासिद्ध सूर्यके भोगांशसे (जिसकी रीति आगे १७-१९ श्लोकोंमें बतलायी गयी है) गणित सिद्ध सूर्यका भोगांश कम हो तो समझना चाहिए कि जितना इन दोनोंका अंतर है उतना ही नक्षत्र चक्र अथवा अश्विनीका आदि विन्दु पूर्वको चला है अर्थात् वसंत सम्पात विन्दुसे पूर्व है। परन्तु

यदि अधिक हो तो उतना ही नक्षत्र चक्र पच्छिम चला हुआ समझना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—छायासे सूर्यका जो भोगांश आता है वह वसंत सम्पात विन्दुसे सूर्यका भोगांश (सायन भोगांश) है और गणितसे जो भोगांश आता है जिसकी रीति स्पष्टाधिकारमें बतलायी गयी है वह अश्विनीके आदि विन्दुसे होता है। इसलिए इन दोनोंका अंतर यथार्थ अयनांश हुआ। इससे सिद्ध होता है कि अयनांशकी परीक्षा वेधसे भी करनी चाहिए। सूर्य सिद्धान्तकारका मत है कि अश्विनी-का आदि विन्दु जो क्रान्तिवृत्तका भी आदि विन्दु समझा जाता है वसंत सम्पात विन्दुसे २७° पूर्व या २७° पच्छिमतक जा सकता है। इससे अधिक नहीं। ऐसा ही मत और भी कई प्राचीन आचार्योंका है। परन्तु कुछ आचार्य इससे भिन्न मत भी रखते हैं जिसकी चर्चा पहले की गयी है। प्राचीन वाक्योंसे* भी यह सिद्ध होता है कि वसंत सम्पात विन्दु आजकलके अश्विनीके आदि विन्दु से २७° से भी अधिक पूर्व रहा है। भौतिक ज्योति-र्विज्ञानसे जो कुछ सिद्ध होता है वह ऊपर बतलाया ही जा चुका। परंतु इसकी सत्यताका प्रत्यक्ष प्रमाण तो तब मिलेगा जब वसंत संपात विन्दु वास्तवमें अश्विनीके आदि विन्दुसे २७° से भी अधिक पच्छिम हो जायगा। सूर्य सिद्धान्तके अनुसार कलियुग संवत ५४०० में अथवा विक्रम संवत २२५६ में आज से २७५ वर्ष उपरांत २७° का अयनांश पूरा होगा। परन्तु वेधसे इसका प्रमाण इससे पहले ही मिल जायगा क्योंकि वि० १९८२ की मेष संक्रांति कालमें मध्यम अयनांश २२°४०′ ३४″·०९ होगा जो २७° से केवल ४°१९′२६″ के लगभग कम है। सूत्र (१०) को इसके समान करके समीकरण बनाकर 'व' का मान निकाल लेनेसे उतने वर्षकी संख्या निकल आवेगी जितने वर्ष में अयनांशकी इतनी वृद्धि होगी। अब

४°१९′२६″ = ५८″·६६३३४४व + ०″·०००१११२५५व^{२}

या १५५६६″ = ५८″·६६३३४४व + ०″·०००१११२५५व^{२}

या ·०००१११२५५व^{२} + ५८·६६३३४४व − १५५६६ = ०

∴ व = $\dfrac{-५८·६६३३४४ \pm \sqrt{(५८·६६३३४४)^{२} + ४ \times ·०००१११२५५ \times १५५६६}}{२ \times ·०००१११२५५}$

= २६६ वर्षके लगभग

इसलिए प्रकट है कि १९८२ + २६६ = २२४८ विक्रमीयके दो चार वर्ष उपरांत ही यह सिद्ध हो जायगा कि पूर्ण भगण होता है अथवा आंदोलन।

यदि यह बात प्रत्यक्ष हो गयी कि वसंत सम्पात विन्दु पूर्ण भगणके कारण पीछे खसकता ही जायगा तो भारतीय पंचाग-निर्माणकी रीति तथा तिथियों और पर्वोंके निश्चय करनेकेलिए संशोधनकी अत्यन्त आवश्यकता पड़ेगी। फलित ज्योतिषके लिए योगों और मुहूर्तों के निश्चय करनेके जितने नियम हैं उनमें भी महान परिवर्तन करना होगा।

*देखो पहले श्लोकके विज्ञान भाष्यमें शतपथ ब्राह्मण का उद्धरण तथा तत्सबंधी गणना।

व्यापारिक साबुन-निर्माणमें रसायन के उच्च ज्ञानकी आवश्यकता

सब रसायनवेत्ता इस बातको जानते ही हैं कि साबुन बनानेके लिए चर्बिकाम्लकी दाहक सोडे या दाहक पोटाशके साथ परस्पर क्रिया करवानी पड़ती है। वैसे तो यह एक साधारण सी बात प्रतीत होती है, परन्तु जबतक कि उनकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं व परिस्थितियों में हुई प्रतिक्रिया (reactions) का ज्ञान न हुआ हो तो अच्छा और शुद्ध साबुन बनानेमें कठिनाई उप-स्थिति होती है। आजकल जबकि साबुनके (Industry) उद्योगमें बहुत वृद्धि हो रही है और अच्छेसे अच्छे साबुन बनने लग गए हैं हमें यह शंका होनी स्वाभाविक ही है कि साबुनके निर्मा-णके लिए क्या रसायनके पूर्ण ज्ञानकी आवश्यकता है? यदि है तो क्यों?

साबुन निर्माणके लिए उसके कच्चे अम्ल-की साधारण परीक्षामें सबसे प्रथम तैलका विश्लेषण करना परमावश्यक है। कई बार तैलमें पानी इत्यादि मिला होनेसे (Hydrolysis) आर्द्रविश्लेष द्वारा तैल खराब हो जाता है और उसमें दुर्गन्ध आने लगती है। तैलमें कभी कभी स्वतन्त्र अम्ल (free fatty acid) भी होता है। यदि तैलमें ०.३% तक यह उपस्थित हो तो उससे कोई हानि नहीं होती परन्तु तैलमें स्वतन्त्र अवस्थामें इसकी मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये। तैलमें स्वतन्त्र अम्लकी मात्रा देखनेके लिए तैलका अम्ल-परिमाण (acid-value) देखना आवश्यक है। acid-value के साथ साथ (saponification value) क्षारपरिमाणका जानना भी अत्यावश्यक है।

साबुन बनानेवाला यदि इन दोनों बातोंको जानता होगा तो उसे तैलमें free acidity से olive की प्रतिशत मात्रा ज्ञात हो जायगी, जिससे वह उस तैलको कठोर करके साबुन बनानेके काम में ला सकता है। saponification value जानने से अभिप्राय यह है कि रसायन वेत्ताको इस बातका ज्ञान हो जाय कि कौन सा तैल कितने कास्टिक से saponify हो सकता है, जिससे साबुन निर्माणमें काष्टिककी मात्रामें अन्तर न पड़े।

इसके बाद फिर तैलोंके साफ़ तथा शुद्ध करनेका ज्ञान होना चाहिये। तैलके रंग, उनके मैल इत्यादिको रासायनिक विधियों तथा वायुकी सहायतासे दूर कर सकते हैं। तैलोंको बे-रंग करनेकी मुख्यतः दो विधियाँ हैं—

१. chromate और २. permangnate। इन विधियोंकी सहायतासे आजकल सब तैल साफ़ किए जाते हैं।

इसके बाद उज्जीकरण (Hydrogenation of oils) के ज्ञानकी आवश्यकता है। इससे आजकल पतलेसे पतले तैल एरण्डी सरसों तथा तिलका तैल इत्यादि चर्बीकी तरह कठोर करके साबुन बनानेमें प्रयुक्त होते हैं। इस विधिमें तैलके साथ निकल चूर्ण तथा उज्जनको प्रयुक्त करते हैं। १८० ताप परिमाण पर १ प्रतिशत निकलसे अच्छी क्रिया हो जाती है। इसमें ध्यान रखनेकी बात यह है कि तैलका ताप परिमाण (Temperature) उच्च न हो और दबाव बहुत हो। इस प्रकारसे तैल द्वारा बनावटी घी भी तय्यार किया गया है। फिर आर्द्रविश्लेष (Hydrolysis) का ज्ञान होना आवश्यक है। इसमें कास्टिक पोटाश, गन्धकाम्ल, (Twiche's reagent) भाप तथा लाइपेज (Lipase) इत्यादिसे तैलको फाड़कर उसके ग्लिसरीनको पहिले ही पृथक् कर लेते हैं। साबुन बनानेवाले प्रायः सब इस बातको जानते ही हैं कि गर्म विधिमें ग्लिसरीन साबुनका कोई भाग नहीं होता। इसलिए इसे तैलसे पहले ही अलग करके जो शुद्ध चर्बिकाम्ल बचता है वह साबुन बनानेके काम में आता है। इस प्रकारसे इस चर्बिकाम्लके साथ काष्टिक सोडेकी जगह सोडा (Na_2CO_3) से पर्याप्त वायुमण्डलके दबावपर सस्ता साबुन बनाया गया है।

सुगन्धिकी परस्पर मिलावटका ज्ञान होना भी आवश्यक है। इसमें अन्तिम बात साबुनको सस्ता करना है। दूसरे कारखानोंके साबुनोंका विश्लेषण करके उनके अच्छे अच्छे नुस्खे अपने यहां प्रयुक्त करने चाहिये। यदि किसीके साबुनकी बाज़ारमें माँग अधिक है तो उसका विश्लेषण करके पता लगाया जाये कि इसके साबुनमें क्या विशेषता है। और उसी तरहका वा उससे अच्छा अपना साबुन बनाकर बाज़ारमें भेजा जाये।

मैंने विज्ञानके पाठकोंको केवल दिग्दर्शन मात्र कराया है कि किस प्रकार एक साबुन बनानेवालेको पूर्ण व उच्च रसायन ज्ञानके बिना कठिनता उपस्थित हो सकती है। यदि अच्छा साबुन बनाना हो तो उसके लिए रसायनके पूर्ण ज्ञानीकी आवश्यकता होगी।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २० | मीन संवत्, १९८१ | संख्या ६

ग्राहकोंसे निवेदन

श्री० पं० सुधाकर द्विवेदी लिखित समीकरण मीमांसा नामक पुस्तक पाठकोंकी सेवामें भेजी जा चुकी है। अब श्री० पं० गोपालकेशव गर्दे, एम ए. और पं० गोमती प्रसाद अग्निहोत्री लिखित 'निर्णायक' नामक पुस्तक 'विज्ञान' के ग्राहकोंकी सेवा उपस्थित की जाती। यह पुस्तक साढ़े पांच वर्षोंसे हमारे पास प्रकाशनार्थ पड़ी हुई है। इसका एक अध्याय 'विज्ञान' भाग १० संख्या ४, मकर संवत् १९७६ में छपा भी था। उस समय 'विज्ञान' जिस प्रेसमें छपता था वह गणितका काम करनेमें असमर्थ था इसलिए बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा था। इसीलिए इस पुस्तक का शेष भाग 'विज्ञान' द्वारा भी प्रकाशित न हो सका। 'निर्णायक' गणितका एक आवश्यक और सुन्दर अंग है, इसलिए परिषत्ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करना उपयोगी समझा। हिन्दीमें अभी उच्च वैज्ञानिक साहित्यके पढ़ने और मोल लेनेवाले इतने सज्जन नहीं हैं कि उच्च गणितकी पुस्तकके निकलनेकी आशा हो। अब प्रेसमें गणितकी पुस्तकें छापनेका प्रबन्ध है, इसलिए विज्ञानके ग्राहकोंके भरोसे इस पुस्तकको प्रकाशित करना उचित समझा गया। आशा है विज्ञानके ग्राहक इस पुस्तक को सुरक्षित रखेंगे। लेखक महोदयोंने बड़े धैर्य्यका परिचय दिया है कि इतने दिनोंतक इस पुस्तकके प्रकाशित होनेकी राह देखते रहे।

मंत्री
विज्ञान परिषत्

निर्णायक

१—विषय प्रवेश

१. बीजगणितके नियमोंके अनुसार यह स्पष्ट है कि

$$अ_१ य + अ_२ र + अ_३ = ०$$

$$इ_१ य + इ_२ र + इ_३ = ०$$

इन समीकरणोंके मूल यह होंगे

$$य = \frac{अ_२ इ_३ - अ_३ इ_२}{अ_१ इ_२ - अ_२ इ_१}$$

$$और\ र = \frac{अ_३ इ_१ - अ_१ इ_३}{अ_१ इ_२ - अ_२ इ_१}$$

उन्हीं नियमोंके अनुसार

$$अ_१ य + अ_२ र + अ_३ ल = ०$$

$$इ_१ य + इ_२ र + इ_३ ल = ०$$

इन त्रिवर्ण समघात सरल समीकरणोंकी अव्यक्त राशियोंका सम्बन्ध ऐसा होगा—

$$\frac{य}{अ_२ इ_३ - अ_३ इ_२} = \frac{र}{अ_३ इ_१ - अ_१ इ_१} = \frac{ल}{अ_१ इ_२ - अ_२ इ_१}$$

यदि यहाँ ल की जगह १ लिखें तो वही पिछले उत्तर लब्ध होंगे।

अब नीचे लिखे हुए तीन चतुर्वर्ण समघात सरल समीकरणोंपर विचार कीजिये।

$$क_१ \equiv अ_१ य + अ_२ र + अ_३ ल + अ_४ व = ०$$

$$क_२ \equiv इ_१ य + इ_२ र + इ_३ ल + इ_४ व = ०$$

$$क_३ \equiv उ_१ य + उ_२ र + उ_३ ल + उ_४ व = ०$$

इन समीकरणोंसे उत्पन्न

$$प_१ क_१ + प_२ क_२ + प_३ क_३ = ०$$

इस समीकरण में यदि ऐसा हो कि

$$प_१ अ_३ + प_२ इ_३ + प_३ उ_३ = ०$$

$$और\quad प_१ अ_४ + प_२ इ_४ + प_३ इ_४ = ०$$

तो ल और व के गुण शून्य होंगे और उस दशामें $प_१$, $प_२$ और $प_३$ के बीच यह

समीकरण equation ; मूल root ; समघात hcmogeneous; सरल of the first degree; अव्यक्त unkown; गुण coefficent.

सम्बन्ध होगा—

$$\frac{प_१}{इ_१ उ_४ - इ_४ उ_३} = \frac{प_२}{उ_३ अ_४ - उ_४ अ_३} = \frac{प_३}{अ_३ इ_४ - अ_४ इ_३}$$

यदि $प_१$, $प_२$ और $प_३$ के मान ऐसे ही लिये जायं तो यह समीकरण बनता है—

$$\{ अ_१ (इ_३ उ_४ - उ_३ इ_४) + इ_१ (उ_३ अ_४ - अ_३ उ_४)$$

$$+ उ_१ (अ_३ इ_४ - इ_३ अ_४) \} य + \{ अ_२ (इ_३ उ_४ -$$

$$उ_३ इ_४) + इ_२ (उ_३ अ_४ - अ_३ उ_४) + उ_२ (अ_३ इ_४$$

$$- इ_३ अ_४) \} र = 0$$

अथवा $$ट य + ड र = 0 \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (२)$$

यहाँ ट और ड के रूप एक से हैं, केवल उनके घटक भिन्न भिन्न हैं।

ट इस प्रकार लिखा जाता है—

$$\begin{vmatrix} अ_१, & अ_३, & अ_४ \\ इ_१, & इ_३, & इ_४ \\ उ_१, & उ_३, & उ_४ \end{vmatrix}$$

नियत नियमोंके अनुसार इस प्रकारके संकेतोंसे जिन बैजिक फलोंका बोध होता है वे निर्णायक कहलातेहैं। यहां खड़ी या पड़ी पंक्तियोंकी संख्या तीन है, इस लिए इसे तीसरी कक्षाका निर्णायक कहते हैं। ड भी तीसरी कक्षाका निर्णायक है और यों लिखा जाता है—

$$\begin{vmatrix} अ_२, & अ_३, & अ_४ \\ इ_२, & इ_३, & इ_४ \\ उ_२, & उ_३, & उ_४ \end{vmatrix}$$

समीकरण (२) से स्पष्ट है कि

$$\frac{य}{ड} = \frac{-र}{ट}$$

अथवा

$$\frac{य}{\begin{vmatrix} अ_२, & अ_३, & अ_४ \\ इ_२, & इ_३, & इ_४ \\ उ_२, & उ_३, & उ_४ \end{vmatrix}} = \frac{-र}{\begin{vmatrix} अ_१, & अ_३, & अ_४ \\ इ_१, & इ_३, & इ_४ \\ उ_१, & उ_३, & उ_४ \end{vmatrix}}$$

घटक constituents; निर्णायक determinants; कक्षा order.

अतएव दिये हुए (१) समीकरणोंके अव्यक्तोंके बीच यह सम्बन्ध होगा

$$\frac{\text{य}}{\begin{vmatrix} \text{अ}_2, & \text{अ}_3, & \text{अ}_4 \\ \text{इ}_2, & \text{इ}_3, & \text{इ}_4 \\ \text{उ}_2, & \text{उ}_3, & \text{उ}_4 \end{vmatrix}} = \frac{-\text{र}}{\begin{vmatrix} \text{अ}_1, & \text{अ}_3, & \text{अ}_4 \\ \text{इ}_1, & \text{इ}_3, & \text{इ}_4 \\ \text{उ}_1, & \text{उ}_3, & \text{उ}_4 \end{vmatrix}} = \frac{\text{ल}}{\begin{vmatrix} \text{अ}_1, & \text{अ}_2, & \text{अ}_4 \\ \text{इ}_1, & \text{इ}_2, & \text{इ}_4 \\ \text{उ}_1, & \text{उ}_2, & \text{उ}_4 \end{vmatrix}} = \frac{-\text{व}}{\begin{vmatrix} \text{अ}_1, & \text{अ}_2, & \text{अ}_3 \\ \text{इ}_1, & \text{इ}_2, & \text{इ}_3 \\ \text{उ}_1, & \text{उ}_2, & \text{उ}_3 \end{vmatrix}}$$

प्रत्येक कोटिके अनेक वर्ण समघात सरल समीकरणोंके अव्यक्तोंका सम्बन्ध निर्णायकों-के द्वारा, ऊपरकी भांति, प्रकट किया जा सकता है। साधारणतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि (म + १)-वर्ण समघात म सरल समीकरणों के अव्यक्तों का सम्बन्ध म^{2} घटकों-से बने हुए म-घात फलोंके द्वारा प्रकट किया जा सकता है और इन फलोंको समीकरणों-की व्यक्त राशियोंसे बने हुए निर्णायकोंके रूपमें लिख सकते हैं। इस निष्कर्षकी सत्यता आगे चल कर स्पष्ट हो जायगी।

२. पहिली कक्षाके निर्णायकका रूप ऐसा होगा—

$$|\text{अ}|$$

इसका बैजिक रूपान्तर अ है।

दूसरी कक्षाके निर्णायकका रूप ऐसा होगा—

$$\begin{vmatrix} \text{अ}_1, & \text{अ}_2 \\ \text{इ}_1, & \text{इ}_2 \end{vmatrix}$$

इसका बैजिक स्वरूप $\text{अ}_1 \; \text{इ}_2 - \text{अ}_2 \; \text{इ}_1$ है।

कक्षा चाहे जो हो, प्रत्येक निर्णायकका विस्तृत बैजिक रूपान्तर जिन नियमोंसे निकाला जाता है वे अगले भागमें दिये जायँगे।

तीसरी कक्षाके निर्णायकोंके कुछ साधारण धर्म यहां सिद्ध किये जायंगे। यह नियम निर्णायक सम्बन्धी व्यापक नियमोंके विशिष्ट उदाहरण होंगे।

३. यह देख चुके हैं कि

$$\text{न} \equiv \begin{vmatrix} \text{अ}_1, & \text{अ}_2, & \text{अ}_3 \\ \text{इ}_1, & \text{इ}_2, & \text{इ}_3 \\ \text{उ}_1, & \text{उ}_2, & \text{उ}_3 \end{vmatrix} = \text{अ}_1 (\text{इ}_2 \; \text{उ}_3 - \text{उ}_2 \; \text{इ}_3) + \text{अ}_2 (\text{इ}_3 \; \text{उ}_1 - \text{उ}_3 \; \text{इ}_1) + \text{अ}_3 (\text{इ}_1 \; \text{उ}_2 - \text{उ}_1 \; \text{इ}_2)$$

यहां विस्तृत फलका प्रत्येक पद $\pm \text{अ}_{\text{प}} \; \text{इ}_{\text{फ}} \; \text{उ}_{\text{ब}}$ इस रूपका है; इसमें प फ ब यह १, २, ३ इन अनुबन्धोंका एक प्रस्तार है। यह पद तीन घटकोंका गुणनफल है। प्रत्येक खड़ी या पड़ी पंक्तिका केवल एक घटक इस पदमें है। $\text{अ}_1 \; \text{इ}_2 \; \text{उ}_3$ यह पद जो बांई ओरसे दाहिनी ओर उतरती हुई कर्ण रेखा वाले घटकोंसे बना है धनचिन्हित है। शेष सभी पदोंके चिन्ह प फ ब इस प्रस्तारपर अवलम्बित होते हैं। कोई एक प फ ब प्रस्तार

कक्षा order; फल function; अनुबंध suffix; प्रस्तार permutation; कर्णरेखा diagonal; बैजिक algebraic.

१, २, ३ इस प्रस्तारके अनुबन्धोंका स्थान आपसमें बदलनेपर पैदा होता है। १, २, ३ में जितनी बार अदल बदल करनेकी आवश्यकता हो वह संख्या यदि सम हो तो + चिन्ह, यदि विषम हो तो — चिन्ह लगाया जाता है। इस प्रकार आधे पद धन और शेष आधे ऋण होते हैं।

४. यदि **न** की खड़ी पंक्तियोंको क्रमानुसार पड़ी और पड़ी पंक्तियोंको क्रमानुसार खड़ी करके लिखें तो नया निर्णायक **न** के बराबर होता है अथवा

$$\begin{vmatrix} अ_1, & अ_2, & अ_3 \\ इ_1, & इ_2, & इ_3 \\ उ_1, & उ_2, & उ_3 \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} अ_1, & इ_1, & उ_1 \\ अ_2, & इ_2, & उ_2 \\ अ_3, & इ_3, & उ_3 \end{vmatrix}$$

यह सिद्ध करनेके लिये इन निर्णायकों केविस्तृत रूप लिखना बस होगा।

अनुमान—यदि कोई नियम पड़ी पंक्तियोंमें सिद्ध किया जाय तो वह खड़ी पंक्तियोंके विषय-में भी सच होगा।

५. यदि **न** की कोई दो खड़ी या पड़ी पंक्तियां लें और पहलीके स्थानमें दूसरी और दूसरी-के स्थानमें पहली लिखें तो नया निर्णायक '—**न**' के समान होता है। क्योंकि ऐसा करनेसे **न** के विस्तृत रूपमें अनुबन्धोंका क्रम वही बना रह कर केवल दो अक्षर अपना स्थान आपस-में बदल लेंगे या अक्षरोंका क्रम वही बना रह कर दो अनुबन्धोंका स्थान आपसमें बदल जायगा। दोनों अवस्थाओंमें नया निर्णायक '— **न**' के बराबर होगा। उदाहरणार्थ यदि दूसरी और तीसरी पड़ी पंक्तियोंको आपसमें बदलें तो नया निर्णायक यह होगा—

$$\begin{vmatrix} अ_1, & अ_2, & अ_3 \\ उ_1, & उ_2, & उ_3 \\ इ_1, & इ_2, & इ_3 \end{vmatrix} = अ_1 \; (उ_2 \; इ_3 - इ_2 \; उ_3) + अ_2 \; (उ_3 \; इ_1 - इ_3 \; उ_1) + अ_3 \; (उ_1 \; इ_2 - इ_1 \; उ_2)$$

$$= - न$$

अनुमान—इससे यह सिद्ध होता है कि यदि निर्णायककी दो पंक्तियां समान हों तो उसका मान शून्य होगा।

६. $$न = अ_1 \; (इ_2 \; उ_3 - उ_2 \; इ_3) + अ_2 \; (इ_3 \; उ_1 - उ_3 \; इ_1) + अ_3 \; (इ_1 \; उ_2 - इ_2 \; उ_1)$$

$$= अ_1 \begin{vmatrix} इ_2, & इ_3 \\ उ_2, & उ_3 \end{vmatrix} + अ_2 \begin{vmatrix} इ_3, & इ_1 \\ उ_3, & उ_1 \end{vmatrix} + अ_3 \begin{vmatrix} इ_1, & इ_2 \\ उ_1, & उ_2 \end{vmatrix}$$

इससे यह स्पष्ट है कि **न** पहिली पंक्ति वाले $अ_1, अ_2, अ_3$ इन घटकोंका सरल समघात फल है और उनके गुण शेष पंक्तियोंके घटकोंसे बने हुए दूसरी कक्षाके निर्णायक हैं। यदि चाहें तो **न** को किसी दूसरी पंक्तिके घटकोंसे बने हुए सरल समघात फलोंके रूप-में प्रकट कर सकते हैं। अब यह स्पष्ट है कि

$$\begin{vmatrix} \text{क}_{१}+\text{ख}_{१}, & \text{क}_{२}+\text{ख}_{२}, & \text{क}_{३}+\text{ख}_{३} \\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} \text{क}_{१}, & \text{क}_{२}, & \text{क}_{३} \\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix} + \begin{vmatrix} \text{ख}_{१}, & \text{ख}_{२}, & \text{ख}_{३} \\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix}$$

अथवा यदि किसी पंक्तिके घटक द्विपद हों तो वह निर्णायक दो निर्णायकोंके योग फलके बराबर होगा। इस नियमको अधिक व्यापक बनाते हुए यह कह सकते हैं कि यदि पहिली पंक्तिके घटक प पदोंसे बने हों तथा दूसरी पंक्तिके फ पदोंसे और तीसरीके ब पदोंसे तो इस निर्णायकको प × फ × ब निर्णायकोंके योगफलके रूपमें लिख सकते हैं। इन निर्णायकोंकी पंक्तियां मूल निर्णायकके अनेक पदोंमेंसे अनुरूप पदोंके घटकोंसे बनी हुई होती है।

अनुमान १—यदि किसी पंक्तिके घटकोंको प से गुणा करें तो न प-गुना हो जाता है। अर्थात्

$$\begin{vmatrix} \text{प}.\ \text{अ}_{१}, & \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३} \\ \text{प}.\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{प}.\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix} = \text{प}. \begin{vmatrix} \text{अ}_{१}, & \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३} \\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix}$$

अनुमान २—यदि किसी पंक्तिके घटकोंमें दूसरी किसी पंक्तिके घटकोंको क्रमानुसार जोड़ दें तो निर्णायकका मान नहीं बदलता। यथा—

$$\begin{vmatrix} \text{अ}_{१}+\text{अ}_{२}+\text{अ}_{३}, & \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३} \\ \text{इ}_{१}+\text{इ}_{२}+\text{इ}_{३}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{१}+\text{उ}_{२}+\text{उ}_{३}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix}$$

$$= \begin{vmatrix} \text{अ}_{१}, & \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३} \\ \text{इ}_{१}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{१}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix} + \begin{vmatrix} \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३} \\ \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix} + \begin{vmatrix} \text{अ}_{३}, & \text{अ}_{२}, & \text{अ}_{३} \\ \text{इ}_{३}, & \text{इ}_{२}, & \text{इ}_{३} \\ \text{उ}_{३}, & \text{उ}_{२}, & \text{उ}_{३} \end{vmatrix}$$

$$= \text{न}$$

७. तीसरी कक्षाके दो निर्णायकोंका गुणन फल तीसरी कक्षाके निर्णायकके रूपमें लिखा जा सकता है। इस सम्बन्धमें नीचे लिखे हुए निर्णायकपर विचार कीजिये।

$$\text{न} = \begin{vmatrix} \text{कअ}+\text{खइ}+\text{गउ}, & \text{कअ}'+\text{खइ}'+\text{गउ}', & \text{कअ}''+\text{खइ}''+\text{गउ}'' \\ \text{क}'\text{अ}+\text{ख}'\text{इ}+\text{गउ}', & \text{क}'\text{अ}'+\text{ख}'\text{इ}'+\text{ग}'\text{उ}', & \text{क}'\text{अ}''+\text{ख}'\text{इ}''+\text{ग}'\text{उ}'' \\ \text{क}''\text{अ}+\text{ख}''\text{इ}+\text{ग}''\text{उ}, & \text{क}''\text{अ}'+\text{ख}''\text{इ}'+\text{गउ}', & \text{क}''\text{अ}''+\text{ख}''\text{इ}''+\text{ग}'\text{उ}'' \end{vmatrix}$$

इसमें प्रत्येक पंक्तिके घटक त्रिपद हैं, अतएव इसे नीचे लिखे हुए निर्णायकोंके सदृश ३ × ३ × ३ = २७ निर्णायकोंके योगफलके रूपमें लिख सकते हैं।

$$\begin{vmatrix} \text{कअ}, & \text{कअ}', & \text{खइ}'' \\ \text{क}'\text{अ}, & \text{क}'\text{अ}', & \text{ख}'\text{इ}'' \\ \text{क}''\text{अ}, & \text{क}''\text{अ}', & \text{ख}''\text{इ}'' \end{vmatrix}, \quad \begin{vmatrix} \text{कअ}, & \text{खइ}', & \text{गउ}'' \\ \text{क}'\text{अ}, & \text{ख}'\text{इ}', & \text{ग}'\text{उ}'' \\ \text{क}''\text{अ}, & \text{ख}'\text{इ}', & \text{ग}''\text{उ}'' \end{vmatrix}, \quad \text{इत्यादि।}$$

इनमें से छः को छोड़ शेष सब शून्य हो जाते हैं; और इन छहोंमें

$$\begin{vmatrix} क & , ख & , ग \\ क' & , ख' & , ग' \\ क'' & , ख'' & , ग'' \end{vmatrix}$$

यह निर्णायक साधारण अवयव पाया जाता है।

यहां यदि $\begin{vmatrix} क & , ख & , ग \\ क' & , ख' & , ग' \\ क'' & , ख'' & , ग'' \end{vmatrix}$ इसके बदले ट लिखें

और $\begin{vmatrix} अ & , इ & , उ \\ अ' & , इ' & , उ' \\ अ'' & , इ'' & , उ'' \end{vmatrix}$ इसके बदले ठ लिखें तो

न का विस्तृत रूप प्रत्यक्ष लिख कर यह सिद्ध किया जा सकता है कि जो छः निर्णायक शून्य नहीं होते इनमें ट के साथ जो अवयव संलग्न होता है वह ठ के विस्तृत रूप वाले छः पदोंमेंसे अपने चिन्ह सहित कोई एक पद होता है (जैसे ऊपर उदाहरणार्थ दिया हुआ दूसरा निर्णायक = ट अ. इ.' उ'') और इस प्रकार ठ के छहों पद एक एक करके न छः निर्णायकोंमें संयुक्त रहते हैं। अतएव

$$न = ट \left\{ अ इ' उ'' — अ उ' इ'' + अ' इ'' उ — अ' उ'' इ + अ'' इ उ' — अ'' उ इ' \right\}$$

$$= ट ठ$$

अर्थात् ट और ठ का गुणनफल न है।

ऊपर जिस भाँति पड़ी पंक्तियोंके द्वारा गुणाकार किया गया है उसी भाँति खड़ी पंक्तियोंके द्वारा भी कर सकते हैं। जैसे—

$$\begin{vmatrix} क & , ख \\ क' & , ख' \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} अ & , इ \\ अ' & , इ' \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} कअ + खइ & , कअ' + खइ' \\ क'अ + ख'इ & , क'अ' + ख'इ' \end{vmatrix}$$

$$या = \begin{vmatrix} कअ + क'अ' & , खअ + ख'अ' \\ कइ + क'इ' & , खइ + ख'इ'' \end{vmatrix}$$

$$या = \begin{vmatrix} कअ + खअ' & , कइ + खइ' \\ क'अ + ख'अ' & , क'इ + ख'इ' \end{vmatrix}$$

$$या = \begin{vmatrix} कअ + क'इ & , खअ + ख'इ \\ कअ' + क'इ' & , खअ' + ख'इ' \end{vmatrix}$$

२. निर्णायककी व्याख्या और उसके साधारण धर्म

१. म कक्षाका निर्णायक म² घटकोंका फल है। सुभीतेके लिये इन घटकोंमें दो दो अनुबन्ध लगाये जायंगे। पूरा निर्णायक यों लिखा जायगा—

$$\begin{vmatrix} अ_{११}, & अ_{१२}, & अ_{१३}, & \cdots\cdots & अ_{१म} \\ अ_{२१}, & अ_{२२}, & अ_{२३}, & \cdots\cdots & अ_{२म} \\ अ_{३१}, & अ_{३२}, & अ_{३३}, & \cdots\cdots & अ_{३म} \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{म१}, & अ_{म२}, & अ_{म३}, & \cdots\cdots & अ_{मम} \end{vmatrix}$$

इससे स्पष्ट होगा कि $अ_{पब}$ यह घटक प-वीं पड़ी पंक्तिका ब-वां अक्षर है, अथवा ब-वीं खड़ी पंक्तिका प-वां अक्षर है—पड़ी पंक्तिके अक्षर बाईं ओरसे दाहिनी ओर, और खड़ी पंक्तिके ऊपरसे नीचेकी ओर गिने जाते हैं। इन अक्षरोंसे जो सम चतुर्भुज बनता है उसका $अ_{११}$ $अ_{२२}$ $अ_{३३}$......$अ_{मम}$ यह प्रधान-कर्ण कहलाता है।

किसी निर्णायकका विस्तृत रूप लिखनेमें नीचे दिये हुए दो नियमोंका उपयोग होता है—

(क) प्रत्येक खड़ी या पड़ी पंक्तिसे केवल एक एक घटक लें और उनका गुणाकार करें तो निर्णायकके विस्तारका एक पद बनता है। उदाहरणार्थ—$अ_{११}$ $अ_{२२}$ $अ_{३३}$.........$अ_{मम}$ यह जो प्रधान-कर्ण वाले घटकोंका गुणनफल है विस्तारमेंका एक पद है, इसका चिन्ह धन होता है। इसे प्रधानपद कहते हैं।

किसी दूसरे पदका चिन्ह नीचे दिये हुए नियमसे जाना जाता है।

(ख) यदि पदके अक्षर इस क्रमसे लिखे जायं कि पहिला पहिली पड़ी पंक्तिका हो, दूसरा दूसरीका, इत्यादि, तो यह स्पष्ट है कि केवल पहिले अनुबन्ध अपने स्वाभाविक क्रममें होंगे, दूसरे नहीं। दूसरे अनुबन्धोंको स्वाभाविक क्रममें लानेके लिये जितनी बार दो अनुबन्धोंका क्रम आपसमें बदलना पड़े वह संख्या यदि सम हो तो चिन्ह धन और यदि विषम हो तो चिन्ह ऋण होता है। इस प्रकार म कक्षाके निर्णायकमें म ! (क्रमगुणित म) पद रहते हैं जिनमेंसे आधे धन और आधे ऋण होते हैं।

२. ऊपर दिये हुए नियमके अनुसार निर्णायक यों लिखा जाता है—

$$\begin{vmatrix} अ_{११}, & अ_{१२}, & अ_{१३} & \cdots\cdots & अ_{१म} \\ अ_{२१}, & अ_{२२}, & अ_{२३} & \cdots\cdots & अ_{२म} \\ अ_{३१}, & अ_{३२}, & अ_{३३} & \cdots\cdots & अ_{३म} \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{म१}, & अ_{म२}, & अ_{म३}, & \cdots\cdots & अ_{मम} \end{vmatrix}$$

इसपर और इसके विस्तारपर ध्यान देनेसे समझ पड़ेगा कि इसे

$$\Sigma \pm अ_{११}\ अ_{२२}\ अ_{३३} \cdots\cdots अ_{मम}$$

इस प्रकार भी लिख सकते हैं। [जब किसी पदके पूर्व यह चिन्ह Σ (सिगमा) लिखा होता है तब उस पदके सदृश जितने पद उसी नियमके अनुसार बन सकें उन सब पदोंका योगफल जाना जाता है।]

कभी कभी उसी निर्णायकको बहुत संक्षेपमें इस प्रकार भी लिखते हैं—

$$[\, अ_{पफ} \,] \quad (प\ फ = १, २, ३, \ldots\ldots म)$$

अथवा केवल $[\, अ_{मम} \,]$

यदि घटकोंमें केवल एक एक अनुबन्ध लगाया जाय तो निर्णायक यों लिखा जाता है—

$$\begin{vmatrix} अ_{१}, & इ_{१}, & उ_{१}, & \cdots\cdots \\ अ_{२}, & इ_{२}, & उ_{२}, & \cdots\cdots \\ अ_{३}, & इ_{३}, & उ_{३}, & \cdots\cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ अ & , इ_{म} & , उ_{३}, & \cdots\cdots \end{vmatrix}$$

इसे संक्षेपमें $\Sigma \pm अ_{१}\ इ_{२}\ उ_{३} \ldots\ldots$ इस प्रकार लिखेंगे।

३ यदि किसी निर्णायककी खड़ी पंक्तियोंको पड़ी और पड़ी पंक्तियोंको खड़ी करके लिखें तो उस निर्णायकका मान नहीं बदलता।

ऊपर दिये हुए निर्णायकका परिवर्तित रूप यह होगा—

$$\begin{vmatrix} अ_{११}, & अ_{२१}, & अ_{३१}, & \cdots\cdots & अ_{१म} \\ अ_{१२}, & अ_{२२}, & अ_{३२}, & \cdots\cdots & अ_{म२} \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{१म}, & अ_{२म}, & अ_{३म} & \cdots\cdots & अ_{मम} \end{vmatrix}$$

इसका प्रधानपद वही है जो पहिले था। इसके विस्तार वाले पदोंके चिन्ह निर्धारित करनेमें दूसरे अनुबन्धोंके क्रमके बदले पहिले अनुबन्धोंके क्रमपर ध्यान देना होगा। अतएव पुराने विस्तारमें किसी पदका जो चिन्ह था नये विस्तारमें उस पदका वही चिन्ह बना रहेगा। इससे दिया हुआ नियम सिद्ध हुआ।

अनुमान—यदि कोई नियम पड़ी पंक्तियोंके विषयमें सिद्ध किया जाय तो वह खड़ी पंक्तियोंके विषयमें भी सच होगा।

४ पाटी गणितके नियम बीजगणितके अंकोंमें भी लगते हैं। जोड़ और गुणाकारमें काम आने वाले मूल नियम तीन हैं—

नियम १—सांग्रहिक नियम। यथा—

$$(अ + इ) + उ = अ + (इ + उ) = अ + इ + उ ।$$
$$अ \cdot इ \times उ = अ \times इ \cdot उ = अ . इ . उ ।$$

नियम २—क्रम विषयक नियम। यथा—

$$अ + इ = इ + अ ।$$
$$अ . इ = इ . अ ।$$

नियम ३—सांसर्गिक नियम। यथा—

$$(अ + इ) उ = अ . उ + इ . उ ।$$
$$उ (अ + इ) = उ . अ + उ . इ ।$$

जिन अङ्कोंमें ऊपरके तीनों नियम लगते हैं सांचयिक अंक कहलाते हैं चाहे वे अंक वास्तविक हों चाहे कल्पित।

आजकल गणितमें सांचयिक अंकोंके सिवाय ऐसे कई प्रकारके अंकोंका उपयोग होता है जो ऊपर दिये हुए नियमोंमेंसे एक या अधिकका पालन नहीं करते। सांकल्पिक अंक जिनकी चर्चा नीचेकी जायगी इसी कोटिके हैं।

५ म स्वतंत्र अङ्कोंका एक समूह लीजिये, यथा—$लृ_१, लृ_२, लृ_३, \ldots, लृ_म$। इनको भिन्न भिन्न सांचयिक अंकोसे गुणा करके जोड़ें तो योगफल

$$अ = अ_१ लृ_१ + अ_२ लृ_२ + अ_३ लृ_३ + \ldots\ldots + अ_म लृ_म$$

म कक्षाका सांकल्पिक अंक कहलाता है।

सांचयिक अङ्कोंसे संलग्न रहते हुए $लृ_१, लृ_२, लृ_३ \ldots$ इत्यादि स्वतन्त्र अंक ऊपर दिये हुए तीनों नियमोंका पालन करते हैं, परन्तु उनका परस्पर संबन्ध हो तो जोड़में सांग्रहिक और क्रम विषयक नियमोंका पालन होता है परन्तु गुणाकारमें यह भेद माना जाता है कि ट और ड चाहे जो हों

$$लृ_ट लृ_ड = -लृ_ड लृ_ट \quad \ldots \ldots \quad (१)$$

और $$लृ_ट^२ = ० \quad \ldots \ldots \quad (२)$$

६ $$अ = अ_१ लृ_१ + अ_२ लृ_२ + अ_३ लृ_३ + \ldots\ldots + अ_म लृ_म$$

और $$इ = इ_१ लृ_१ + इ_२ लृ_२ + इ_३ लृ_३ + \ldots\ldots + इ_म लृ_म$$

इन दोनों सांकलिपक अंकोंका गुणाकार इस प्रकार होगा—

$$अ\ इ = \Sigma अ_ट\ ल_ट \Sigma इ_ड\ ल_ड$$

$$= \Sigma अ_ट\ ल_ट\ इ_ड\ ल_ड$$

$$= \Sigma अ_ट\ इ_ड\ ल_ट\ ल_ड$$

प्रक्रम ५ समीकरण (१) के अनुसार

$$अ\ इ = (अ_१ इ_२ - अ_२ इ_१) ल_१ ल_२ + (अ_१ इ_३ - अ_३ इ_१) ल_१ ल_३ + \ldots\ldots$$

$$\ldots\ldots + (अ_{म-१}\ इ_म - अ_म\ इ_{म-१}) ल_{म-१}\ ल_म ।$$

इसलिये, $अ\ इ = -इ\ अ$

और $अ^२ = ०$

अर्थात् पृथक पृथक $ल_१, ल_२$......इत्यादि अंकोंमें गुणाकारके जो नियम लगते हैं वही नियम सांकलिपक अंकोंमें भी लगते हैं।

७ यदि क एक सांचयिक अंक हो तो

$$(अ + क\ इ)\ इ = अ\ इ$$

इससे स्पष्ट है कि दो सांकलिपक अंकोंमेंसे एकमें दूसरेका चाहे जितना गुना जोड़ द तो भी गुणनफल वही बना रहता है। इसी प्रकार यदि

$$अ\ इ\ उ \ldots\ldots\ldots ट$$

इस गुणनफलमें किसी एक, उ, अङ्कके बदले यदि

$$उ + क_१\ अ + क_२\ इ + \ldots\ldots क_म\ ट$$

लिखें तो गुणनफल वही बना रहेगा। अतएव सांकलिपक अंकोंका कुणनफल स्थिर रहता है परन्तु भागफल स्थिर नहीं होता, क्योंकि जिस अर्थमें

$$(अ + क\ इ)\ इ = अ\ इ$$

उसी अर्थमें $$\frac{अ . इ}{इ} = अ + क\ इ$$

परन्तु यहां क मनमाना सांचयिक अंक हो सकता है।

$ल_१\ ल_२\ ल_३ \ldots\ldots ल_म$ इन सब अंकोंका गुणनफल एकके तुल्य माना जायगा। इसका कारण आगे समझ पड़ेगा।

८ यदि

$$\begin{vmatrix} अ_१, & अ_२, & \ldots\ldots & अ_म \\ इ_१, & इ_२, & \ldots\ldots & इ_म \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ ट_१, & ट_२, & \ldots\ldots & ट_म \end{vmatrix}$$

यह निर्णायक लें और उसकी पड़ी पंक्तियोंके घटकोंको क्रमसे $ल_१, ल_२, ल_३, \ldots$ इत्यादि अंकोंसे गुणा करके म कक्षा वाले म सांकल्पिक अङ्क बनावें तो उनका गुणनफल

$$प = (अ_१ ल_१ + अ_२ ल_२ + \ldots\ldots + अ_म ल_म)$$
$$\times (इ_१ ल_१ + इ_२ ल_२ + \ldots\ldots + इ_म ल_म)$$
$$\ldots\ldots\ldots\ldots$$
$$\ldots\ldots\ldots\ldots$$
$$\times (ट_१ ल_१ + ट_२ ल_२ + \ldots\ldots + ट_म ल_म)$$
$$= \Sigma\, अ_च इ_छ उ_ज \ldots\ldots ट_य \cdot ल_च ल_छ ल_ज \ldots\ldots ल_य$$

जिन जिन पदोंमें $ल_च\ ल_छ\ ल_ज \ldots$ इत्यादिक अङ्कोंमें से दो अङ्क समान हों वे पद प्रक्रम ५ समीकरण २के अनुसार शून्य होंगे। शेष किसी पदमें च, छ, ज,......य इन अनुबन्धों को १, २, ३,......म इस क्रममें लानेके लिये उनमेंसे दो दोका स्थान आपसमें जितनी बार बदलना पड़े उस संख्यासे उस पदका चिन्ह जाना जायगा क्योंकि प्रक्रम ५ समीकरण १ के अनुसार

$$ल_च ल_छ ल_ज \ldots\ldots ल_य = \pm ल_१ ल_२ ल_३ \ldots\ldots ल_म$$

और $ल_१ ल_२ ल_३ \ldots\ldots ल_म$ इस गुणनफलको एकके तुल्य माननेसे।

$$प = \Sigma \pm अ_च अ_छ अ_ज \ldots\ldots ट_य \quad ।$$

इससे स्पष्ट है कि निर्णायकके विस्तार वाले सब पद अपने अपने चिन्होंके सहित गुणनफल प में पाये जायंगे। अतएव ऐसे गुणनफलके द्वारा निर्णायकका विस्तार लिखा जा सकता है।

९ किसी निर्णायकको सांकल्पिक अंकोंके गुणनफलके रूपमें लिखते ही नीचे लिखे नियमोंकी सत्यता तुरन्त प्रकट होगी—

(१) यदि दिये हुए निर्णायककी किसी पंक्तिके सब घटकोंको स से गुणा करें तो उसका मान स-गुना हो जाता है।

(२) यदि दिये निर्णायककी किसी पंक्तिके सब घटक शून्य हों तो उसका मान शून्य होगा।

१० यदि किसी निर्णायककी दो (खड़ी या पड़ी) पंक्तियोंका स्थान आपसमें बदल दें तो उसका मान वही बना रहता है केवल चिन्ह बदल जाता है।

$$न = \pi\, (अ_{च१} ल_१ + अ_{च२} ल_२ + \ldots\ldots + अ_{चप} ल_प + \ldots\ldots$$
$$\ldots\ldots + अ_{चब} ल_ब + \ldots\ldots + अ_{चम} ल_म)$$

[किसी पदके पूर्व लिखा हुआ चिन्ह π (पाई) उसी प्रकार बने हुए सब पदोंका गुणनफल सूचित करता है]

इसमें प-वीं और ब-वीं खड़ी पंक्तियोंका स्थान आपसमें बदल देनेसे नया निर्णायक यह होगा—

$$न' = \pi (अ_{च१} ल_१ + अ_{च२} ल_२ + \dots\dots + अ_{चब} ल_प + \dots\dots$$
$$\dots\dots + अ_{चप} ल_ब + \dots\dots + अ_{चम} ल_म)$$

जोड़में लांकलिपस अंक क्रम विषयक नियमका पालन करते हैं इसलिये स्पष्ट है कि न में केवल $ल_प$ और $ल_व$ इन दो अक्षरोंकी जगह आपसमें बदलनेसे न' बनता है। अतएव प्रक्रम ५ समीकरण १ के अनुसार प्रत्येक पदका चिन्ह बदल जायगा, अथवा

$$न' = -न$$

यह स्पष्ट है कि पड़ी पंक्तियोंके सम्बन्धमें यहभी नियम सच होगा।

११ यदि किसी निर्णायककी (खड़ी या पड़ी) दो पंक्तियां समान हों तो उसका मान शून्य होता है।

क्योंकि ऊपर दिये हुए नियमके अनुसार उन दो पंक्तियोंका स्थान आपसमें बदलनेसे निर्णायक का चिन्ह बदलना चाहिये, परन्तु ऐसा करनेसे उसके रूपमें कोई अन्तर नहीं पड़ता; अतएव

$$न = -न$$
$$न = 0$$

१२ यदि निर्णायककी किसी पंक्तिके घटक द्विपद हों तो उसे दो निर्णायकोंके योगके रूपमें लिख सकते हैं।

क्योंकि यदि

$$न = \pi (अ_प)$$

इस निर्णायकमें ऐसा हो कि

$$अ_च = (अ_{च१} + इ_{च१}) ल_१ + (अ_{च२} + इ_{च२}) ल_२ + \dots\dots + (अ_{चम} + इ_{चम}) ल$$
$$= (अ_{च१} ल_१ + अ_{च२} ल_२ + \dots + अ_{चम} ल_म) + (इ_{च१} ल_१ + इ_{च२} ल_२ \dots + इ_{चम} ल)$$
$$= अ'_च + इ'$$

तो जिस अर्थमें

$$अ_१ अ_२ अ_३ \dots\dots अ \dots\dots अ_म$$
$$= अ_१ अ_२ अ_३ \dots\dots (अ'_च + इ'_च) \dots\dots अ_म$$
$$= (अ_१ अ_२ अ_३ \dots\dots अ'_च \dots\dots अ_म) + (अ_१ अ_२ अ_३ \dots\dots इ'_च \dots\dots अ_म)$$

उसी अर्थमें

$$न = नन_१ + न_२ ।$$

न की च-वीं पंक्तिके पहिले घटक $न_१$ में और दूसरे घटक $न_२$ में होंगे।

इसी प्रकार यदि किसी पंक्तिके घटक प पदोंसे बने हों तो उस निर्णायकको प निर्णायकोंके योगके रूपमें लिख सकते हैं।

१३ यदि किसी निर्णायक **न** की एक पंक्तिमें किसी दूसरी सामानान्तर पंक्तिके घटकोंको किसी संख्यासे गुणा करके क्रमानुसार जोड़ दें तो निर्णायकका मान नहीं बदलता।

क्योंकि यदि च-वीं पंक्तिके घटकोंमें प-वीं पंक्तिके घटकोंको क से गुणा करके जोड़ें तो निर्णायकका मान यह होगा—

$$\text{न}' = \text{अ}_1\ \text{अ}_2\ \text{अ}_3 \cdots\cdots (\text{अ}_\text{च} + \text{क अ}_\text{प}) \cdots\cdots \text{अ}_\text{म}$$

$$= \text{अ}_1\ \text{अ}_2 \cdots \text{अ}_\text{च} \cdots \text{अ}_\text{प} \cdots \text{अ}_\text{म}\ \ \text{अ}_1\ \text{अ}_2 \cdots \text{क अ}_\text{प} \cdots \text{अ}_\text{म}$$

$$= \text{अ}_1\ \text{अ}_2\ \text{अ}_3 \cdots\cdots \text{अ} \cdots\cdots \text{अ}_\text{प} \cdots\cdots \text{अ}_\text{म} + 0$$

$\text{अ}_\text{प}$ के दो दफे आनेसे दूसरा पद शून्य हुआ। अतएव

$$\text{न}' = \text{न}$$

३. निर्णायकका ह्रस्व और उसका विस्तार

१ किसी निर्णायककी प पड़ी पंक्तियोंमें प खड़ी पंक्तियोंके जितने घटक हों उनसे जो निर्णायक बनता है उसे मूल निर्णायकका ह्रस्व कहते हैं। यह अवश्य ही प कक्षाका होगा।

म पंक्तियों से प पंक्तियां चुननेकी रीतियां कुल

$$^{\text{म}}\text{सं}_\text{प} = \frac{\text{म}(\text{म}-1)(\text{म}-2)\cdots\cdots(\text{म}-\text{प}+1)}{\text{प}\,!}$$

इतनी हैं, इसलिये म कक्षा के निर्णायक के प कक्षा वाले ह्रस्व कुल $\left(^{\text{म}}\text{सं}_\text{प}\right)^2$ होंगे।

२ यदि म कक्षाके निर्णायकसे प पड़ी और प खड़ी पंक्तियां अलग कर दें तो (म – प) पड़ी और उतनी ही खड़ी पंक्तियां बच रहेंगी और इन पड़ी पंक्तियोंके जितने घटक खड़ी पंक्तियों में हों उनसे जो निर्णायक बनता है उसे उपर्युक्त प कक्षावाले ह्रस्व का पूरक ह्रस्व कहते हैं।

उदाहरणार्थ

$$\begin{vmatrix} \text{अ}_{11}, & \text{अ}_{12}, & \text{अ}_{13}, & \text{अ}_{14}, & \text{अ}_{15} \\ \text{अ}_{21}, & \text{अ}_{22}, & \text{अ}_{23}, & \text{अ}_{24}, & \text{अ}_{25} \\ \text{अ}_{31}, & \text{अ}_{32}, & \text{अ}_{33}, & \text{अ}_{34}, & \text{अ}_{35} \\ \text{अ}_{41}, & \text{अ}_{42}, & \text{अ}_{43}, & \text{अ}_{44}, & \text{अ}_{45} \\ \text{अ}_{51}, & \text{अ}_{52}, & \text{अ}_{53}, & \text{अ}_{54}, & \text{अ}_{55} \end{vmatrix}$$

इस निर्णायकमें

$$\begin{vmatrix} अ_{११}, & अ_{१२} \\ अ_{२१}, & अ_{२२} \end{vmatrix} \quad \text{और} \quad \begin{vmatrix} अ_{३३}, & अ_{३४}, & अ_{३५} \\ अ_{४३}, & अ_{४४}, & अ_{४५} \\ अ_{५३}, & अ_{५४}, & अ_{५५} \end{vmatrix}$$

एक दूसरेके पूरक ह्रस्व हैं।

$$\begin{vmatrix} अ_{११}, \ldots\ldots अ_{१च-१}, अ_{१च}, \ldots\ldots अ_{१म} \\ अ_{२१}, \ldots\ldots अ_{२च-१}, अ_{२च}, \ldots\ldots अ_{२म} \\ \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \\ अ_{ज१}, \ldots\ldots अ_{ज\,च-१}, अ_{जच}, \ldots\ldots अ_{जम} \\ \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \\ अ_{म१}, \ldots\ldots अ_{म\,च-१}, अ_{मच}, \ldots\ldots अ_{मम} \end{vmatrix}$$

इस निर्णायककी ज-वीं पड़ी पंक्ति और च-वीं खड़ी पंक्ति मेट दें तो जो निर्णायक बच रहता है उसे $अ_{जच}$ इस घटक का पूरक ह्रस्व कहते हैं। इस तरहके ह्रस्वोंको मूलके प्रथम ह्रस्व कहते हैं। इसी प्रकार प पड़ी और प खड़ी पंक्तियां मेटनेपर जो शेष रहता है उसे मूलका प-वां ह्रस्व कहते हैं। यह प-वां ह्रस्व (म-प)-वीं कक्षाका होता है।

४ म कक्षा वाले म सांकलिपक अंकोंका गुणनफल निर्णायकके रूपमें लिखा जा सकता है (अध्याय २ प्रक्रम ८), परन्तु म कक्षा वाले सांकलिपक अंकोंकी संख्या म से कम या ज़्यादा हो तो उन सबका गुणनफल क्या होगा इस पर विचार करना आवश्यक है।

$$(अ_{११}\, लृ_{१} + अ_{१२}\, लृ_{२} + अ_{१३}\, लृ_{३} + \ldots\ldots + अ_{१म}\, लृ_{म}) \times \ldots\ldots$$
$$\ldots \times (अ_{म१}\, लृ_{१} + अ_{म२}\, लृ_{२} + अ_{म३}\, लृ_{३} + \ldots\ldots + अ_{मम}\, लृ_{म}) \times \ldots\ldots$$
$$\ldots \times (अ_{(म+प)१}\, लृ_{१} + अ_{(म+प)२}\, लृ_{२} + अ_{(म+प)३}\, लृ_{३} + \ldots\ldots + अ_{(म+प)म}\, लृ_{म})$$
$$= \Sigma\, अ_{१च}\, अ_{२छ}\, अ_{३ज} \ldots\ldots अ_{(म+प)ट}\, लृ_{च}\, लृ_{छ}\, लृ_{ज} \ldots\ldots लृ_{ट}$$

यहां लृ के अनुबन्धोंकी संख्या केवल म है पर प्रत्येक पदमें लृओंकी संख्या म+प है। इससे स्पष्ट है कि लृ के कुछ अनुबन्ध एकसे अधिक बार आवेंगे, अतएव प्रत्येक पदका मान शून्य होगा (अध्याय २ प्रक्रम ५)।

यदि सांकलिपक अंकोंकी संख्या म से कम होगी तो गुणाकार यों होगा—

$$(अ_{११}\, लृ_{१} + अ_{१२}\, लृ_{२} + \ldots\ldots + अ_{१म}\, लृ_{म})$$
$$\times (अ_{२१}\, लृ_{१} + अ_{२२}\, लृ_{२} + \ldots\ldots + अ_{२म}\, लृ_{म})$$
$$\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$\times (अ_{(म-प)१}\, लृ_{१} + अ_{(म-प)२}\, लृ_{२} + \ldots\ldots + अ_{(म-प)म}\, लृ_{म})$$

$$= \Sigma\, अ_{१च}\, अ_{२छ}\, अ_{३ज} \ldots\ldots\ldots\ldots अ_{(म-प)ट}\cdot लृ_{च}\, लृ_{छ}\, लृ_{ज} \ldots\ldots लृ_{ट}$$

गुणनफलका यह पद इस रीतिसे बना है:—$अ_{१च}\, लृ_{च}$ पहिले अवयवमें से लिया गया है, $अ_{२छ}\, लृ_{छ}$ दूसरेसे, $अ_{३ज}\, लृ_{ज}$ तीसरेसे,.........और $अ_{(म-प)ट}\, लृ_{ट}$ अन्तके अवयवसे। परन्तु लृओंका यही गुणनफल कई पदोंमें पाया जायगा, क्योंकि पहिलेको छोड़ और किसी अवयवसे च-वां पद लें, दूसरेको छोड़ और किसी अवयवसे छ-वां पद लें और इसी प्रकार उपयुक्त पद चुनते जायँ तो क्रम चाहे बदल जाय पर उन्हीं लृओंका गुणनफल उत्पन्न होगा। जिन जिन पदोंमें इन्हीं लृओंका गुणनफल हो उन्हें एकत्रित करनेसे

$$\begin{vmatrix} अ_{१च}, & अ_{१छ}, & अ_{१ज}, & \ldots\ldots & अ_{१ट} \\ अ_{२च}, & अ_{२छ}, & अ_{२ज}, & \ldots\ldots & अ_{२ट} \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ अ_{(म-प)च}, & अ_{(म-प)छ}, & अ_{(म-प)ज}, & \ldots\ldots & अ_{(म-प)ट} \end{vmatrix} + लृ_{च}\, लृ_{छ}\, लृ_{ज} \ldots\ldots लृ_{ट}$$

यह निर्णायक बनेगा। इसलिये गुणनफलके पदोंका एक समूह इसके बराबर हुआ। पूरे गुणनफलमें ऐसे समूहोंकी संख्या $^{म}सं_{(म-प)}$ है, इसलिये वह

$$\Sigma \begin{vmatrix} अ_{१च}, & अ_{१छ}, & \ldots\ldots & अ_{१ट} \\ अ_{२च}, & अ_{२छ}, & \ldots\ldots & अ_{२ट} \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ अ_{(म-प)च}, & अ_{(म-प)छ}, & \ldots\ldots & अ_{(म-प)ट} \end{vmatrix} \times लृ_{च}\, लृ_{छ}\, लृ_{ज} \ldots लृ_{ट} \quad \ldots \ldots (१)$$

इसके तुल्य होगा।

इसी तरह $|अ_{मम}|$ इस निर्णायकको पूरा करने वाले शेष अवयवोंका गुणनफल यह होगा—

$$(अ_{(म-प+१)१}\, लृ_{१} + अ_{(म-प+१)२}\, लृ_{२} + \ldots\ldots लृ_{२} + अ_{(म-प+१)म}\, लृ_{म})$$

$$\times (अ_{(म-प+२)१}\, लृ_{१} + अ_{(म-प+२)२}\, लृ_{२} + \ldots\ldots + अ_{(म-प+२)म}\, लृ_{म})$$

$$\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$\times (अ_{म१}\, लृ_{१} + अ_{म२}\, लृ_{२} + \ldots\ldots + अ_{मम}\, लृ_{म})$$

$$= \Sigma \begin{vmatrix} अ_{(म-प+१)य}, & अ_{(म-प+१)र}, & \cdots\cdots अ_{(म-प+१)ह} \\ अ_{(म-प+२)य}, & अ_{(म-प+२)र}, & \cdots\cdots अ_{(म-प+२)ह} \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{मय}, & अ_{मर}, & \cdots\cdots अ_{मह} \end{vmatrix} \times लृ_{य}\, लृ_{र} \cdots\cdots लृ_{ह} \qquad \cdots \cdots (२)$$

यहां य र.........ह इन अनुबन्धोंका समूह १, २, ३.........म इनमेंसे प अनुबन्धोंका बना है। अब यदि (१) और (२) का गुणा करें तो

$$|अ_{मम}| = \Sigma \pm \begin{vmatrix} अ_{१च}, & अ_{१छ}, & \cdots\cdots अ_{१ट} \\ अ_{२च}, & अ_{२छ}, & \cdots\cdots अ_{२ट} \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{(म-प)च}, & अ_{(म-प)छ}, & \cdots अ_{(म-प)ट} \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} अ_{(म-प+१)य}, & अ_{(म-प+१)र}, & \cdots\cdots अ_{(म-प+१)ह} \\ अ_{(म-प+२)य}, & अ_{(म-प+२)र}, & \cdots\cdots अ_{(म-प+२)ह} \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{मय}, & अ_{मर}, & \cdots\cdots अ_{मम} \end{vmatrix}$$

क्योंकि लृओंके अनुबन्धोंके दोनों समूह एक दूसरेके पूरक हैं और सब लृओंका गुणनफल ± १ के तुल्य होता है। इससे स्पष्ट है कि किसी निर्णायकको परस्पर ह्स्वोंके गुणनफलोंके योगके रूपमें लिख सकते हैं। यह लैपलेसका सिद्धान्त कहलाता है।

उदाहरणार्थ यदि $\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२} \\ ख_{१}, & ख_{२} \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} ग_{३}, & ग_{४} \\ घ_{३}, & घ_{४} \end{vmatrix}$ इसके बदले केवल (१ २) (३ ४) लिखें तो

$$\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{३}, & क_{४} \\ ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{३}, & ख_{४} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३}, & ग_{४} \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{३}, & घ_{४} \end{vmatrix} = (१२)(३४) + (२३)(१४) + (३१)(२४) + (३४)(१२) + (१४)(२३) + (२४)(३१)$$

उसी प्रकार

$$\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{३}, & क_{४}, & क_{५} \\ ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{३}, & ख_{४}, & ख_{५} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३}, & ग_{४}, & ग_{५} \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{३}, & घ_{४}, & घ_{५} \\ च_{१}, & च_{२}, & च_{३}, & च_{४}, & च_{५} \end{vmatrix} = \begin{aligned} &(१२३)(४५) + (१४२)(३५) \\ &+ (१३४)(२५) + (२४३)(१५) \\ &+ (१२५)(३४) + (३१५)(२४) \\ &+ (२३५)(१४) + (१४५)(२३) \\ &+ (४२५)(१३) + (३४१)(१२) \end{aligned}$$

यहां $\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{३} \\ ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{३} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३} \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} घ_{४}, & घ_{५} \\ च_{४}, & च_{५} \end{vmatrix}$ इसको (१२३) (४५) इससे सूचित किया है, इत्यादि ।

५. यदि किसी निर्णायककी पहिली पड़ी पंक्तिके घटकोंको अपने अपने (प्रक्रम ३) पूरक हस्वोंसे गुणा करके उनमें क्रमानुसार + − चिन्ह लगाकर जोड़ें तो योगफल निर्णायकके तुल्य होगा। जैसे—

$$\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{३}, & क_{४} \\ ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{३}, & ख_{४} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३}, & ग_{४} \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{३}, & घ_{४} \end{vmatrix} = क_{१}\begin{vmatrix} ख_{२}, & ख_{३}, & ख_{४} \\ ग_{२}, & ग_{३}, & ग_{४} \\ घ_{२}, & घ_{३}, & घ_{४} \end{vmatrix} - क_{२}\begin{vmatrix} ख_{१}, & ख_{३}, & ख_{४} \\ ग_{१}, & ग_{३}, & ग_{४} \\ घ_{१}, & घ_{३}, & घ_{४} \end{vmatrix} + क_{३}\begin{vmatrix} ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{४} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{४} \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{४} \end{vmatrix} - क_{४}\begin{vmatrix} ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{३} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३} \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{३} \end{vmatrix}$$

जिस प्रकार यहां पहिली पड़ी पंक्तिके घटकों द्वारा विस्तार लिखा गया है उसी प्रकार चाहें तो और किसी पंक्तिके घटकों द्वारा भी लिख सकते हैं क्योंकि चिन्हके नियमपर ध्यान रखते हुए चाहे जिस पंक्तिको पहिली पंक्तिके स्थानपर ला सकते हैं। ऊपर दिये हुए निर्णायकको यों भी लिख सकते हैं:—

$$-ख_{१}\begin{vmatrix} क_{२}, & क_{३}, & क_{४} \\ ग_{२}, & ग_{३}, & ग_{४} \\ घ_{२}, & घ_{३}, & घ_{४} \end{vmatrix} + ख_{२}\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{३}, & क_{४} \\ ग_{१}, & ग_{३}, & ग_{४} \\ घ_{१}, & घ_{३}, & घ_{४} \end{vmatrix} - ख_{३}\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{४} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{४}, \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{४} \end{vmatrix} + ख_{४}\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{३} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३} \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{३} \end{vmatrix}$$

म-कक्षाके निर्णायकका विस्तृत स्वरूप लिखनेकी रीति नीचे दी जाती है—

$$\begin{vmatrix} अ_{११}, & अ_{१२}, & \cdots & अ_{१म} \\ अ_{२१}, & अ_{२२}, & \cdots & अ_{२म} \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{प१}, & अ_{प२}, & \cdots & अ_{पम} \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ अ_{म१}, & अ_{म२}, & \cdots & अ_{मम} \end{vmatrix} = अ_{प१}\, \mathbf{अ}_{प१} + अ_{प२}\, \mathbf{अ}_{प२} + \cdots अ\ \ \mathbf{अ}_{पब} + \cdots अ_{पम}\, \mathbf{अ}_{पम}$$

यहां $\mathbf{अ}_{पब}$ से अपने चिन्ह सहित $अ_{पब}$ का पूरक ह्रस्व सूचित किया है। वह चिन्ह अवश्य ही $(-१)^{प+ब}$ होगा।

अनुमान—यदि किसी निर्णायककी एक पंक्तिके सब घटक शून्य हों तो निर्णायक भी शून्य होगा।

६ यदि म-कक्षा वाले किसी निर्णायककी प पड़ी पंक्तियोंके (म-प) खड़ी पंक्तियों वाले घटक शून्य हों तो वह दो परस्पर पूरक ह्रस्वोंके गुणनफलके बराबर होगा। जैसे—

$$\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{३}, & ०, & ० \\ ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{३}, & ०, & ० \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३}, & ०, & ० \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{३}, & घ_{४}, & घ_{५} \\ च_{१}, & च_{२}, & च_{३}, & च_{४}, & च_{५} \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & क_{३} \\ ख_{१}, & ख_{२}, & ख_{३} \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ग_{३} \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} घ_{४}, & घ_{५} \\ च_{४}, & च_{५} \end{vmatrix}$$

परन्तु यदि उन प पड़ी पंक्तियोंमें (म-प) से अधिक खड़ी पंक्तियोंके सब घटक शून्य हों तो अवश्य ही वह निर्णायक शून्य होगा। जैसे—

$$\begin{vmatrix} क_{१}, & क_{२}, & ०, & ०, & ० \\ ख_{१}, & ख_{२}, & ०, & ०, & ० \\ ग_{१}, & ग_{२}, & ०, & ०, & ० \\ घ_{१}, & घ_{२}, & घ_{३}, & घ_{४}, & घ_{५} \\ च_{१}, & च_{२}, & च_{३}, & च_{४}, & च_{५} \end{vmatrix} = ०$$

७ यदि निर्णायककी किसी पंक्तिमें केवल एकको छोड़ शेष घटक शून्य हों तो उपयुक्त चिन्ह सहित उस घटकको अपने पूरक ह्रस्वसे गुणा करनेपर जो गुणनफल होगा वह निर्णायकके बराबर होगा। जैसे—

उदाहरण १

प-वीं पड़ी पंक्तिमें $\text{अ}_{\text{प}}$ को छोड़ शेष सब घटक शून्य हों तो निर्णायक $(-१)^{\text{प}+\text{ब}}\,\text{अ}_{\text{पब}}\,\mathbf{\text{अ}}_{\text{पब}}$ इसके बराबर होगा।

उदाहरण २

$$\left|\begin{array}{llll} \text{अ}_{११}, & \text{अ}_{१२}, & \cdots\cdots & \text{अ}_{१\text{म}} \\ ०, & \text{अ}_{२२}, & \cdots\cdots & \text{अ}_{२\text{म}} \\ ०, & \text{अ}_{३२}, & \cdots\cdots & \text{अ}_{३\text{म}} \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ ०, & \text{अ}_{\text{म}२}, & \cdots\cdots & \text{अ}_{\text{मम}} \end{array}\right| = \text{अ}_{११}\left|\begin{array}{lll} \text{अ}_{२२}, & \text{अ}_{२३}, \cdots\cdots & \text{अ}_{२\text{म}} \\ \text{अ}_{३२}, & \text{अ}_{३३}, \cdots\cdots & \text{अ}_{३\text{म}} \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ \text{अ}_{२\text{म}}, & \text{अ}_{\text{म}३}, \cdots\cdots & \text{अ}_{\text{मम}} \end{array}\right| = \text{अ}_{११}\,\mathbf{\text{अ}}_{११}$$

उदाहरण ३

$$\left|\begin{array}{lllll} \text{अ}_{११}, & \text{अ}_{१२}, & \text{अ}_{१३}, & \cdots\cdots & \text{अ}_{१\text{म}} \\ ०, & \text{अ}_{२२}, & \text{अ}_{२३}, & \cdots\cdots & \text{अ}_{२\text{म}} \\ ०, & ०, & \text{अ}_{३३}, & \cdots\cdots & \text{अ}_{३\text{म}} \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ ०, & ०, & ०, & \cdots\cdots & \text{अ}_{\text{मम}} \end{array}\right| = \text{अ}_{११}\left|\begin{array}{lll} \text{अ}_{२२}, & \text{अ}_{२३}, \cdots\cdots & \text{अ}_{२\text{म}} \\ ०, & \text{अ}_{३३}, \cdots\cdots & \text{अ}_{३\text{म}} \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots \\ ०, & ०, \cdots\cdots & \text{अ}_{\text{मम}} \end{array}\right|$$

$$= \text{अ}_{११}\,\text{अ}_{२२}\,\text{अ}_{३३}\cdots\cdots\text{अ}_{\text{मम}}$$

[इस अन्तिम उदाहरणमें प्रधान कर्ण रेखाके एक ओरके सब घटक शून्य हैं।]

८ किसी निर्णायकके रूपमें आवश्यकतानुसार कई परिवर्तन किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ—

$$\text{न}^{\text{म}} = \left|\begin{array}{ccccc} ०, & \text{क}, & \text{क}, & \text{क}, & \text{क} \\ \text{ग}, & ०, & \text{क}, & \text{क}, & \text{क} \\ \text{ग}, & \text{ग}, & ०, & \text{क}, & \text{क} \\ \text{ग}, & \text{ग}, & \text{ग}, & ०, & \text{क} \\ \text{ग}, & \text{ग}, & \text{ग}, & \text{ग}, & ० \end{array}\right|_{(\text{म})}$$

[यहाँ अनुबन्ध म निर्णायककी कक्षा सूचित करता है। इसमें कर्ण रेखाके सब घटक शून्य हैं, उसकी दाहिनी ओरके सब क और बाईं ओरके सब ग हैं।]

यहां यदि अन्तकी पड़ी पंक्तिसे आरम्भ करके प्रत्येक पंक्तिसे (बिलकुल पास वाली) ऊपरकी पंक्ति घटावें तो निर्णायकका रूप यह होगा—

$$\text{न}_\text{म} = \begin{vmatrix} 0, & \text{क}, & \text{क}, & \text{क}, & \cdots & \text{क} \\ \text{ग}, & -\text{क}, & 0, & 0, & \cdots & 0 \\ 0, & \text{ग}, & -\text{क}, & 0, & \cdots & 0 \\ 0, & 0, & \text{ग}, & -\text{क}, & \cdots & 0 \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ 0, & 0, & 0, & 0, & \cdots \text{ग}, & -\text{क} \end{vmatrix}_{(\text{म})}$$

इसकी पहली खड़ी पंक्तिमें ग को छोड़ शेष सब घटक शून्य हैं। इसलिये

$$\text{न}_\text{म} = -\text{ग}\begin{vmatrix} \text{क}, & \text{क}, & \text{क}, & \cdots & \text{क} \\ \text{ग}, & -\text{क}, & 0, & \cdots & 0 \\ 0, & \text{ग}, & -\text{क}, & \cdots & 0 \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ 0, & 0, & 0, & \cdots \text{ग}, & -\text{क} \end{vmatrix}_{(\text{म}-१)}$$

दिये हुए निर्णायकसे यह नीची कक्षाका है। इस (म-१) कक्षाके निर्णायककी पहिली पड़ी पंक्तिके घटकोंको

$$\text{क}+0,\ 0+\text{क},\ 0+\text{क},\ \cdots\cdots$$

इस रूपमें लिखें तो इस निर्णायकको दो निर्णायकोंके योगफलका रूप दे सकते हैं। जैसे—

$$\text{न}_\text{म} = -\text{ग}\begin{vmatrix} \text{क}, & 0, & 0, & 0, & \cdots 0 \\ \text{ग}, & -\text{क}, & 0, & 0, & \cdots 0 \\ 0, & \text{ग}, & -\text{क}, & 0, & \cdots 0 \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ 0, & 0, & 0, & 0, & \cdots -\text{क} \end{vmatrix}_{(\text{म}-१)} - \text{ग}\begin{vmatrix} 0, & \text{क}, & \text{क}, & \text{क}, & \cdots \text{क} \\ \text{ग}, & -\text{क}, & 0, & 0, & \cdots 0 \\ 0, & \text{ग}, & -\text{क}, & 0, & \cdots 0 \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ \cdots & \cdots & \cdots & \cdots & \cdots \\ 0, & 0, & 0, & 0, & \cdots -\text{क} \end{vmatrix}_{(\text{म}-१)}$$

$$= -\text{ग}\,(-१)^{\text{म}-२}\,\text{क}^{\text{म}-१} - \text{ग}\,(\text{न}_{\text{म}-१})$$

या,
$$\text{न}_\text{म} = -\text{ग}\,(\text{न}_{\text{म}-१}) + (-१)^{\text{म}-१}\,\text{क}^{\text{म}-१}\,\text{ग}$$

इस समीकरणमें $\text{न}_\text{म}$ और $\text{न}_{\text{म}-१}$ इन दोनों निर्णायकोंका रूप समान है। इसलिये

$$न_{म-१} (-ग) = [-ग (न_{म-२}) + (-१)^{म-२} क^{म-२} ग] (-ग)$$

इसी तरह, $न_{म-२} (-ग)^२ = [-ग (न_{म-३}) + (-क)^{म-३} ग] (-ग)^२$

....

....

$$न_{म-(म-३)} (-ग)^{म-३} = [-ग (न_{म-(म-२)}) + (-क)^२ ग] (-ग)^{म-३}$$

इन समीकरणोंको जोड़नेसे यह स्पष्ट है कि

$$न_म = (-ग)^{म-२} न_२ + ग [(-क)^{म-२} + (-क)^{म-३} (-ग) + (-क)^{म-४} (-ग)^२ + \ldots\ldots + (-क)^२ (-ग)^{म-४}$$

परन्तु $न_२ = \begin{vmatrix} ० , & क \\ ग , & -क \end{vmatrix} = -क ग$

इसलिये

$$न_म = -क ग [(-क)^{म-२} + (-क)^{म-३} (-ग) + (-क)^{म-४} (-ग)^२ + \ldots\ldots + (-क) (-ग)^{म-३} + (-ग)^{म-२}]$$

$$= -क ग \frac{(-क)^{म-१} - (-ग)^{म-१}}{(-क) \quad -(-ग)}$$

$$= (-१)^{म-१} क ग \frac{क^{म-१} - ग^{म-१}}{क - ग}$$

६ यदि किसी निर्णायककी कक्षा नीची करनी हो तो उसकी किसी पंक्तिके एकको छोड़ शेष घटकोंको शून्य बनाना चाहिये। (देखिये प्रक्रम ७)।

कक्षा ऊंची करनेके लिये कमसे कम एक पड़ी और एक खड़ी पंक्ति बढ़ानी होगी। सुभीतेके लिये इन नई पंक्तियोंको पहिला स्थान देते हैं। नई पड़ी पंक्तिमें पहिले घटकके स्थान में १ और शेष घटकोंके स्थानमें शून्य लिखते हैं। फिर नई खड़ी पंक्तिके शेष घटकोंको मनमाने ले लेनेसे काम चल जाता है। जैसे—

$$|अ_{मम}| = \begin{vmatrix} १ , & ० , & ० , & ० , & \ldots\ldots\ldots ० \\ क , & अ_{११} , & अ_{१२} , & अ_{१३} , & \ldots\ldots\ldots अ_{१म} \\ ख , & अ_{२१} , & अ_{२२} , & अ_{२३} , & \ldots\ldots\ldots अ_{२म} \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ प , & अ_{म१} , & अ_{म२} , & अ_{म३} , & \ldots\ldots\ldots अ_{मम} \end{vmatrix}$$

४. निर्णायकोंका गुणाकार

१ दो निर्णायकोंका गुणाकार करनेके लिये दोनोंको एक ही कक्षाका बनाना चाहिये। म-कक्षा वाले दो निर्णायकोंका गुणनफल म-कक्षा वाले निर्णायकके रूपमें प्रकट किया जा सकता है। जैसे—

$$|अ_{मम}|\,|क_{मम}| = \begin{vmatrix} अ_{११}, & अ_{१२}, & अ_{१३}, & \ldots\ldots अ_{१म}, & ०, & ०, & ०, & \ldots\ldots ० \\ अ_{२१}, & अ_{२२}, & अ_{२३}, & \ldots\ldots अ_{२म}, & ०, & ०, & ०, & \ldots\ldots ० \\ अ_{३१}, & अ_{३२}, & अ_{३३}, & \ldots\ldots अ_{३म}, & ०, & ०, & ०, & \ldots\ldots ० \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ अ_{म१}, & अ_{म२}, & अ_{म३}, & \ldots\ldots अ_{मम}, & ०, & ०, & ०, & \ldots\ldots ० \\ -१, & ०, & ०, & \ldots\ldots ० & क_{११}, & क_{२१}, & क_{३१}, & \ldots\ldots क_{म१} \\ ०, & -१, & ०, & \ldots\ldots ० & क_{१२}, & क_{२२}, & क_{३२}, & \ldots\ldots क_{म२} \\ ०, & ०, & -१, & \ldots\ldots ० & क_{१३}, & क_{२३}, & क_{३३}, & \ldots\ldots क_{म३} \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ ०, & ०, & ०, & \ldots -१, & क_{१म}, & क_{२म}, & क_{३म}, & \ldots\ldots क_{मम} \end{vmatrix}$$

दाहिनी ओरके निर्णायककी कक्षा २ म है। इसे म-कक्षाका इस प्रकार बना सकते हैं:—पहिली खड़ी पंक्तिको $क_{११}$ के गुणा करके (म+१) वीं खड़ी पंक्तिमें जोड़ दें, वैसे ही दूसरी खड़ी पंक्तिको $क_{१२}$ से गुणा करके उसी (म+१)वीं खड़ी पंक्तिमें जोड़ें, और इसी प्रकार तीसरी चौथी......म-वीं को भी क्रमानुसार $क_{१३}$, $क_{१४}$............$क_{१म}$ से गुणा करके उसी (म+१) पंक्तिमें जोड़ें तो (म+१) वीं खड़ी पंक्तिका यह रूप बनेगा—

$$\begin{array}{l} अ_{११}\,क_{११} + अ_{१२}\,क_{१२} + अ_{१३}\,क_{१३} + \ldots\ldots + अ_{१म}\,क_{१म} \\ अ_{२१}\,क_{११} + अ_{२२}\,क_{१२} + अ_{२३}\,क_{१३} + \ldots\ldots + अ_{२म}\,क_{१म} \\ अ_{३१}\,क_{११} + अ_{३२}\,क_{१२} + अ_{३३}\,क_{१३} + \ldots\ldots + अ_{३म}\,क_{१म} \\ \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \\ अ_{म१}\,क_{११} + अ_{म२}\,क_{१२} + अ_{म३}\,क_{१३} + \ldots\ldots + अ_{मम}\,क_{१म} \\ ० \\ ० \\ ० \\ \vdots \\ ० \end{array}$$

इसी प्रकार पहिली म खड़ी पंक्तियोंको क्रमानुसार $\text{क}_{२१}$, $\text{क}_{२२}$, $\text{क}_{२३}$, ...$\text{क}_{२म}$ से गुणा करके (म+२)री पंक्तिमें जोड़ें तो नई पंक्तिका रूप यह होगा—

$$\text{अ}_{११}\,\text{क}_{२१}+\text{अ}_{१२}\,\text{क}_{२२}+\text{अ}_{१३}\,\text{क}_{२३}+\ldots\ldots\ldots+\text{अ}_{१म}\,\text{क}_{२म}$$

$$\text{अ}_{२१}\,\text{क}_{२१}+\text{अ}_{२२}\,\text{क}_{२२}+\text{अ}_{२३}\,\text{क}_{२३}+\ldots\ldots\ldots+\text{अ}_{२म}\,\text{क}_{२म}$$

$$\text{अ}_{३१}\,\text{क}_{२१}+\text{अ}_{३२}\,\text{क}_{२म}+\text{अ}_{३३}\,\text{क}_{२३}+\ldots\ldots\ldots+\text{अ}_{३म}\,\text{क}_{२म}$$

$$\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$\text{अ}_{म१}\,\text{क}_{२१}+\text{अ}_{म२}\,\text{क}_{२२}+\text{अ}_{म३}\,\text{क}_{२३}+\ldots\ldots\ldots+\text{अ}_{मम}\,\text{क}_{२म}$$

$$\begin{array}{c} ० \\ ० \\ ० \\ \vdots \\ ० \end{array}$$

इसी प्रकार (म+३)रीसे लेकर अंततक जितनी पंक्तियां हैं उन सबको बदलनेसे निर्णायकका रूप यह हो जायगा—

$$\begin{vmatrix}
\text{अ}_{११}, & \text{अ}_{१२}, & \text{अ}_{१३}, & \ldots\text{अ}_{१म}, & \text{ट}_{११}, & \text{ट}_{१२}, & \text{ट}_{१३}, & \ldots\text{ट}_{१म} \\
\text{अ}_{२१}, & \text{अ}_{२२}, & \text{अ}_{२३}, & \ldots\text{अ}_{२म}, & \text{ट}_{२१}, & \text{ट}_{२२}, & \text{ट}_{२३}, & \ldots\text{ट}_{२म} \\
\text{अ}_{३१}, & \text{अ}_{३२}, & \text{अ}_{३३}, & \ldots\text{अ}_{३म}, & \text{ट}_{३१}, & \text{ट}_{३२}, & \text{ट}_{३३}, & \ldots\text{ट}_{३म} \\
\ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\
\text{अ}_{म१}, & \text{अ}_{म२}, & \text{अ}_{म३}, & \ldots\text{अ}_{मम}, & \text{ट}_{म१}, & \text{ट}_{म२}, & \text{ट}_{म३}, & \ldots\text{ट}_{मम} \\
-१, & ०, & ०, & \ldots ०, & ०, & ०, & ०, & \ldots ० \\
०, & -१, & ०, & \ldots ०, & ०, & ०, & ०, & \ldots ० \\
०, & ०, & -१, & \ldots ०, & ०, & ०, & ०, & \ldots ० \\
\ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\
०, & ०, & ०, & \ldots -१, & ०, & ०, & ०, & \ldots ०
\end{vmatrix}$$

यहां $\text{ट}_{पब}$ का अर्थ है :—

$$\text{अ}_{प१}\,\text{क}_{ब१}+\text{अ}_{प२}\,\text{क}_{ब२}+\text{अ}_{प३}\,\text{क}_{ब३}+\ldots\ldots\ldots+\text{अ}_{पम}\,\text{क}_{बम}$$

लेपलेपके सिद्धान्तके अनुसार ऊपरके निर्णायकका मान यह होगा—

$$\begin{vmatrix} \text{ट}_{११}, & \text{ट}_{१२}, & \text{ट}_{१३} & \ldots\ldots\text{ट}_{१म} \\ \text{ट}_{२१}, & \text{ट}_{२२}, & \text{ट}_{२३}, & \ldots\ldots\text{ट}_{२म} \\ \text{ट}_{३१}, & \text{ट}_{३२}, & \text{ट}_{३३}, & \ldots\ldots\text{ट}_{३म} \\ \ldots & \ldots & \ldots & \ldots \\ \text{ट}_{म१}, & \text{ट}_{म२}, & \text{ट}_{म३}, & \ldots\ldots\text{ट}_{मम} \end{vmatrix}$$

इसकी कक्षा म है।

ऊपर दिया हुआ नियम अच्छी तरह समझमें आ जाय इस अभिप्रायसे तीसरी कक्षाके दो निर्णायकोंके गुणाकारकी पूरी रीति नीचे दी जाती है।

$$\begin{vmatrix} \text{अ}_{११}, & \text{अ}_{१२}, & \text{अ}_{१३} \\ \text{अ}_{२१}, & \text{अ}_{२१}, & \text{अ}_{२३} \\ \text{अ}_{३१}, & \text{अ}_{३२}, & \text{अ}_{३३} \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} \text{क}_{११}, & \text{क}_{१२}, & \text{क}_{१३} \\ \text{क}_{२१}, & \text{क}_{२२}, & \text{क}_{२३} \\ \text{क}_{३१}, & \text{क}_{३२}, & \text{क}_{३३} \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} \text{अ}_{११}, & \text{अ}_{१२}, & \text{अ}_{१३}, & ०, & ०, & ० \\ \text{अ}_{२१}, & \text{अ}_{२२}, & \text{अ}_{२३}, & ०, & ०, & ० \\ \text{अ}_{३१}, & \text{अ}_{३२}, & \text{अ}_{३३}, & ०, & ०, & ० \\ -१, & ०, & ०, & \text{क}_{११}, & \text{क}_{२१}, & \text{क}_{३१} \\ ०, & -१, & ०, & \text{क}_{१२}, & \text{क}_{२२}, & \text{क}_{३२} \\ ०, & ०, & -१, & \text{क}_{१३}, & \text{क}_{२३}, & \text{क}_{३३} \end{vmatrix}$$

$$= \begin{vmatrix} \text{अ}_{११}, & \text{अ}_{१२}, & \text{अ}_{१३}, & \text{अ}_{११}\text{क}_{११}+\text{अ}_{१२}\text{क}_{१२}+\text{अ}_{१३}\text{क}_{१३}, & \text{अ}_{११}\text{क}_{२१}+\text{अ}_{१२}\text{क}_{२२}+\text{अ}_{१३}\text{क}_{२३}, & \text{अ}_{११}\text{क}_{३१}+\text{अ}_{१२}\text{क}_{३२}+\text{अ}_{१३}\text{क}_{३३} \\ \text{अ}_{२१}, & \text{अ}_{२२}, & \text{अ}_{२३}, & \text{अ}_{२१}\text{क}_{११}+\text{अ}_{२२}\text{क}_{१२}+\text{अ}_{२३}\text{क}_{१३}, & \text{अ}_{२१}\text{क}_{२१}+\text{अ}_{२२}\text{क}_{२२}+\text{अ}_{२३}\text{क}_{२३}, & \text{अ}_{२१}\text{क}_{३१}+\text{अ}_{२२}\text{क}_{३२}+\text{अ}_{२३}\text{क}_{३३} \\ \text{अ}_{३१}, & \text{अ}_{३२}, & \text{अ}_{३३}, & \text{अ}_{३१}\text{क}_{११}+\text{अ}_{३२}\text{क}_{१२}+\text{अ}_{३३}\text{क}_{१३}, & \text{अ}_{३१}\text{क}_{२१}+\text{अ}_{३२}\text{क}_{२२}+\text{अ}_{३३}\text{क}_{२३}, & \text{अ}_{३१}\text{क}_{३१}+\text{अ}_{३२}\text{क}_{३२}+\text{अ}_{३३}\text{क}_{३३} \\ -१, & ०, & ०, & ०, & ०, & ० \\ ०, & -०, & ०, & ०, & ०, & ० \\ ०, & ०, & -१, & ०, & ०, & ० \end{vmatrix}$$

$$= \begin{vmatrix} \text{अ}_{११}\text{क}_{११}+\text{अ}_{१२}\text{क}_{१२}+\text{अ}_{१३}\text{क}_{१३}, & \text{अ}_{११}\text{क}_{२१}+\text{अ}_{१२}\text{क}_{२२}+\text{अ}_{१३}\text{क}_{२३}, & \text{अ}_{११}\text{क}_{३१}+\text{अ}_{२१}\text{क}_{३२}+\text{अ}_{१३}\text{क}_{३३} \\ \text{अ}_{२१}\text{क}_{११}+\text{अ}_{२२}\text{क}_{१२}+\text{अ}_{२३}\text{क}_{१३}, & \text{अ}_{२१}\text{क}_{२१}+\text{अ}_{२२}\text{क}_{२२}+\text{अ}_{२३}\text{क}_{२३}, & \text{अ}_{२१}\text{क}_{३१}+\text{अ}_{२२}\text{क}_{३२}+\text{अ}_{२३}\text{क}_{३३} \\ \text{अ}_{३१}\text{क}_{११}+\text{अ}_{३२}\text{क}_{१२}+\text{अ}_{३३}\text{क}_{१३}, & \text{अ}_{३१}\text{क}_{२१}+\text{अ}_{३२}\text{क}_{२२}+\text{अ}_{३३}\text{क}_{२३}, & \text{अ}_{३१}\text{क}_{३१}+\text{अ}_{३२}\text{क}_{३२}+\text{अ}_{३३}\text{क}_{३३} \end{vmatrix}$$

२ ह्रस्वात्मक निर्णायक—किसी निर्णायकके प्रत्येक घटकके स्थानमें उसका पूरक ह्रस्व लिखें तो जो निर्णायक बनता है उसे ह्रस्वात्मक निर्णायक कहते हैं। जैसे—

यदि $न = \begin{vmatrix} क_1, ख_1, ग_1 \\ क_2, ख_2, ग_2 \\ क_3, ख_3, ग_3 \end{vmatrix}$ यह निर्णायक दिया जाय

और कं, खं, गं, से क, ख, ग के पूरक ह्रस्व सूचित किये जायँ तो

$$न' = \begin{vmatrix} कं_1, खं_1, गं_1 \\ कं_2, खं_2, गं_2 \\ कं_3, खं_3, गं_3 \end{vmatrix}$$

यह न का ह्रस्वात्मक होगा।

इन दोनोंका गुणनफल

$$न\ न' = \begin{vmatrix} न, 0, 0 \\ 0, न, 0 \\ 0, 0, न \end{vmatrix} = न^3$$

$$\therefore \quad न' = न^2$$

इससे स्पष्ट है कि किसी म-कक्षा वाले ह्रस्वात्मक निर्णायकका मान मूल निर्णायकके (म – १)वें घातके बराबर होगा। अथवा

$$न'_{(म)} = न_{(म)}^{म-1}$$

३ प्रत्येक निर्णायकमें खड़ी और पड़ी पंक्तियोंकी संख्या बराबर होती है। यदि वह संख्या बराबर न हो तो उन पंक्तियों द्वारा बने हुए आयत चतुर्भुजका वैसा कोई अर्थ नहीं होता जैसा निर्णायकका होता है। घटकोंकी ऐसी रचना चतुष्कोण कहलाती है। दो समकक्ष चतुष्कोण लेकर यदि उनमें निर्णायकोंके गुणाकारकी रीति लगावें तो एक निर्णायक बनेगा जिसकी कुछ चर्चा नीचे करेंगे।

प्रकार १. इसमें खड़ी पंक्तियां पड़ी पंक्तियोंसे अधिक होती हैं।

ऐसे दो समकक्ष चतुष्कोण ये हैं—

$$\begin{vmatrix} क_1, क_2, क_3, क_4 \\ ख_1, ख_2, ख_3, ख_4 \end{vmatrix} \text{ और } \begin{vmatrix} ट_1, ट_2, ट_3, ट_4 \\ ठ_1, ठ_2, ठ_3, ठ_4 \end{vmatrix}$$

इनमें गुणाकारकी रीति लगावें तो यह निर्णायक बनेगा—

$$\begin{vmatrix} क_1 ट_1 + क_2 ट_2 + क_3 ट_3 + क_4 ट_4, & क_1 ठ_1 + क_2 ठ_2 + क_3 ठ_3 + क_4 ठ_4 \\ ख_1 ट_1 + ख_2 ट_2 + ख_3 ट_3 + ख_4 ट_4, & ख_1 ठ_1 + ख_2 ठ_2 + ख_3 ठ_3 + ख_4 ठ_4 \end{vmatrix}$$

इसका मान यह होगा—

$$(क_1\ ख_2)\ (ट_1\ ठ_2)+(क_1\ ख_3)\ (ट_1\ ठ_3)+(क_1\ ख_4)\ (ट_1\ ठ_4)$$
$$+(क_2\ ख_3)\ (ट_2\ ठ_3)+(क_2\ ख_4)\ (ट_2\ ठ_4)+(क_3\ ख_4)\ (ट_3\ ठ_4)$$

यहां $(क_1\ ख_2)$का अर्थ $\begin{vmatrix} क_1\ , & क_2 \\ ख_1\ , & ख_2 \end{vmatrix}$ यह निर्णायक है, इसी प्रकार $(ठ_1\ ठ_2)$ इत्यादिक संकेतोंका अर्थ समझना चाहिये।

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक चतुष्कोणमें पड़ी पंक्तियोंकी जो संख्या हो उसी कक्षावाले जितने निर्णायक प्रत्येक चतुष्कोणसे बनाये जा सकें बनाये जायँ और पहिले चतुष्कोणके किसी निर्णायकको दूसरेके अनुरूप निर्णायकसे गुणा करें तो इस प्रकार जितने गुणनफल हों उन सबका योगफल उस निर्णायकके बराबर होगा जो चतुष्कोणोंमें गुणाकारकी रीति लगानेसे बनता है।

प्रकार २. इसमें पड़ी पंक्तियां खड़ी पंक्तियोंसे अधिक होती हैं।

उदाहरणार्थ—

$$\begin{vmatrix} क_1\ , & क_2\ , \\ ख_1\ , & ख_2\ , \\ ग_1\ , & ग_2\ , \\ घ_1\ , & घ_2\ , \end{vmatrix} \quad \text{और} \quad \begin{vmatrix} ट_1\ , & ट_2\ , \\ ठ_1\ , & ठ_2\ , \\ ड_1\ , & ड_2\ , \\ ढ_1\ , & ढ_2\ , \end{vmatrix}$$

इनमें गुणाकारकी रीति लगावें तो नीचे लिखा हुआ निर्णायक बनता है—

$$\begin{vmatrix} क_1\ ट_1+क_2\ ट_2\ , & क_1\ ठ_1+क_2\ ठ_2\ , & क_1\ ड_1+क_2\ ड_2\ , & क_1\ ढ_1+क_2\ ढ_2 \\ ख_1\ ट_1+ख_2\ ट_2\ , & ख_1\ ठ_1+ख_2\ ठ_2\ , & ख_1\ ड_1+ख_2\ ड_2\ , & ख_1\ ढ_1+ख_2\ ढ_2 \\ ग_1\ ट_1+ग_2\ ट_2\ , & ग_1\ ठ_1+ग_2\ ठ_2\ , & ग_1\ ड_1+ग_2\ ड_2\ , & ग_1\ ढ_1+ग_2\ ढ_2 \\ घ_1\ ट_1+घ_2\ ट_2\ , & घ_1\ ठ_1+घ_2\ ठ_2\ , & घ_1\ ड_1+घ_2\ ड_2\ , & घ_1\ ढ_1+घ_2\ ढ_2 \end{vmatrix}$$

अब यदि हरएक चतुष्कोणमें शून्यवाली खड़ी पंक्ति जोड़कर खड़ी और पड़ी पंक्तियोंकी संख्या समान करें तो जो निर्णायक बनेंगे वे अवश्य ही शून्य होंगे और उनको गुणा करें तो गुणनफल भी शून्य होगा, परन्तु गुणनफल वही निर्णायक होता है जो ऊपर लिखा है; इसलिये उस निर्णायकका मान शून्य है।

४ चतुष्कोणोंके गुणाकारकी ऊपर दी हुई रीतिकी सहायतासे ज्यामितिके कई सिद्धान्त बड़ी सरलता पूर्वक सिद्ध किये जा सकते हैं। यहां केवल एक उदाहरण दिया जायगा। प्रोफ़ेसर केले (Caley) द्वारा सिद्ध किये हुए कई सिद्धान्तोंमेंसे यह एक है।

$$\begin{vmatrix} \text{१} & \text{०} & \text{०} & \text{०} \\ \text{य}_\text{१}^\text{२}+\text{र}_\text{१}^\text{२} & -\text{२य}_\text{१} & -\text{२र}_\text{१} & \text{१} \\ \text{य}_\text{२}^\text{२}+\text{र}_\text{२}^\text{२} & -\text{२य}_\text{२} & -\text{२र}_\text{२} & \text{१} \\ \text{य}_\text{३}^\text{२}+\text{र}_\text{३}^\text{२} & -\text{२य}_\text{३} & -\text{२र}_\text{३} & \text{१} \\ \text{य}_\text{४}^\text{२}+\text{र}_\text{४}^\text{२} & -\text{२य}_\text{४} & -\text{२र}_\text{४} & \text{१} \end{vmatrix} \times \begin{vmatrix} \text{०} & \text{०} & \text{०} & \text{०} \\ \text{१} & \text{य}_\text{१} & \text{र}_\text{१} & \text{य}_\text{१}^\text{२}+\text{र}_\text{१}^\text{२} \\ \text{१} & \text{य}_\text{२} & \text{र}_\text{२} & \text{य}_\text{२}^\text{२}+\text{र}_\text{२}^\text{२} \\ \text{१} & \text{य}_\text{३} & \text{र}_\text{३} & \text{य}_\text{३}^\text{२}+\text{र}_\text{३}^\text{२} \\ \text{१} & \text{य}_\text{४} & \text{र}_\text{४} & \text{य}_\text{४}^\text{२}+\text{र}_\text{४}^\text{२} \end{vmatrix}$$

$$= \begin{vmatrix} \text{०} & \text{१} & \text{१} & \text{१} \\ \text{१} & \text{०} & (\text{य}_\text{१}-\text{य}_\text{२})^\text{२}+(\text{र}_\text{१}-\text{र}_\text{२})^\text{२} & (\text{य}_\text{१}-\text{य}_\text{३})^\text{२}+(\text{र}_\text{१}-\text{र}_\text{३})^\text{२} \\ \text{१} & (\text{य}_\text{१}-\text{य}_\text{२})^\text{२}+(\text{र}_\text{१}-\text{र}_\text{२})^\text{२} & \text{०} & (\text{य}_\text{२}-\text{य}_\text{३})^\text{२}+(\text{र}_\text{२}-\text{र}_\text{३})^\text{२} \\ \text{१} & (\text{य}_\text{१}-\text{य}_\text{३})^\text{२}+(\text{र}_\text{१}-\text{र}_\text{३})^\text{२} & (\text{य}_\text{२}-\text{य}_\text{३})^\text{२}+(\text{र}_\text{२}-\text{र}_\text{३})^\text{२} & \text{०} \\ \text{१} & (\text{य}_\text{१}-\text{य}_\text{४})^\text{२}+(\text{र}_\text{१}-\text{र}_\text{४})^\text{२} & (\text{य}_\text{२}-\text{य}_\text{४})^\text{२}+(\text{र}_\text{२}-\text{र}_\text{४})^\text{२} & \end{vmatrix}$$

$$\begin{matrix} \text{१} \\ (\text{य}_\text{३}-\text{य}_\text{४})^\text{२}+(\text{र}_\text{३}-\text{र}_\text{४})^\text{२} \\ (\text{य}_\text{१}-\text{य}_\text{४})^\text{२}+(\text{र}_\text{१}-\text{र}_\text{४})^\text{२} \\ (\text{य}_\text{२}-\text{य}_\text{४})^\text{२}+(\text{र}_\text{२}-\text{र}_\text{४})^\text{२} \\ (\text{य}_\text{३}-\text{य}_\text{४})^\text{२}+(\text{र}_\text{३}-\text{र}_\text{४})^\text{२} \\ \text{०} \end{matrix}$$

सुभीतेके लिये यदि (२, ४) इस संकेतसे उन दो बिन्दुओंके बीचकी दूरी सूचित करें जिनके संशर ($\text{य}_\text{२}$, $\text{र}_\text{२}$) और ($\text{य}_\text{४}$, $\text{र}_\text{४}$) हैं और इसी प्रकार अन्य संकेतोंका अर्थ समझें तो ऊपरके निर्णायकको इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\begin{vmatrix} \text{०} & \text{१} & \text{१} & \text{१} & \text{१} \\ \text{१} & \text{०} & (\text{१, २})^\text{२} & (\text{१, ३})^\text{२} & (\text{१, ४})^\text{२} \\ \text{१} & (\text{१, २})^\text{२} & \text{०} & (\text{२, ३})^\text{२} & (\text{२, ४})^\text{२} \\ \text{१} & (\text{१, ३})^\text{२} & (\text{२, ३})^\text{२} & \text{०} & (\text{३, ४})^\text{२} \\ \text{१} & (\text{१, ४})^\text{२} & (\text{२, ४})^\text{२} & (\text{३, ४})^\text{२} & \text{०} \end{vmatrix}$$

प्रक्रम ३ प्रकार २. के अनुसार इस निर्णायकका मान शून्य है। इसलिये यह स्पष्ट है कि यदि एक समतलपर चार विन्दु क, ख, ग, घ लिये जायँ तो उनके बीचकी $\overline{\text{क ख}}$, $\overline{\text{क ग}}$, $\overline{\text{क घ}}$, $\overline{\text{ख ग}}$, $\overline{\text{ख घ}}$, और $\overline{\text{ग घ}}$ इन ६ दूरियोंका परस्पर सम्बन्ध इस निर्णायकको शून्यके तुल्य लिखनेपर व्यक्त होगा।

५. निर्गमन

१ यदि म-वर्ण म सरल समीकरण दिये जायँ तो उनके मूल निकालनेमें निर्णायकोंका उपयोग हो सकता है। जैसे—

$$\text{क}_\text{१}\,\text{य}_\text{१}+\text{ख}_\text{१}\,\text{य}_\text{२}+\text{ग}_\text{१}\,\text{य}_\text{३}+\ldots\ldots\ldots+\text{न}_\text{१}\,\text{य}_\text{म}=\text{प}_\text{१}$$

$$\text{क}_\text{२}\,\text{य}_\text{१}+\text{ख}_\text{२}\,\text{य}_\text{२}+\text{ग}_\text{२}\,\text{य}_\text{३}+\ldots\ldots\ldots+\text{न}_\text{२}\,\text{य}_\text{म}=\text{प}_\text{२}$$

$$क_3 य_1 + ख_3 य_2 + ग_3 य_3 + \ldots\ldots + न_3 य_म = प_3$$

....

....

$$क_म य_1 + ख_म य_2 + ग_म य_3 + \ldots\ldots + न_म य_म = प_म$$

इन समीकरणोंमें अव्यक्तोंके जो गुण हैं उनसे बना हुआ निर्णायक यह है—

$$\begin{vmatrix} क_1, & ख_1, & ग_1, & \ldots\ldots & न_1 \\ क_2, & ख_2, & ग_2, & \ldots\ldots & न_2 \\ क_3, & ख_3, & ग_3, & \ldots\ldots & न_3 \\ & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \\ & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \\ क, & ख, & ग, & \ldots\ldots & न_म \end{vmatrix}$$

अब $य_1$ का मान जाननेकी रीति है :—मानो कि $क_1, क_2, क_3 \ldots\ldots$ इत्यादिके पूरक ह्रस्व $कं_1, कं_2, कं_3 \ldots\ldots$ इत्यादि हैं, दिये हुए समीकरणोंको क्रमानुसार $कं_1, कं_2, कं_3 \ldots\ldots कं_म$ से गुणा करके उन सबको जोड़ें तो $य_1$ को छोड़ सब अव्यक्तोंके गुण शून्य हो जाते हैं और नीचे लिखा हुआ समीकरण उत्पन्न होता है।

$$(क_1 कं_1 + क_2 कं_2 + \ldots\ldots क_म कं_म) य_1 = प_1 कं_1 + प_2 कं_2 + \ldots\ldots + प_म कं_म$$

$$इसलिये\ य_1 = \frac{प_1 कं_1 + प_2 कं_2 + \ldots\ldots + प_म कं_म}{क_1 कं_1 + कं_2 कं_2 + \ldots\ldots + क_म कं_म}$$

$$= \begin{vmatrix} प_1, & ख_1, & ग_1, & \ldots\ldots & न_1 \\ प_2, & ख_2, & ग_2, & \ldots\ldots & न_2 \\ प_3, & ख_3, & ग_3, & \ldots\ldots & न_3 \\ & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \\ प_म, & ख, & ग_म, & \ldots\ldots & न_म \end{vmatrix} \Bigg/ \begin{vmatrix} क_1, & ख_1, & ग_1, & \ldots\ldots & न_1 \\ क_2, & ख_2, & ग_2, & \ldots\ldots & न_2 \\ क_3, & ख_3, & ग_3, & \ldots\ldots & न_3 \\ & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \\ क_म, & ख_म, & ग_म, & \ldots\ldots & न_म \end{vmatrix}$$

$$इसी\ भांति\ य_3 = \begin{vmatrix} क_1, & ख_1, & प_1, & \ldots\ldots & न_1 \\ क_2, & ख_2, & प_2, & \ldots\ldots & न_2 \\ क_3, & ख_3, & प_3, & \ldots\ldots & न_3 \\ & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \\ क_म, & ख_म, & प_म, & \ldots\ldots & न_म \end{vmatrix} \Bigg/ \begin{vmatrix} क_1, & ख_1, & ग_1, & \ldots\ldots & न_1 \\ क_2, & ख_2, & ग_2, & \ldots\ldots & न_2 \\ क_3, & ख_3, & ग_3, & \ldots\ldots & न_3 \\ & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \ldots\ldots & \\ क_म, & ख_म, & ग_म, & \ldots\ldots & न_म \end{vmatrix}$$

इसी भांति प्रत्येक अव्यक्तका मान लिखा जा सकता है।

२ नीचे लिखे हुए त्रिवर्ण सरल समघात तीन समीकरण लीजिये—

$$अ_1 क + इ_1 ख + उ_1 ग = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad (1)$$

$$अ_2 क + इ_2 ख + उ_2 ग = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad (2)$$

$$अ_3 क + इ_3 ख + उ_3 ग = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad (3)$$

यहां ग को व्यक्त मानें तो (१) और (२) से क और ख के मान ये निकलेंगे—

$$\frac{क}{\begin{vmatrix} इ_1 , & उ_1 \\ इ_2 , & उ_2 \end{vmatrix}} = \frac{ख}{-\begin{vmatrix} अ_1 , & उ_1 \\ अ_2 , & उ_2 \end{vmatrix}} = \frac{ग}{\begin{vmatrix} अ_1 , & इ_1 \\ अ_2 , & इ_2 \end{vmatrix}} \quad \ldots \quad \ldots \quad (4)$$

अब क और ख के मान (३ में उत्थापन करें तो

$$अ_3 \begin{vmatrix} इ_1 , & उ_1 \\ इ_2 , & उ_2 \end{vmatrix} ग - इ_3 \begin{vmatrix} अ_1 , & इ_1 \\ अ_2 , & इ_2 \end{vmatrix} ग + उ_3 \begin{vmatrix} अ_1 , & इ_1 \\ अ_2 , & इ_2 \end{vmatrix} ग = 0$$

यह समीकरण बनता है। साधारण अवयव ग अलग करनेपर जो बचता है उसे इस भांति लिख सकते हैं—

$$\begin{vmatrix} अ_1 , & इ_1 , & उ_1 \\ अ_2 , & इ_2 , & उ_2 \\ अ_3 , & इ_3 , & उ_3 \end{vmatrix} = 0$$

इसे दिये हुए तीन समीकरणोंका निर्गम कहते हैं और निर्गम लानेकी क्रिया निर्गमन कहलाती है।

यदि म-वर्ण सरल समघात म समीकरण दिये जायँ तो उनका निर्गम उसी भांति उत्पन्न किया जा सकता है। जैसे—

$$अ_{11} क_1 + अ_{12} क_2 + अ_{13} क_3 + \ldots\ldots\ldots + अ_{1म} क_म = 0$$

$$अ_{21} क_1 + अ_{22} क_2 + अ_{23} क_3 + \ldots\ldots\ldots + अ_{2म} क_म = 0$$

$$अ_{31} क_1 + अ_{32} क_2 + अ_{33} क_3 + \ldots\ldots\ldots + अ_{3म} क_म = 0$$

$$\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$अ_{म1} क_1 + अ_{म2} क_2 + अ_{म3} क_3 + \ldots\ldots\ldots + अ_{मम} क_म = 0$$

इनका निर्गम होगा $\left| अ_{मम} \right| = 0$

३ चाहे जिस घात वाले दो समीकरण दिये जायँ जिसमें केवल एक अव्यक्त हो तो उनका भी निर्गम निकाल सकते हैं। उदाहरणार्थ—

$$अ_0 क^3 + अ_1 क^2 + अ_2 क + अ_3 = 0 \qquad (1)$$

$$इ_0 क^4 + इ_1 क^3 + इ_2 क^2 + इ_3 क + इ_4 = 0 \qquad (2)$$

यहां (१) को $क^३$, $क^२$ और क से गुणनेपर जो तीन समीकरण बनते हैं उन्हें पहिले लिखकर उनके नीचे समीकरण (१) लिखें और फिर (२) को $क^२$ और क के गुणनेपर जो दो समीकरण बनते हैं उन्हें लिखकर उनके नीचे समीकरण (२) लिखें तो कुल ७ समीकरण होंगे, यथा—

$$अ_० क^६ + अ_१ क^५ + अ_२ क^४ + अ_३ क^३ = ०$$
$$अ_० क^५ + अ_१ क^४ + अ_२ क^३ + अ_३ क^२ = ०$$
$$अ_० क^४ + अ_१ क^३ + अ_२ क^२ + अ_३ क = ०$$
$$अ_० क^३ + अ_१ क^२ + अ_२ क + अ_३ = ०$$
$$इ_० क^६ + इ_१ क^५ + इ_२ क^४ + इ_३ क^३ + इ_४ क^२ = ०$$
$$इ_० क^५ + इ_१ क^४ + इ_२ क^३ + इ^३ क^२ + इ^४ क = ०$$
$$इ_० क^४ + इ_१ क^३ + इ_२ क^२ + इ_३ क + इ_४ = ०$$

पिछले प्रक्रमसे इनका निर्गम यह होगा—

$$\begin{vmatrix} अ_० , & अ_१ , & अ_२ , & अ_३ , & ० , & ० , & ० \\ ० , & अ_० , & अ_१ , & अ_२ , & अ_३ , & ० , & ० \\ ० , & ० , & अ_० , & अ_१ , & अ_२ , & अ_३ , & ० \\ ० , & ० , & ० , & अ_० , & अ_१ , & अ_२ , & अ_३ \\ इ_० , & इ_१ , & इ_२ , & इ_३ , & इ_४ , & ० , & ० \\ ० , & इ_० , & इ_१ , & इ_२ , & इ_३ , & इ_४ , & ० \\ ० , & ० , & इ_० , & इ_१ , & इ_२ , & इ_३ , & इ_४ \end{vmatrix} = ०$$

इसी भांति यदि पहिला समीकरण म-घातका हो और दूसरा न-घातका तो उनके निर्गम वाले निर्णायककी कक्षा (म + न) होगी। निर्गम लानेके लिये पहिले समीकरणको क्रमशः $क^{न-१}$, $क^{न-२}$ ....और क से अलग अलग गुणनेपर जो समीकरण बनें उन्हें लिखकर उनके नीचे पहिला समीकरण लिखना चाहिये। फिर दूसरे समीकरणको क्रमशः $क^{म-१}$, $क^{म-२}$,.........और क से गुणनेपर जो समीकरण बनें उन्हें लिखकर उनके नीचे दूसरा समीकरण लिखना चाहिये। इस तरह कुल म+न समीकरण होंगे। अब $क^{म+न-१}$, $क^{म+न-२}$ ....और क इन्हें म + न − १ अव्यक्त मानें तो उन म + न समीकरणोंको (म + न −१)-वर्ण सरल समीकरण मान सकते हैं, अतः उनका निर्गम प्रक्रम २ के अनुसार यह होगा—

$$
\begin{vmatrix}
अ_{०}, & अ_{१}, & अ_{२}, & \ldots\ldots & अ_{म}, & ०, & ०, & \ldots\ldots \\
०, & अ_{०}, & अ_{१}, & \ldots\ldots & अ_{म-१}, & अ_{म}, & ०, & \ldots\ldots \\
०, & ०, & अ_{०}, & \ldots\ldots & अ_{म-२}, & अ_{म-१}, & अ_{म}, & \ldots\ldots \\
\ldots\ldots & & & & & & & \ldots\ldots \\
\ldots\ldots & & & & & & & \ldots\ldots अ_{म-१}, अ_{म} \\
इ_{०}, & इ_{१}, & इ_{२}, & \ldots\ldots & & & & \ldots\ldots \\
०, & इ_{०}, & इ_{१}, & \ldots\ldots & & & & \ldots\ldots \\
०, & ०, & इ_{०}, & \ldots\ldots & & & & \ldots\ldots \\
\ldots\ldots & & & & & & & \ldots\ldots \\
\ldots\ldots & & & & & & & \ldots\ldots इ_{न-१}, इ_{न}
\end{vmatrix} = ०
$$

५ परिभाषा

अनुबन्ध	Suffix
अवयव	Factor
अव्यक्त	Unknown
उत्थापन	Substitution
कक्षा	Order
कर्ण रेखा	Diagonal
कल्पित	Inaginary
क्रमं गुणित	Factorial
क्रम विषयक	Commutative
गुण	Coefficient
घटक	Constituent
घात	Degree, power
चतुष्कोण	Rectangul ararray
छाया	Abscissa
निर्गम	Eliminant
निर्गमन	Elimination
निर्णायक	Determinant
पद	Term
प्रक्रम	Article
पूरक ह्रस्व	Complementary minor
प्रथम ह्रस्व	First minor
प्रधान कर्ण	Leading diagonal
प्रस्तार	Permutation
फल	Functin
बैजिक	Algebraic
मूल	Root
वास्तविक	Real
व्यक्त	Known
समघात	Homogeneous
समीकरण	Equation
सरल	Of the first degree
संघ	Combination $^{म}संघ_{प} = {}^{m}C_{p}$
संगर	Coordinates
साधारण	Common
सांकल्पिकअंक	Alternate numbers
सांग्रहिक	Associative
सांचयिक	Scalar
सांसर्गिक	Distributive
शर	Ordinate
ह्रस्व	Minor
ह्रस्वात्मक	Reciprocal